Digitization by eGangotri and Sarayu Trust. Funding by MoE-IKS

श्वेताश्वतरोपनिषद्

टी.जी. सिद्धप्पाराध्यविरचित "चन्द्रिका" वीरशैवभाष्यसमवेता

शैवभारती शोध प्रतिष्ठान, जंगमवाड़ीमठ
वाराणसी

"भावार्थदीपिका"कारः सम्पादकश्च

पं० जगन्नाथशास्त्री तैलङ्गः

CC0. In Public Domain. Jangamwadi Math Collection, Varanasi

Digitization by eGangotri and Sarayu Trust. Funding by MoE-IKS

CC0. In Public Domain. Jangamwadi Math Collection, Varanasi

Digitization by eGangotri and Sarayu Trust. Funding by MoE-IKS

CC0. In Public Domain. Jangamwadi Math Collection, Varanasi

Digitization by eGangotri and Sarayu Trust. Funding by MoE-IKS

CC0. In Public Domain. Jangamwadi Math Collection, Varanasi

Digitization by eGangotri and Sarayu Trust. Funding by MoE-IKS

श्वेताश्वतरोपनिषद्

CC0. In Public Domain. Jangamwadi Math Collection, Varanasi

Digitization by eGangotri and Sarayu Trust. Funding by MoE-IKS

CC0. In Public Domain. Jangamwadi Math Collection, Varanasi

Digitization by eGangotri and Sarayu Trust. Funding by MoE-IKS

शोध प्रकाशन ग्रन्थमाला—४९

श्वेताश्वतरोपनिषद्

टी. जी. सिद्धप्पाराध्यविरचित-
''चन्द्रिका''वीरशैवभाष्यसमवेता

''भावार्थदीपिका''कारः सम्पादकश्च
पं. जगन्नाथशास्त्री तैलङ्गः

प्रकाशकः
शैवभारती-शोधप्रतिष्ठानम्
डी. ३५/७७, जंगमवाड़ीमठ, वाराणसी - २२१ ००१

CC0. In Public Domain. Jangamwadi Math Collection, Varanasi

Digitization by eGangotri and Sarayu Trust. Funding by MoE-IKS

प्रकाशक :
शैवभारती शोध प्रतिष्ठान
डी. ३५/७७, जंगमवाड़ी मठ
वाराणसी - २२१ ००१

© शैवभारती शोध प्रतिष्ठान

प्रथम संस्करण २००६

मूल्य : रु. ४००.०० (सजिल्द), रु. ३००.०० (अजिल्द)

अक्षर संयोजन
शिव-शक्ति कम्पूटर प्रोसेस
जंगमवाड़ीमठ, वाराणसी

मुद्रक
मित्तल ऑफसेट्स
सुन्दरपुर, वाराणसी

CC0. In Public Domain. Jangamwadi Math Collection, Varanasi

Digitization by eGangotri and Sarayu Trust. Funding by MoE-IKS

Research Publications Series—49

ŚVETĀŚVATAROPANIṢAD

T. G. Siddappārādhyaviracit-
"Candrikā" Vīraśaivabhāṣyasamavetā

Bhāvārthadīpikā
by
Pt. Jagannath Shastri Tailanga

SHAIVA BHARATI SHODHA PRATISHTHANAM
D. 35/77, Jangamawadimath, Varanasi - 221 001

CC0. In Public Domain. Jangamwadi Math Collection, Varanasi

Digitization by eGangotri and Sarayu Trust. Funding by MoE-IKS

Published by :
SHAIVA BHARATI SHODHA PRATISHTHANAM
D. 35/77, Jangamawadimath
Varanasi - 221 001

© Shaiva Bharati Shodha Pratishthanam

First Published 2006

ISBN 81-86768-84-X (Hb)
ISBN 81-86768-85-8 (Pb)

Price : Rs. 400.00 (Hb), Rs. 300.00 (Pb)

Laser Typeset at :
Shiva-Shakti Computer Process
Jangamawadimath, Varanasi - 221 001

Printed at :
Mittal Offset
Sundarpur, Varanasi

CC0. In Public Domain. Jangamwadi Math Collection, Varanasi

Digitization by eGangotri and Sarayu Trust. Funding by MoE-IKS

शैवभारती-शोधप्रतिष्ठान-संस्थापकानां

श्रीकाशीविश्वाराध्यज्ञानसिंहासनाधीश्वराणां

श्री १००८ जगद्गुरु-डॉ. चन्द्रशेखरशिवाचार्यमहास्वामिनां

शुभाशीर्वचनम्

सनातन वीरशैव धर्म के सिद्धान्त वेद, आगम, उपनिषद्, पुराण और इतिहास ग्रन्थों में प्रतिपादित है। इसीलिए उन सभी वाङ्मयों में उस सिद्धान्त को प्रकाशित करने का कार्य काशी जंगमवाड़ीमठ के शैव भारती शोध प्रतिष्ठान के द्वारा विगत अनेक वर्षों से हो रहा है। इस प्रतिष्ठान के निदेशक आचार्य राष्ट्रीयपण्डित व्रजवल्लभ द्विवेदी के नेतृत्व में काशी के अनेक विद्वान् कार्यरत हैं। उनमें पं. जगन्नाथ शास्त्री तैलङ्ग एक हैं।

प्रसिद्ध दश उपनिषदों पर जैसे विभिन्न मतों के आचार्य एवं विद्वान् अपने-अपने मतो के अनुसार भाष्य लिखते हैं। उसी प्रकार उपनिषदों पर वीरशैवभाष्य लिखने का कार्य पं. उमचिगि शंकरशास्त्रीजी, श्री ष.ब्र. सदाशिव शिवाचार्य सखरायपट्टण एवं विद्वान् टी.जी. सिद्धप्पाराध्य इन तीन विद्वानों ने कार्य किया है।

कृष्ण यजुर्वेद के प्रस्तुत श्वेताश्वेतरोपनिषत् पर विद्वान् टी.जी. सिद्धप्पाराध्यजी ने वीरशैवभाष्य लिखा है। इस ग्रन्थ का प्रथम प्रकाशन चित्रदुर्ग बृहन्मठ के द्वारा हुआ था। यह उपनिषद् सम्पूर्णानन्द संस्कृत विश्वविद्यालय के शक्तिविशिष्टाद्वैत वेदान्त के शास्त्री कक्षा में पाठ्यग्रन्थ के रूप में स्वीकृत हुआ है। अतः इस

CC0. In Public Domain. Jangamwadi Math Collection, Varanasi

Digitization by eGangotri and Sarayu Trust. Funding by MoE-IKS

मूल उपनिषद् और उसके वीरशैव भाष्य को हिन्दी अनुवाद के साथ प्रकाशित करने से छात्रों को अत्यन्त उपयोगी सिद्ध होगा। ऐसा विचार कर के उस अनुवाद का कार्य पण्डित जगन्नाथ शास्त्री तैलङ्ग जी को सौंपा गया।

पं. शास्त्रीजी ने मूल उपनिषद् और वीरशैव भाष्य का बहुत ही सुन्दर ढंग से राष्ट्रभाषा हिन्दी में अनुवाद किया है। इस अनूदित ग्रन्थ को महाशिवरात्रि के पर्वकाल में शैवभारती शोधप्रतिष्ठान के द्वारा प्रकाशित करते हुए हम अपार हर्ष का अनुभव कर रहे हैं। पंण्डित शास्त्रीजी ने इससे पहले मुण्डकोपनिषद्, सिद्धान्तशिखोपनिषद्, ईशावास्योपनिषद् एवं केनोपनिषद् आदि ग्रन्थों का हिन्दी अनुवाद करके उन ग्रन्थों को अधिक लोकोपयोगी बनाया है। हम आशा करते हैं कि यह श्वेताश्वतरोपनिषद् भी अधिक लोकोपयोगी सिद्ध होगा। इस उपनिषद् के भाष्यकर्ता विद्वान् टी.जी. सिद्धप्पाराध्यजी मैसूर विश्वविद्यालय में संस्कृत विभाग के प्रमुख रहे और शक्तिविशिष्टाद्वैत वेदान्त के मूर्धन्य विद्वान् भी रहे। उन्होंने श्वेताश्वतरोपनिषद् और भगवद्गीता के ऊपर वीरशैवभाष्य लिखकर वीरशैव वेदान्त के प्रस्थानत्रय में जो कमी रही उसको पूर्ण करने का सफल प्रयास किया।

इस मंगलमय प्रसंग में हम भावना व्यक्त करते हैं कि लिंगैक्य विद्वान् टी.जी. सिद्धप्पाराध्यजी की आत्मा को श्री जगद्गुरु विश्वाराध्यजी अनन्त मंगलाशीर्वाद प्रदान करें। इस भाष्य के हिन्दी अनुवादक पं. जगन्नाथ शास्त्री तैलङ्गजी भूतभावन विश्वनाथ की असीम कृपा से सदा स्वस्थ रहें और इतोप्यतिशयेन वाङ्मयी शिव सेवा करते रहें।

इस पुस्तक के टङ्कणकार श्री चिदानन्द ओ. हिरेमठ (कसगी) और मुद्रण कार्य में निरंतर अपना योगदान प्रदान करने वाले डॉ. जी.सी. केण्डदमठ तथा मठ के समस्त सेवक वर्ग को अनन्त मंगलाशीर्वाद।

—इत्याशिषः

CC0. In Public Domain. Jangamwadi Math Collection, Varanasi

Digitization by eGangotri and Sarayu Trust. Funding by MoE-IKS

श्रीमच्चिन्मूलाद्रिबृहन्महापीठाध्यक्षाणां
श्रीमन्निरञ्जनजगद्गुरुमल्लिकार्जुनमुरुघराजेन्द्रमहास्वामिनां

शुभाशंसनम्

॥ श्रीगुरुमुरुघेशाय नमः ॥

महदिदं प्रमोदास्पदं यदियं श्वेताश्वतरश्रुतिः वीरशैवभाष्योपेता, श्रीजगद्गुरु-मुरुघराजेन्द्र-विद्यापीठग्रन्थमालायां प्रथमतया प्रकाश्यत इति। अस्या ग्रन्थमालाया ग्रथनं गुम्फनं वा संस्कृतादिनैकविधासु भाषासु सर्वमान्यैः प्रमाणग्रन्थैरेव क्रमशः क्रियते। ते च ग्रन्थाः साहित्यसंस्कृतिसौरभान्विता धर्मतत्त्वसुधासम्पूरिताः प्राचीना अर्वायीनाश्च भवेयुः। सिद्धान्तप्रतिपादकाः विचारप्रचुरा शान्तिप्रवणाश्चः तादृशा एव ग्रन्था अस्यां मालायामवकाशं लभेरन्।

सम्प्रति वीरशैवदर्शनरीत्या श्वेताश्वतरश्रुतिः यथायोग्यं यथासाध्यं च व्याख्याता वर्तते पं. टी. जी. सिद्धप्पाराध्यमहोदयेन। एतद् व्याख्यानं न तर्ककर्कशं, न वादोपवादविजृम्भितं वा ; किन्तु सूत्रवत् स्वल्पाक्षरम् असन्दिग्धम् अनवद्यं च। वीरशैवसाहित्ये दर्शने च कृतभूरिपरिश्रमाणाम् अनेकग्रन्थनिर्मातॄणामेतेषां व्याख्याप्रणाली सर्वथा सुलभा सुभगा चेति संस्कृतज्ञैः बाढं विश्वस्यते। ये तु संस्कृतं न जानन्ति तेषां कृते कर्णाटवाण्यां श्रुतिरियं तैरेवानूदिता परिशिष्टे विराजते। एवञ्च समेषां तत्त्वपिपासूनां नितान्तं तुष्टिप्रदोऽयं भाष्यप्रबन्धः।

सामान्यतः सर्वासु उपनिषत्सु सर्वे सिद्धान्ता उपलभ्यन्ते सूक्ष्मदृशाम्। प्रकृते श्वेताश्वतरोपनिषदि शक्तिविशिष्टाद्वैतं शिवाद्वैतं वा कथं निरूषितमित्येतदाविष्कृतं भाष्यकृता। तदवश्यं पर्यवलोकनीयं विद्वद्वर्यैः। आगमा इव आम्नाया अपि वीरशैवमतं पोषयन्तीति सर्वोपनिषदामवगाहनेन विस्पष्टं प्रतीयते। अत एव वीरशैवधर्मग्रन्थेषु वचनवाङ्मये च परमप्रमाणत्वेन वेदागमवाक्यानि उपन्यस्यन्ते। तथैव श्वेताश्वतरश्रुतिरपि वीरशैवप्रक्रिया-प्रतिपादने समर्थने च सर्वात्मना पुरस्कृता वर्तते। सेयं श्रुतिः इदानीं वीरशैवभाष्यविभूषिता, भाष्यकर्त्रा सप्रश्रयं श्रीगुरुमुरुघेशाय समर्पिता समुल्लसति। प्रागुक्तग्रन्थमालायां विलसिता, समीचीनया सर्वार्पणबुद्ध्या निष्पन्ना कृतिरियं श्रद्धालुसम्पादकानां श्रेयसे, सिद्धान्तलिप्सूनां प्रेक्षावतां प्रेयसे च भूयादिति संमोदपुरःसरमाशास्महे।

चित्रदुर्ग
१३.९.६५

जगद्गुरुश्रीमल्लिकार्जुनमुरुघराजेन्द्रमहास्वामिनः,
श्रीबृहन्मठमहासंस्थानाध्यक्षाः

CC0. In Public Domain. Jangamwadi Math Collection, Varanasi

Digitization by eGangotri and Sarayu Trust. Funding by MoE-IKS

FOREWORD

The Vedas and Upanishads are to India what the Crown and Sceptre are to an anointed King. They are India's proudest and most ancient possessions. They are the world's oldest intellectual legacies. They are the only composition in the universe invested with Divine origin and almost Divine sanctity. They are said to emanate from God, and are held to be the means for attaining God.

When Europeans first came to know them they roused amazement. Guigault of France exclaimed, "The Rigveda is the most sublime conception of the great highways of humanity." Voltaire called Yajurveda, "The most precious gift for which the West has been ever indebted to the East." And we have the famous dictim of Max-muller, "I maintain that to everybody who cares for himself, for his ancestors, for history; for his intellectual development, a study of Vedic literature is indispensable."

The Upanishads are 108 in number, amongst which ten known as "Dashopanishads", are famous. They discuss such lofty subjects as Creatlon, the Universe, man's soul, and the impersonal Almighty force called God, or Rudra, or Parabrahma, who creats, sustains and destroys the Universe. To be saved from life's sorrows and unhappiness, man should realise his relation to God, and fit himself to receive salvation from Him.

Sage Swetashwatara in a concise from explains the problem in the Upanishat which is selected for publication in this valume. Dr. T. G. Siddapparadhya of the Mysore University, is a learned scholar and profound Veerashaiva, provides herein an erudite commentary in Sanskrit, with a lucidtranslation in Kannada understandable by the public at large. The book is being published under the auspices of the learned and venerable Head of the Murugharajendra Mutt, one of the premier Veerashaiva religious centres of the Karnataka State, and is a valuable contribution to Veerashaiva religious literature. I feel happy to congratulate Dr. Siddapparadhya on his tireless endeavour in the holy cause of propagating Veerashaiva literature and philosophy.

100 Feet Road
Mysore
16-9-65

G.R. Josyer
Founder Director
International Academy of Sanskrit Research

CC0. In Public Domain. Jangamwadi Math Collection, Varanasi

Digitization by eGangotri and Sarayu Trust. Funding by MoE-IKS

वीरशैवभाष्यकर्तुः भूमिका

भारतीयसाहित्यक्षेत्रे वेदानां स्थानम् असाधारणं दृश्यत इत्यत्र न कस्यापि विवादः। न तावन्मात्रमेव, विश्वसाहित्यक्षेत्र एव तेषां स्थानम् असाधारणमित्येव वक्तव्यम्। "वेदाः खलु अपौरुषेयाः" इति भारतीयानामुद्घोषः। **'तस्य महतो भूतस्य निश्वसितमेतत्'** इत्यादिषु वेदानां साक्षात् परमात्मसकाशादेवाविर्भावः स्पष्टं प्रतिपाद्यते। अतश्च वेदसाहित्यं देवसाहित्यमित्येव सञ्जातम्। तत एव तद्भाषाया अपि देवभाषा इति प्रवादः परिदृश्यते। सर्वभाषामूलत्वात् माधुर्याच्च तस्यास्तन्नाम युज्यते।

एतादृशे वेदसाहित्ये उपनिषदां स्थानं तु अनिर्वचनीयम् इति विदुषः जानन्त्येव। उपनिषदां तु 'वेदान्ताः' इत्यप्यस्ति व्यवहारः। वेदानामन्तिमो भाग एव वेदान्तपदस्यार्थः। वेदानामन्तिमो भाग इत्युक्ते वेदानाम् अन्तः यत्र पर्यवसानं तत्प्रतिपादकत्वादस्य 'वेदान्तः' इति संज्ञा जाता। वेदानां सर्वेषां च परमं तात्पर्यं परब्रह्मण्येव। **'वेदैश्च सर्वैरहमेव वेद्यः'** इति चाह भगवान् **गीतायाम्**। एतादृशपरब्रह्मप्रतिपादकानां वेदान्तानाम् उपनिषच्छब्देन व्यवहारो दृश्यते **'उप- समीपे निषीदति'** इति व्युत्पत्त्या अस्य भागस्य ब्रह्मसमीपवर्तित्वं बोध्यते। ब्रह्मसमीपवर्तित्वं नाम साक्षादेव ब्रह्मप्रतिपादकत्वमेव। तथा च साक्षाद् ब्रह्मप्रतिपादकाः वेदभागा एव वेदान्तशब्देन, उपनिषच्छब्देन च व्यवह्रियन्ते।

एताश्चोपनिषदो दिव्योपदेशेन मानवस्य यथार्थां वस्तुस्थितिं प्रदर्शयन्त्यः परमार्थतत्त्वदर्शनसाधनत्वात् **दर्शन**शब्देन च व्यवह्रियन्ते। एतादृशेषु दर्शनेषु **अध्यात्मदर्शन**मेव सर्वश्रेष्ठम्, यतः तदेव दर्शनं मानवस्य संसारबन्धात् मोचनोपायं साक्षादेव वदति। **'अध्यात्मविद्या विद्यानाम्'** इति च भगवान् गीतायां वदति। अध्यात्मदर्शने च प्रस्थानत्रयमस्ति, उपनिषत्प्रस्थानं गीताप्रस्थानम्, सूत्रप्रस्थानं चेति। शरीराभिमानेन भोग एव विलीनोऽपि जीवः गुरूपदेशेन स्वप्रकृतिमेव परिवर्तयन् योगनिष्ठो भवति। स्वस्मिन्निर्लिप्ततया निवसतः परमेश्वरस्य च स्वरूपं विदित्वा तदुपासनेन तस्य प्रसादमधिगच्छति दासभूतो जीवः। एवं च सः भोगं प्रसादरूपेणोपयुञ्जन् स्वदेहेन्द्रियादिकं परमेश्वरसेवायै विनियुञ्जश्च

CC0. In Public Domain. Jangamwadi Math Collection, Varanasi

Digitization by eGangotri and Sarayu Trust. Funding by MoE-IKS

हृदयस्थं परमेश्वरं प्रस्थातुकामः सम्पद्यते। एवं तस्य प्रस्थाने साधनानि त्रीणि प्रसिद्धानि वर्तन्ते।

अत एव श्रीशङ्कराचार्यादिभिः प्रस्थानत्रयभाष्यं विरचितम्। एषु त्रिष्वपि **उपनिषत्प्रस्थान**मेव सर्वस्याप्याधारभूतम्। सूत्रप्रस्थानस्य हि उपनिषद् एव विषयभूतः। उपनिषदामर्थनिर्णयार्थमपेक्षिततर्कप्रतिपादकान्येव ब्रह्मसूत्राणि। अत एव तेषाम् उपनिषद एव विषयभूताः। गीतायाः साक्षात् भगवदुपदिष्टत्वेऽपि तस्याः महाभारतान्तर्गतत्वेन इतिहासान्तर्गतत्वेन च पौरुषेयत्वमेव सम्मतम्, नापौरुषेयत्वम्। **उपनिषदस्तु अपौरुषे**या इति सर्वसम्मतम्। अतः ब्रह्मसूत्रापेक्षया गीतायाः, तदपेक्षया उपनिषदां च श्रेष्ठत्वं वक्तव्यम्। अतश्च अध्यात्मदर्शने उपनिषदां स्थानमेव सर्वश्रेष्ठम्। एवं च अध्यात्मदर्शनस्य वेदान्तदर्शनम् इत्येव व्यवहारः। वेदान्तदर्शने द्वैताऽद्वैत-विशिष्टाद्वैत-शक्तिविशिष्टाद्वैतादिप्रभेदसत्त्वेऽपि सर्वेषां साधारणं तु नाम वेदान्तदर्शनमित्येव। एवम् अस्य दर्शनस्यैव वेदान्तनाम्ना प्रवृत्तत्वात् वेदान्तानाम् अर्थात् उपनिषदामेव सर्वश्रेष्ठत्वं निर्णीतं भवति।

एतादृशः उपनिषदः यद्यप्यनेकाः सन्ति, तथापि सर्वैरपि सम्प्रतिपन्नतया कतिपया एव प्रसिद्धा वर्तन्ते। तत्र प्रथमप्रसिद्धिः ईश-केन-कठ-प्रश्न-मुण्डक-माण्डूक्य-तैत्तिरीय-ऐतरेय-छान्दोग्य-बृहदारण्यकनामभिः प्रसिद्धानां दशानामेव। श्रीशङ्कराचार्यदयोऽपि इमा उपनिषद अङ्गीकृतवन्त एव। रामानुजाचार्यैरपि बहुषु स्थलेषु एतदुपनिषद्वाक्यानि प्रमाणतया उपन्यस्यन्ते। अतः एतदुपनिषत्प्रामाण्ये कस्यापि विप्रतिपत्तेर्नावकाशः।

एवं सर्वेषां सामान्यतः प्रमाणभूतापि इयमुपनिषत् विशिष्य शैवानाम् अत्यन्तम् आदरणीया वर्तते। अस्यां हि उपनिषदि शिवस्यैव परब्रह्मत्वमुपदिश्यते। यद्यपि कुत्रचित् शिवपदस्थाने देवपदप्रयोगेण पाठभेदः, शाङ्करभाष्यादिष्वपि दृश्यते **'ज्ञात्वा शिवम्'** इति स्थाने **'ज्ञात्वा देवम्'** इत्यादिरीत्या, तथापि **'एको हि रुद्रो न द्वितीयाय तस्थे'**, **'यदा तमस्तन्न दिवा न रात्रिः न सन्न चासच्छिव एव केवलः'** **'विश्वाधिको रुद्रो महर्षिः'** इत्यादीनि सर्वसम्प्रतिपन्नानि वाक्यानि अत्र दृश्यन्ते। एतान्येव वाक्यानि शैवमतस्य मूलप्रमाणभूतानि। अतः इयम् उपनिषत् इतरापेक्षया शैवानामत्यन्तम् आदरणीयेत्यत्र न कस्यापि संशयावकाशः।

एवं शिवस्य परब्रह्मकथनेऽपि सर्वदेवात्मकत्वमप्यस्यामेव हृदयङ्गमतया प्रतिपाद्यत इत्ययं विषयोऽपि गमनार्हः।

CC0. In Public Domain. Jangamwadi Math Collection, Varanasi

Digitization by eGangotri and Sarayu Trust. Funding by MoE-IKS

''तदेवाग्निस्तदादित्यस्तद्वायुस्तदु चन्द्रमाः।
तदेव शुक्रं तद् ब्रह्म तदापस्तत् प्रजापतिः।।'' (४.२)

इत्येवं परशिवस्य सर्वात्मकत्व-प्रतिपादनेनेयं श्रुतिः सर्वदैव समन्वयं साधयति। तथैवोपासकानां स्वरूपविवेचनावसरे पुंस्त्रीदेहान्तर्गतस्य, तथैव युववृद्धान्तर्गतस्य च जीवस्य भेदमगणयन्तीयं श्रुतिः सर्वेषामपि जीवानां स्वान्तरङ्गस्थेश्वरे सामरस्यरूपं योगं बोधयति। अस्य च शिवयोगस्य सर्वेऽपि जीवा योग्या एव वर्तन्त इत्ययमंशो गमनीयः।

वीरशैवानामत्यन्तादरणीया अस्या उपनिषदस्तु इतरैः भाष्यं विरचितं दृश्यते। किन्तु तन्मतसम्बन्धि भाष्यं तु नाद्यावधि किञ्चित् परिदृश्यते। इदं तु अतीव शोचनीयमेव। इमां न्यूनतां परिहर्तुमेव अयं प्रयत्नः विशिष्य कृतः तत्त्वजिज्ञासूनां प्रमोदाय।

अस्या उपनिषदः एतन्नाम्नः कारणं तु अत्रैवान्ते दृश्यते—

''तपःप्रभावात् योगप्रभावाच्च
ब्रह्म ह श्वेताश्वतरोऽथ विद्वान्।
अत्याश्रमिभ्यः परमं पवित्रं
प्रोवाच सम्यक् ऋषिसङ्घजुष्टम्।।'' इति।

श्वेताश्वतरो नाम महर्षिः ब्रह्मज्ञानी सन् लोकहितायेदमुपदिष्टवान्। अतश्च अस्या उपनिषदः तन्नाम्नैव व्यवहारः। अत्र **'अत्याश्रमिभ्यः'** इत्यस्य संन्यासिभ्यः इत्यर्थः इतरभाष्यकाराणां सम्मतः। **'अन्त्याश्रमिभ्यः'** इत्यपि केषाञ्चित् पाठः इत्यपि भाति। साम्प्रदायिकास्तु वीरशैवाः 'अत्याश्रमि'पदेन आश्रममतीता वीरशैवा एव विवक्षिता अत्रेति वदन्ति। तेषां दृष्ट्या तु इयमुपनिषत् वीरशैवानामेवासाधारणतयान्वेति।

'चातुर्वर्ण्यं मया सृष्टं गुणकर्मविभागशः'

इत्यादिप्रमाणानुरोधेन गुणकर्मनिबन्धनवर्णाश्रमव्यवस्थायां वीरशैवसम्मतत्वं मया ग्रन्थान्तरे बहुधा प्रतिपादितमेव। अतः अर्थद्वयमपि भवितुमर्हत्येवेति मदाशयः। एवं चेयं श्रुतिः न केवलमन्त्याश्रमिभ्यः परन्तु अत्याश्रमिभ्यः सर्वेभ्योऽपि वीरशैवेभ्यश्च आदरणीयैव। वीरशैवास्तु आश्रमधर्मानाचरन्तोऽपि शिवयज्ञानुष्ठानसमये तानुल्लङ्घयन्ति; रजस्वलादिसूतककालेऽपि शिवयज्ञं

CC0. In Public Domain. Jangamwadi Math Collection, Varanasi

Digitization by eGangotri and Sarayu Trust. Funding by MoE-IKS

नित्यविधित्वेनाचरन्ते। अतस्त अत्याश्रमिण उच्यन्ते। तेभ्यः सर्वदा शिवज्ञानं शिवार्चनं चोपदिशतीयं श्रुतिः। परन्तु शिवपारम्यप्रतिपादनपरत्वे तु स्पष्टान्येव वाक्यानि दृश्यन्ते। अतः अस्याः तादृशशैवमतानुगुणं भाष्यं तु अत्यन्तमावश्यकमित्यत्र तु न विप्रतिपत्तेरवकाशः। अतः इदं भाष्यं सर्वेषां, विशिष्य वीरशैवानाम्, अत्यन्तम् आदरणीयं स्यादित्यहं भावयामि। तेन च मदीयं परिश्रमं सार्थकं करोतु भगवानिति च तमेव परमशिवं प्रार्थये।

वीरशैवदर्शनरीत्या श्वेताश्वतरश्रुतिरधुना व्याकृतेत्युक्तौ वीरशैवदर्शनस्वरूपं किमिति प्रश्न उदेति। इतरदर्शनानीव वीरशैवदर्शनमपि आत्मदर्शनाय अत्युत्तमं साधनं सम्पद्यते। अत्रापि सिद्धान्तः सम्प्रदायश्चेति द्वौ भागौ वर्तेते। सिद्धान्तः शक्तिविशिष्टाद्वैतमिति, सम्प्रदायस्तु षट्स्थलोपासनमार्ग इति च व्यवह्रियते। तौ द्वावपि मिलित्वा दर्शनाभिधानं भजेते। श्वेताश्वतरश्रुतौ द्वयोरप्युपस्थितिरस्ति न वेति परिशील्यम्। प्रथमं सिद्धान्तसम्प्रदायस्वरूपे विवेचनीये। सिद्धान्ते तावत् शक्तेः शक्तिविशिष्टशिवस्य च अद्वैतं सामरस्यं साध्यते। परशिवब्रह्मण एव जगद्व्यापारोऽत्र निरुह्यः। अतस्तस्मिन्नेतत्कार्यनिवर्हणसामर्थ्यमप्यावश्यकम्। एतत्सामर्थ्यमेव शक्तिविशेष इति परिगण्यते। एतया शक्त्या विशिष्टत्वादेव सः पतिः, पहादेवः इत्यादिव्यवहारयोग्यः सञ्जातः। तथापीयं शक्तिः शिवप्राणभूता तदधीना सती तत्सन्तोषाय बहिर्विकारस्य प्रपञ्चाकारेण परिणमते। परिणामदशायां शिवस्य शक्तेश्च भेदः। अमूर्तः शिवः त्रिमूर्त्यवस्थाम्, अमूर्ता च शक्तिर्लक्ष्मीसरस्वतीपार्वत्यवस्थां भजते। एवं चामूर्तस्थितौ शिवशक्त्योरभेदस्य सत्त्वेऽपि जगद्व्यापारनिर्वाहाय शक्तिविशिष्टः शिव एव भिन्नरूपतया परिणमते। एवं कार्यनिर्वाहाय भिन्नयोः शिवशक्त्योः अद्वैतप्रतिपादनात् वीरशैवसिद्धान्तः शक्तिविशिष्टाद्वैतमित्यभिधीयते। तथैव चित्तशक्तिविशिष्टस्य शिवांशस्य जीवस्य चिच्छक्तिविशिष्टेन शिवेन सह सामरस्यरूपस्याऽद्वैतस्य प्रतिपादनात् अस्य दर्शनस्यैतन्नाम अन्वर्थं भवति। जीवः शिवांशोऽपि चिच्छक्तिसङ्कोचरूपया मायाऽपरनामधेयया चित्तशक्त्या विशिष्टः तदपहृतैश्वर्यः स्वयं सङ्कुचितशक्तिको वर्तते। एवं प्रकृत्या विभिन्नो जीवः गुरुणा दर्शितमार्गः निरन्तरोपासनेन शिवं ज्ञात्वा स्वीयं वास्तवं शिवभावमनुभवति। एवं तयोरद्वैतप्रतिपादनाद् वीरशैवसिद्धान्तस्य शक्तिविशिष्टाद्वैतमिति नाम अन्वर्थं वर्तते। उपासनानैरन्तर्येण त्रिगुणात्मिका जीवप्रकृतिः सच्चिदानन्दात्मकतया परिणमते। तदा जीवः स्वीयां वास्तवीं स्थितिमधिगच्छति। एवमेव शिव-

CC0. In Public Domain. Jangamwadi Math Collection, Varanasi

Digitization by eGangotri and Sarayu Trust. Funding by MoE-IKS

परिणामभूतस्य प्रपञ्चस्य शिवस्य च वास्तविकाद्वैतप्रतिपादनात् वीरशैवसिद्धान्तः भेदाभेदात्मक इति विश्रुतः। अत्र बद्धावस्थायां जीवस्य शिवाद् भेदो यथा सत्यस्तथा बुद्धावस्थायां तयोरभेदोऽपि सत्य एवेत्यङ्गीकृतः।

"जीवः सत्यं जगत् सत्यं शिवः सत्यं स्वभावतः।
तयारेभेदः सत्यं वा क्रिमिभ्रमरयोरिव।।"

इत्येवं वीरशैवसिद्धान्तविवेचनं कृतमनुभविभिः।

अयं सिद्धान्तः श्वेताश्वतरश्रुतौ निरूपितो न वेत्यंशः परिशीलनीयः। इयं श्रुतिः ब्रह्मजिज्ञासयैवारभ्यते महर्षिणा। "ब्रह्मणो जगतश्च कः सम्बन्धः? कथं वयं ब्रह्मणि सम्बद्धास्तिष्ठामः?" इत्येवमारब्धेयं श्रुतिः जगतः जीवस्य च स्वरूपं सम्यक् परिशीलयति। परमात्मशक्त्यैव तत्सन्तोषाय सर्वोऽपि जगद्व्यापारो निरुह्यत इति समाधानमभिधत्ते श्रुतिरियम्। परमात्मनि स्वाभाविकतया सच्चिदानन्दरूपिणी शक्तिर्विलसति। तस्यां सः सदा रमते। अयं विषयः **'पराऽस्य शक्तिः'** इत्यस्मिन् मन्त्रे श्रूयते। सैव शक्तिस्त्रिगुणात्मिका सती **'माये'**त्युच्यते। जगद्व्यापारनिर्वाहाय इयमेव शक्तिरुपयुज्यते शिवेन। आत्मानन्दानुभवाय चिद्रूपा पराशक्तिरुपयुज्यते। एवं शिवशक्त्योर्भेदप्रतिपादनात् शक्तिविशिष्टाद्वैतदर्शनं वीरशैवसम्मतमित्यनुभवात् ज्ञायते। एतादृशाद्वैतप्रतिपादिकेयं श्रुतिस्तथैव विवरणमपेक्षत एव। परमात्मनिष्ठा चिच्छक्तिरेव सङ्कुचिता त्रिगुणात्मिकतया परिणता माया, चित्तम् प्रकृतिरिति च व्यवह्रियते। एवं चित्तशक्तिविशिष्टस्य जीवस्य चिद्विशिष्टेन शिवेन अद्वैतप्रतिपादनात्, चित्तस्य चिद्रूपेण परिणामाय उपासनविधानात्, मानवजीवनं प्रसादपूर्णं कर्तुं षट्स्थलोपासनमार्गस्य चोपदेशात् श्वेताश्वतरश्रुतिर्वीरशैवदर्शनरीत्या व्याख्यानमवलम्बत एव। मानवदेहं देवालयं कृत्वा तथैव शिवं विज्ञायार्चयितुं तत्प्रसादम् अनुभवितुं च सदवकाशं सर्वेभ्यः साधकेभ्यः परिकल्पयतीयं श्रुतिः। वीरशैवदर्शनस्यापि ध्येयं तदेवेत्यनेकवारमुल्लिखितमितरग्रन्थेषु।

एवं चास्यां श्रुतौ साधकजीवस्य मनोनैर्मल्यसम्पादनद्वारा हृदयस्थेश्वरविज्ञानेन तस्मिन् सामरस्यरूपो योग उपदिश्यते। तथापि अल्पज्ञस्य अल्पशक्तस्य अणोर्जीवस्य सर्वज्ञेन सर्वशक्तेन विभुना परमात्मना हृदयस्थत्वचेतनत्वसाम्येन योगः सम्भवेद् वा न वेत्ययं विचार आलोचनीयः। श्रुतिस्तु तयोर्योगमुपदिशति। भगवती श्रुतिः सर्वेषां प्रमाणभूता न केनापि व्याहन्येत। स च योगः चिज्जातीययोः

CC0. In Public Domain. Jangamwadi Math Collection, Varanasi

Digitization by eGangotri and Sarayu Trust. Funding by MoE-IKS

जीवपरमयोरिहैव निर्मलहृदयेऽधिगन्तव्य इत्यपि श्रुतिर्वदति। एवं चायं शिवयोगः कथं लभ्य इत्यत्र जीवस्य शिवज्ञानमेव प्रधानसाधनतया निर्दिष्टम्। ज्ञानमात्रेणायं योगो न लभ्यते, किन्तु तज्ज्ञानं त्रिविधोपासनेन समन्वेतव्यमित्यपि श्रुत्यैव विहितम्। तद्योजनं तदनुसन्धानं तद्भाव इति त्रिविधमुप्युपासनमत्र विधीयते। तेन ज्ञानसमन्वितेनोपासनेन शिवयोगोऽत्रैव प्रसादकायेऽनुभूतव्य इति श्रुतेरादेशः। अयं च सम्पूर्णतया विश्वासविषय एव। अल्लमप्रभुरप्यमुं विषयं पर्यालोचयति—

"वन्यो रसालः क्व च कोकिलः क्व तथापि सञ्जायत एव संगः।
महीध्रधात्रीलवणोदसारौ सम्बन्धमैतां किल नैकदेश्यौ।।
गुहेशलिङ्गस्य ममापि सङ्गः कथं कुतो वेति न शङ्कनीयम्।।"

इति। रसालकोकिलयोः भिन्नजातीययोर्मिन्न-देशस्थयोर्यद्यपि सङ्गः सञ्जायते। तथैव लवणधात्रीफलयोरपि सम्बन्धः सञ्जायते। एवमेव जीवस्य परमात्मनश्च भिन्नस्वभावयोः सामरस्यमवश्यं सम्भवत्येव। परमात्मनस्तु तत्सम्बन्धिनि जीवेऽव्याजं वात्सल्यं सदा वर्तत एव। जीवो यदि विश्वासपूर्वं परमात्मानमाह्वयति तदा सः तदाह्वानं शृणोत्येव।

"विश्वासपूर्वं यदि वाह्वयेत तदा कुतो नोत्तरयेच्च देवः।
विश्वासहीनो यदि देवमाह्वयेत् सद्यः पतेत् तत्कृतनिग्रहाङ्कुशः।।"

इति बसवार्यः साधके आत्मविश्वासस्यावश्यकतां सम्यक् निर्दिशति। एवं च साधकः स्वहृदये पूर्णं विश्वस्य तत्रत्य एव परमेश्वरे स्वीयं चित्तं विन्यस्य तल्लीनमनःप्रसारः बाह्यान् व्यवहारान् तत्प्रीत्यर्थमेव निर्वहन् यदि वर्तेत तदा तस्य मनः प्रसन्नं भवेदेव। तदैव रागद्वेषादिकं परिह्रियेत। एवं निष्कल्मष एव हृदये गुहेशोऽवश्यं ज्ञायेत। अयमेव योगोऽस्यामुपनिषदि प्रतिपादितो मानवकल्याणाय।

तथा च अस्यां श्रुतौ सिद्धान्तस्य निरूपितत्वेऽपि तत्प्राप्त्युपायभूतः सम्प्रदायोऽप्यत्र निबद्धो न वेत्यंशोऽपि गमनार्ह एव। साधनमार्गाचरणेनैव सिद्धान्तः सर्वस्यापि स्वाधीनो भवेत्। अत एव तयोरैकरूप्यमावश्यकमित्यभिज्ञा वदन्ति। तदानीमेव सिद्धान्तः वीर्यवत्तरो भवेत्। साधनसिद्धान्तयोरैकमत्याभावेऽपि स सिद्धान्तः अनुपादेय एव भवेत्। निर्वीर्यस्य तस्यानुसरणेनापि मानवः शान्तिं न लभेत। वीरशैवदर्शनस्येदं वैशिष्ट्यं यतस्तत्र समुचितमैकरूप्यं विलसितं सिद्धान्तसम्प्रदाययोः। षट्स्थलोपासनरूपः सम्प्रदायः षट्स्थलात्मकेन

CC0. In Public Domain. Jangamwadi Math Collection, Varanasi

Digitization by eGangotri and Sarayu Trust. Funding by MoE-IKS

शिवेन सह सामरस्यरूपमैक्यम् अविरलोपासनद्वारा साधयतीति सर्वानुभवसिद्धम्। इदं च षट्स्थलोपासनं प्रधानतस्त्रिविधोपासनरूपं श्वेताश्वतरश्रुतौ स्पष्टमुपदिश्यते।

त्रिविधोपासनम्

''तस्याभिध्यानाद् योजनात् तत्त्वभावाद् भूयश्चाते विश्वमायानिवृत्तिः''

इत्यस्मिन् मन्त्रे स्पष्टमेव विधीयते। परशिवस्य नित्यसम्पर्काय बाह्ये शरीरे धारणरूपं योजनं हस्तपीठे तदीयमर्चनं चैकविधमुपासनं सम्पद्यते। तदेव वीरशैवसम्प्रदाये इष्टलिङ्गस्य धारणमर्चनमिति च कथ्यते। अनन्तरं हृदये प्राणरूपेण विराजमानस्य ईश्वरस्य निर्मलेन मनसा अनुसन्धानं प्राणलिङ्गार्चनमिति वीरशैवसम्प्रदायेऽभिधीयते। तदपि श्रुतावस्यां स्पष्टमुपदिश्यत एव। तथा च जीवः प्राणलिङ्गानुभवेन तमेव सर्वत्र बहिरन्तश्च पश्यन् तत्तत्कालिकं सर्वं सुखदुःखादिकं शिवप्रसादभावनया स्वीकुर्वन् स्वीयदेहे शिरसि विराजमानेन भावलिङ्गेन समरसतया विलीनोऽमृतः सम्पद्यते। इदमेवास्मिन् सम्प्रदाये भावलिङ्गार्चनमिति कथ्यते। इदं च त्रिविधार्चनं शिवजीवयोः सामरस्यं साधयति। शिवलीलाविनोदभूमित्वात् जीवस्य शिवाङ्गमिति व्यवहारोऽत्र दृश्यते। अयं अङ्गनामको जीवः दीक्षायां स्वीयं प्राणलिङ्गं गुरोः सकाशात् नित्यार्चनाय धारणाय च बहिः परिगृह्णाति। तस्य नित्यसम्पर्केण जीवः शिवयोगं लभत एव। अयमेव योगः श्वेताश्वतरोपनिषदि सम्यक् प्रतिपादितः।

अयं च योगः शिवज्ञानमेवावलम्भते।

''तमेव विदित्वाऽतिमृत्युमेति नान्यः पन्था विद्यतेऽयनाय''

इत्याद्यनेकैर्वाक्यैः शिवज्ञानादेव जीवस्य उद्धारो निर्दिश्यते। यतः शिव एव संसारमोक्षस्थितिबन्धहेतुः, यतश्च सूर्यचन्द्रादिप्रकाशःसर्वोऽपि तदधीन एव स्यात्। यतश्च **''तत्सवितुर्वरेण्यम्''** इति अस्यामेव श्रुतौ सूर्यप्रकाशादपि परशिवप्रकाशाधिक्यम् उपदिश्यते। ततः शिवः एव सर्वैराश्रयणीयः। सर्वसाक्षिणं केवलममूर्तं सर्वत्रोदासीनवदासीनं शिवं विहाय न कोऽपि जीवः स्वतन्त्रतया वसेत्, यत् किञ्चिदपि कर्म कुर्याच्च। तेन विना तृणमपि न चलति। अतो जीवः सर्वदा शिवमेवानुसरेत्। तत एव तस्य मलपाशविच्छेदः सम्भवेत्। एवमन्तर्बाह्यार्चनेन मानवः केवलः आत्मकामः सन् देहभेदे शिवमये प्रसादकाये विश्वैश्वर्यं नाम परिपूर्णताख्यं स्वातन्त्र्यं विन्दते। इयं श्रुतिः साधकस्यैतादृशं

CC0. In Public Domain. Jangamwadi Math Collection, Varanasi

Digitization by eGangotri and Sarayu Trust. Funding by MoE-IKS

महत्तरं फलं साधनायोपदिशति। इदं च विश्वैश्वर्यं **"नित्यमेवात्मसंस्थं ज्ञेयं नातः परं वेदितव्यं च किञ्चित्"** इत्युपदिश्यतेऽत्र। एतस्मात् परं ज्ञेयं ध्येयं गम्यं च सारवद् वस्तु न कुत्रापि वर्तते। सर्वे मानवास्तादृशं विश्वैश्वर्यं लब्ध्वा अमृता भवन्त्विति श्वेताश्वतरमहर्षेराशयः। **"शृण्वन्तु विश्वे अमृतस्य पुत्राः"** इति विशालभावनया सर्वान् साधकानाहूय तेषां दृष्टिं तदन्तरङ्गस्थेश्वरे प्रसारयति महर्षिः। "साधकः सर्वाणि भयावहानि संसारस्रोतांसि ब्रह्मोडुपेनैव प्रतरेते"ति श्रुतेरुपदेशः।

जीवस्य बन्धमोक्षव्यवस्थापि सुगमया रीत्या अत्र सज्जीकृता वर्तते।

"अनीशश्चात्मा बध्यते भोक्तृभावात् ज्ञात्वा देवं मुच्यते सर्वपाशैः"

इत्येकस्मिन्नेव मन्त्रे बन्धस्य मोक्षस्य च कारणं प्रत्येकतया निर्दिशति श्रुतिः। बन्धस्य कारणं भोक्तृभावः, मोक्षस्य तु शिवज्ञानमित्येतत् समुचितमेव भाति। **"भोक्तारं यज्ञतपसाम्"** इति देहे परमशिव एव सर्वफलभोक्तेति गीतायां निर्णीतम्। एतस्यां परिस्थितौ यदि जीवः स्वात्मानं भोक्तारं भावयेत् तदा सोऽवश्यं दुःखभाग्भवत्येव। एतद्दुःखपरिहारायैव सः सर्वाणि फलानि तदानीमेव हृदयस्थायेश्वराय भक्त्या समर्पयेत्। एतादृशस्यार्पणस्य तु साधकः प्रथमं हृदये विश्वसेत् ; तत्र गोप्यतया विराजमानं शिवं जानीयाच्च। एवं यः जानाति, सः तदातदा समागतानि इन्द्रियसुखानि ईश्वरायैव भक्त्या समर्पयति।

"न विश्वसन्त्येव जनास्तु देवं तथापि तं नित्यमुपाह्वयन्ति।
कर्तुं च विश्वासमपारयन्तस्तथापि मोहाद् विचरन्ति मन्दाः।।
विश्वासपूर्वं यदि वाह्वयेत तदा कुतो नोत्तरयेष्व देवः।।"

इत्येवं बसवार्यः मानवमात्मनि विश्वसितुं तथैव स्वस्मिन् निगूढं वसन्तमीश्वरं ज्ञातुं च प्रेरयति।

"करी यथा दर्पण एव लीयते तथा त्वमेवेह निलीयसे मयि"

इत्येतादृशो दृढो विश्वासः वर्धिष्णूनां सर्वेषामावश्यकः।

"कुतः स्म जाताः? जीवाम केन?
केन च अधिष्ठिताः सुखदुःखेषु वर्तामहे?"

एवंविधाः प्रश्नाः एतच्छ्रुत्यनुसारेण सर्वैरवश्यं प्रष्टव्याः स्वेष्वेव। एतेषां प्रश्नानां समाधानविज्ञानेन साधकानां जीवितसमस्यैव परिह्रियते। एतां समस्यां परिहर्तुं

CC0. In Public Domain. Jangamwadi Math Collection, Varanasi

Digitization by eGangotri and Sarayu Trust. Funding by MoE-IKS

शिवयोगिनो ध्यानयोगमनुगताः देवात्मशक्तिमेव कारणमित्यजानन्। सैव शक्तिः स्वगुणैर्निगूढा सती चित्रविचित्रकार्यकारिणी विश्वमावृणोतीति ते शिवयोगिनोऽजानन्। इयमेव शक्तिर्मायेति कथ्यतेऽस्यां श्रुतौ। मायापतिरीश्वरस्तु सर्वात्मकः सर्वाधारो मायया सकलमपि जगद्व्यापारं निर्वाहयन् स्वयमात्मारामो वर्तते। अयमेव देवः पञ्चभूतेषु निवसन्नपि अद्वितीयतया विश्वाधिकतया च विराजते। तादृशः शिवः अङ्गुष्ठमात्रः सन् **'सदा जनानां हृदये निविष्ट'** इति श्रुतिरुपदिशति। सः भावरूपेण शिरसि, प्राणरूपेण हृदये, इष्टरूपेण च भ्रूमध्ये विलसति। तत्रैव जीवः भ्रूमध्यस्थेष्टलिङ्गाय देहादिसाधनानि भक्त्या विनियुज्य देहाभिमानत्यागेन त्यागाङ्गमिति, प्राणलिङ्गाय सर्वं समर्प्य तेन सहैव तत्प्रसादं भुञ्जन् भोगाङ्गमिति, एवं क्रमेण शिरोविराजमानेन भावलिङ्गेन समरसभावमापन्नो योगाङ्गमिति च व्यवह्रियते। एतादृशं त्रिविधमेव लिङ्गमङ्गं चेकैकं द्विविधं भूत्वा आहत्य षड् लिङ्गान्यङ्गानि च सम्पद्यन्ते। तान्येव च षडिन्द्रियेषु स्थित्वा षड्विधतां भजन्ते। इन्द्रियस्थानि तान्येव षडङ्गानि इन्द्रियफलानि तदानीमेव तत्रत्येभ्यः षड्लिङ्गेभ्यो यदि भक्त्या समर्पयेयुस्तदा अङ्गनामको जीवः सदा तृप्तः सुखी च सम्पद्यते। अयमेव वीरशैवदर्शने षट्स्थलोपासनमार्ग इति ब्रह्मवादिभिर्भाव्यते। लिङ्गस्थलाभिधस्य शिवस्य च देहे क्रियमाणो लीलाविनोद एव षट्स्थलसम्प्रदाय इति कथ्यते।

प्रापञ्चिको मानवः इन्द्रियेभ्य आगतानि सुखदुःखानि स्वार्थदृष्ट्या स्वीकृत्य भुनक्ति। शिवज्ञानी तु स्वेन सह सर्वेष्वपीन्द्रियेषु समवस्थितायेश्वराय सर्वमपि समर्प्य तदेव तत्प्रसादरूपेण भुनक्ति। अयमेव प्रसादजीवी द्वितीयं देहं लभत इत्यस्यां श्रुतौ निर्दिश्यते। गुरूपदिष्टमार्गेण यो निरन्तरं शिवं चिन्तयति भावयति अर्चयति च स एव अत्रैव देहे अमृतो भवितुमर्हतीति श्रुतिः प्रतिशृणोति। ''सर्वव्यापकः परमशिव एव चर्मवत् यस्य देहमावृणोति तस्य दुःखान्तो भविष्यती''त्यन्ते श्रुतिः प्रतिजानीते। एतस्या अभयस्थितेश्च कारणं तु निष्कामभावनया कर्माचरणं हृदयस्थानां सर्वसंशयानां दूरीकरणं चेति श्रुत्यैव निर्दिश्यते—

''यदा सर्वे प्रमुच्यन्ते कामा येऽस्य हृदि स्थिताः।
अथ मर्त्योऽमृतो भवत्यत्र ब्रह्म समश्नुते।।'' इति।

एवं सर्वान् कामान् यः स्वप्रभौ ईश्वर एव विनियोजयति स हृदयशुद्धिं लभत एव। सोऽस्मिन्नेव जगति द्वितीयं जन्म लभते। इदमेव दिव्यजीवनं

CC0. In Public Domain. Jangamwadi Math Collection, Varanasi

Digitization by eGangotri and Sarayu Trust. Funding by MoE-IKS

सम्पद्यते। तदा तस्य इच्छाज्ञानक्रियाशक्तय: पूर्णव्याप्तिं भजन्ते। अयमेव शक्तिविकास इत्यनुभवविभि: कथ्यते। अनेन शक्तिविकासेन मानव: लोककल्याणाय निर्लिप्ततया निवसति। एतादृशं पावनं जीवनं निर्वोढुमुपादिशतीयं श्रुति: सर्वेषां साधकानाम्।

वीरशैवदर्शनरीत्येदं भाष्यं प्रकटितमप्यनेन किं प्रयोजनं वीरशैवानामितरेषां वेत्ययं प्रश्नोऽद्य परिशीलनीय:। वीरशैवास्तु स्वसिद्धान्ततत्त्वं किं शक्तिविशिष्टाद्वैतम् उत शिवाद्वैतमिति पर्यालोचन एव मग्ना:। इतरे तु किं वीरशैवभाष्यावलोकनेनेति भावयेयु:। एवं च मदीय: श्रम: विफलो भवेदिति संशयो मां बाधते। तथापीमं मूल एवोत्पाटयति श्रुतिरियम्। सैव स्पष्टं वदति—

"यस्य देवे परा भक्तिर्यथा देवे तथा गुरौ।
तस्यैते कथिता ह्यर्था: प्रकाशन्ते महात्मन:।।" इति।

देवे तत्प्रकाशके गुरौ च यस्य परा निष्कामा कर्तव्यनिष्ठा भक्तिस्तस्यैवेदं भाष्यं यथार्थमर्थं प्रकाशयति। एतादृशा वीरशैवा: सिद्धान्ततत्त्वस्य किं नामेति शुष्कं विचारमेव कुर्वन्त: कालं न यापयन्ति। यदेव शिवाद्वैतं तदेव शक्तिविशिष्टाद्वैतम्। नाम्नि न विप्रतिपत्ति:। शिवाद्वैतपदं साधकस्य परिणतावस्थां शिवैक्यस्थितिं च सूचयति। तदपि सम्मतमेव। विवेकिभिस्तत्र नाग्रह: क्रियते। तथापि शक्तिविशिष्टाद्वैतपदं स्पष्टार्थकं सत् साधकस्य शिवैक्यस्थितावपि शक्तिविकासरूपं शक्तिवैशिष्ट्यं सूचयति। बद्धावस्थायामपि जीवस्य शक्तिवैशिष्ट्यम् आसीत्। तदानीं शक्ते: सङ्कोचस्तेनानुभूयमान आसीत्। चेतननिष्ठा: इच्छाज्ञानक्रियाशक्तय: चित्तात्मकैस्त्रिगुणैराच्छादिता आणवमायेयकार्मिकरूपा मला: सञ्जाता:। तैरावृतो जीव: संसारीति व्यवह्रियमाण आसीत्। एवं च सङ्कुचितशक्तेर्वैशिष्ट्यं साधकस्य संसारदशायामप्यासीत्। जीवस्य साक्षात् परमात्मचेतनांशत्वात् तदीयाया: चित्तशक्तेश्च चिच्छक्तिपरिणामाच्च तस्य त्रिविधोपासनबलात्, षडिन्द्रियेष्वपि षट्स्थलात्मकस्य शिवस्य सान्निध्यानुभवात् तन्निरन्तरसम्पर्केण तदीयं मधुरं बान्धव्यं स्वस्मिन् प्रवर्धयन् साधक: जीवभावं शक्तिसङ्कोचं च क्रमश: परिहाय बिकसितसर्वशक्तिक: शिवभावमनुभवति। एवं च शिवभावमापन्न: साधक: सिद्धो भवति। तस्मिन्नपि शक्तिवैशिष्ट्यं शक्तिविकासरूपेण वर्तत एव। अत एवानुभविभि: "शक्तिसङ्कोचो जीवभाव: शक्तिविकास: शिवभाव" इत्युच्यते। एवं चित्तशक्तिविशिष्टस्य जीवस्य चिच्छक्तिविशिष्टेन शिवेन सहाऽद्वैतप्रतिपादनात्

CC0. In Public Domain. Jangamwadi Math Collection, Varanasi

Digitization by eGangotri and Sarayu Trust. Funding by MoE-IKS

वीरशैवसिद्धान्तस्य शक्तिविशिष्टाद्वैतपदं सुगममित्यनुभविभिः प्रयुज्यमानं सत् व्यवह्रियते। शिवभावमापन्ने सिद्धेऽनुभूयमाना स्थितिरपि शक्तिविकास एव।

अयं च विकासः सिद्धे एवं परिदृश्यते। आणवमलस्थाने इच्छाशक्तिः सर्वहिताभिलाषरूपा भासते। मायेयमलस्थाने ज्ञानशक्तिः सर्वहितविवेचनरूपा विवर्धते। कार्मिकमलस्थाने क्रियाशक्तिः सर्वहितसाधिका परिदृश्यते। एवमैक्यदशायां सिद्धे दृश्यमाना शक्तिविकासरूपा अवस्था शक्तिविशिष्टाद्वैतपदेन स्पष्टं प्रतिपाद्यते। एतादृशं शक्तिविकासमधिगन्तुं ये हृत्पूर्वकमभिलषन्ति ते तु न कदापि निरर्थके विवादे कालं यापयन्ति। ये त्वहङ्काराभिमानवशङ्गतास्त एव भक्तिशून्याः दुर्भावनयैवं विवदन्ते। ते त्वात्मकल्याणलोककल्याणयोः साधनेन स्वीयं जोवनं यथा सान्त्वयन्तु तथा तान् शुभया बुद्ध्या स्मृत्या च तदन्तरङ्गस्थः शिवः संयुनक्त्विति प्रार्थये।

तथा च वीरशैवेतराणामपि शक्तिविकासरूपं शिवैक्यमभिलषितमेव। सर्वे च साधकाः शक्तिसङ्कोचदशायामेव वर्तन्ते। शक्तिविकासाय तैरपि यथामति यथाशक्ति च प्रयतितव्यमेव। कथं ते प्रयतेरन्नित्ययमेवांशः भाष्ये सम्यक् प्रकटितः। तत्परिचयाय भाष्यावलोकनं सर्वेषामप्यावश्यकमेव। वीरशैवभाष्यं किमर्थमवलोकनीयमिति यस्याग्रहः सः न किञ्चिदप्युत्तमं फलं लभते। परन्तु वीरशैवपदं न केवलं जातिवाचकं किन्तु धर्मवाचकमिति भाष्ये तत्र तत्र प्रतिपादितमेव। कः स धर्म इत्युक्तौ देहे विराजमानस्य परमात्मनः नित्यसम्पर्काधिगम एव। धर्मपदमपि सर्वाधारपरमात्मबोधकमेव। तादृशः धर्मस्वरूपस्य शिवस्य अन्तर्बहिरनुभव एव वीरशैवधर्मः। एतदनुभववान् सर्वदा निरलसः सन् निष्कामभावनस्यैव सर्वमपि व्यवहारं निर्वहन् सर्वेष्वपि शिवमेव पश्यन् शत्रुमपि मित्रतया प्रीणयन् देशहितार्थमेव कर्मनिरतो भवति। एतादृशं समदर्शनं लब्ध्वा सार्वजनिकं कल्याणं साधयन् शिवयोगी वीरशैव इति परिगण्यते। सर्वे जनाः चतुर्वर्णजाता अपि एवंरीत्या वीरशैवा भवन्त्विति वीरशैवदार्शनिका निरीक्षन्ते। एवंरीत्या स्थितान् अत्रिगौतमबादरायणादीन् महर्षीन् वीरशैवानेव भावयति श्रीनीलकण्ठशिवाचार्यः क्रियासारे। अतो वीरशैवपदं न केवलं लिङ्गधारिषु किन्तु देहान्तर्लिङ्गविज्ञानिषु सर्वेष्वपि स्पष्टमन्वेति। हृदयस्थं प्राणलिङ्गमेव गुरुणा स्वोद्धाराय बहिरनुगृहीतं स्वस्य प्राणरूपमिष्टलिङ्गमिति ये न भावयन्ति ते वीरशैवजात्युत्पन्ना अपि वीरशैवा भवितुं नार्हन्ति। तैर्धृतं लिङ्गं वेण्वन्तरस्थितमश्मैवेति

CC0. In Public Domain. Jangamwadi Math Collection, Varanasi

Digitization by eGangotri and Sarayu Trust. Funding by MoE-IKS

शरणाः स्पष्टं वदन्ति। अतः साधका आग्रहपरवशा यथा न भवेयुस्तथा बहिरन्तश्च शिवभावनां दृढतया निर्धार्य एतादृशेन धारणेन वीरशैवा भवन्तु। सर्वेषामेव भवितुमवकाशः सहजतया वर्तत एव। अतः सर्वेषामपि भाष्यमिदं सद्विनियोगाय भेवदिति दृढं विश्वसिमि। सर्वेषां हृदयावरकाज्ञानतमःपरिहारायेदं भाष्यं सम्पद्यत इति भावये। मानवेषु सौहार्दमुपदिशता ऋङ्मन्त्रेण शिवानुभवसुखाय तान् प्रेरयता प्रभुवचनेन चेयं भूमिका परिसमाप्यते।

"सङ्गच्छध्वं संवदध्वं सं वो मनांसि जानताम्।"

"बीजे स्थितं वृक्षफलं हि सूक्ष्मं किं भोक्तुमर्हं परिदृश्यतेऽद्य।
स्वात्यबुनिष्ठाः किमु सूक्ष्ममुक्ता हारात्मतां प्राप्य गले नियोज्या।।
पयःस्थितं किं घृतमाशयाप्यते इक्षुस्थितं किं गुडमीक्ष्यतेऽक्ष्णा।
स्वस्मिंस्थितं यच्छिवतत्त्वमेतत् स्मृतिक्षणेनैव मतौ स्फुरेत् किम्।।
विचिन्त्य विज्ञाय विमथ्य भूयः प्रयोगतश्चैव प्रसाद्य नित्यम्।।
तत्त्वानुभावैकसुखेऽभिषङ्गो निष्णातभक्तं शरणं विहाय।।
अन्यैश्च किं साधयितुं हि शक्यं गुहेश्वराऽऽश्रावय भृत्यवार्ताम्।।"

* * *

CC0. In Public Domain. Jangamwadi Math Collection, Varanasi

Digitization by eGangotri and Sarayu Trust. Funding by MoE-IKS

आत्मनिवेदनम्

पूज्यपितृवर्याणामादेशतः पञ्चवार्षिकं ज्ञानयज्ञमुपक्रम्य तदवधौ लोककल्याणकारकाः कतिपयग्रन्थाः प्रकाशिता इति महाजना विदन्त्येव। प्रथमं रम्भापुरीवीरपीठाध्यक्षवर्याणां जगद्गुरुश्रीवीरगङ्गाधरशिवाचार्यमहास्वामिनामुदाराश्रयेण प्रकटितं **शक्तिविशिष्टाद्वैतदर्शनं** देशविदेशेषु अनेकेषां साधकानां तदन्तर्वर्तिना चिच्छक्तिविशिष्टेनेश्वरेण अद्वैतं साधयद् विलसति। अनन्तरं श्रीशैलपीठाध्यक्षवर्याणां जगद्गुरुश्रीवागीशपण्डिताराध्यमहास्वामिनामुदारप्रोत्साहेण च प्रकटितः **श्रीकरभाष्यानुवादः** सन्मान्यैः कर्णाटकदेशीयविद्यामन्त्रिवर्यैः श्रीमद्भिः एस्.आर. कण्ठिमहोदयैरुद्घाटितः सन् महाजनानां जीवनं पावयन् श्रीकरयंश्च विराजत इत्यपि सुविदितमेव सर्वेषाम्। वीरशैवधर्मेऽभिजातोऽहं व्यवहारकालेऽपि यथा तं धर्ममाचरेयंस्तथा यथामति प्रयतितत्यमिति पित्रादेशं शिरसा वहन् महास्वामिनां दिव्यप्रसादेन तथैव प्रयतितवान्। चित्तशक्तिविशिष्टस्य मम मद्धृदयस्थस्य चिच्छक्तिविशिष्टस्येश्वरस्य च शक्तिवैशिष्ट्येन सहजतया स्थितो यो भेदस्तं गुर्वनुग्रहादेव क्रमशः परिहृत्य हृदयस्थेश्वरे समरसतया विलीनः **श्रीकरभाष्यक्रियासारयोः** परिचयेन ज्ञानक्रियासमन्वयात्मिकां दृष्टिं जीवनेऽधिगम्य ज्ञानयज्ञेऽवशिष्टं महत्तरं कार्यं परिसमापयितुं तमेवेश्वरं निरन्तरं चिन्तयत् कतिपयदिवसानत्यवाहयम्।

भगवद्गीतायाः श्वेताश्वतरोपनिषदश्च वीरशैवदर्शनरीत्या भाष्ये विलेख्ये इति पूज्यपितृवर्यस्य आज्ञा आसीत् किल। तन्निर्वाहाय महागुरुः को वा मेऽवकाशं दद्यादिति मे दैनन्दिनी चिन्ता समजनि। एतच्चिन्तामग्नस्य मे चित्रदुर्गप्रान्ते प्रसाराङ्गभाषणाय गन्तुमवकाश एकदा उपलब्धः। तदानीं चित्रदुर्गनगरे महेश्वरमहोत्सवः जगद्गुरुश्रीमल्लिकार्जुनमुरुघराजेन्द्रमहास्वामिनां दिव्यसन्निधौ प्रचाल्यमान आसीत्। महेश्वरवंशे जातो महेश्वरप्रियश्चाहं महेश्वरप्रसादाकाङ्क्षी महेश्वरमहोत्सवं गत्वा तत्र महाजनसमाजे निर्लिप्ततयाऽवस्थितान् जगद्गुरुमहास्वामिनोऽन्तर्बहिश्चापश्यम्। महास्वामिनोऽपि मां दृष्ट्वा सन्तुष्टान्तरङ्गा

CC0. In Public Domain. Jangamwadi Math Collection, Varanasi

Digitization by eGangotri and Sarayu Trust. Funding by MoE-IKS

निरुपाधिकेन वात्सल्येन मदीयं कुशलमपृच्छन्। पुरा शिवानुभवमण्डपे बसवादिप्रमथैः समावृतो निरञ्जनपीठमधितिष्ठन् अल्लमप्रभुर्यथा सच्चिदानन्द-नित्यपरिपूर्णाविरलपरंज्योतिस्स्वरूप अशोभतेति मम मनसि यथा सुप्रतिष्ठितः आसीत् तथैव पवित्रभावना श्रीपूज्यपादानां दिव्यदर्शनेन मय्युत्पन्ना। महास्वामिनो मामेवमन्वगृह्णन्— "त्वया गुरुपीठे यथा सेवा समर्पिता तथा जङ्गमपीठेऽपि काचन सेवा समर्पणीया" इत्येवमुक्त्वा ते कृपया मामपश्यन्।

पूज्यपादानाममृतवाणी मन्मनसि सत्परिणाममुत्पादयामास। तदीयं परमवैराग्यं, हृदयस्थे प्राणलिङ्गे तैरनुभूयमानं सामरस्यं, तथापि लोककल्याणाय तैराचर्यमाणः कर्मयोगः, तादृशमेव शिवपूजानुष्ठानं, निष्पक्षपातेन योग्यतापुरस्करणं, स्वाभाविकमौदार्यं, बहिरन्तश्च विलसन्ती परमा शान्तिरसाधारणी तृप्तिः परमवैराग्य इत्येवमादिभिः सर्वैर्गुणैराकृष्टोऽहं मनस्येवमचिन्तयम्— 'एकस्य वस्तुनः परिचयाय नेत्रद्वयमुपयुज्यतेऽस्माभिः। नेत्रद्वयेनापि दृश्यमानं वस्त्वेकमेव। तथैव हृद्रयेऽमूर्तं शिवमनुभवितुं गुरुजङ्गमावुभावप्युभोक्तव्यौ। उभयोरेकभावनयाऽर्चनेन लभ्यं परवस्त्वेकमेव। 'भेददृष्टिर्नरकाय; अभेददृष्टिर्नित्यसुखाय' इति पूजयपितृवर्याः सदा वदन्त आसन्। निरञ्जनपीठमधितिष्ठन्नपि निर्लिप्ततया स्थित्वा लोकल्याणं विशेषतः साधयन् जङ्गमोऽपि गुरुरिव समाश्रयणीयः। अस्मिन् पीठेऽपि या काचन सेवा समर्प्यते चेत् तदैव मज्जीवनं फलिष्यति' इति। तदा जगद्गुरु-पादयोर्भक्तिपूर्वकं विज्ञापितं मया— "भवतामनुग्रहेणैव विलिखितं श्वेता-श्वतरोपनिषद्वीरशैवभाष्यं भवत्पादयोर्भक्त्या समर्प्यत" इति। एतदाकर्ण्य महास्वामिनः सन्तुष्टा मामाशीर्भिः पर्यपूरन्।

महास्वामिनां पादारविन्दयोरिदं भाष्यं समर्पणीयमिति वचनं मया यद्यपि दत्तमेव। तथापि काचन चिन्ता मम मनसि समजनि। महास्वामिनो यद्यपि न केवलं मे, अपि तु मानववर्गस्यैव निरञ्जनतामहत्त्वं स्वीयाचरणद्वारा प्रतिपादयितुं समागतो महेश्वर एवेत्यत्र न कस्यापि विवादः। तथापि वीरगोत्रोत्पन्नेन गुरुपरम्परानुसारिणा मया निरञ्जनपरम्परानुवर्तनं युज्यते न वेति विचारयितुमुप-क्रान्तम्। तदानीं तयोः परम्परयोः परस्परम् ऐकरूप्यं सामरस्यं च वर्तते न वेति विचारस्तदा मे दृष्टिमाकर्षत्। अनन्तरं गच्छता कालेन वचनवाङ्मये शरणैराचरितं निरञ्जनसम्प्रदायं यथामति परिशील्य तमेव रेणुकागस्त्यसंवादरूपे सिद्धान्तशिखामणौ निरूपितेन गुरुसम्प्रदायेन च तुलनात्मिकया दृष्ट्या व्यमृशम्।

CC0. In Public Domain. Jangamwadi Math Collection, Varanasi

Digitization by eGangotri and Sarayu Trust. Funding by MoE-IKS

तदा तयोरुभयोरपि परम्परयोरैक्यं दृष्ट्वा परमानन्दभरितोऽभवम्। वीरशैवधर्मे यादृशः सिद्धान्तस्तत्प्रतिपादको यः सम्प्रदायश्च रेणुकाचार्यैरगस्त्यमहर्षये यथा प्रतिपादितस्तथैव शरणा अपि तदर्थमेव शिवप्रेरिता अत्रागत्य तदीयं कार्यं निर्वर्त्य शिवलोकं गता इत्यज्ञासिषम्। आचार्यैः संस्कृतभाषायां निरूपित एव सिद्धान्तः अल्लमादिभिः शरणैः कन्नडभाषायां निरूपितः। अतस्तयोर्न कदापि भेदोऽस्तीत्ययमंशो मन्मनसि सुदृढो बभूव। षट्स्थलोपासनामार्गोऽप्याचार्यैर्यथा निरूपितस्तथैव शरणैश्च प्रतिपाद्यत इत्यवलोक्य परमपूज्यानां जगद्गुरुश्रीमल्लिकार्जुनमहास्वामिनां पादारविन्दयोर्मे मनः सुदृढं विलीनं बभूव। पुरा तेभ्यः प्रदत्तं मदीयं वचनं तथैवाचरितुं दृढसङ्कल्पस्तदानीं सञ्जातो मयि।

लौकिकदृष्ट्या च मत्सङ्कल्पं परिशील्य भाष्यसमर्पणाय कृतनिश्चय आसम्। शैवाग्रगण्योऽप्यय्यदीक्षितः परमवैष्णववेदान्तदेशिकप्रणीतस्य यादवाभ्युदयस्य व्याख्यानं कृतवान्। निरञ्जनपरम्परानुगताः श्रीमरितोण्टदार्याः वीरशैवानन्दचन्द्रिकायां गुरुपीठस्थानाचार्यान् गौरवपूर्वकं प्रशंसितवन्तः। मेटीकुर्केग्रामस्थनिरञ्जनशाखीयैर्विरक्तस्वामिभिर्गुरुपीठीयस्य कुप्पूरुमरुल-सिद्धस्वामिनश्चरितं भक्तिपूर्वकं विलिखितं विराजते। एवं च साक्षात्कृतधर्मसु योगिषु विशालदृष्टिः साहजिक्येव। अतो गुरुजङ्गमयोरुभयोरपि शिवभावनया पुरस्करणं मानववर्गस्य श्रेयस्करमिति सम्यगालोच्य प्रकृतं भाष्यपुष्पं पूज्यपादेषु निरञ्जनपीठाध्यक्षेषु भक्त्या समर्पयितुमुद्युक्तोऽभवम्।

मदाश्रयदातारः पूज्या इति यदाऽहं निश्चितवान् तदा तदीयमूलपीठाध्यक्षाणां शिवयोगसमाधेः सन्दर्शनाय प्रस्थितवानहं तदैव महासमाधेर्दक्षिणभागे पतितं पुष्पमेकमपश्यम्। एवं प्रसादमनुगृह्य महादेवः सर्वसंशयहान्या मदीयं विश्वासं दृढीचकारेत्यहमचिन्तयम्। एतादृशां शिवयोगिनां समाश्रयेण मे मनसि सन्तोषः सञ्जातः। ते महास्वामिनो मुरुघेशनामानो निरञ्जनपीठाधिरूढेभ्यः अल्लमप्रभुवर्येभ्य अष्टमास्तन्नाम्नस्समयस्य च प्रवर्तारः शिवयोगसाम्राज्यमनुभवन्त एव भक्तानुग्रहलीलां निर्वहन्तः श्रीचित्रदुर्गमहाक्षेत्रे शिवयोगसमाधौ विराजमाना वर्तन्त इति प्रमोदस्थानमेतत्।

निरञ्जनपरम्परानुगताः सर्वेऽपि महास्वामिनः परमवैराग्यशालिनस्तपस्विनश्च आसन्। तेषां महिमातिशयः कर्णाटके सर्वेषां विदित एव। एकदा जगद्गुरुजयदेवमुरुघराजेन्द्रमहास्वामिनः कल्याणनगरे सर्पभूषणमठे भक्तानुग्रहलीलां निर्वहन्त

CC0. In Public Domain. Jangamwadi Math Collection, Varanasi

Digitization by eGangotri and Sarayu Trust. Funding by MoE-IKS

आसन्। तदानीमहं आकस्मिकतया तत्र गतः महास्वामिन अपश्यम्। तस्मिन् दिने मदीया पत्नी हृद्रोगेण, माता च चर्मरोगेण पीड्यमाने आस्ताम्। महास्वामिनो मामनिमेषदृष्ट्याऽवलोक्य कृपया मे फलद्वयमनुगृह्य अवदन् "तव भार्या माता च रोगग्रस्ते वर्तेते। उभे अपि त्वया समभावनया अवलोक्येते। इयं च ते दृष्टिर्लोककल्याणाय प्रभवेदित्याशास्महे। तयोः रोगेण ते न कोऽपि बाधः सञ्जायेत। अनयोरेकं फलं मात्रा, अपरं च भार्यया उपयुज्यताम्" इत्युक्त्वा तत्फलद्वयं मे ददुः। तदेव फलद्वयं द्वाभ्यामप्युपभुक्तम्। तद्दिनादारभ्यैतावत्पर्यन्तं द्वयोरपि तादृशी रोगस्य वासनैव नास्ति। इदानीन्तना अपि महास्वामिनो गीताभाष्ये शरणवचनानि पद्यरूपेण विरच्य तैः समन्वयः कार्य इति माम् एकदा आदिशन्। मम पद्यरचनाभ्यास एव नासीत्। मनसि महास्वामिनः स्मारं स्मारम् अनेकानि वचनानि निरर्गलतया पद्यरूपेण ग्रथितानि। एवं प्रशान्तचित्ताः करुणार्द्रहृदयास्ते मातृवद् भाव्यन्ते मया। तैः क्रियमाणानि सार्वजनिकहितसाधकानि विद्यावर्धकानि महत्तराणि विश्रुतानि कार्याणि महाजनाः जानन्त्येव।

तदानीमपि सन्देहान्तरमापतितम्। परशिवार्चननैरन्तर्येण तदेकतामुपगतानामेषां शिवयोगिसार्वभौमानां पादयुगले श्वेताश्वतरोपनिषद्भाष्यसमर्पणं युक्तं न वेति विचारः पुनरुत्पन्नः। शिवयोगिनस्तु संन्यासयोगात् शुद्धसत्त्वा विराजन्ते। निःस्पृहास्तु महास्वामिनः कैवल्यस्थितिमनुभवन्त एतद्भाष्यं स्वीकर्तुम् अनुमोदन्ते न वेति विचारो मय्यस्फुरत्। तथापि तदैव महास्वामिनामनुग्रहेणायं संशयो निवारित एव। शिवयोगस्यैव प्रतिपादकमिदं भाष्यं महाशिवयोगिभ्यो यदार्प्येत तदा ते प्रीता भवेयुरेवेत्यभावयम्। श्वेताश्वतरोपनिषद्भाष्यस्य परमार्थोऽपि "साधकः स्वात्मनिष्ठे महेश्वरे विलीन एवानन्दी भवेत्। तदर्थं सः ज्ञानक्रियासमन्वयमार्गमेवाश्रयेत् ; एवं स्वान्तर्गतं शिवं ज्ञात्वा तदुपासनेनैव तदनुग्रहं लभेत। ततश्च पाशविमोचनेन निर्मलो भूत्वा सः सामरस्यमनुभवेत्" इत्येवं प्रसिद्धम्। अतः सामरस्यमनुभवत्सु शिवयोगिषु सामरस्यप्रतिपादकस्यास्य भाष्यस्य समर्पणे औचित्यं महद् वर्तत इति विभाव्य दृढनिर्धारोऽभवम्। एवं विगलितसर्वसंशयेन मया मत्पितृवर्यस्य तुष्ट्यै मद्वंशजानां श्रेयसे च भाष्यमिदमात्मनिवेदनपुरस्सरं मुरुघेशपादयोर्भक्त्या समर्प्यते। अतस्तदीयं ग्रन्थमिमं तदीयेन सेवकेन सकाले परिसमाप्य सदयं स्वीकृत्य च भृत्यमिममनुगृहीतवते तत्त्वात्मकाय श्रीमुरुघेशाय निवेद्य अत्यन्तं कृतज्ञोऽस्मि। तदीयपीठे स्थित्वा तदीयं लोककल्याणकार्यम्

CC0. In Public Domain. Jangamwadi Math Collection, Varanasi

Digitization by eGangotri and Sarayu Trust. Funding by MoE-IKS

उत्साहेन निर्वहन्तः श्रीजगद्गुरु-मल्लिकार्जुनमहास्वामिनोऽव्याजवात्सल्येन एतं ग्रन्थं श्रीजगद्गुरुमुरुघराजेन्द्रविद्यापीठग्रन्थमालायां प्रकटय्य मां प्रोत्साहितवन्तः। तैरनुगृहीतोऽयं महोपकारः न कदापि विस्मर्तुं शक्यः। एवं चिरस्मरणीयेभ्यः श्रीजगद्गुरुभ्यः साष्टाङ्गप्रणामपूर्विकां कृतज्ञतां भक्त्या समर्प्य सद्भक्ताः साधकाः भाष्यावलोकनेन सन्तुष्यन्त्विति प्रार्थये।

—भाष्यकर्ता

***

CC0. In Public Domain. Jangamwadi Math Collection, Varanasi

Digitization by eGangotri and Sarayu Trust. Funding by MoE-IKS

विभिन्नसम्मतयः

Sahitya Siromani S. RAMCHANDRA RAO, M.A.
Professor of Post Graduate Studies in Sanskrit
Mysore University, Mysore

अध्यात्मक्षेत्रे प्रस्थानत्रयं मानवकल्याणसाधनाय बद्धकक्षं वर्तत इति सुप्रसिद्धमेव। तत्राप्युपनिषत्प्रस्थानं मानवश्रेयसे महत्तरं सौकर्यं परिकल्प्य इह परत्र च सुखं सन्तोषं चावहतीति सुविदितमेव। तत्रापि श्वेताश्वतरोपनिषत् मानवस्वरूपं यथार्थरीत्या विवेचयन्ती तदीयं मनः तदन्तरङ्गस्थेश्वरे द्रढयितुं विशेषतः प्रयतते। द्वेषमात्सर्यादिभिः कलुषिते जगति मानवो यथा स्वीयहृदयं परिशोध्य सत्यशुद्धं व्यवहारं यथा शान्त्या निर्वहेत् तथा दिव्यमुपदेशं कुर्वतीयमुपनिषत् सर्वैरप्यवश्यमवलोकनीया। तादृश्याः पवित्राया उपनिषदोऽर्थं भाष्यरूपेण विशदीकृत्य तदीयानुवादेन सह ताम् इदम्प्रथमतया प्रकटयन्तो डा. टि. जि. सिद्धप्पाराध्यमहोदयाः सर्वैरभिनन्द्याः। एतादृशं भाष्यं श्रीजगद्गुरुमुरुघराजेन्द्रविद्यापीठग्रन्थमालायां प्रथमपुष्परूपेण प्रकट्यत इत्येतत् सन्तोषावहम्। हृदयङ्गमया ललितया च रीत्या भाष्यमनुवादं च विलेख्य असदृशं ज्ञानयज्ञं सन्तोषेण निर्वहन्तो डा. सिद्धप्पाराध्याः मैसूरुविश्वविद्यालये संस्कृतविभागस्य उज्ज्वलकीर्तिं सुप्रतिष्ठितवन्तः। भाष्यकर्तारः एते महाशया एवमेव इतरभाष्यग्रन्थान् विरच्य मानवकल्याणं परमात्मानुग्रहेण विशेषतः साधयन्त्वित्यर्थये।

एस्. रामचन्द्रराव्

मैसूरु, २६.९.६५

*

Sri V.T. TIRUNARAYANA IYANGAR, M.A.
Professor of Sanskrit (Rtd.) Mysore

डाक्टर्प्रशस्तिभाजा श्रीमता सिद्धप्पाराध्यविदुषा केचन ग्रन्था दार्शनिका आलङ्कारिकाश्च संस्कृतभाषायां कर्णाटकभाषायां च विरचिताः। अद्य वेदान्तशास्त्रे उपनिषदां भगवद्गीतायाश्च वीरशैवदर्शनानुगुणं संस्कृतभाषायां विरचिता

CC0. In Public Domain. Jangamwadi Math Collection, Varanasi

Digitization by eGangotri and Sarayu Trust. Funding by MoE-IKS

व्याख्याग्रन्थाः अद्यावधि नोपलब्धा इति तद्वैकल्यपरिजिहीर्षया अयं महाशयः संस्कृतवाण्यां प्रथमं श्वेताश्वतरोपनिषन्मन्त्राणां सुलभशैल्या व्याख्यानं कर्तुं प्रवृत्त इत्यभिनन्दनीयः। सनातनतत्त्वस्य धर्मस्य च प्रकाशनपरिपालनभरः आर्षमतानुसारिणां स्वाभाविक एव। भाष्यकर्तुरस्य महोदयस्येतरभाष्यविलेखने विशुद्धां दृष्टिं, दृढं सङ्कल्पं, महाजनप्रोत्साहं च वर्धयतु सर्वथा भगवानिति प्रार्थये। चित्रदुर्गस्थजगद्गुरुविद्यापीठग्रन्थमालायां श्रीजगद्गुरुमल्लिकार्जुनमुरुघराजेन्द्र-महास्वामिभिः सादरमयं पवित्रो धार्मिकग्रन्थः प्रकाश्यत इत्याकर्ण्य मुदितोऽस्मि। मठाधीशानाम् ईदृशेषु ज्ञानवर्धकेषु सत्कर्मसु श्रद्धा अभिनन्दनीया।

मैसूर, **वि. टि. तिरुनारायणाय्यङ्गार्**
२८.९. ६५

❋❋

Sri M. Yamunacharya, M.A.
Professor of Philosophy (Rtd.) Mysore University

Svetasvatara Upanishad is *par excellence* a theistic Upanishad and a source of the ideas of Vedantic Theism in India. This Upanishad has been commented upon by the great Vedantic teachers of the past. Dr. Sidapparadhya has done a distinct service to Upanishadic Scholarship by Furnishing us with a very lucid commentary on this Upanishad in Sanskrit and has also appended a Kannada translation of his Sanskrit commentary. This commentary is in the light of the doctrines of Virashaivism and is being published as the first flower or pushpa in the list of Philosophical works to be published by Sri Jagadguru Murugharajendra Vidyapitha of Birhanmatha, Chitradurga. Students of Virashaivism and of the theistic movements of India will welcome greatly a commentary of this type from a modern Scholar of distinction.

29-9-65 **M. Yamunacharya**

❋❋❋

CC0. In Public Domain. Jangamwadi Math Collection, Varanasi

Digitization by eGangotri and Sarayu Trust. Funding by MoE-IKS

प्रस्तावना

तव तत्त्वं न जानामि कीदृशोऽसि महेश्वर!।
यादृशोऽसि महादेव! तादृशाय नमोऽस्तु ते।।

जीवन का प्रयोजन

भारतीय समाज वर्णाश्रमधर्म से अनुप्राणित है। उसका मुख्य प्रयोजन है पुरुषार्थसिद्धि। यत: जीवात्मा और परमात्मा दोनों एक ही नवद्वार पुर (नगर-शरीर) का आश्रय लेकर रहते हैं, अत: दोनों ही 'पुरुष' हैं। किन्तु यत: जीवात्मा चेतन परमात्मा का अंश होने पर भी स्वस्वरूप को भूलता है, अत: स्वस्वरूप का साक्षात्कार ही जीवात्मा का चरम लक्ष्य होता है, जिसे 'अपवर्ग' अथवा मोक्ष कहते हैं। जीवात्मा का परम पुरुषार्थ भी यही होता है। 'अपवर्ग' (मोक्ष) और त्रिवर्ग मिलकर चतुर्वर्ग अथवा पुरुषार्थचतुष्टय कहलाते हैं। इनमें अर्थ और काम ऐहिक और पारलौकिक सुख तभी प्रदान करते हैं, जब इनके साथ धर्म जुड़ जाता है। इसका तात्पर्य यह है कि अर्थार्जन और कामोपभोग विधिसम्मत तभी होता है, जो परहित और विश्वकल्याण की कामना से किया गया हो। उस प्रकार का अर्थार्जन अथवा कामसुख नीतिसम्मत नहीं होता, जो दूसरों को पीड़ादायी और विश्व का अहितकारी हो। समग्र महाभारत से हमें यही शिक्षा मिलती है—

"परोपकारः पुण्याय पापाय परपीडनम्"

इस प्रकार हमारा वास्तविक धर्म है परोपकार अथवा विश्वकल्याण, जिससे पुण्यार्जन होता है। जिससे दूसरों का अहित और उन्हें पीड़ा हो, ऐसा नीतिविरुद्ध आचरण पाप का कारण होता है। इन्हीं आचरणों को यथाक्रम धर्म और अधर्म की संज्ञा दी गयी है। त्रिवर्ग का यही लक्ष्य है। हमारा परम पुरुषार्थ है अपवर्ग (मोक्ष)। त्रिवर्ग का उद्देश्य जब अपवर्ग होता है, तब सभी पुरुषार्थ की कोटि में आते हैं। प्राणी के जीवन का अन्तिम लक्ष्य होता है मोक्ष।

CC0. In Public Domain. Jangamwadi Math Collection, Varanasi

Digitization by eGangotri and Sarayu Trust. Funding by MoE-IKS

सकाम और निष्काम कर्म

उसके लिये देह-इन्द्रियादि का अभिमान छोड़कर परमेश्वर के प्रति समर्पणभावना रखकर प्रत्येक कार्य करना आवश्यक होता है। देह और इन्द्रियों के प्रति अभिमान रखते हुए जीव जबतक सकाम कर्म करता है, तब तक वह सांसारिक प्रपञ्च में फँसा रहता है और बार बार जन्म लेता है, यज्ञयागादि पुण्यानुष्ठान उसे ऊर्ध्वगति देता है, जिससे जीव को स्वर्ग प्राप्त होता है, आसुरी प्रवृत्ति के वशीभूत उसका आचरण उसे अधोगति देता है। पुण्यक्षय होने पर वह मृत्युलोक में जन्म लेता है। इस प्रकार सकाम कर्म उसे बन्धन में डालता है। देह इन्द्रियादि का अभिमान छोड़कर विश्वकल्याणभाव और शिवार्पणबुद्धि रखते हुए अनुष्ठित निष्काम कर्म जीवात्मा को अमृतत्व की ओर अग्रसर करता है। इस प्रकार प्रवृत्तिमार्ग भी द्विविध है प्रेयोमार्ग और श्रेयोमार्ग।

वर्णाश्रम धर्म

जैसा कि 'धर्म' का लक्षण है— **''यतोऽभ्युदयनिःश्रेयससिद्धिः स धर्मः।''** इस प्रवृत्तिमार्ग पर चलने के लिये वर्णाश्रमधर्म का प्राकट्य हुआ है। ब्राह्मण, क्षत्रिय, वैश्य और शूद्र जीवों के कर्तव्य और अधिकार सुनिश्चित हैं। तदनुसार वह ब्रह्मचर्य, गार्हस्थ्य और वानप्रस्थ आश्रमों में यथाक्रम प्रवेश कर 'त्रिवर्ग' का अनुष्ठान करता है और अन्त में जब सर्वकर्मसंन्यास लेकर प्रणवपूर्वक परमात्मचिन्तन में लग जाता है, तब उसे 'अपवर्ग' (मोक्ष) की प्राप्ति होती है। यतः जीवात्मा परमात्मा का ही अंश है, अतः वह सदा परमात्मा से मिलन के लिये आतुर रहता है और जब उसका मिलन परमात्मा के साथ होता है, तब उसके दुःखों का अन्त होता है, सभी प्रापञ्चिक कर्मपाश बन्धनों से उसे छुटकारा मिलता है, जन्म-मरण-चक्र से मुक्ति मिलती है और अमृतत्व तथा शाश्वत सुख की प्राप्ति होती है। वर्णाश्रमधर्म हमें प्रथम 'त्रिवर्ग' (भोग) की ओर अग्रसर करता है और अन्त में 'अपवर्ग' (मोक्ष) की ओर, जो हमारे 'प्रेयस्' और 'श्रेयस्' का हेतु है।

औपनिषद दर्शन

''वेदोऽखिलो धर्ममूलम्''— समस्त वैदिक वाङ्मय वर्णाश्रमधर्मरूपी वृक्ष का मूल है। **'मन्त्रब्राह्मणयोर्वेदनामधेयम्'** इस वचन के अनुसार ऋग्वेद,

CC0. In Public Domain. Jangamwadi Math Collection, Varanasi

Digitization by eGangotri and Sarayu Trust. Funding by MoE-IKS

शुक्लयजुर्वेद, कृष्णयजुर्वेद, सामवेद और अथर्ववेद संहिता, ब्राह्मण, आरण्यक और उपनिषदों में विभक्त हैं। समस्त वैदिक वाङ्मय में उपनिषदों का अन्तिम स्थान है। अतः उसे 'वेदान्त' भी कहते हैं।

उपनिषद् हमें परमात्मा का 'दर्शन' करने के लिये प्रेरित करते हैं। परमात्मा का दर्शन हम सामान्य नेत्रों से नहीं कर सकते। उसके लिये हमें शास्त्रचक्षु होना पड़ेगा और मन की आँखों को खोलना पड़ेगा, तभी हम परमात्मा का 'दर्शन' कर सकेंगे। इस प्रकार हम 'धर्म' से 'दर्शन' की ओर अग्रसर होते हैं और हमारा 'दर्शनसाहित्य' जन्म लेता है। भारतीय आस्तिक दर्शनों में छः परिगणित हैं, महर्षि कपिलसम्मत सांख्य दर्शन, पातञ्जलयोगदर्शन, गौतम मुनि का न्यायदर्शन, कणाद का वैशेषिक दर्शन, जैमिनि की पूर्वमीमांसा और बादरायण की उत्तरमीमांसा।

ब्रह्मश्री उमचिगि शंकरशास्त्री जी द्वारा शांकरी व्याख्या के साथ 'केनोपनिषद्' देवनागरी संस्करण में मैसूर से मुद्रित और शंकरविलास संस्कृत पाठशाला से प्रकाशित किया गया था। इस संस्करण की संस्कृत प्रस्तावना में उज्जयिनी सद्धर्मसिंहासन के चरपट्टाध्यक्ष जगद्गुरु पं. श्री मरुळाराध्य शिवाचार्य स्वामीजी लिखते हैं— "बुद्धि की विषमता से आस्तिकों के मन में विविध दार्शनिक मत उदित होते हैं। उन नानाविध मतों में चार विश्वप्रसिद्ध भेद हैं— (१) द्वैत, (२) अद्वैत, (३) विशिष्टाद्वैत और (४) शक्तिविशिष्टाद्वैत। इसी प्रकार (१) वैदिक, (२) तान्त्रिक, (३) वैदिक-तान्त्रिक और (४) तान्त्रिक-वैदिक इन दार्शनिक मतों की भी गणना की जाती है। यह विविधता वेदों और आगमों की प्रधानता तथा उनकी अप्रधानता के कारण ही है। उनमें जो वेदसम्मत कर्मानुष्ठान को प्रधानता देता है, वह वैदिक मत है। जो आगमसम्मत कर्मानुष्ठान को प्रधानता देता है, वह तान्त्रिक मत है। जो वैदिक कर्मानुष्ठान को प्रधान मानकर आगमसम्मत कर्मानुष्ठान को गौणरूप से स्वीकार करता है, वह वैदिक-तान्त्रिक मत है और जो शैवागमसम्मत कर्मानुष्ठान को प्रधान मानकर उनके अविरोधी वेदसम्मत कर्मानुष्ठान का आदर करता है, वह तान्त्रिक-वैदिक मत है। इनमें अन्तिम तान्त्रिक मत शक्तिविशिष्टाद्वैत दर्शन है, जो द्विविध है— पाशुपत दर्शन (अलिङ्गी) और वीरशैव दर्शन (लिङ्गी)।"

CC0. In Public Domain. Jangamwadi Math Collection, Varanasi

Digitization by eGangotri and Sarayu Trust. Funding by MoE-IKS

इनमें श्रीकण्ठ शिवाचार्य पाशुपत दर्शन (अलिङ्गी शक्तिविशिष्टाद्वैत दर्शन) के प्रवर्तक हैं, जिन्होंने प्रस्थानत्रयी के ऊपर 'ब्रह्ममीमांसा' नामक सूत्र भाष्य आदि के द्वारा उसका विस्तारपूर्वक समर्थन किया है। वीरशैवदर्शन (लिङ्गी शक्तिविशिष्टाद्वैतदर्शन) के प्रतिष्ठापक जगद्गुरु पञ्चाचार्य (पाँच आचार्य) हैं। इस दर्शन का सोपपत्तिक विवेचन जगद्गुरु श्री रेणुकाचार्य द्वारा उद्गीत 'रेणुकगीता' (सिद्धान्तशिखामणि) और प्रथम प्रस्थान ब्रह्मसूत्र पर आद्यनीलकण्ठ विरचित भाष्य आदि में किया गया है।

हमारा समस्त दर्शन साहित्य और विभिन्न प्रस्थान इन्हीं उपनिषदों पर अवलम्बित हैं। किन्तु सबका लक्ष्य एक है— परमशिव की प्राप्ति। अपने शिवमहिम्नः स्तोत्र में भक्त पुष्पदन्त यही प्रतिपादित करते हैं—

त्रयी सांख्यं योगः पशुपतिमतं वैष्णवमिति
प्रभिन्ने प्रस्थाने परमिदमदः पथ्यमिति च।
रुचीणां वैचित्र्यादृजुकुटिलनानापथजुषां
नृणामेको गम्यस्त्वमसि पयसामर्णव इव।।७।।

शुक्लयजुर्वेदीय 'मुक्तिकोपनिषद्' में **अष्टोत्तरशत (१०८) उपनिषद्** इस प्रकार परिगणित है—

"ईश-केन-कठ-प्रश्न-मुण्ड-माण्डूक्य-तित्तिरिः ।
ऐतरेयं च छान्दोग्यं बृहदारण्यकं तथा।।

ब्रह्मकैवल्यजाबालौ श्वेताश्वो हंस आरुणिः।
गर्भो नारायणो हंसो(ब्रह्म)बिन्दु नाद शिरः शिखा।।

मैत्रायणी कौषितकी बृहज्जाबाल-तापनी।
कालाग्निरुद्र-मैत्रेयी सुवाल शुरि मन्त्रिका।।

सर्वसारं निरालम्बं रहस्यं वज्रसूचिकम्।
तेजो-नाद-ध्यान-विद्या-योगतत्त्वात्मबोधकम् ।।

परिव्राट् विशिखी सीता चूडा निर्वाणमण्डलम्।
दक्षिणा शरभं स्कन्दं महानारायणाह्वयम्।।

रहस्यं रामतपनं वासुदेवं च मुद्गलम्।
शाण्डिल्यं पैङ्गलं भिक्षुमहच्छारीरकं शिखा।।

CC0. In Public Domain. Jangamwadi Math Collection, Varanasi

Digitization by eGangotri and Sarayu Trust. Funding by MoE-IKS

तुरीयातीत-संन्यास-परिव्राजाऽक्षमालिका ।
अव्यक्तैकाक्षरं पूर्णा सूर्याक्ष्यध्यात्मकुण्डिका।।

सावित्र्यात्मा पाशुपतं परं ब्रह्माऽवधूतकम्।
त्रिपुरातपनं देवी त्रिपुराकरभावना।।

हृदयं कुण्डली भस्म रुद्राक्षगणदर्शनम्।
तारसार-महावाक्य-पञ्चब्रह्माऽग्निहोत्रकम् ।।

गोपालतापनं कृष्णं याज्ञवल्क्यं वराहकम्।
कलि-जाबालि-सौभाग्य-रहस्य-ऋचमुक्तिका।।

एवमष्टोत्तरशतं भावनात्रयनाशनम्।
ज्ञानवैराग्यदं पुंसां वासनात्रयनाशनम्।।

(मुक्ति.उ., १/३०-४०)

इस प्रकार परिगणित १०८ उपनिषदें पुत्रैषणा-वित्तैषणा और लोकैषणा इस भावनात्रय और वासनाजन्य आणव, मायीय और कार्म इन त्रिविध वासनाओं का नाश करती हुई ज्ञान तथा वैराग्य प्रदान करती हैं।

'मुक्तिकोपनिषद्' के अनुसार ऋग्वेद की १०, शुक्लयजुर्वेद की १६, कृष्णयजुर्वेद की ३२, सामवेद की १६ और अथर्ववेद की ३१इस प्रकार सम्मिलित रूप से समस्त उपनिषदों की संख्या १०८ है।

'कल्याण' उपनिषद् अंक (जनवरी १९४९) में अकारादि वर्ण क्रमानुसार २२० उपनिषदों की तालिका प्रकाशित है। इनमें कुछ उपनिषद् वेद के ब्राह्मणभाग और अन्य आरण्यकभाग में सम्मिलित हैं। अवशिष्ट सभी उपनिषद् स्वतन्त्र रूप से प्रकट हुए हैं, जिनमें परमात्मविषयक गूढ रहस्य को उद्घाटित किया गया है।

'नामलिङ्गानुशासन'कार अमरसिंह उपनिषद् शब्द का अर्थ ही गूढ धर्म रहस्य करते हैं— **'धर्मे रहस्युपनिषत् स्यात्'**। पूज्यश्री आद्यशंकराचार्य-भगवत्पाद 'कठोपनिषद्' के भाष्यारम्भ में ही 'उपनिषत्' शब्द का निर्वचन इस प्रकार करते हैं—

''सदेः धातोः विशरण-गत्यवसादनार्थस्य उप-नि-पूर्वस्य क्विप्प्रत्ययान्तस्य रूपमिदम् उपनिषत् इति। उपनिषच्छब्देन च व्याचिख्यासितग्रन्थप्रतिपाद्यवस्तु-

CC0. In Public Domain. Jangamwadi Math Collection, Varanasi

Digitization by eGangotri and Sarayu Trust. Funding by MoE-IKS

विषया विद्या उच्यते। केन पुनरर्थयोगेन उपनिषच्छब्देन विद्योच्यते इत्युच्यते। ये मुमुक्षवो दृष्टानुश्रविकविषयवितृष्णाः सन्त उपनिषच्छब्दवाच्यां वक्ष्यमाणलक्षणां विद्याम् उपसद्य उपगम्य तन्निष्ठतया निश्चयेन शीलयन्ति तेषामविद्यादेः संसारबीजस्य विशरणाद् हिंसनाद् विनाशाद् इत्यनेन अर्थसंयोगेन विद्या उपनिषदित्युच्यते।..... पूर्वोक्तविशेषणान् वा मुमुक्षून् परं ब्रह्म गमयतीति च ब्रह्मगमयितृत्वेन योगाद् ब्रह्मविद्या उपनिषत्।..... लोकादिब्रह्मणज्ञो योऽग्निः तद्विषयाया द्वितीयेन वरेण प्रार्थ्यमानायाः स्वर्गलोकफलप्राप्तिहेतुत्वेन गर्भवासजन्मजराद्युपद्रववृन्दस्य लोकान्तरे पौनःपुन्येन प्रवृत्तस्य अवसादयितृत्वेन शैथिल्यापादनेन धात्वर्थयोगाद् अग्निविद्याऽपि उपनिषद् इत्युच्यते। ननु च उपनिषच्छब्देन अध्येतारो ग्रन्थमपि अभिलषन्ति– 'उपनिषदमधीमहे उपनिषदमपि अध्यापयाम' इति च। नैष दोषः, अविद्यादिसंसारहेतुविशरणादेः सदि धात्वर्थस्य ग्रन्थमात्रेऽसम्भवाद् विद्यायां च सम्भवात् ग्रन्थस्यापि तादर्थ्येन तच्छब्दत्वोपपत्तेः 'आयुर्वै घृतम्' इत्यादिवत्। तस्माद् विद्यायां मुख्यया वृत्त्या उपनिषच्छब्दो वर्तते, ग्रन्थे तु भक्त्येति।''

'उप' और 'नि' उपसर्ग लगाकर सदि धातु से क्विप् प्रत्यय के योग से 'उपनिषत्' शब्द निष्पन्न होता है। 'सदि' धातु के अनेक अर्थ हैं— (१) विशरण (काटना), (२) गति (गमन और ज्ञान) तथा (३) अवसादन (विनाश)। जैसा कि धातुपाठ में पठित है— **''षद्लृ विशरण-गति-अवसादनेषु'**। सामान्यरूप से 'उपनिषद्' शब्द का अर्थ वह विद्या है, जो ग्रन्थस्थित ज्ञातव्य विषयों का प्रतिपादन करे। यहाँ इस धातु के सभी अर्थ अभीष्ट हैं— (१) जो मुक्तिकाम जीव दृष्ट (लौकिक) और आनुश्रविक (वैदिक) विषयों के प्रति तृष्णामुक्त होकर ब्रह्मविद्या का अनुशीलन करते हैं, संसार के बीजस्वरूप उनमें रहने वाली अविद्या का जो 'विशरण' (विनाश) करती है, अतः ब्रह्मविद्या को 'उपनिषद्' कहते हैं।

(२) यतः वे पूर्वोक्त अर्हतासम्पन्न मुमुक्षुओं को ब्रह्म तक पहुँचाती है, ब्रह्मसाक्षात्कार कराती है, अत उसे 'उपनिषद्' कहते हैं।

(३) कठोपनिषद् में वर्णित अग्निविद्या भी 'उपनिषद्' है, यतः वह स्वर्गेच्छु जीवों को यह समझाती है कि पुण्य-क्षय होने पर मृत्युलोक की प्राप्ति होती है, जिससे गर्भवास, जन्म, जरा-मरण आदि अनेक उपद्रव खड़े होते हैं, इस प्रकार स्वर्गकामना से लोगों को पराङ्मुख करती है।

CC0. In Public Domain. Jangamwadi Math Collection, Varanasi

Digitization by eGangotri and Sarayu Trust. Funding by MoE-IKS

(४) उपनिषद् शब्द का ब्रह्मविद्याप्रतिपादक अर्थ लक्षणा वृत्ति से ज्ञात होता है, अभिधावृत्ति से नहीं।

'केनोपनिषद्' में 'उपनिषद्' शब्द का इस प्रकार उल्लेख है—

"उपनिषदं भो ब्रूहीत्युक्ता त उपनिषद्,
ब्राह्मीं वाव त उपनिषदमब्रूमेति।।"

ब्रह्मश्री शंकरशास्त्रीजी **'ब्राह्मीम् उपनिषदम्'** की व्याख्या अपने वीरशैवभाष्य में इस प्रकार करते हैं—

"ब्रह्मणः परशिवस्य इयं चिच्छक्तिरूपा, तां वीर्यरूपां (ब्राह्मीम्) उपनिषदम्। मया (गुरुणा उप) सामीप्येन सामरस्यलक्षणेन (नि) नितरां परशिवब्रह्म प्राप्य कृत्रिमाहङ्कारादीन् शिथिलीकृत्य स्वशक्तिसङ्कोचाख्यातिं सादयति अपसारयति सैव इत्युपनिषद्।"

उपनिषद् वह विद्या है, जो परशिवब्रह्म से सम्बन्धित है। अर्थात् परशिव ब्रह्म की चितिशक्ति ही ब्राह्मी विद्या है, जो वीर्यस्वरूपा है। जो विद्या जीव के देह-इन्द्रियाभिमानजन्य कृत्रिम अहंकार आदि को शिथिल करके अपनी शक्ति के संकोच को दूर करती है। परब्रह्म शिव के साक्षात्कार से वह शक्ति पुनः विकास को प्राप्त करती है और 'चिति'शक्ति बन जाती है। परमशिव से अभिन्न वही 'चिति'शक्ति ब्रह्मविद्या है। गुरु शिष्य को परब्रह्म के पास पहुँचाता है, उसके कृत्रिम अहंकार आदि को शिथिल करता है और उसकी शक्ति के संकोच को दूर कर उस शक्ति के विकसित स्वरूप का बोध कराता है। अतः वह चिच्छक्तिस्वरूपा ब्राह्मी विद्या ही उपनिषद् है। यह आशय इस निर्वचन का है।

अनुबन्ध-चतुष्टय

'अनुबध्नन्ति अध्येतॄन् इति अनुबन्धाः' इस निर्वचन के अनुसार जो अध्येताओं को बाँधे रखते हैं, उन्हें 'अनुबन्ध' कहते हैं। प्रत्येक विद्या के चार अनुबन्ध होते हैं— (१) अधिकारी, (२) विषय, (३) प्रयोजन और (४) सम्बन्ध।

'उपनिषत्' शब्द के निर्वचन से ही यह ज्ञात होता है। (१) ब्रह्मविद्या का **अधिकारी** परमशिव प्राप्ति का इच्छुक मुमुक्षु है। (२) उसका प्रतिपाद्य **विषय**

CC0. In Public Domain. Jangamwadi Math Collection, Varanasi

Digitization by eGangotri and Sarayu Trust. Funding by MoE-IKS

परशिव ब्रह्म है। (३) इसका **प्रयोजन** है सांसारिक प्रपञ्चों से एकदम अलग रहना मात्र ब्रह्मसाक्षात्कार, (४) **सम्बन्ध** मुक्ति (प्रयोजन) का ब्रह्मविद्या (विषय) के साथ प्रकाश्यप्रकाशक भाव सम्बन्ध है। यह विवेचन **आचार्य शंकर** की दृष्टि से है। **ब्रह्मश्री शंकर शास्त्री जी** मुण्डकोपनिषद् के वीरशैवभाष्य में लिखते हैं— **'बलवदनिष्टानुबन्धीष्टसाधनताकज्ञानजन्यप्रवृत्तिप्रयोजकम् अनुबन्धचतुष्टयम्'** ब्रह्मश्री शंकरशास्त्री जी के अनुसार जो प्रबल अनिष्टकारी तत्त्वों से सम्बन्ध न रखकर अभीष्ट साधनों से प्रयोजनप्राप्ति की ओर प्रवृत्त करते हैं वे अनुबन्ध कहलाते हैं, जो चार हैं— (१) विषय, (२) प्रयोजन, (३) सम्बन्ध और (४) अधिकारी। वीरशैवदर्शन उत्तरमीमांसा अथवा अद्वैतवेदान्त का ही अन्यतम अंग है, अत: सामान्यरूप से अद्वैतवेदान्त के अनुबन्ध ही वीरशैव दर्शन के भी अनुबन्ध हैं। उसके अतिरिक्त परशिव ब्रह्म और उसकी चिच्छक्ति और उसकी प्राप्ति का साधन षट्स्थल ब्रह्मविद्या उसका प्रतिपाद्य विषय है। उसके अनुषंग से अष्टावरण, पंचाचार और तत्त्वत्रय उसके गौण प्रतिपाद्य विषय हैं। उसका मुख्य प्रयोजन लिङ्गाङ्गसामरस्यस्वरूप मुक्ति है। पाशबन्धनों से छुटकारा, आत्यन्तिक दु:खनिवृत्ति और शाश्वत सुखप्राप्ति उसके अवान्तर प्रयोजन हैं। शास्त्र और विषय का परस्पर प्रतिपाद्यभाव सम्बन्ध और मुक्ति (प्रयोजन) और ब्रह्मविद्या (विषय) का प्रकाश्यप्रकाशकभाव सम्बन्ध है। उसका अधिकारी है— अत्याश्रमी लिंगधारी वीरशैव। उसे देवभक्त, गुरुभक्त और शान्त होना चाहिये।

श्वेताश्वतर उपनिषद्— यह कृष्णयजुर्वेद के अन्तर्गत परिगणित उपनिषदों में पाँचवें स्थान पर प्रतिष्ठित उपनिषत् है। 'मुक्तिकोपनिषद्' का वचन इसमें प्रमाण है— **''कठवल्ली-तैत्तिरीयक-ब्रह्म-कैवल्य-श्वेताश्वतर-गर्भ-नारायण-अमृतबिन्दु-अमृतनाद-कालाग्निरुद्र-क्षुरिका-सर्वसार-शुकरहस्य-तेजोबिन्दु-ध्यानबिन्दु-ब्रह्मविद्या-योगतत्त्व-दक्षिणामूर्ति-स्कन्द-शारीरक-योगशिखा-एकाक्षर-अक्षि-अवधूत-कठरुद्र-रुद्रहृदय-योग-कुण्डलिनी-पञ्चब्रह्म-प्राणाग्निहोत्र-वराह-कालसन्तरण-सरस्वतीरहस्यानां कृष्णयजुर्वेदगतानां द्वात्रिंशत् (३२) संख्याकानाम् उपनिषदां 'स ह नाववत्वि'ति शान्तिः।।३।।** (मुक्तिका उप.१)।

शान्तिमन्त्रः— प्रत्येक उपनिषद् के आदि-अन्त में **शान्तिमन्त्र** के पाठ का विधान है। वेदविद्याव्रत को लेने वाले देशिक गुरु द्वारा इन उपनिषदों को

CC0. In Public Domain. Jangamwadi Math Collection, Varanasi

Digitization by eGangotri and Sarayu Trust. Funding by MoE-IKS

'गुरुमुख' करना चाहिये। इस प्रकार इन अष्टोत्तरशत उपनिषदों का पाठ करने वाले प्रारब्ध कर्मों के क्षय होने तक जीवन्मुक्त होते हैं और अन्त में विदेह मुक्ति प्राप्त होती है। जैसा कि 'मुक्तिकोपनिषद्' का प्रमाण वचन है—

"पूर्वोत्तरेषु विहिततत्तच्छान्तिपुरस्सरम्।
वेदविद्याव्रतस्नातदेशिकस्य मुखात् स्वयम्।।
गृहीत्वाऽष्टोत्तरशतं ये पठन्ति द्विजोत्तमाः।
प्रारब्धक्षयपर्यन्तं जीवन्मुक्ता भवन्ति ते।।
वैदेहीं मामकीं मुक्तिं यान्ति नास्त्यत्र संशयः।।"

(मुक्तिका उ. १/४१-४३)

परब्रह्म परमात्मा के निःश्वासरूप वेदों का अन्तिम भाग उपनिषद्दर्शन अथवा वेदान्तदर्शन उनका उसी प्रकार सार है, जिस प्रकार तिलों का सार तेल होता है—

"निश्वासभूता मे विष्णोर्वेदा जाताः सुविस्तराः।
तिलेषु तैलवद् वेदे वेदान्तः सुप्रतिष्ठितः।।"

(मुक्तिका उप., १/९)

प्रत्येक शान्तिमन्त्र के अन्त में **"ॐ शान्तिः शान्तिः शान्तिः"** इस प्रकार तीन बार शान्तिपाठ किया जाता है। इसका तात्पर्य क्या है? इसका समाधान ब्रह्मश्री शंकरशास्त्री **"ॐ पूर्णमदः पूर्णमिदम्"** इस शान्तिमंत्र की व्याख्या में इस प्रकार करते हैं— **'ॐ शान्तिः शान्तिः शान्तिः' इति त्रिरुच्चारस्त्रिमलनाशार्थः, आध्यात्मिकादिदुःखत्रयनाशार्थो वेति।"**

"आप्यायन्तु ममाङ्गानि" इस शान्तिमंत्र के व्याख्याप्रसंग में **'केनोपनिषद्'** के वीरशैवभाष्यकार कहते हैं—

"ॐ शान्तिः शान्तिः शान्तिः" **इति त्रिरुच्चारस्त्रिमलनाशार्थः।..... स्थूलसूक्ष्मकारणशरीरकर्मज्ञानेन्द्रियादौ सर्वात्मकं परशिवलिङ्गम् उपनिषत्-प्रतिपाद्यं यद् वर्तते, तद् भावादिलिङ्गरूपेण = स्थूलशरीरे इष्टलिङ्गरूपेण, सूक्ष्मशरीरे प्राणलिङ्गरूपेण, कारणशरीरे भावलिङ्गरूपेण, कर्मज्ञानेन्द्रियेषु च आचारादिलिङ्गरूपेण स्थित्वा तन्मलनाशं कुरुते।**

इसका सार यह है कि **"ॐ शान्तिः शान्तिः शान्तिः"** इस प्रकार प्रत्येक शान्तिमन्त्र में तीन बार शान्तिपाठ यह सूचित करता है कि देहधारी

CC0. In Public Domain. Jangamwadi Math Collection, Varanasi

Digitization by eGangotri and Sarayu Trust. Funding by MoE-IKS

प्राणी में विद्यमान आध्यात्मिक, आधिदैविक और आधिभौतिक त्रिविध दुःखों का शमन हो अथवा स्थूल, सूक्ष्म और कारण शरीर में स्थित आणव, मायीय और कार्म मल शान्त हों।

इसका आशय यह है कि परमशिव पञ्चब्रह्मतनु है। उसके सद्योजात, वामदेव, अघोर, तत्पुरुष और ईशान ये पाँच मुख यथाक्रम सदाशिव, ईश, ब्रह्म, ईश्वर और ईशान ये अन्य पाँच नामों से प्रसिद्ध हैं। परमशिव महालिङ्गस्वरूप है और उसकी सत्ता आज्ञाचक्र में है। सद्योजात आदि पाँच ब्रह्म हमारे पिण्डाण्ड में ही प्रतिष्ठित हैं। उनकी स्थिति पाँच लिङ्गों के रूप में हमारे पाँच चक्रों में इस प्रकार है— आचारलिङ्ग मूलाधार चक्र में, गुरुलिङ्ग स्वाधिष्ठान चक्र में, शिवलिङ्ग मणिपूर चक्र में, जंगमलिङ्ग अनाहत चक्र में और प्रसादिलिङ्ग विशुद्धिचक्र में प्रतिष्ठित है।

ब्रह्मश्री शंकरशास्त्रीजी का कथन यह है कि परमशिव हमारे स्थूल शरीर में इष्टलिङ्ग के रूप में, सूक्ष्मशरीर में प्राणलिङ्ग के रूप में, कारणशरीर में भावलिङ्ग के रूप में और पञ्चज्ञानेन्द्रिय और पञ्चकर्मेन्द्रियों में पूर्वोक्त षट्चक्रों में आचार से महालिङ्ग के रूप में प्रतिष्ठित हैं। **''ॐ शान्तिः शान्तिः शान्तिः''** में स्थित ॐ (प्रणव) उसी परमशिव ब्रह्म का वाचक है, जैसा कि प्रमाणवचन है—

''ॐ तत् सदिति निर्देशो ब्रह्मणस्त्रिविधः स्मृतः।
ब्रह्मणा तेन वेदाश्च यज्ञाश्च विहिताः पुरा।।''

(गीता १८/२३)

वे हमारे शरीर में रहकर आणव, मायीय और कार्म त्रिविध मल का नाश करते हैं।

श्वेताश्वतर उपनिषद् वह कल्पवृक्ष है, जिसमें विभिन्न दर्शनों और आगमों के अनुयायी अपने अभीष्ट मूल्यों का अन्वेषण करते हैं। **तत्कारणं 'सांख्ययोगाधिगम्यम्'** (६/१३) **''ऋषिं प्रसूतं कपिलं यस्तमग्रे''** (५/२) इत्यादि मन्त्रभागों में स्पष्टतया **महर्षि कपिल** और **सांख्ययोगदर्शन** का उल्लेख है। **'अजामेकां लोहितशुक्लकृष्णा'** (४/५) इत्यादि मंत्र को मंगलाचरण के रूप में रखकर प्रसिद्ध दार्शनिक **पं. वाचस्पति मिश्र** ने सांख्यकारिकाओं

CC0. In Public Domain. Jangamwadi Math Collection, Varanasi

Digitization by eGangotri and Sarayu Trust. Funding by MoE-IKS

पर **'सांख्यतत्त्वकौमुदी'** टीका का प्रणयन किया है, जो स्वतन्त्र मौलिक कृति है। 'सांख्यदर्शन' आत्यन्तिक दुःख निवृत्ति के लिये 'व्यक्त', 'अव्यक्त' और 'ज्ञ' का ज्ञान आवश्यक समझता है। **'व्यक्ताव्यक्तं भरते विश्वमीशः'** (१/८), **'ज्ञः कालकालो गुणी सर्वविद्यः'** (६/१६), **''ज्ञाऽज्ञौ द्वावजावीशनीशौ''** (१/९) इत्यादि मन्त्रों में हम 'व्यक्त', 'अव्यक्त' और 'ज्ञ' का उल्लेख पाते हैं। **'प्रकृतिः कर्त्री पुरुषस्तु पुष्करपलाशवन्निर्लेपः'** यह सांख्यदर्शन की दृष्टि है। **''अनीशश्चात्मा बध्यते भोक्तृभावात्''** (१/८), **'अजा ह्येका भोक्तृभोग्यार्थयुक्ता'** (१/६) इत्यादि मंत्र हमें इसी दृष्टि का स्मरण कराते हैं। श्वेताश्वतर उपनिषद् परमेश्वर को **''प्रधान क्षेत्रज्ञपति''** कहता है (६/१६)। **विष्णुसहस्रनामस्तोत्र** में परमात्मा का नाम **'प्रधानपुरुषेश्वर'** भी है। इस प्रकार उभयत्र यह प्रतिपादित है कि प्रकृति और पुरुष के ऊपर भी उनका अधिष्ठाता ईश है। 'पुरुष' शब्द का भी अनेक मंत्रों में उल्लेख है— **'महान् प्रभुर्वै पुरुषः'** (३/१२), **'सहस्रशीर्षा पुरुषः'** (३/१४) इत्यादि।

इसी प्रकार **'पातञ्जलयोगदर्शन'** के सिद्धान्त भी इस उपनिषद् में यत्र तत्र बिखरे हैं। **'तपःप्रभावाद् देवप्रसादाच्च'** (६/२१) इत्यादि मन्त्रस्थित 'श्वेताश्वतर' नाम निर्वचन करते हुए टीकाकार **शंकरानन्द** कहते हैं कि महर्षि श्वेताश्वतर अष्टाङ्गयोगनिरत थे— **''श्वेता अवदाताः सदाऽन्तर्मुखत्वेन विपरीतप्रवृत्तिरहिता अश्वा इन्द्रियाणि यस्य स श्वेताश्वः। अतिशयेन श्वेताश्वः श्वेताश्वतरः। अष्टाङ्गयोगनिरत इत्यर्थः।''**

न्यायदर्शन जीवात्मा और परमात्मा दोनों की पृथक् सत्ता स्वीकार करता है। श्वेताश्वतर उपनिषद् कहती है— **''ज्ञाऽज्ञावजावीशनीशौ''** (१/९), **'द्वा सुपर्णा सयुजा सखाया'** (४/६), **''समाने वृक्षो पुरुषो निमग्नः''** (४/७)। श्वेताश्वतर उपनिषद् की दृष्टि में जीवात्मा और परमात्मा दोनों अजन्मा हैं, और वे एक ही नवद्वार पुर (क्षेत्र) का आश्रय लेकर रहते हैं। परन्तु परमात्मा सर्वज्ञ हैं और जीवात्मा अल्पज्ञ। परमात्मा संसार से अलिप्त है, तो जीवात्मा संसार में लिप्त रहता है। परमात्मा सर्वतन्त्रस्वतन्त्र है और जीवात्मा परतन्त्र।

द्वितीय अध्याय के ८,९,१०,११,१२ और १३ वें मन्त्रों में आसनविधि, तदनुकूल स्थान, प्राणायामविधि और योगसाधन की फलश्रुति वर्णित है, जो **पातञ्जलयोगदर्शन**सम्मत है।

CC0. In Public Domain. Jangamwadi Math Collection, Varanasi

Digitization by eGangotri and Sarayu Trust. Funding by MoE-IKS

उसी अध्याय में प्रथम सात मन्त्रों में सविता देवता की स्तुति है। **श्रीमद्भगवद्गीता** में वर्णित वैवस्वत योग का यह बीज है। महर्षि विश्वामित्र की सावित्री और गायत्री उपासना इसी तरह की है। इस प्रकार **सौर सम्प्रदाय** के अनुयायी भी इस उपनिषद् में अपने सिद्धान्तानुकूल तत्त्व खोज सकते हैं।

शाक्त उपासक ध्यान लगाकर परमेश्वर में निगूढ शक्ति का साक्षात्कार करते हैं— **''ते ध्यानयोगानुगता अपश्यन् देवात्मशक्तिं स्वगुणैर्निगूढाम्''** (१/३)। परमशिव अपने स्वरूपभूता शक्तियों से शासन करता है— **''य एको जालवानीशत ईशनीभिः सर्वांल्लोकानीशत ईशनीर्भिः''** (३/१)। अरूप वह शक्ति के सम्बन्ध से ही विविध रूप धारण करता है और सृष्टि- संहार करता है (४/१)। जीव परमशिव का ही अंश है, जो आत्मस्वरूप को विस्मृत कर अजन्मा प्रकृति का उपभोग करता है, जबकि परमशिव मात्र उसकी ओर निहारता रहता है (४/५)। परमशिव की परा शक्ति प्रकृति अथवा माया है। जब परम शिव उस प्रकृतिस्वरूपा माया से सम्पन्न होता है, मायावी कहलाता है, जिसके अवयवों से सारा जगत् व्याप्त है (४/१०)। परमशिव की दो शक्तियाँ हैं— क्षर अविद्या और अमृत विद्या। दोनों पर शासन करने वाला परमशिव दोनों से विलक्षण है (५/१)। परमशिव की शक्ति विविध है— वह ज्ञानस्वरूपा भी है, बलस्वरूपा भी है और क्रियास्वरूपा भी है (६/८)। इस प्रकार शाक्त उपासक परमशिव की आत्मशक्ति **देवात्मशक्ति** के विविध स्वरूपों का और उसके नियन्ता परमशिव का भी साक्षात्कार करते हैं; क्योंकि शक्ति शिव के बिना नहीं रह सकती और शिव शक्ति के बिना नहीं रह सकते। **अद्वैत वेदान्ती** माया के रूप में उस शक्ति का साक्षात्कार करते हैं और **सांख्य दार्शनिक** 'प्रकृति' के रूप में उसे देखते हैं।

''वेदान्ते परमं गुह्यम्'' (६/२२); **''आत्मविद्यातपोमूलं तद् ब्रह्मोपनिषत्-परम्''** (१/१६); **''तद् वेद गुह्योपनिषत्सु गूढम्''** (५/६) इन वचनों को अद्वैतवेदान्ती अपने अनुकूल पाते हैं। **''तेनेशितं कर्म विवर्तते'ह''** (६/२) इत्यादि मन्त्र में उन्हें विवर्तवाद का बीज और **''तत्त्वस्य तत्त्वेन समेत्य योगम्''** (६/३) में उन्हें त्रिवृत्प्रक्रिया और पञ्चीकरणप्रक्रिया दृष्टिगोचर होती है। 'ईश', 'हर', 'लिङ्ग', 'रुद्र', 'गिरिशन्त', 'गिरित्र', 'शिव', 'ईशान', 'महेश्वर' आदि परमेश्वर के नाम इस उपनिषद् को **शैवागमों** से सम्बद्ध करते हैं।

CC0. In Public Domain. Jangamwadi Math Collection, Varanasi

Digitization by eGangotri and Sarayu Trust. Funding by MoE-IKS

मैसूर के वेदान्ती विद्वान् डॉ. टी.जी. सिद्धप्पाराध्य ने श्वेताश्वतर उपनिषद् की **शक्तिविशिष्टाद्वैतदर्शनसम्मत** व्याख्या की है। वीरशैवदर्शन अथवा शक्तिविशिष्टाद्वैतदर्शन निगमागमसम्मत दर्शन है।

'पारमेश्वरागम' (१/२२-२३) के अनुसार **तन्त्रागम**सम्मत षड्विध दर्शन परिगणित हैं— वीरशैव, वैष्णव, शाक्त, सौर, वैनायक और कापाल। इनमें वीरशैवदर्शन का प्रथम स्थान है।

श्रीरेणुकभगवत्पाद कहते हैं कि कपिलप्रादुर्भूत सांख्यदर्शन, पातञ्जलयोग-दर्शन, वैष्णव पाञ्चरात्र, वेद और शैव पाशुपत दर्शन ये पञ्चविध प्रस्थान हैं, जो अन्त में हमें मुक्ति दिलाते हैं। इनका खण्डन नहीं करना चाहिये। इनमें सर्वप्रधान वेद हैं। अन्य सभी दर्शन प्रधान वेद का अनुसरण करते हैं। उनमें सांख्य आदि वेद के एकदेश का अनुसरण करते हैं, किन्तु शैवागम वेदों का पूर्णतया अनुसरण करते हैं। अतः वेदमय शैवागमों का अन्य प्रस्थानों में विशिष्ट स्थान है। उनका प्रामाण्य वेदवत् स्वीकार करना चाहिये।

"वेदैकदेशवर्तिभ्यः सांख्यादिभ्यो महामुने!।
सर्ववेदानुसारित्वाच्छैवतन्त्रं विशिष्यते।।
शैवतन्त्रमिति प्रोक्तं सिद्धान्ताख्यं यथोदितम्।
सर्ववेदार्थरूपत्वात् प्रामाण्यं वेदवत् सदा।।"

(सि.शि., ५/७-८)

शैवागमों को ही सिद्धान्तागम भी कहते हैं, क्योंकि वे वैदिक सिद्धान्तों का ही निरूपण करते हैं और अवैदिक मतों का खण्डन। अतः दोनों का प्रामाण्य समान रूप से स्वीकार करना चाहिये।

"वेदधर्माभिधायित्वात् सिद्धान्ताख्यः शिवागमः।
वेदबाह्यविरोधित्वाद् वेदसम्मत उच्यते।।
वेदसिद्धान्तयोरैक्यमेकार्थप्रतिपादनात् ।
प्रामाण्यं सदृशं ज्ञेयं पण्डितैरेतयोः सदा।।"

(सि.शि., ५/१२-१३)

'सिद्धान्तागम' अथवा शैवागम अट्ठाईस (२८) हैं— (१) कामिक, (२) योगज, (३) चिन्त्य, (४) कारण, (५) अजित, (६) दीप्त, (७) सूक्ष्म, (८) सहस्र, (९) अंशुमान्, (१०) सुप्रभेद, (११) विजय, (१२) निःश्वास,

CC0. In Public Domain. Jangamwadi Math Collection, Varanasi

Digitization by eGangotri and Sarayu Trust. Funding by MoE-IKS

(१३) स्वायम्भुव, (१४) अनल, (१५) वीर, (१६) रौरव, (१७) मकुट, (१८) विमल, (१९) चन्द्रज्ञान, (२०) बिम्ब, (२१) प्रोद्गीत, (२२) ललित, (२३) सिद्ध, (२४) सन्तान, (२५) शर्वोक्त, (२६) पारमेश्वर, (२७) किरण और (२८) वातुल।

प्रत्येक आगम के चार पाद होते हैं. (१) क्रियापाद, (२) चर्यापाद, (३) योगपाद और (४) ज्ञानपाद। इनके उत्तरभाग में वीरशैवदर्शन का निरूपण है—

''सिद्धान्ताख्ये महातन्त्रे कामिकाद्ये शिवोदिते।
निर्दिष्टमुत्तरे भागे वीरशैवमतं परम्।।''

(सि.शि., ५/१४)

शिव और जीव की ऐक्यबोधिका विद्या 'वी' कहलाती है और उनमें रमण करने वाले शैव वीरशैव। उनका दर्शन 'वीरशैवदर्शन' है। इसे 'शिवाद्वैतदर्शन', 'विशेषाद्वैतदर्शन', 'शक्तिविशिष्टाद्वैतदर्शन', 'अत्याश्रमदर्शन' आदि भी कहते हैं।

इस दर्शन का नाम **'शक्तिविशिष्टाद्वैतदर्शन'** है। **''शक्तिश्च शक्तिश्च शक्ती, ताभ्यां विशिष्टौ जीवेशौ, तयोरद्वैतं शक्तिविशिष्टाद्वैतम्''** यह इस समस्त पद का विग्रह है। इसका अर्थ यह है कि 'जीव' परमशिव का ही अंश है। 'जीव' अल्पज्ञ है और शिव सर्वज्ञ हैं। उसकी स्थूल शक्ति जीव से सम्बद्ध रहती है और सूक्ष्म शक्ति परमशिव से। चिच्छक्ति का संकोच और विकास अथवा बहिर्मुखता और अन्तर्मुखता उसे दो अवस्थाओं में परिणत करती है। जैसा कि शक्ति सूत्र है— **''चितिरेव चेतनपदादवरूढा चैत्यसङ्कोचिनी चित्तम्। तत्परिज्ञाने च चित्तमेवाऽन्तर्मुखीभावेन चेतनपदाध्यारोहाच्चितिः।''**

इसका आशय यह है कि 'चेतन' (परमशिव) के पद से अवतीर्ण उसकी संकुचित चिच्छक्ति ही 'चित्त' कहलाती है। स्वस्वरूप का परिज्ञान होने पर जीव का वही चित्त अन्तर्मुख होकर चेतन (परमशिव) पद पर आरूढ होता है, पुनश्च विकसित होकर 'चिति' शक्ति के रूप में परिणत होता है। पदवाक्यप्रमाणज्ञ शिवशरण **मरितोण्टदार्य** कहते हैं— **''चितिसङ्कोचचिच्छक्ति-विशिष्टो जीवः।''** अर्थात् चिच्छक्ति का संकोच ही चित्त है। जब तक उसका विकास नहीं होता, तब तक जीव का चित्त से सम्बन्ध रहता है और वह

CC0. In Public Domain. Jangamwadi Math Collection, Varanasi

Digitization by eGangotri and Sarayu Trust. Funding by MoE-IKS

'जीव' कहलाता है और जब उस शक्ति का पूर्ण विकास होता है, जीव शिवस्वरूप होता है। इस प्रकार दोनों चिच्छक्तिविशिष्ट हैं— जीव संकुचितशक्तिविशिष्ट है और शिव विकसितशक्तिविशिष्ट। जीव और शिव दोनों में तथा दोनों की शक्तियों में कोई अन्तर नहीं है। शक्ति का संकोच दूर होने से जीव शिवाकार हो जाता है। दोनों में अद्वैत है, अतः वीरशैवदर्शन शक्तिविशिष्टाद्वैत दर्शन है।

इसे **'शिवाद्वैतदर्शन'** इसलिये कहते हैं कि जीव ही शिव है। **''शिवश्च शिवश्च शिवौ, तयोरद्वैतं शिवाद्वैतम्।'** शिव और जीव दोनों के अद्वैत का प्रतिपादन इस दर्शन में है। इसी प्रकार यह **'विशेषाद्वैतदर्शन'** भी है। इसका भी अर्थ यही है— **'वि'** परम शिव का वाचक है और 'शेष' जीव का। दोनों का **अद्वैत** विशेषाद्वैत दर्शन कहलाता है— **''विः च शेषः च विशेषौ ईशजीवौ, तयोः अद्वैतं विशेषाद्वैतम्।'**

महर्षि श्वेताश्वतर ने उस चिच्छक्तिविशिष्ट परशिवस्वरूप ब्रह्मतत्त्व का उपदेश 'अत्याश्रमी वीरशैवों को दिया (श्वे.उ.,६/२१)। **''क्रियावन्तः श्रोत्रिया ब्रह्मनिष्ठाः''** (मु.उ.,३.२.१) इत्यादि मन्त्रव्याख्यान के प्रसंग में 'वीरशैवभाष्य'-कार **ब्रह्मश्री शंकरशास्त्री जी** लिखते हैं— 'शिरोव्रत' लिङ्गधारणस्वरूप महाव्रत है, जिसके अन्य पर्याय हैं 'पाशुपतव्रत', 'अत्याश्रमव्रत', 'शाम्भवव्रत' आदि। इन सबका अर्थ समान हैं। उनमें कोई बाधक प्रमाण नहीं है। अथर्वशीर्ष, मुण्डक उपनिषद्, कैवल्य उपनिषद्, श्वेताश्वतर उपनिषद्, कालाग्निरुद्र उपनिषद् इत्यादि में वर्णित पाशुपतव्रत, शिरोव्रत, अत्याश्रमव्रत, शाम्भवव्रत इत्यादि के विशिष्ट अधिकारियों को एक ही लिंगधारणरूप महाव्रत का अधिकारी मानने में सुकरता है, भिन्न-भिन्न मानने में नहीं।

'आदित्यपुराण' के अनुसार अत्याश्रमव्रत सभी वेदान्तों ('उपनिषदों') का सार है— **सर्ववेदान्तसारोऽयमत्याश्रम इति श्रुतिः।**

'अत्याश्रम' व्रत का अर्थ है लिंगांगसंयोग और उस संयोग से विशिष्ट का अर्थ है **अत्याश्रमी। 'लिंगांगसंयोग'** में तीन शब्द हैं— लिंग, अंग और संयोग। **'लिंग'** का अर्थ शिव होता है। वह त्रिविध है— इष्टलिंग, प्राणलिंग और भावलिंग। **'अंग'** का अर्थ— 'क्षेत्र' अथवा 'शरीर' होता है। वह भी त्रिविध है— स्थूल, सूक्ष्म और कारण। इष्टलिंग का स्थूल शरीर से, प्राणलिंग

CC0. In Public Domain. Jangamwadi Math Collection, Varanasi

Digitization by eGangotri and Sarayu Trust. Funding by MoE-IKS

का सूक्ष्म शरीर से, भावलिंग का कारण शरीर से संयोग लिंगांगसंयोग है। उनसे संयुक्त 'अत्याश्रमी' होता है—

लिङ्गं शिवो भवेत् क्षेत्रमङ्गं संयोग आश्रयः।
यस्तु लिङ्गाङ्गसंयुक्तः स एवाऽत्याश्रमी भवेत्।।

लिंगधारण करनेवाला वीरशैव ब्रह्मचारी, गृहस्थ, वानप्रस्थ और संन्यासी को भी यतः अतिक्रान्त करता है, अतः वह अत्याश्रमी कहलाता है—

ब्रह्मचारी गृहस्थो वा वानप्रस्थो यतिस्तु वा।
यस्तु लिङ्गाङ्गसंयुक्तः स एवाऽत्याश्रमी भवेत्।।

वस्तुतः ब्रह्म, परशिव और महालिङ्ग तीनों में कोई अन्तर नहीं है। 'सिद्धान्तशिखामणि'कार कहते हैं—

चिद्रूपं हि परं तत्त्वं शिवाख्यं विश्वकारणम्।
..
परं ब्रह्म महालिङ्गं प्रपञ्चातीतमत्ययम्।।

(सि.शि., ६/३२,३४)

'सिद्धान्तशिखामणि'कार **'लिङ्ग'** शब्द का निर्वचन इस प्रकार करते हैं—

लयं गच्छति यत्रैव जगदेतच्चराचरम्।
पुनः पुनः समुत्पत्तिं तल्लिङ्गं ब्रह्म शाश्वतम्।।

(सि.शि., ६/३७)

समस्त चर-अचर जगत् जहाँ विलय प्राप्त करता है और जहाँ से प्रकट होता है, उस परमशिव को लिङ्ग कहते हैं। वही सच्चिदानन्दस्वरूप परशिव-महालिंग **'ब्रह्म'** भी है—

तस्माल्लिङ्गमिति ख्यातं सत्तानन्दचिदात्मकम्।
बृहत्वाद् बृंहणत्वाच्च ब्रह्मशब्दाभिधेयकम्।।

(सि.शि., ६/३८)

बृहत्ता (विशालता) और बृंहणशीलता (विश्वसृष्टि की प्रवृत्ति) के कारण परशिव महालिङ्ग का 'ब्रह्म' नाम सार्थक है।

CC0. In Public Domain. Jangamwadi Math Collection, Varanasi

Digitization by eGangotri and Sarayu Trust. Funding by MoE-IKS

प्रथम अध्याय

"हरः ॐ" इस प्रकार यहाँ श्रुति का प्रारम्भ है। **'क्षरं प्रधानममृताक्षरं हरः"** (१/१०) इस मंत्र का शांकरभाष्य इस प्रकार है— **"अविद्यादेः हरणात् परमेश्वरो हरः"** अविद्या आदि का हरण करने के कारण परमशिव **'हर'** हैं। 'वीरशैवभाष्य' के अनुसार **"मलपाशहरणात् भावप्राणेष्टरूपः परमेश्वरः।"** स्थूल, सूक्ष्म और कारण शरीर में यथाक्रम भाव, प्राण और इष्ट लिंग के रूप में प्रकाशित होकर जो परमशिव क्रमशः आणव, मायीय और कार्म त्रिविध मलपाशों का हरण करते हैं, वे 'हर' हैं। ॐ प्रणव उसका वाचक है। प्रणव और हर दोनों का वाच्य-वाचकभाव सम्बन्ध है। **"हरिः ॐ"** इस प्रकार वेदपारायण के पूर्व नामस्मरण की परम्परा है। 'हरि' और 'हर' में कोई अन्तर नहीं है। (द्र. भावार्थदीपिका)

ब्रह्मवादी— "ॐ ब्रह्मवादिनो वदन्ति" इस प्रकार इस उपनिषद् का उपक्रम होता है और **"श्वेताश्वतरोऽथ विद्वान्। अत्याश्रमिभ्यः परमं पवित्रं प्रोवाच"** (६/२१) इत्यादि मन्त्रों से इसका उपसंहार होता है। इस प्रकार यह ज्ञात होता है कि जो 'ब्रह्मवादी' हैं, वे ही 'अत्याश्रमी' हैं। **"ब्रह्म वदन्तीति ब्रह्मवादिनः"** जो ब्रह्म (वेद) का पाठ करते हैं, वे ब्रह्मवादी होते हैं। श्रुति स्वयं ब्रह्मनिरूपण करती है— **"ॐ ओमिति ब्रह्म।"** (तै.उ.१/८) ओङ्कार परशिव ब्रह्म का वाचक है। **"सत्यं ज्ञानमनन्तं ब्रह्म"** (तै.उ. २/१) परशिव ब्रह्म सत्स्वरूप चित्स्वरूप और अनन्त है। **"बृंहति बृंहयति, तस्मादुच्यते परं ब्रह्म"**, बृहत् (विशाल) और बृंहणशील (विस्तारशील) होने के कारण परमशिव का 'ब्रह्म' नाम सार्थक है। भाष्यकार कहते हैं— **"ब्रह्मवदनशीलाः परशिवब्रह्मस्वरूपविवेचनपराः शिवयोगमग्ना महर्षय इत्यर्थः।"** परशिवब्रह्म का विवेचन करने में समर्थ शिवयोग (लिङ्गाङ्गसामरस्यस्वरूप ब्रह्मसाक्षात्कार) में मग्न शिवयोगी ब्रह्मवादी होते हैं।

नीलकण्ठ शिवाचार्य के मत में 'ब्रह्मवादी' अथवा 'ब्रह्मनिष्ठ' लिङ्गधारी वीरशैव हैं। जैसा कि 'क्रियासार' (१.१८०) का वचन है—

> **"लिङ्गाङ्गेति च वाक्येन मोक्षमार्गैकतत्पराः।**
> **अमृतस्येति वाक्येन धारणं प्रतिपादितम्।।**

CC0. In Public Domain. Jangamwadi Math Collection, Varanasi

Digitization by eGangotri and Sarayu Trust. Funding by MoE-IKS

तन्निष्ठा एव मनुजा अतिवर्णाश्रमे रताः।
त एव हि महात्मानो ब्रह्मनिष्ठा उदाहृताः।।''

(द्रष्टव्य मुण्डकोपनिषद् (३.२.१०) मन्त्र-वीरशैवभाष्य)

''ब्रह्मवादी अत्याश्रमी'' (लिङ्गधारी वीरशैव) महर्षि श्वेताश्वतर से आरम्भिक दो मन्त्रों में ब्रह्मजिज्ञासा और उससे सम्बन्धित विविध विकल्प कर रहे हैं।

ब्रह्मजिज्ञासा— यहाँ ब्रह्मजिज्ञासा पाँच प्रकार की है— (१) **किं कारणं ब्रह्म?** जगत् के कारण के रूप में स्वीकृत परशिव ब्रह्म का स्वरूप क्या है? अथवा ब्रह्म जगत् का उपादान कारण है, निमित्त कारण है या उभय कारण है? (२) हम शरीरधारी जीवों की सृष्टि कहाँ से हुई? (३) हम किसके कारण जीवित हैं? (४) हमारा अधिष्ठान क्या है? (५) हम किसके वशीभूत होकर सुखदु:खात्मक व्यवस्था में जी रहे हैं? (१/१)।

संकल्प-विकल्प— काल, स्वभाव, नियति, यदृच्छा, पञ्चमहाभूत, चेतन पुरुष क्या जगत् के कारण हैं? अथवा इनका समुदाय जगत् का कारण है? समुदाय जगत् का कारण इसलिये नहीं हो सकता, यत: वह परमात्मा के प्रीत्यर्थ ही प्रवृत्त होता है। उसकी स्वतन्त्र सत्ता नहीं है, जीवात्मा भी स्वतत्र नहीं होता, अत: वह भी जगत् का कारण नहीं है। अत: जगत् का कारण क्या है, यह प्रश्न अनुत्तरित है। (१/२)।

देवात्मशक्तिः— उन ब्रह्मवादी शिवयोगियों ने ध्यानयोग द्वारा भक्तों पर अनुग्रह करने के लिये लीलाविग्रधारी परमशिव की उनसे अभिन्न सच्चिदानन्दस्वरूपिणी प्राणशक्ति अथवा चिच्छक्ति का साक्षात्कार किया। यही शक्ति परिणाम की परम्परा से परमेश्वर की 'प्रकृष्ट कृति' होने के कारण 'प्रकृति' कहलाती है। वही शक्ति सत्त्व, रज और तमोरूप त्रिगुण द्रव्यों के स्वरूप में रूपान्तरित होती है। वही विचित्रस्वरूप और आकर्षक होने से 'माया' भी कहलाती है।

परमशिव जगत्स्रष्टा— इस अद्भुत चिच्छक्ति से सम्पन्न परमशिव ही जीव आदि सबका अधिष्ठाता और समस्त जगत् का स्रष्टा है। (१/३)।

संसार परमशिव का शरीर— अनन्तर शिवयोगियों ने देखा कि शक्तिविशिष्ट परमशिव ही कभी संसार के रथचक्र के रूप में दृष्टिगोचर हो

CC0. In Public Domain. Jangamwadi Math Collection, Varanasi

Digitization by eGangotri and Sarayu Trust. Funding by MoE-IKS

रहा था और कभी संसार सरिता के रूप में। (१/४,५)। समस्त संसार 'ब्रह्मचक्र' है, जो सम्पूर्ण सृष्टि, स्थिति और लय का कारण है। उसमें जीव चक्कर लगाता रहता है, क्योंकि वह देह-इन्द्रियों के अभिमान से ग्रस्त होकर उससे निकलने का उपाय नहीं खोज पाता। उसे 'हंस' इसलिये कहते हैं कि वह उसी में गतिशील रहता है। उस जीव पर से जब त्रिविध मल हट जाता है, तब उसे विस्मृत आत्मस्वरूप का साक्षात्कार होता है। उसका भेदज्ञान मिट जाता है और वह अमृतत्व प्राप्त करता है। यह अमृतत्त्वप्राप्ति जीव को परमात्मा का अनुग्रह प्राप्त कर ही होती है। अथवा 'हंस' (जीवात्मा) जब तक संसारावस्था में होता है, तब तक परमात्मा द्वारा प्रेरित और उसका उपासक होता है। परमात्मा जीवात्मा का प्रेरक और उससे पूजित होता है। दोनों में जब तक उपास्य-उपासकभाव का भेदज्ञान होता है, तब तक जीवात्मा परमात्मा की उपासना करता है। उससे प्रसन्न परमात्मा जीवात्मा को लिङ्गाङ्गसामरस्यस्वरूप अमृतत्व (मोक्ष) प्रदान करता है। तब दोनों में भेद मिट जाता है और जीव शिव हो जाता है। (१/६)। उस परशिव ब्रह्म में भोक्ता, भोग्य और प्रेरयिता (प्रेरक) तीनों प्रतिष्ठित हैं। वही अक्षर ब्रह्म है। शिवयोगी उस अन्तर को समझकर जब तत्पर हो गये, तब जन्म-जरा-मरण के भय से मुक्त होकर परशिव ब्रह्म में विलीन हो गये; क्योंकि परशिव ब्रह्म में जीव का परम विलय ही मुक्ति है (१/७)। महत्तत्त्व से पृथिवी तक 'व्यक्त' और 'क्षर' है तथा मूल कारण 'प्रकृति' अव्यक्त और अक्षर है। अथवा प्रकृति और जीवात्मा पुरुष यथाक्रम 'क्षर' और 'अक्षर' तथा 'व्यक्त' और 'अव्यक्त' शब्दों से सम्बोधित हैं। परम शिव उन दोनों का ईश नियामक है। अत: उसे 'प्रधानक्षेत्रज्ञपति' अथवा 'प्रधानपुरुषेश्वर' भी कहते हैं। जीवात्मा स्वयं में कर्ता, भोक्ता इत्यादि का जब तक अभिमान रखता है, तब तक 'अनीश' परतन्त्र रहता है और सांसारिक बन्धनों में पड़ा रहता है।

''ज्ञात्वा देवं मुच्यते सर्वपाशैः''— परमशिव भावलिङ्ग के रूप में शिर:स्थित सहस्रारचक्र में, प्राणलिंग के रूप में हृदयस्थित अष्टदल कमल में और इष्टलिंग के रूप में भ्रूमध्य में प्रकाशमान है। वह चित्स्वरूप है। उसका साक्षात्कार कर जीवात्मा त्रिविध मलपाशों से मुक्त होता है। आणव मलपाश इच्छाशक्ति का संकोच है। मायीय मलपाश ज्ञानशक्ति का संकोच है और कार्म मलपाश क्रियाशक्ति का संकोच है। जब जीव भावलिङ्गस्वरूप शिव का संयोग करने में समर्थ होता है, 'योगाङ्ग' कहलाता है। प्राणलिङ्ग-

CC0. In Public Domain. Jangamwadi Math Collection, Varanasi

Digitization by eGangotri and Sarayu Trust. Funding by MoE-IKS

स्वरूप शिव के साथ भोग में समर्थ जीव 'भोगाङ्ग' कहलाता है। इष्टलिङ्ग के साथ अभिमानरहित होकर समर्पणभावना से शिवोपासना करनेवाला जीव 'त्यागाङ्ग' कहलाता है। ईश्वर के अनुग्रह से पाशबन्धनों से मुक्त जीव को 'अङ्ग' और शरीर के विभिन्न अवयवों में भाव, प्राण और इष्ट रूप में प्रकाशमान शिव को 'लिङ्ग' कहते हैं। जीव की पाशमुक्ति गुरु के दृष्टिपात से प्राप्त मन्त्र, जप और अन्तर्बाह्य शिवोपासना से होती है। प्रणवसहित पञ्चाक्षरी महाविद्या के जप से जीव प्रसन्न रहता है और समस्त विश्व को आत्मीय समझता है (१/८)।

ईश्वर 'ज्ञ' सर्वज्ञ है, और **जीव** 'अज्ञ' है। ईश्वर स्वतन्त्र-सर्वसमर्थ है, जीव परतन्त्र-असमर्थ है। उन दोनों से भिन्न प्रकृति अजा भोक्ता जीव की सभी भोग्य पदार्थ सामग्री से सम्पन्न है। अनन्त सर्वव्यापक परमात्मा विश्वविग्रह है। वह पुण्य-पाप आदि कर्मों से लिप्त नहीं है। जीव जब इन तीनों की परस्पर विलक्षणता का साक्षात्कार करता है, आनन्दमय भावलिंगस्वरूप परशिव के साथ एकात्मकता का अनुभव करता है (१/९)।

प्रधान (प्रकृति) सदैव क्षरणशील है। **हर** (भाव-प्राण-इष्ट रूप परमशिव) अमृत अक्षर है। **परमशिव** प्रकृति और पुरुष (देह और जीव) दोनों का नियमन करता है। वह सूक्ष्म शरीरस्वरूप हृदय में अंगुष्ठप्रमाण प्राणलिंग के रूप में विराजमान है, जिसका निरन्तर चिन्तन करना चाहिये। भ्रूमध्यस्थित इष्टलिङ्ग का नित्य सम्पर्क स्थापित करने के लिये स्थूल शरीर में उसे आजीवन धारण करना चाहिये। फिर सहस्रारचक्रस्थित भावलिङ्ग के साथ सामरस्य स्थापित करना चाहिये। ऐसा बार-बार करने से मोहकारिणी त्रिगुणात्मिका माया का आवरण हट जाता है (१/१०)।

इस प्रकार परशिवब्रह्म नामक अखण्ड-पूर्ण महालिङ्ग का ध्यान कर सभी बन्धनकारक मलपाशस्वरूप अविद्या, अस्मिता, राग, द्वेष और अभिनिवेश नामक **पातञ्जलयोगसूत्र** वर्णित पाँच क्लेश दूर हो जाते हैं। पंच क्लेशों का क्षय होने पर जीवात्मा जन्म-मरणस्वरूप संसारचक्र के भ्रमण से परावृत्त होता है। भाव-प्राण-इष्टस्वरूप चित्प्रकाश परशिवलिङ्ग के निरन्तर अनुसन्धान से प्रणवपूर्वक पञ्चाक्षरी महाविद्या की शिवदीक्षा द्वारा जीवात्मा का देह प्रसादकाय बन् जाता है और तब उसे विश्वैश्वर्यस्वरूप तृतीय फल प्राप्त होता है और वह

CC0. In Public Domain. Jangamwadi Math Collection, Varanasi

Digitization by eGangotri and Sarayu Trust. Funding by MoE-IKS

इसी शरीर से कैवल्य के आनन्द का अनुभव कराता है तथा देहपात होने पर भी वही शाश्वत सुख पाता है (१/११)।

परशिवब्रह्म का अनुसन्धान स्वयं में ही करना चाहिये, अन्यत्र नहीं। वह प्राणलिङ्ग के रूप से अपनी हृदयरूपी गुफा में ही रहता है। वही नित्य है। उसका ज्ञान होने पर अन्य कुछ भी ज्ञातव्य नहीं रहता। भोक्ता चेतन जीव, भोग्य अचेतन प्रकृति और प्रेरयिता परमेश्वर तीनों ही परशिवब्रह्म के विविध रूप हैं (१/१२)।

अरणि में गुप्त रूप से विद्यमान अग्नि को जिस प्रकार अरणिमन्थन द्वारा प्रकट किया जाता है, उसी प्रकार प्रणवजप से परमात्मा का साक्षात्कार सम्भव है (१/१३)। अत: अपने शरीर को अथवा जीवात्मा को अरणि और प्रणव को उत्तरारणि बनाकर ध्यान द्वारा परमात्मा का साक्षात्कार करना चाहिये (१/१४)। जिस प्रकार तिल में तेल रहता है, दही में घी रहता है, भूगर्भ में जलस्रोत रहता है, अरणि में अग्नि रहती है, उसी प्रकार स्वयं में ही परमात्मा रहता है। सत्यवचन और चित्त की एकाग्रता द्वारा परमात्मा की प्राप्ति होती है (१/१५)। गुहारूप से सर्वत्र वर्तमान आत्मविद्या और तपस्या का बीज उपनिषद्गम्य वह परशिवब्रह्म शिव ही जीव की हृदयगुफा में वास करता है (१/१६)।

द्वितीय अध्याय

इस अध्याय के प्रारंभिक चार और सातवाँ मंत्र **सवितास्तुति**परक है। **श्रीमद्भगवद्गीता** के **'वैवस्वत योग'** का अधिष्ठाता **सविता** ही है, जिसे वहाँ 'विवस्वान्' कहा गया है। 'वीरशैवभाष्य'कार के मत में वह सविता परमशिव ही है।

जीव सर्वप्रथम स्वयं अपने मन को मन्त्रजप के लिये प्रवृत्त करे। फिर बुद्धि को प्रेरक इष्टलिंगस्वरूप परमशिव अपने महाप्रकाश को निकाल कर अपने अंशस्वरूप चेतन जीव में संक्रमण करने के लिये उसके पार्थिव शरीर स्थित मन को स्वयं की ओर एकाग्र करे (२/१)। हमलोग परशिवब्रह्म के ध्यानयज्ञ में मग्न रहेंगे, जिससे स्वर्ग (मोक्ष) प्राप्त हो (२/२)। परशिव ही ब्रह्मजिज्ञासाओं को सद्बुद्धि प्रदान करते हैं, जिससे उनका अन्त:करण और

CC0. In Public Domain. Jangamwadi Math Collection, Varanasi

Digitization by eGangotri and Sarayu Trust. Funding by MoE-IKS

इन्द्रिय विषयपराङ्मुख होते हैं (२/३)। फलस्वरूप लिङ्गधारी और उनसे भिन्न ब्रह्मवेत्ता परमात्मा में मन लगाते हैं (२/४)। जिस प्रकार ब्रह्मनिष्ठों को 'ब्राह्मण' कहा जाता है, उसी प्रकार प्राणलिंग (इष्टलिंग) को धारण करने वाले 'लिंगायत' कहलाते हैं। वीरव्रत का आचरण करने वाले 'वीरशैव' होते हैं। वीरशैव अनादि शक्ति और शक्तिमान् के रूप में संयुक्त परशिव ब्रह्म को नमन करते हैं। मुझे ब्रह्मप्राप्ति हो। जो इस दिव्य धामों में विराजते हैं, वे 'अमृत' मृत्युञ्जय हैं। वे निर्भीक होकर इस तथ्य को सुनें, यतः सभी मुक्ति के पात्र हैं (२/५)। जहाँ अग्निमन्थन होता है, जहाँ श्वासोच्छ्वासादि वायु मन्त्र-जप में सहायक होता है, जहाँ उमाशक्तिसहित परमशिव विराजते हैं, वहाँ मुमुक्षु साधक का अन्तःकरण आन्तरिक शिवसाधना में लगता है (२/६)। सर्वकारणस्वरूप प्रेकर परमेश्वर के अनुग्रह से मूर्त (साकार) और अमूर्त (निराकार) परशिव ब्रह्म की उपासना करनी चाहिये और तदर्थ समाधि लगानी चाहिये। फलतः श्रुतिस्मृतिविहित सभी कर्म जीव को भोग में प्रवृत्त नहीं करेंगे और बन्धनकारक नहीं होंगे (२/७)। वक्षःस्थल-ग्रीवा और सिर को उन्नत और सरल रखकर अपने अन्तःकरण तथा ज्ञानेन्द्रियों पर नियन्त्रण रखते हुए प्रणव की नौका में संसारसागर पार करना चाहिये (२/८)। अपने आहार-विहारादि पर नियंत्रण रखते हुए प्राणायाम के द्वारा धीरे-धीरे श्वास छोड़ना चाहिये और मन पर लगाम लगानी चाहिये (२/९)। योगसाधनाभूमि समतल, शान्त, बाधारहित, मनोरम, निर्जन होनी चाहिये (२/१०)। योगाभ्यास में निरत जीव चित्र-विचित्र समस्त प्रपञ्च को परमेश्वर स्वरूप ही समझता है (२/११)।

शिवयोगी का पंचतत्त्वनिर्मित देह शिवमय होता है। यही उसकी 'अव्युत्थित'दशा कहलाती है। उसका अन्तःकरणचतुष्टय भी शिवमय होता है। जिससे बाह्य प्रपंच भी उसे शिवमय प्रतीत होता है। 'यह उसकी व्युत्थित दशा है। पृथिवी, जल, तेज, वायु और आकाश इन पंचमहाभूतों में क्रमशः वर्तमान गन्ध, रस, रूप, स्पर्श और शब्द जब शिवयोगी में दृष्टिगोचर होते हैं, तब योगी को पाँचभौतिक समस्त प्रपञ्च स्वयं में अवस्थित प्रतीत होता है। योगी जो भीतर अनुभव करता है, वही बाहर देखता है और जो बाहर अनुभव करता है, वही भीतर देखता है। इस प्रकार उसकी अन्तर्बाह्य अभेद-दृष्टि स्थिर होती है, भेदभावना मिट जाती है। पञ्चभूतों के समस्त गुण साधक

CC0. In Public Domain. Jangamwadi Math Collection, Varanasi

Digitization by eGangotri and Sarayu Trust. Funding by MoE-IKS

के गुण होते हैं, जिससे योगी के योगाग्निमय शरीर को रोग-जरा-मरणजन्य दु:ख नहीं होते। उसका समस्त शरीर योगाग्निमय हो जाता है, उसका पाञ्चभौतिक प्रभाव मिट जाता है, उसके पाञ्चभौतिक शरीर पर जरा-मरण आदि का प्रभाव पड़ता है, योगाग्निमय शरीर पर नहीं (२/१२)। फलत: योगी के शरीर में हलकापन, रोगमुक्तता, विषयों में अलोलुपता, आकर्षक कान्ति, सुश्राव्य कण्ठस्वर, सुगन्धि, कम मलमूत्रविसर्जन आदि गुण दृष्टिगोचर होते हैं (२/१३)।

जब जीव का अन्त:करण निर्मल होता है, उसे जब स्वस्वरूप का ज्ञान होता है, तब वह शोकमुक्त हो जाता है (२/१४)। दीपसदृश प्रकाशमान जीव जब महाप्रकाशस्वरूप शिव का साक्षात्कार करता है, तब वह कर्मबन्धन पाशों से मुक्त हो जाता है, क्योंकि सांसारिक स्थिति में पञ्चतत्त्वों के सूक्ष्म अंश जीव को बन्धन में डालते हैं; परन्तु परमशिव त्रिविध देह से निर्लिप्त रहता है। जीव उपासक दीपोपम आत्मतत्त्व है। परमशिव उपास्य महाप्रकाश ब्रह्मतत्त्व है (२/१५)। परमशिव समस्त दिशास्वरूप है। वही 'हिरण्यगर्भ' के रूप में प्रथम उत्पन्न हुआ है। गर्भावस्था में भी वही रहता है और आगे भी वह जन्म लेगा। वह सभी चेतन जीवों में छिपा हुआ है। वह सर्वत्र व्यापक है (२/१६)। महाप्रकाशस्वरूप परमशिव अग्नि, जल, सभी धान्य, वनस्पति सर्वत्र विराजता है। **"तस्मै देवाय नमो नमः"** (२/१७)।

तृतीय अध्याय

परमशिव जगत् के उपादानद्रव्यस्वरूप मायाजाल से सम्पन्न होकर अपनी असाधारण शक्तियों से समस्त जगत् की सृष्टि और उस पर नियन्त्रण रखने में समर्थ होता है। जगत् परमशिव की विभूति है, परमशिव जगत् की उत्पत्ति और संहार में समर्थ हैं। इस तत्त्व को योगसाधना से हृदयंगम करने वाले ही अमृतत्व (मोक्ष) प्राप्त करते हैं, केवल शास्त्र-ग्रन्थों के पठन-पाठन और प्रवचनोपदेशादि से यह सम्भव नहीं है (३/१)।

'रुदं द्रावयतीति रुद्रः' — भवरोगस्वरूप समस्त संसारदु:खों का नाश करने के कारण ही परमशिव 'रुद्र' है और वही एकमात्र परमेश्वर है। दूसरा कोई परमेश्वर नहीं हो सकता। तत्त्वज्ञानी केवल उसी का अवलम्बन करते हैं, अन्य की अपेक्षा और प्रतीक्षा नहीं करते। वही सबमें वर्तमान अन्तर्यामी

CC0. In Public Domain. Jangamwadi Math Collection, Varanasi

Digitization by eGangotri and Sarayu Trust. Funding by MoE-IKS

अन्तरात्मा है। वही ब्रह्मा के रूप में विश्व का स्रष्टा, विष्णु के रूप में पालक और कालरुद्र के रूप में संहारकर्ता हैं। आश्रयस्थल होने के कारण परमशिव का 'स्थल' नाम और विलयस्थल होने के कारण 'लिङ्ग' नाम सार्थक है (३/२)।

परमशिव के नेत्र, मुख, बाहु और चरण सभी ओर हैं। उसकी सर्वत्र दृष्टि, सर्वत्र कार्यक्षमता और सर्वत्र गति है। वही प्राणिमात्र को कार्यक्षम और गतिशील बनाता है और धरती-आकाश उत्पन्न करता है (३/३)। जो इन्द्रादि देवों का उत्पत्ति एवं वैभव के हेतु हैं, विश्व में सर्वोत्कृष्ट हैं, जो महाज्ञानी महर्षि हैं, जिन्होंने सर्वप्रथम हिरण्यगर्भ को जन्म दिया, वे रुद्र शिव हमें सद्बुद्धि दें (३/४)।

हे रुद्र! जो तुम्हारी अघोर शान्त पुण्यमयी मूर्ति है, हे कैलासवासी शिव! उसी करुणामयी दृष्टि से तुम हमारे ऊपर अनुग्रह करो (३/५)।

हे रुद्र! शिवद्रोहियों पर प्रहार करने के लिये जो बाण तुम धारण करते हो, उससे हमारी रक्षा करो, हमारा मंगल करो, चेतन-अचेतन समस्त विश्व को पीड़ित मत करो (३/६)।

प्राणिमात्र के शरीर में वास करने वाले और समस्त जगत् में व्याप्त उस परमशिव का साक्षात्कार करने से अमृतत्व की प्राप्ति होती है (३/७)।

मैंने उस पुरुष का साक्षात्कार किया है, जो सूर्य के समान तेजस्वी है। उसके सामने अन्धेरा टिक नहीं सकता। उस एकमात्र परमशिव का साक्षात्कार कर जीवात्मा मृत्युभय से मुक्त होता है। परमगति प्राप्त करने के लिये परमात्मसाक्षात्कार से भिन्न कोई अन्य मार्ग नहीं है (३/८)। उस परमशिव से न तो कोई उत्कृष्ट है, न कोई अणु है और न कोइ महान् है। वृक्ष के समान वह परमाकाश में निश्चल है। यह समस्त जगत् मूर्त-अमूर्त उभयस्वरूप परशिव महालिङ्ग से व्याप्त है (३/९)।

दृश्यमान शिवमय जगत् से उत्कृष्ट अरूप मलत्रयरहित उस परशिव ब्रह्म को जो जानते हैं, वे मुक्त होते हैं (३/१०)।

उस परम-पुरुष शिव के अनन्त मुख, मस्तक और ग्रीवाएँ हैं। वह विश्वव्यापक है और सभी के हृदयकमलों में वास करता है (३/११)। समस्त लोकाधिपति परमशिव अज्ञानान्धकार को दूर करता है। चारों ओर प्रकाश फैलाता है। दूसरे शब्दों में तमोगुण का विनाशक और सत्त्वगुण का प्रवर्तक

CC0. In Public Domain. Jangamwadi Math Collection, Varanasi

Digitization by eGangotri and Sarayu Trust. Funding by MoE-IKS

है। वह शाश्वत शान्तिप्रदानकर्ता, सर्वप्रेरक, अविनाशी और प्रकाशपुञ्जस्वरूप है। वह हमें परमशान्ति प्रदान करे (३/१२)। वह सर्वज्ञ और सर्वव्यापक होने पर भी हृदयगुफा में अंगुष्ठप्रमाण में वास करता है। उसे निर्मल अन्तःकरण और बुद्धि से ही जाना जा सकता है (३/१३)।

वह विश्व में अनन्त मस्तक, अनन्त नेत्र और अनन्त पादसम्पन्न है, किन्तु प्राणी के देह में नाभि के दस अङ्गुल ऊपर अंगुष्ठप्रमाण परिमित हृदय में प्रतिष्ठित है (३/१४)। कालत्रय में प्रतिष्ठित समस्त वस्तुएँ शिवस्वरूप हैं। वह मुक्ति का नियामक है। सभी भोग्य वस्तुएँ उसके सामने तुच्छ हैं, क्योंकि वे क्षणिक आनन्द देती हैं, परमशिव अपरिमित अखण्ड शाश्वत सुख प्रदाता है (३/१५)। उसे अनन्त हाथ-पैर, नेत्र, सिर, मुख, कान सभी होने पर भी सामान्य जीव उसे देख नहीं सकता; क्योंकि अविद्या के आवरण से वह घिरा रहता है (३/१६)।

इन्द्रियरहित होने पर भी परमशिव में इन्द्रियगुणों का आभास होता है। वही समस्त जगत् के स्वामी सबके आश्रयस्थल हैं (३/१७)।

जीवात्मा का नगर नवद्वार शरीर है। जीव सदा **'अहं सः'** यह अनुसन्धान करने के कारण **'हंस'** कहलाता है। आत्मस्वरूप का साक्षात्कार होने पर वह स्थावर-जंगम समस्त जगत् को वश में रखता है (३/१८)।

इन्द्रियरहित होने पर भी परमशिव इन्द्रियों के समस्त कार्य कर सकता है। वह सर्वज्ञ है, किन्तु उसे कोई नहीं जानता। ब्रह्मवेत्ता उसी को अग्रगण्य पुरुष कहते हैं (३/१९)।

वह अणु से अणुतम और महान् से महत्तम है। प्राणिमात्र की गुफा में उसका वास है। वह संकल्परहित है। परमेश्वर की कृपा से ही जीव उसका साक्षात्कार कर शोकमुक्त होता है (३/२०)। उस पुराणपुरुष को मैं जानता हूँ, जो सर्वान्तर्यामी, सर्वत्र व्यापक और उत्पत्ति आदि से मुक्त है। ब्रह्मवादियों का यही अनुभव है (३/२१)।

चतुर्थ अध्याय

परमशिव स्वयं रूप-जाति आदि से रहित होने पर भी अपनी चिच्छक्ति के योग से चित्र-विचित्र सृष्टि और संहार करता है। वह हमें सद्बुद्धि प्रदान करे (४/१)।

CC0. In Public Domain. Jangamwadi Math Collection, Varanasi

Digitization by eGangotri and Sarayu Trust. Funding by MoE-IKS

परमशिव ही अग्नि, सूर्य, वायु, चन्द्र, शुक्र, बृहस्पति, जल, प्रजापति सब कुछ है। परब्रह्म का तीनों लिङ्गों में प्रयोग युक्तिसंगत है; क्योंकि वह चेतन-अचेतन, स्त्री-पुरुष सब कुछ है। पञ्चतत्त्वमय समस्त प्रपञ्च सर्वकारण परमशिव का मूर्त अचेतन रूप है। ब्रह्मा, इन्द्र इत्यादि उसके चेतन रूप हैं। अमूर्त परमशिव ही मूर्त लिङ्गस्वरूप धारण करता है। घृतकाठिन्यन्याय से यह संभव है (४/२)।

हे शिव! अमूर्त होने पर भी तुम स्त्री-पुरुष, कुमार-कुमारी, बाल-वृद्ध सब कुछ मूर्त रूप धारण करते हो। भ्रमरादि कीट, शुक आदि पक्षी, मेघ, ऋतु, समुद्र सब कुछ तुम्हीं हो। तुम आकाश के समान अनादि, अनन्त, सर्वव्यापक हो। तुम्हीं से समस्त भुवनों की उत्पत्ति हुई है (४/३-४)। त्रिगुणात्मिका अजन्मा प्रकृति से सभी सृष्टि होती है, अजन्मा जीव स्वस्वरूप को भूलकर जिस पर आसक्त रहता है, किन्तु अजन्मा परमात्मा केवल उसे निहारता है। **'प्रकृतिः कर्त्री पुरुषस्तु पुष्करपलाशवन्निर्लेपः''** (४/५)। दो सुन्दर पंखवाले पक्षी एक वृक्ष का आश्रय लेते हैं। वे दोनों मित्र हैं जीव और शिव, और वह वृक्ष है शरीर। जीव शरीर पर आसक्त रहकर कर्मफलों को भोगता है, किन्तु परमेश्वर मात्र कर्मफल का साक्षी निर्विकार भाव से जीव के साथ रहता है (४/६)। यद्यपि जीव और शिव दोनों एक साथ एक समान वृक्ष (शरीर) का अवलम्बन करते हैं, किन्तु जीव कर्मफलों के अधीन हो भोगायतन शरीर में अत्यधिक आसक्ति के कारण कृत्याकृत्यविवेकशून्य हो दुःखानुभव करता है, जब वह शिव की महिमा को समझता है, शोकमुक्त होता है (४/७)।

वह परमशिव वेदत्रयवेद्य और चिद्रूप परमाकाश आदि शब्दों से संकेतित है, जिसका अवलम्बन समस्त देव करते हैं। इसीलिये उसे **'स्थल'** कहते हैं। सभी वस्तुएँ वहाँ विलीन होती हैं, अतः उसे **'लिङ्ग'** भी कहते हैं। जो उक्त परमशिव को नहीं जानते, उनके लिये त्रयीपाठ व्यर्थ है। जो परमात्मतत्त्व जानते हैं, उनका जीवन सफल होता है (४/८)।

मायाशक्तिसम्पन्न परमशिव माया के द्वारा ही वेदादि समस्त प्रपञ्च की सृष्टि करता है। मायापाश से जकड़ा जीव 'पशु' है (४/८)। माया शिव की शक्ति अथवा पुरुष की प्रकृति है। मायासम्पन्न परमशिव महेश्वर है। शक्तिसम्पन्न

CC0. In Public Domain. Jangamwadi Math Collection, Varanasi

Digitization by eGangotri and Sarayu Trust. Funding by MoE-IKS

शिव के अवयवस्वरूप सृष्टि, स्थिति और संहार के अधिकारी ब्रह्मा, विष्णु और महेश इन त्रिमूर्तियों से सारा जगत् व्याप्त है (४/१०)।

माया का अधिष्ठाता परमशिव प्रत्येक वस्तु का अधिष्ठाता है। वह सर्वान्तर्यामी है। यह समस्त जगत् परमेश्वर में ही विलय प्राप्त करता है। उक्त परमात्मा का साक्षात्कार कर अत्यन्त सुख-शान्ति मिलती है (४/११)।

जो देवों के उत्पत्ति और वैभव के स्थान हैं, विश्व में सर्वोत्कृष्ट अथवा विश्व के अधिपति जिस रुद्र महर्षि ने हिरण्यगर्भ को जन्म देकर करुणापूर्ण दृष्टिक्षेप किया था, वे हमें सद्बुद्धि दें (४/१२)। परमेश्वर ने समस्त द्विपाद और चतुष्पाद पशुओं को जन्म दिया है। हम सब शरीर के निर्धारित अवयवों में इष्ट, प्राण और भावलिङ्ग के रूप में विद्यमान महादेव को यथाक्रम 'रूप' 'रुचि' और 'तृप्ति' पदार्थों का भोग लगाएँ और अवशिष्ट प्रसादस्वरूप ग्रहण कर तृप्ति और शान्ति प्राप्त करें (४/१३)।

परमशिव सूक्ष्म, अतिसूक्ष्म 'अणु से भी अणु हैं। वह उस 'कलिल' के भीतर रहते हैं, जो जगत्कारण है। कारण और कार्य की मध्य अवस्था 'कलिल' कहलाती है। अत एव विश्व के सृष्टिकर्ता नानारूपधारी अखण्ड अद्वितीय हैं। तथापि वे समस्त जगत् को वेष्टित करते हैं। वे 'शिव' (मंगलप्रद) हैं। उनका साक्षात्कार कर जीव परमशान्ति पाता है (४/१४)।

परमशिव त्रिभुवनपालक, अधिपति और सर्वान्तर्यामी हैं। सनकादि महर्षि और ब्रह्मा आदि देवता परमशिव की ही समाधि लगाते हैं। उनका साक्षात्कार कर साधक मृत्युपाशस्वरूप अविद्या, तम, रूप आदि को काटता है (४/१५)। परमशिव अत्यन्त दुर्ज्ञेय हैं। वे घृत के ऊपर विद्यमान मण्ड की तरह अत्यन्त सूक्ष्म हैं। उनका साक्षात्कार कर साधक शक्तिसंकोचस्वरूप आणव-मायीय-कार्म त्रिविध मलपाशों से मुक्ति पाता है। परमशिव सृष्टि, स्थिति और विलयस्वरूप सभी कार्य करते हें (४/१६)। वे महात्मा हैं और सभी प्राणियों की गुफा में सदा रहते हैं। विषयविमुख अन्तःकरण से और बुद्धि से उनका साक्षात्कार करने वाले अमर होते हैं (४/१७)।

जिस समय चारों ओर अन्धेरा अज्ञान फैला हुआ था; उस महाप्रलयावस्था में न तो रात थी और न दिन था। सत्-असत् कुछ भी नहीं था। केवल सच्चिदानन्दस्वरूप परमशिव का महाप्रकाश था, जो 'अक्षर' सूर्य-चन्द्रादि का

CC0. In Public Domain. Jangamwadi Math Collection, Varanasi

Digitization by eGangotri and Sarayu Trust. Funding by MoE-IKS

प्रकाशक होने से वरणीय हैं। उस महाप्रकाशस्वरूप परमशिव से आदिम-वाक्य-जन्य 'पुराणी प्रज्ञा' विमर्शशक्ति का प्रादुर्भाव हुआ (४/१८)। निराकार होने के कारण परमशिव का आकलन असम्भव है। ऊपर-नीचे, अगल-बगल, कोणदिशाओं में और बीच में आजतक कहीं भी उनका आकलन नहीं किया जा सका; उसकी महिमा और कीर्ति कोई नहीं सकझ सका। उनकी तुलना असम्भव है (४/१९)। उनका ऐसा कोई स्वरूप नहीं है, जो आँखों से देखा जा सके। वे हृदयकमल में रहते हैं और निर्मल अन्तःकरण द्वारा ही देखे-समझे जा सकते हैं (४/२०)।

मेरे जैसा कोई सांसारिक दुःखों से भयभीत जीव ही अजन्मा शिव की शरण में जाता है, सभी नहीं। आप सौम्य दृष्टि से मुझ भक्त पर अनुग्रह करें। मेरी नित्य रक्षा करें (४/२१)। हे रुद्र! आप हमारे पुत्र-पौत्र, अश्वधन, गोधन आदि का विनाश न करें। हमारे समर्थ सेवकों पर कुपित न हों। हम आपकी विविध उपचारद्रव्यों से आराधना करेंगे (४/२२)।

पञ्चम अध्याय

देश और काल की सीमा से परे 'अनन्त' अक्षर परब्रह्म में विद्या और अविद्या दोनों निहित हैं, जिनमें अविद्या विनाशशील और विद्या अमृत है। दोनों का नियामक परमशिव उनसे विलक्षण है। इनमें देहाभिमान के वर्धक सभी शास्त्र अविद्याकोटि में और शिवयोगसाधक सभी शास्त्र विद्याकोटि में आते हैं (५/१)। जो प्रत्येक वस्तु में प्रतिष्ठित है, जो चित्रविचित्र सृष्टि करता है, जिसमें महर्षि कपिल को जन्म देकर अपने सम्मुख ज्ञानसम्पन्न होते हुए देखा, वे ही विद्या और अविद्या दोनों के नियामक हैं (५/२)। जो प्रत्येक प्राणी को पाशबद्ध करता है और कर्मभूमि से बाहर जाने की शक्ति छीन लेता है वे जन्ममरणचक्र में पड़े रहते हैं। पुनश्च इन्द्रादि लोकपालों की सृष्टि कर वह उन पर आधिपत्य करता है (५/३)। सूर्य के समान दसों दिशाओं को प्रकाशित करने वाले एकमात्र परमशिव जगत्कारणस्वरूप पृथिवी आदि पदार्थों पर नियन्त्रण रखते हैं (५/४)। जगत् के उपादानकारणस्वरूप परमेश्वर पृथिवी आदि सभी पदार्थों में रहने वाली विशिष्ट शक्तियों को निर्धारित करता है, जिससे पृथिवी में धारणाशक्ति, जल में आप्यायनशक्ति, तेज में दाहकताशक्ति इत्यादि को हम देखते हैं। पञ्चभूतों में परस्पर संयोग के द्वारा अनेक पदार्थों का निर्माण परमशिव परमात्मा का ही कार्य है। उनका

CC0. In Public Domain. Jangamwadi Math Collection, Varanasi

Digitization by eGangotri and Sarayu Trust. Funding by MoE-IKS

अधिष्ठाता भी वही है। सत्त्व, रज और तमोगुण का विनियोग भी परमशिव द्वारा ही होता है (५/५)। वेदों में रहस्यभूत उपनिषदों में परशिवस्वरूप परब्रह्म का जो रहस्य निगूढ है, चतुर्मुख ब्रह्मदेव ही उसे जानता है। ब्रह्मा, विष्णु और कालरुद्र में कोई भेद नहीं है, क्योंकि ब्रह्मा ज्ञानशक्तिस्वरूप है, विष्णु क्रियाशक्तिस्वरूप है और कालरुद्र ज्ञानक्रिया का समुच्चयस्वरूप है। इन्द्रादि देव, वामदेव आदि ऋषि परमशिव का रहस्य जानकर मुक्त हो गये (५/६)। जीव परमशिव का चेतन अंश है, जो त्रिगुण पाशों से आबद्ध है। आणव, मायीय और कार्म ये तीन मलपाश ही है। इनसे जकड़ा जीव पशु है। अत एव वह पुण्य पापादि कर्म करता है, जो फलप्रद हैं, वह उनका उपभोग करता रहता है। वह माता-पिता इत्यादि नानाविध भूमिकाएँ निभाता है। यह सत्त्व, रज और तमोगुणसम्पन्नता के कारण ही होता है, जिससे जीव स्वर्ग-मृत्यु-पाताल लोकों में विचरण करता है। जब तक उसमें प्राण होते हैं, तब तक जीव कर्मबन्धन में जकड़ा रहता है (५/७)।

अंगुष्ठमात्र और सूर्य के समान प्रकाशस्वरूप वह संकल्प, अहंकार, बुद्धि और शरीरस्थ जरा-मरण आदि धर्मों से युक्त होता है। वह कीट-पतंगादि में सुई के नोक से भी सूक्ष्म प्रमाण देखा गया है (५/८)। वह जीव के केश के अग्रभाग के हजारवें हिस्से के बराबर सूक्ष्म होता है (५/९)। वस्तुतः जीव निराकार है। वह जो शरीर धारण करता है, वह उससे युक्त होता है। अत एव वह स्त्री-पुरुष-नपुंसक इत्यादि दृष्टिगोचर होता है। उसका कोई रूप नहीं है (५/१०)। जीव के शरीर नानाविध कारणों से वृद्धिगत होते हैं। वे हैं— संकल्प, स्पर्श, दृष्टि, मोह इत्यादि। देहधारी जीव नानाविध लोकों में स्वकर्मानुसार विविध रूप धारण करता है (५/११)। वह जीव अपने सत्त्व, रज और तमोगुण, उन गुणों से प्रभावित क्रियाएँ और उनके अनुकूल शारीरिक गुणों से नानाविध स्थूल-सूक्ष्म आदि विविध शरीर धारण करता है (५/१२)। उस परमशिव का साक्षात्कार कर जीव सभी कर्मबन्धनों से मुक्त होता है, जो अनादि-अनन्त, विश्वनिर्माता और विश्वरूप हैं (५/१३)।

वे परमशिव केवल भक्तिभाव से वेद्य हैं। वे भोग-मोक्ष दोनों को देने वाले हैं। वे अनीड हैं, उनका कोई घर नहीं है। वे ही चन्द्र की आह्लादकारिणी षोडश कलाओं को जन्म देते हैं अथवा शान्ति आदि छः कलाओं को वे ही

CC0. In Public Domain. Jangamwadi Math Collection, Varanasi

Digitization by eGangotri and Sarayu Trust. Funding by MoE-IKS

जगत् में प्रसारित करते हैं। उस परमशिव को जो जानते हैं, वे परमशिव के साथ सामरस्यमुक्ति पाते हैं (५/१४)।

षष्ठ अध्याय

"कालः स्वभावो नियतिर्यदृच्छा" (१/२) इत्यादि जगत्कारण नहीं हो सकते। मोहग्रस्त अविवेकी ही ऐसा कहते हैं। जगत् की सृष्टि, स्थिति और संहार इत्यादि चिन्मय महाप्रकाशस्वरूप महादेव का ही प्रभाव है, वह उसका असाधारण धर्म है, जिसके कारण यह 'ब्रह्मचक्र' (संसार) परिवर्तनशील है (६/१)।

उसी परमशिव से समस्त जगत् व्याप्त है। वही सर्वज्ञ, काल का भी स्रष्टा, आत्मगुणसम्पन्न और ज्ञानवान् है। उसी परमशिव के द्वारा पञ्चमहाभूत और सृष्टि आदि व्यापार सञ्चालित होते हैं (६/२)। पञ्चमहाभूतों में प्रत्येक तत्त्व का एक, दो, तीन अथवा (मन, बुद्धि, अहंकार के साथ) आठ तत्त्वों से, काल से और सूक्ष्म आत्मगुणों से संयोजन के द्वारा ही जगत् की सृष्टि, स्थिति और संहार हो जाता है (६/३)।

परमशिव के प्रभाव से जीव सत्त्व-गुण-रजोमिश्रित पाप-पुण्यादि विविध कर्म करते हैं। फलतः जगत् में विविधता दृष्टिगोचर होती है। ईश्वरार्पण बुद्धि से निष्काम कर्म करने पर प्रारब्ध कर्मों का स्वयं नाश होता है। फलतः जीव देहधर्म विस्मृत कर शिवस्वरूप होता है (६/४)।

परमशिव ही शिवात्मा का शरीर के साथ और पुण्यपापादि के साथ संयोग का कारण है। वस्तुतः वह प्राणादि कलाओं से शून्य हैं। (वे कलाएँ 'षोडशकल पुरुष' में विद्यमान हैं, 'निष्कल भावलिङ्ग' में नहीं।) वह जीव की हृदयगुफा में ही प्रकाशमान है, उसकी उपासना से जीव मुक्त होता है (६/५)। वह परमशिव संसारवृक्ष, काल, आकृति इत्यादि सबसे विलक्षण है। उसका साक्षात्कार कर जीव मुक्त हो जाता है (६/६)। वह सबका स्वामी है। उसे हम जानते हैं (६/७)। वह देह, इन्द्रिय आदि से मुक्त है। उससे उत्कृष्ट अथवा उसकी बराबरी का कोई नहीं है। उसकी परा चित्शक्ति नानारूपा है। उसकी इच्छारूपिणी शक्ति अन्तरंग में ज्ञानमयी और बहिरंग में प्रबल क्रियामयी होती है (६/८)। उसका कोई स्वामी नहीं है। उसका अनुमापक

CC0. In Public Domain. Jangamwadi Math Collection, Varanasi

Digitization by eGangotri and Sarayu Trust. Funding by MoE-IKS

कोई चिह्न भी नहीं है। वही सबका कारण और इन्द्रियों का अधिपति है। उसका कोई जनक नहीं है (वह अजन्मा है) (६/९)।

वह उस मकड़ी के समान है, जो अपने ही तन्तुओं से अपने को वेष्टित करती है। वह हमें सामरस्य मुक्ति दें (६/१०)। वह एकमात्र परमशिव सभी प्राणियों में प्रतिष्ठित है। वह सबका साक्षी केवल और निर्गुण है (६/११)। जीवों के स्वभावों की विलक्षणता उसी परमशिव के कारण है। उसका साक्षात्कार करने वाले शाश्वत मुक्ति पाते हैं (३/१२)। वह सबके मनोरथ पूर्ण करता है। जगत्कारणस्वरूप परमशिव को सांख्य-योग (ज्ञानकर्म-योग) द्वारा जाना जा सकता है, उनका साक्षात्कार कर जीव सांसारिक बन्धनों से मुक्त होता है (६/१२)। सूर्य-चन्द्र-ग्रह-नक्षत्रादि स्वयं प्रकाशित नहीं होते, परमशिव के प्रकाश से प्रकाशित होते हैं और जगत् को प्रकाशित करते हैं (६/१४)।

वही समस्त जगत् के मध्य 'हंस' (सूर्य) है, वह सूर्यादि का भी प्रकाशक है। वह अग्नि के समान सर्वपापदाहक है। हमारा शरीर जल का परिणाम है, जिसमें वह 'हंस' रहता है। उसका साक्षात्कार कर मृत्युभय से मुक्ति मिलती है। परमगति की प्राप्ति का इससे भिन्न कोई अन्य मार्ग नहीं है (६/१५)। वही विश्व का कर्ता और ज्ञाता है। वह प्रकृति और जीव दोनों का अधिष्ठाता है। वही संसार का मोक्ष, स्थिति और बन्धन का हेतु भी है (६/१६)। परमशिव प्रकाशमय, अमर, सर्वज्ञ और सर्वव्यापक है (६/१७)। उसी ने सर्वप्रथम ब्रह्मदेव की सृष्टि की और उसे वेदोपदेश दिया। मैं मुक्तिकाम हूँ और उसी की शरण में जा रहा हूँ (६/१८)। वह निष्कल, निष्क्रिय, शान्त, दोषरहित और निर्लिप्त है। वही अमरत्वप्राप्ति का सेतु है (६/१९)। उसका परिच्छेद उसी प्रकार असम्भव है, जिस प्रकार आकाश का (६/२०)।

इस प्रकार महर्षि श्वेताश्वतर ने ब्रह्मवादी वीरशैवों को उपदेश दिया। यह ज्ञान उपनिषदों में निगूढ़ है। उसे अशान्त, कुपुत्र और कुशिष्य को नहीं देना चाहिये (६/२१-२२)। जो परमशिव और गुरु का परम भक्त होता है, उसे ब्रह्मविद्या का समीचीन उपदेश सम्यक् प्रतिफलित होता है (६/२३)। यही इस उपनिषद् का सारांश है। वीरशैवदर्शन का संक्षिप्त सिद्धान्त यह है—

"जीवः सत्यं जगत् सत्यं शिवः सत्यं स्वभावतः।
तयोरभेदः सत्यं वा क्रिमि-भ्रमयोरिव।।"

CC0. In Public Domain. Jangamwadi Math Collection, Varanasi

Digitization by eGangotri and Sarayu Trust. Funding by MoE-IKS

वीरशैवदर्शन के दो भाग हैं— **सिद्धान्त** और **सम्प्रदाय**। पूर्वोक्त श्लोक में यह सिद्धान्तित है कि जीव, शिव और जगत् तीनों सत्य तथा शिवमय हैं। जीव और शिव का अभेद उसी प्रकार होता है, जिस प्रकार कीट की भ्रमराकार परिणति।

सम्प्रदाय की दृष्टि से यह मार्ग **'षट्स्थलोपासना मार्ग** नाम से संबोधित है।

"द्वा सुपर्णा सयुजा सखाया" (४/६) इत्यादि मन्त्र में शिव और जीव नामक दो पक्षियों की एक ही वृक्ष (शरीर) पर अवस्थिति प्रतिपादित है। परमशिव ही अपने को दो भागों में विभक्त करता है— (१) अङ्गस्थल (उपासक) और (२) लिङ्गस्थल (उपास्य)। जीव शिव का अङ्ग होने के कारण उसे 'शिवाङ्ग' अथवा 'अङ्गस्थल' भी कहते हैं। यत: शिव से समस्त संसार की उत्पत्ति और विलय होता है, अत: उसे 'लिङ्ग'स्थल कहते हैं। 'अङ्गस्थल' और 'लिङ्गस्थल' की शरीररूपी वृक्ष में इस प्रकार स्थिति है—

षट्चक्र	अङ्गस्थल	लिङ्गस्थल
१. मूलाधारचक्र	भक्तस्थल	आचारलिङ्ग
२. स्वाधिष्ठानचक्र	माहेश्वरस्थल	गुरुलिङ्ग
३. मणिपूरचक्र	प्रसादिस्थल	शिवलिङ्ग
४. अनाहतचक्र	प्राणलिङ्गिस्थल	जङ्गमलिङ्ग
५. विशुद्धिचक्र	शरणस्थल	प्रसादलिङ्ग
६. आज्ञाचक्र	ऐक्यस्थल	महालिङ्ग

जब तक जीव मलपाशों से आवृत रहता है, तब तक वह देह-इन्द्रियाभिमान से ग्रस्त रहता है और आत्मस्वरूप को भूल जाता है। आत्मस्वरूप का साक्षात्कार करने पर वह शोकमुक्त होता है— **"समाने वृक्षे पुरुषो निमग्नः"** (४/७) मन्त्र का यही अभिप्राय है। उसके लिये **षट्स्थलोपासना** आवश्यक है, जिसमें त्रिविध उपासना का विशेष महत्त्व है— (१) बाह्य वक्ष:स्थल पर इष्टलिङ्गधारण और हस्तपीठ पर उसकी अर्चना। (२) हृदयगुफा में प्रकाशमान प्राणलिङ्ग का प्रणवजप द्वारा निरन्तर अनुशीलन। (३) सहस्रारचक्र (आज्ञाचक्र) में भावलिङ्ग (महालिङ्ग) के साथ समरसता (ऐक्य)

CC0. In Public Domain. Jangamwadi Math Collection, Varanasi

Digitization by eGangotri and Sarayu Trust. Funding by MoE-IKS

का अनुभव। भाष्यकार इसका संकेत **'तस्याभिध्यानाद् योजनात् तत्त्वभावाद् भूयश्चान्ते विश्वमायानिवृत्तिः''** (१/१०) इत्यादि मन्त्र में करते हैं। षट्चक्रों में विद्यमान छः लिङ्ग षट्ब्रह्मस्वरूप हैं। प्रणवसहित पञ्चाक्षरी महाविद्या द्वारा जीव शिवयोग अथवा लिङ्गाङ्गसामरस्य स्थापित कर सकता है; क्योंकि प्रणव (ॐ) सूक्ष्म पञ्चाक्षर मन्त्र है और **'नमः शिवाय'** स्थूल पञ्चाक्षर मन्त्र। हम इसे इस प्रकार समझ सकते हैं—

क्रम	**मन्त्राक्षर**	**प्रणवभाग**	**षट्ब्रह्म**	**षट्लिङ्गस्थल**	**अङ्गस्थल**
१.	न	अ	सद्योजात (सदाशिव)	आचारलिङ्ग	भक्त
२.	मः	उ	वामदेव (ईश)	गुरुलिङ्ग	माहेश्वर
३.	शि	म्	अघोर (ब्रह्म)	शिवलिङ्ग	प्रसादी
४.	वा	नाद	तत्पुरुष (ईश्वर)	जङ्गमलिङ्ग	प्राणलिङ्गी
५.	य	ॐ	ईशान	प्रसादलिङ्ग	शरण
६.	ॐ	ॐ	परमशिव	महालिङ्ग	ऐक्य

पारमेश्वरागम में अष्टमूर्ति शिव के विभिन्न पाञ्चभौतिक स्वरूपों के साथ जीवात्मा का सामरस्य चित्रित है। वह इस प्रकार है—

अङ्गस्थल	**लिङ्गस्थल**	**विभिन्न तत्त्वस्वरूप**
१. भक्त	आचारलिङ्ग	पृथ्वीस्वरूप
२. माहेश्वर	गुरुलिङ्ग	जलस्वरूप
३. प्रसादी	शिवलिङ्ग	तेजःस्वरूप
४. प्राणलिङ्गी	जङ्गमलिङ्ग	वायुस्वरूप
५. शरण	प्रसादलिङ्ग	आकाशस्वरूप
६. ऐक्य	महालिङ्ग	परमशिवस्वरूप साक्षिमूर्ति

षट् अङ्गस्थलस्वरूप जीवात्मा इन्हीं छः सोपानों पर आरोहरण कर पर्यन्त में महालिङ्गस्वरूप साक्षिमूर्ति परमशिव के साथ सामरस्यानुभव करता है। **''साक्षी चेता केवलो निर्गुणश्च''** (६/११)।

CC0. In Public Domain. Jangamwadi Math Collection, Varanasi

Digitization by eGangotri and Sarayu Trust. Funding by MoE-IKS

"निष्कलं निर्मलं शान्तं निरवद्यं निरञ्जनम्।
अमृतस्य परं सेतुं दग्धेन्धनमिवानलम्।।" (६/१९)

"भावग्राह्यमनीडाख्यं भावाभावकरं शिवम्।
कलासर्वकरं देवं ये विदुस्ते जहुस्तनुम्।।" (५/१४)

इत्यादि मन्त्रों में उसी महाप्रकाश महालिङ्गस्वरूप साक्षिमूर्ति परमशिव का निरूपण है।

काशीज्ञानसिंहासनाधीश्वर अष्टोत्तरसहस्रश्री (१००८) **जगद्गुरु डॉ. चन्द्रशेखर शिवाचार्य महास्वामी जी** ने अपने **'शक्तिविशिष्टाद्वैततत्त्वत्रयविमर्श'** में **षट्स्थलसोपानक्रम** में **'शिवयोग'** अथवा **'लिङ्गाङ्गसामरस्य'** के उक्त रहस्य को उद्घाटित किया है।

परमशिव की हृदयगुफा में प्रतिष्ठा श्वेताश्वतर उपनिषद् में अनेक मन्त्रों में चित्रित है— **"एतज्ज्ञेयं नित्यमेवात्मसंस्थम्"** (१/१२), **"यथानिकायं सर्वभूतेषु गूढम्"** (३/७), **"अङ्गुष्ठमात्रः पुरुषोऽन्तरात्मा सदा जनानां हृदये सन्निविष्टः"** (३/१३), **"नवद्वारे पुरे देही हंसो लेलायते बहिः"** (३/१८), **"आत्मा गुहायां निहितोऽस्य जन्तोः"** (३/२०) इत्यादि मन्त्र एतदर्थ द्रष्टव्य हैं। **"तद्वोभयं वै प्रणवेन देहे"** (१/१३), **"स्वदेहमरणिं कृत्वा प्रणवं चोत्तरारणिम्"** (१/१४), **"ब्रह्मोडुपेन प्रतरेद् विद्वान्"** (२/८) इत्यादि मन्त्रों में प्रणवजप को ब्रह्मसाक्षात्कार का साधन कहा गया है। प्रणवमन्त्र सूक्ष्म पञ्चाक्षर मन्त्र है।

प्रस्तुत संस्करण

श्वेताश्वतरोपनिषद् का यह संस्करण लिङ्गैक्यस्वरूप पण्डितप्रवर टी.जी. सिद्धप्पाराध्य द्वारा विरचित वीरशैवभाष्य पर आधारित है। इस उपनिषद् पर पूज्यपाद आदिशङ्करभगवत्पाद, शङ्करानन्द, नारायण, विज्ञानभगवान्, उपनिषद्-ब्रह्मयोगी आदि विविध आचार्यों एवं विद्वद्वरेण्यों ने स्वस्वसम्प्रदायानुसार भाष्यों का प्रणयन किया है। इस भाष्य का उद्देश्य शक्तिविशिष्टाद्वैतदर्शन की दृष्टि से इस उपनिषद् का परिशीलन है। आपने अपने पितृचरण **पं. गुब्बय्या** के आदेशानुसार पाँच वर्षों तक ज्ञानयज्ञ का उपक्रम किया। जिसके अन्तर्गत अनेक लोककल्याणकारी ग्रन्थ प्रकाशित हुए। उनमें सर्वप्रथम **'शक्तिविशिष्टाद्वैत-**

CC0. In Public Domain. Jangamwadi Math Collection, Varanasi

Digitization by eGangotri and Sarayu Trust. Funding by MoE-IKS

दर्शन' नामक ग्रन्थ प्रकाशित हुआ, जो रम्भापुरीपीठाधीश्वर जगद्गुरु श्री वीरगंगाधर शिवाचार्य महास्वामी जी की छत्रच्छाया में लिखा गया और देश-विदेश में उपादेय रहा। अनन्तर श्रीशैलपीठाधीश्वर जगद्गुरु श्री वागीश पण्डिताराध्य महास्वामीजी के उदार प्रोत्साहन से श्रीकरभाष्य का कन्नड़ संस्करण प्रसिद्ध हुआ। श्रीकरभाष्य और क्रियासार के परिशीलन से भाष्यकार में ज्ञान और क्रिया की समन्वयात्मक दृष्टि विकसित हुई। पूज्य पितृचरणों की आज्ञा से ही भाष्यकार को श्रीमद्भगवद्गीता और श्वेताश्वतरोपनिषद् पर वीरशैवदर्शनसम्मत भाष्य-लेखन की प्रवृत्ति हुई।

आपने रेणुकाचार्य और महामुनि अगस्त्य के संवाद के रूप में प्रादुर्भूत 'सिद्धान्तशिखामणि' ग्रन्थ में प्रतिपादित गुरुसम्प्रदाय के साथ **शरणवाङ्मय** और **निरञ्जनसम्प्रदाय** का तुलनात्मक अनुशीलन किया है। **अल्लमप्रभु** इत्यादि शरणों द्वारा कन्नड़ भाषा में निरूपित वीरशैवदर्शन के सिद्धान्त **'सिद्धान्तशिखामणि'** प्रोक्त सिद्धान्त से अभिन्न हैं। प्रस्तुत उपनिषद्भाष्य में 'सिद्धान्तशिखामणि' के वचनों के साथ ही भाष्यकार द्वारा कन्नड़ शरणवाङ्मय के स्वविरचित संस्कृत पद्यानुवाद का यथोचित सन्निवेश किया गया है। भाष्यकार ने यह भाष्य श्री अल्लमप्रभु की परम्परा में चले आ रहे **श्रीमल्लिन्मूलाद्रि** (श्रीचित्रदुर्ग) स्थित बृहन्मठ में कैवल्यस्वरूप प्रकाशमान शून्यसिंहासनाधीश्वर श्री निरञ्जनश्री मुरुघराजेन्द्र महास्वामी जी की शिवसेवा में समर्पित किया है। भाष्यकार श्री वीरगोत्र में उत्पन्न हुए। आप मैसूरस्थित मानसगंगोत्री (मैसूर विश्वविद्यालय) में संस्कृताध्यापक पद पर संस्कृताध्यापन-कार्य सम्पन्न कर चुके थे।

इसका प्रथम संस्करण श्री जगद्गुरु मुरुघराजेन्द्र विद्यापीठ ग्रन्थमाला के प्रथम पुष्प के रूप में चित्रदुर्ग स्थित श्रीबृहन्मठ महासंस्थान के अध्यक्ष श्री **जगद्गुरु मल्लिकार्जुन मुरुघराजेन्द्र महास्वामी जी** ने १९६५ ई. में मैसूरस्थित ताण्डवमूर्ति मुद्रणालय से मुद्रित कराकर चित्रदुर्ग से स्वयं प्रकाशित किया था।

यह संस्करण इस भाष्य के साथ हिन्दी भावार्थदीपिका से भी संवलित है। इसमें कन्नड़ अनुवाद सम्मिलित नहीं है। प्रथम संस्करण में भाष्यकार विरचित कन्नड़ अनुवाद भी सम्मिलित था। प्रस्तुत 'भावार्थदीपिका' यद्यपि वीरशैवभाष्य' पर आधारित है, तथापि वह उसका अनुवाद मात्र नहीं है। उसे

CC0. In Public Domain. Jangamwadi Math Collection, Varanasi

Digitization by eGangotri and Sarayu Trust. Funding by MoE-IKS

विस्तार के साथ समझने का प्रयास है। इस उपनिषद् में कतिपय मन्त्र 'कठोपनिषद्', 'मुण्डकोपनिषद्', 'महानारायणोपनिषद्', 'भगवद्गीता' आदि ग्रन्थों में यथावत् उपलब्ध हैं। साथ ही समानार्थक मन्त्र भी हैं। उन ग्रन्थों पर वीरशैवदर्शनसम्मत भाष्य भी उपलब्ध हैं। विशेष रूप से ब्रह्मश्री उपमचिगिशङ्कर शास्त्रीजी की शांकरी व्याख्या अत्यन्त प्रामाणिक है। **'भावार्थदीपिका'** में इनका परिशीलन करते हुए विभिन्न संप्रदायानुसार टीकाकारों के दृष्टिकोण भी तुलनात्मक दृष्टि के लिये सम्मिलित हैं।

मैसूर संस्करण में प्रकाशित जगद्गुरु मल्लिकार्जुन मुरुघराजेन्द्र महास्वामी जी का संस्कृत शुभाशंसन, प्रथम संस्करण की संस्कृत भूमिका, आत्मनिवेदन और विविध अंग्रेजी-संस्कृत प्रशस्ति-पत्र इस संस्करण में यथावत् सम्मिलित हैं।

काशी ज्ञानसिंहासनाधीश्वर **अष्टोत्तरसहस्र (१००८) श्रीसम्पन्न जगद्गुरु चन्द्रशेखर शिवाचार्य महास्वामी जी** के परम अनुग्रह से इस अकिञ्चित्कर जीव को वाङ्मयी शिवसमर्पया का सौभाग्य प्राप्त होता आ रहा है, जिसका प्रतिफल है यह 'भावार्थदीपिका'। एतदर्थ महास्वामी जी के चरणों में वारंवार वन्दन।

कृतज्ञताज्ञापन

इस पुस्तक के मुद्रण, संशोधन में सहायक ददन उपाध्याय, अक्षरसंयोजन चिदानन्द ओ. हिरेमठ (कसगी) तथा परस्पर संवाद स्थापित करने के लिए श्री गोपालजी इन सबका मैं आभारी हूँ।

श्रावण कृ.३,२०५९ वै.
शनिवार,
२७ जुलाई २००२

विनयावत
जगन्नाथशास्त्री तैलङ्ग
के.३०/४० गंगाधरशास्त्री भवन
घासीटोला, वाराणसी, (उ.प्र.)

CC0. In Public Domain. Jangamwadi Math Collection, Varanasi

Digitization by eGangotri and Sarayu Trust. Funding by MoE-IKS

॥ श्रीः ॥

विषयानुक्रमः

क्रमः	विषयः	पृष्ठम्
	श्री १००८ जगद्गुरु डॉ. चन्द्रशेखरशिवाचार्यमहास्वामिनां शुभाशीर्वचनम्	i-ii
	श्रीमच्चिन्मूलादिबृहन्महापीठाध्यक्षाणां श्रीमन्निरञ्जनजगद्गुरु-मल्लिकार्जुनमुरुघराजेन्द्रमहास्वामिनां शुभाशंसनम्	iii
	Foreword	iv
	वीरशैवभाष्यकर्तृः भूमिका	v-xvi
	आत्मनिवेदनम्	xvii-xxi
	विभिन्नसम्मतयः	xxii-xxiii
	प्रस्तावना	xxiv-lix
	विषयानुक्रमः	lx-lxv
१.	शान्तिपाठः— हिन्दी व्याख्या, मन्त्रार्थ	१
प्रथम अध्याय		
२.	"हरः ॐ" — विशिष्ट विवेचन भावार्थदीपिका में	२
३.	वीरशैवभाष्यकर्तुः प्रारम्भिकपद्यानि (१-१२) श्री रेणुकाचार्य-निरञ्जनमुरुघेशयोगि-श्रीतोण्टदार्येभ्यः निवेदनम्, भाष्यकर्तुः ग्रन्थप्रतिज्ञा इत्यादि।	२-५
	टिप्पणी में— पंचाचार्य परिचय, भाष्यप्रेरणास्थल	२-३
४.	**"ब्रह्मवादिनः वदन्ति"** (१.१) विशिष्ट विवेचन— भावार्थदीपिका	६
५.	पञ्चविध ब्रह्मजिज्ञासा (१.१)	६-७
६.	जगत्कारण क्या है? आठ विकल्प और निराकरण (१.२)	८-१०
७.	देवात्मशक्ति का साक्षात्कार, शक्तिविशिष्ट शिव **भावार्थदीपिका**— ध्यानयोग, 'देवात्मशक्ति'-विविधमत, सत्कार्यवाद (१.३)	११-१५

CC0. In Public Domain. Jangamwadi Math Collection, Varanasi

Digitization by eGangotri and Sarayu Trust. Funding by MoE-IKS

८. संसारचक्र-परशिवब्रह्म का मायाविलासचक्र (१.४) १५-१९

९. संसार-सरिता-परशिवब्रह्म का लीलाविग्रह (१.५) १९-२१

१०. संसाररूपी ब्रह्मचक्र में 'हंस' (जीव) का भ्रमण; भेदज्ञान बन्ध का कारण, उपास्य-उपासकभाव से शिवोपासना मुक्ति का हेतु (१.६) २२-२४

११. भोक्ता, भोग्य और प्रेरिता - परशिवब्रह्म में तीनों की सत्ता (१.७) २५

१२. क्षर (व्यक्त), अक्षर (अव्यक्त), दोनों का स्वामी परमशिव, जीव परतन्त्र, मलपाश पारतन्त्र्यहेतु, जीव के विभिन्न शरीर अंग (जीव) और लिंग (शिव) के परस्पर सामरस्य से मलपाशनिवृत्ति (१.८) २६-३२

१३. जीव और शिव की विलक्षणता, प्रकृति, पुरुष और जीव के परस्पर विवेक से मुक्ति (१.९) ३२-३४

१४. प्रकृति, पुरुष (जीव) और शिव; परमशिव की त्रिविध अर्चना से विश्वमाया निवृत्ति (१.१०) ३४-३८

१५. त्रिविध शिवोपासना के त्रिविध फल (१.११) ३८-४३

१६. एकमात्र परशिव ज्ञेय, भोक्ता-भोग्य और प्रेरिता परशिवब्रह्मस्वरूप (१.१२) ४३-४५

१७. प्रणव-जप से परमात्मा का साक्षात्कार (१.१३) ४६-४७

१८. निरन्तर ध्यान से ब्रह्मसाक्षात्कार, "कैवल्योपनिषद्" (१.११) से तुलना-**भावार्थदीपिका** (१.१४) ४७-४८

१९. विभिन्न दृष्टान्त (१.१५) ४८-४९

२०. परब्रह्म—आत्मविद्या और तप का मूल (१.१६) ५०-५१

द्वितीय अध्याय

१. सविता (प्रेरक परमशिव) की स्तुति (२.१-४) ५२-५६

२. शक्ति और शक्तिमान् को नमन (२.५) ५६-५८

३. स्वर्ग की कामना करने वाले मोक्ष के अधिकारी नहीं (२.६) ५८-५९

४. मुमुक्षु के कर्म बन्धनकारक नहीं (२.७) ५९-६२

५. आसनसिद्धि (२.८) ६२-६३

६. प्राणायाम (२.९) ६३-६५

७. साधनास्थली (२.१०) ६६-६७

८. योगाभ्यासी साधक पुरुष के अभिव्यक्तिचिह्न (२.११) ६७-६८

९. साधक की व्युत्थित और अव्युत्थित दशा (२.१२) ६८-७१

१०. योगाभ्यास से शारीरिक क्रान्ति (२.१३) ७१-७३

CC0. In Public Domain. Jangamwadi Math Collection, Varanasi

Digitization by eGangotri and Sarayu Trust. Funding by MoE-IKS

११. योगाभ्यास से चरम लक्ष्य प्राप्ति (२.१४) ७३-७४
१२. दीपप्रकाश का महाप्रकाश से मिलन (२.१५) ७४-७७
१३. कण कण में परमशिव (२.१६) ७८-७९
१४. 'तस्मै देवा नमो नमः'८ (२.१७) ७९-८०

तृतीय अध्याय

१. असाधारण शक्ति से परमशिव द्वारा विश्व की सृष्टि और संहार (३.१) ८१-८३
२. एकमात्र परमशिव सृष्टि, स्थिति और संहार में समर्थ (३.२) ८३-८७
३. परमशिव की सर्वान्तर्यामिता और सर्वतोमुखता (३.३) ८७-८९
४. सर्वस्रष्टा रुद्र से सद्बुद्धि की प्रार्थना (३.४) ८९-९१
५. परमशिव से रौद्र रूप का संवरण और शान्ति की प्रार्थना (३.५,६) ९१-९४
६. ब्रह्मसाक्षात्कार से मुक्ति (३.७) ९४-९५
७. परमशिव का साक्षात्कार ही एकमात्र मुक्ति मार्ग (३.८,९) ९५-९९
८. स्वस्वरूप का विस्मरण करने वाले दुःखग्रस्त (३.१०) ९९-१००
९. शिव की अन्तर्बाह्य सत्ता (३.११) १००-१०२
१०. परमशिव के सत्त्वप्रवर्तन से शाश्वत शान्ति (३.१२) १०२-१०५
११. अंगुष्ठमात्र पुरुष (शिव) की हृदयकमल में प्रतिष्ठा (३.१३) १०५-१०६
१२. परमपुरुष परमशिव का विराट्स्वरूप (३.१४) १०६-१०८
१३. समस्त जगत् शिवमय और शिवमें प्रतिष्ठित "**यदन्नेनाऽतिरोहति**" -विविधमत (भावार्थदीपिका) (३.१५) १०९-११३
१४. अमूर्त परमशिव की सर्वात्मकता (३.१६,१७) ११४-११६
१५. नवद्वार पुर (शरीर) में जीव की सत्ता (३.१८) ११७-११८
१६. शिव का जीव से वैलक्षण्य (३.१९) ११८-१२०
१७. हृदयगुफा में परमशिव का साक्षात्कार करने से मुक्ति (३.२०) १२०-१२१
१८. महर्षि द्वारा स्वानुभव निवेदन (३.२१) १२१-१२२

चतुर्थ अध्याय

१. निराकार परमशिव का शक्ति के सम्बन्ध से नानावर्ण की सृष्टि करना। **भावार्थदीपिका** में 'देव' शब्द निर्वचन (४.१) १२३-१२५
२. परमशिव सब का उपादान और सर्वस्वरूप (४.२) १२५-१२८
३. निराकार परमेश्वर का स्त्री-पुरुष इत्यादि स्वरूप (४.३) १२८-१२९
४. समस्त स्थावर-जंगम जगत् परमशिव का रूप (४.४) १२९-१३०

CC0. In Public Domain. Jangamwadi Math Collection, Varanasi

Digitization by eGangotri and Sarayu Trust. Funding by MoE-IKS

५. अजा प्रकृति जीव के बन्ध और मोक्ष का कारण (४.५) १३०-१३४
६. जीव और शिव दो पक्षी, **भावार्थदीपिका में** उमचिगि शंकरशास्त्रीजी की दृष्टि, 'सूतसंहिता' में मंत्र का उपबृंहण (४.६) १३४-१३६
७. जीव और शिव एक साथ रहने पर भी कर्म के अधीन रहना जीव के बन्धन का कारण, केवल परमेश्वर ही उसका मुक्तिहेतु (४.७) १३६-१४२
८. मुक्ति के लिये ब्रह्मज्ञान महत्वपूर्ण, केवल वेदपारायण नहीं (४.८) १४२-१४५
९. मायासम्पन्न परमेश्वर द्वारा माया से जगत् की सृष्टि, जीव मायापाश से आबद्ध (४.९) १४५-१४६
१०. माया और मायी; ब्रह्मा, विष्णु और महेश्वर परमशिव के अवयव, उनसे समस्त जगत् व्याप्त (४.१०) १४७-१५०
११. परमेश्वर की संसारलीला, वास्तविक ज्ञान से जीव को शान्ति (४.११) १५०-१५१
१२. महर्षि रुद्र से सद्बुद्धि की प्रार्थना (४.१२) १५१-१५२
१३. परमशिव पशुपति, उसके द्वारा द्विपाद (मनुष्य) और चतुष्पाद पशु की सृष्टि (४.१३) १५२-१५४
१४. आत्मज्ञान मुक्तिहेतु (४.१४) १५४-१५५
१५. परमशिव सबका रक्षक, **'मृत्युपाशाँश्छिनत्ति'** शांकरभाष्य, मतान्तर (**भावार्थ दीपिका** में) (४.१५) १५६-१५८
१६. परमात्म-साक्षात्कार के लिये जीव का आवाहन **'घृतात् परं मण्डमिवातिसूक्ष्मम्'**, शांकरभाष्य की दृष्टि (**भावार्थदीपिका** में) (४.१६) १५८-१५९
१७. हृदयस्थित परमशिव का मन से साक्षात्कार, मत-मतान्तर (४.१७) १५९-१६२
१८. महाप्रकाशमय परमशिव से पुराणी प्रज्ञा का प्रादुर्भाव, 'शांकरभाष्य'— सम्मत व्याख्या, 'सिद्धान्तशिखामणि' में परमशिव का निर्देश (**'भावार्थदीपिका'** में) (४.१८) १६२-१६५
१९. परमशिव अप्रतिम (४.१९) १६६-१६७
२०. मनोमय दृष्टि से परमशिव का साक्षात्कार (४.२०) १६७-१६८
२१. परमशिव से रौद्रदृष्टिसंवरण की प्रार्थना (४.२१) १६८-१६९
२२. परमशिव से संहारलीला-संवरण की प्रार्थना (४.२२) १६९-१७०

पञ्चम अध्याय

१. विद्या और अविद्या, दोनों का नियामक परमशिव, शरणवाङ्मय का प्रामाण्य (५.१) १७१-१७३

CC0. In Public Domain. Jangamwadi Math Collection, Varanasi

Digitization by eGangotri and Sarayu Trust. Funding by MoE-IKS

२. कपिल मुनि के जन्मदाता परमशिव, विभिन्न मत-**भावार्थदीपिका** में (५.२) १७३-१७६
३. परमशिव द्वारा मायाजाल का प्रयोग (५.३) १७७-१७९
४. सर्वव्यापक परमशिव की भगवत्ता (**भावार्थदीपिका** में) (५.४) १७९-१८२
५. परमशिव की उपादानकारणता और गुणों का विनियोग (५.५) १८२-१८६
६. परम शिवतत्त्व उपनिषदों में निगूढ (५.६) १८६-१८८
७. जीवात्मा का प्राणाधिपतित्व (५.७) १८८-१९१
८. जीवात्मा परमात्मा का अंश, वह अंगुष्ठमात्र भी और आराग्र (सुई के नोक के) बराबर भी (५.८) १९१-१९२
९. जीव की अत्यन्त सूक्ष्मता दृष्टान्त द्वारा (५.९) १९३-१९५
१०. शरीरानुरूप जीव का आकार (५.१०) १९५-१९७
११. जीव द्वारा विविध शरीरधारण में कर्मफल कारण अत: निष्काम समर्पणबुद्धि से कर्म कर्तव्य (५.११) १९७-२००
१२. जीव द्वारा शरीर धारण के अन्य विविध हेतु (५.१२) २००-२०२
१३. जीव के बन्ध और मोक्ष का कारण (५.१३) २०३-२०५
१४. जीव की भावलिंगोपासना मुक्ति का हेतु (५.१४) २०५-२०८

षष्ठ अध्याय

१. संसारचक्र (ब्रह्मचक्र) की संसरणशीलता में चित्प्रकाशस्वरूप परमशिव कारण, 'ब्रह्मचक्र' के विविध अर्थ '**भावप्रदीपिका**'में (६.१) २०९-२११
२. परमशिव द्वारा जगत् की व्याप्ति। उसके द्वारा पञ्च भूतों की जगत्सर्जकता (६.२) २१२-२१५
३. त्रिवृत्प्रक्रिया और आत्मगुणसंयोजन द्वारा जगत् का व्यापार (६.३) २१५-२१७
४. सृष्टिरचना में कर्म कारण (६.४) २१८-२२१
५. परमशिव ही शरीरसंयोग आदि का हेतु। उसकी उपासना से मुक्ति (६.५) २२१-२२४
६. परमशिव संसारवृक्ष, काल और आकृति आदि से विलक्षण (६.६) २२४-२२८
७. महर्षि द्वारा स्वानुभवाव्याप्ति (६.७) २२८-२२९
८. परमशिव अशरीरी, सबसे विलक्षण, उसकी पराशक्ति, विभिन्न मत-**भावार्थदीपिका** में (६.८) २३०-२३४

CC0. In Public Domain. Jangamwadi Math Collection, Varanasi

Digitization by eGangotri and Sarayu Trust. Funding by MoE-IKS

९.	परमशिव सबका अधिपति, उसका अनुमापक चिह्न नहीं (६.९)	२३५-२३६
१०.	ऊर्णनाभि के समान परशिव द्वारा आत्मसंवरण (६.१०)	२३६-२३९
११.	परमशिव का सर्वसाक्षित्व और निर्गुण स्वरूप (६.११)	२३९-२४१
१२.	जीवस्थानीय सूक्ष्म भूत का परमशिव द्वारा अनेकविध विभाग (६.१२)	२४१-२४४
१३.	परशिव सांख्ययोग द्वारा गम्य (६.१३)	२४४-२४६
१४.	परशिव के सामने सूर्यचन्द्रादि निस्तेज, उसके महाप्रकाश से उनकी प्रकाशकता और जगत्प्रकाशिता (६.१४)	२४६-२४८
१५.	परशिव (हंस) की शरीर (सलिल) में स्थिति (६.१५)	२४९-२५१
१६.	परशिव प्रकृति-पुरुष का नियामक और संसार के मोक्ष, स्थिति और बन्ध का हेतु (६.१६)	२५१-२५३
१७.	परशिव का ज्योतिर्मयत्व और अमृतत्व (६.१७)	२५३-२५४
१८.	मुमुक्षु जीव की शरणागति (६.१८)	२५५-२५६
१९.	तुरीय परमशिव शरणस्थल (६.१९)	२५६-२५८
२०.	परमशिव को नापना असंभव (६.२०)	२५८-२५९
२१.	महर्षि श्वेताश्वतर द्वारा अत्याश्रमी वीरशैवों को उपदेश (६.२१)	२५९-२६०
२२.	शिवतत्वरहस्य वेदान्त में निहित, उसके अनधिकारी (६.२२)	२६०-२६१
२३.	गुरुभक्त और देवभक्त महात्मा परम शिवतत्त्व के अधिकारी (६.२३)	२६१-२६२
	मन्त्रानुक्रमणिका	२६३-२६७
	उद्धृतवचन-तालिका	२६८-२८३

❋❋❋

CC0. In Public Domain. Jangamwadi Math Collection, Varanasi

Digitization by eGangotri and Sarayu Trust. Funding by MoE-IKS

CC0. In Public Domain. Jangamwadi Math Collection, Varanasi

Digitization by eGangotri and Sarayu Trust. Funding by MoE-IKS

॥ ॐ नमः शिवाय ॥

कृष्णयजुर्वेदीया-

श्वेताश्वतरोपनिषद्

शान्तिपाठः

ॐ सहनाववतु,
सह नौ भुनक्तु,
सह वीर्यं करवावहै,
तेजस्वि नावधीतमस्तु,
मा विद्विषावहै।
ॐ शान्तिः! शान्तिः!! शान्तिः!!! —तैत्तिरीय आरण्यक ८/१

।। अथ प्रथमोऽध्यायः ।।

।। हरः ॐ ।।

वीरशैवभाष्यं भावार्थदीपिकासहितम्

व्याख्या— ॐ = परशिवस्वरूप परब्रह्म परमात्मा; गीता कहती है— ॐ, तत् और सत् तीन शब्दों से परब्रह्म परमात्मा का निर्देश किया जाता है—

"ॐ तत् सदिति निर्देशो ब्रह्मणस्त्रिविधः स्मृतः।।" (१७/२३)

तौ = हम दोनों – आचार्य और शिष्य की, **सह** = एक साथ, **अवतु** = रक्षा करें, **नौ** = हम दोनों का, **सह** = साथ-साथ, **भुनक्तु** = पालन पोषण करें, (हम दोनों) **सह** = समवेत रूप से, **वीर्यम्** = पराक्रम, **करवावहै** = करें। **नौ** = हम दोनों गुरु-शिष्य की, **अधीतम्** = अध्ययन द्वारा प्राप्त सभी विद्याएँ अथवा शास्त्र, **तेजस्वि** = ऊर्जासम्पन्न, **अस्तु** = हों। **मा विद्विषावहै** = हम दोनों परस्पर शत्रुतापूर्ण आचरण न करें।

ॐ शान्तिः शान्तिः शान्तिः = परब्रह्म परमात्मा हम दोनों गुरु और शिष्य के आध्यात्मिक, आधिदैविक और आधिभौतिक— त्रिविध दुःखों अथवा त्रिविध अज्ञान मलों का शमन करें, उन्हें दूर करें।

मन्त्रार्थ— परशिव परब्रह्मस्वरूप परमात्मा हम दोनों गुरु-शिष्य की साथ-साथ रक्षा करें, साथ-साथ पालन करें, साथ-साथ हमें शक्ति प्राप्त हो और हम पराक्रम करें। हमारा समस्त अध्ययन ऊर्जासम्पन्न हो। हम परस्पर द्वेष न करें। हमारे त्रिविध दुःख, तीनों प्रकार का अज्ञानमल शान्त हो, वे दुःख, मल हम से दूर हों।

CC0. In Public Domain. Jangamwadi Math Collection, Varanasi

Digitization by eGangotri and Sarayu Trust. Funding by MoE-IKS

श्रीरेणुकार्यं गुरुवर्यमीडे भक्तौघसंरक्षणबद्धकक्ष्यम्।
मदीयहृत्पद्मविराजमानः सोऽयं गुरुर्भाष्यमिदं तनोति॥१॥

[यह कृष्णयजुर्वेदीय तैत्तिरीय शाखा की उपनिषद् है। वैदिक लोग **"हरिः ॐ"** इस प्रकार परब्रह्म परमात्मा का नामोच्चारण कर मन्त्रजप करते हैं। यहाँ **'हरः ॐ'** इस प्रकार परमेश्वर का नामोच्चारण किया गया है। वस्तुतः हरि (विष्णु) और हर (शिव) दोनों में कोई भेद नहीं है—

"शिवस्य हृदयं विष्णुर्विष्णोश्च हृदयं शिवः।
यथा शिवमयो विष्णुरेवं विष्णुमयः शिवः।
तथाऽन्तरं न पश्यामि यथा मे स्वस्तिरायुषि।।"

यह स्मृतिवचन इसमें प्रमाण है। अस्तु।

योगसूत्र के अनुसार ईश्वर का ध्यान करने से समाधि लगती है— **'ईश्वरप्रणिध्यानाद् वा'** (यो.सू. १.२३)। वह ईश्वर हमारी हृदयगुफा में रहता है, अविद्या आदि क्लेश, सुकृत-दुष्कृत आदि कर्म, तदनुकूल वासनाएँ आदि सांसारिक पुरुष में आरोपित होती हैं। जो इनसे अस्पृष्ट होता है, उसे ईश्वर कहते हैं। जैसा कि योगसूत्र है— **'क्लेशकर्मविपाकाशयैरपरामृष्टः पुरुषविशेष ईश्वरः'** (यो.सू. १.२४)। ईश्वर सभी पूर्वाचार्यों का भी गुरु है, क्योंकि वह सभी आचार्यों को काल-कवलित करता है, ईश्वर कालमर्यादा से परे हैं— **'पूर्वेषामपि गुरुः, कालेनाऽनवच्छेदात्।'** (यो.सू. १.२६)।

वह ईश्वर 'हर' भी हो सकता है और 'हरि' भी। दोनों में कोई अन्तर नहीं है। उस ईश्वर का वाचक प्रणव (ओङ्कार) है— **'तस्य वाचकः प्रणवः'** (यो.सू.१.२७)। वाचक शब्द 'प्रणव' का ईश्वर वाच्य अर्थ है। इस प्रकार ईश्वर और प्रणव में वाच्य-वाचकभाव सम्बन्ध है। वीरशैव **'हरः ॐ'** इस प्रकार स्मरण करते हैं। सभी वैदिक **'हरिः ॐ'** इस प्रकार वेदारम्भ करते हैं।

मैं (सिद्धप्पाराध्य) भक्त समुदाय की रक्षा के लिए बद्धपरिकर गुरुवर्य श्रीरेणुक शिवाचार्य[1] का स्तवन करता हूँ। मेरे हृदयकमल में विराजमान श्रीगुरुचरण ही इस भाष्य की रचना कर रहे हैं॥१॥

---

१. **वीरशैवसदाचारसंग्रह** (१.३०-३४) के अनुसार भगवान् शिव की आज्ञा से धर्म-प्रसार के लिये अवतीर्ण पञ्चाचार्यों में अन्यतम श्रीरेणुकशिवाचार्य का विवरण इस प्रकार है— सत्ययुग में एकाक्षर शिवाचार्य नाम से और त्रेतायुग में एकवक्त्र शिवाचार्य नाम से प्रसिद्ध प्रथमपीठाचार्य ही श्रीरेणुक शिवाचार्य हैं। आप द्वापर युग में इस नाम से प्रसिद्ध हुए। आप आन्ध्रप्रदेश के कोलानुपाक क्षेत्र के श्रीसोमेश्वर लिङ्ग से कलियुग में रेवणाराध्य नाम से

CC0. In Public Domain. Jangamwadi Math Collection, Varanasi

Digitization by eGangotri and Sarayu Trust. Funding by MoE-IKS

आचार्यवर्यो हि महाकृपालुस्तदीयभृत्ये विहितानुकम्पः।
गुर्वर्थमेतत्पुरुषार्थमूलं प्रकाशयत्येव सतां हिताय॥२॥

गुर्वाज्ञया केवलमात्मश्रेयःसम्प्राप्तयेऽर्थं विवृणोति कामम्।
स्वचित्तदोषप्रशमाय भृत्यो ह्यात्मार्पणेनैव तदङ्घ्रिपद्मे॥३॥

निरञ्जनार्यो मुरुघेशयोगी जगद्गुरुर्मे कुरुतां प्रसादम्।
विना प्रसादं कथमेष भृत्यः प्रवर्तते भाष्यविलेखनाय॥४॥

ये आचार्यवर्य अत्यन्त दयालु हैं। वे अपने सेवक पर अनुकम्पा करते हैं। वे धर्म-अर्थ-काम-मोक्षस्वरूप चतुर्विध पुरुषार्थों के बीजस्वरूप गौरवपूर्ण इस भाष्य को सज्जनों के हित के लिये निकट भविष्य में अवश्य प्रकाशित करेंगे॥२॥

यह सेवक गुरुजी की आज्ञा से उनके चरण-कमलों पर स्वयं को समर्पित करते हुए अपने मनोविकारों को दूर करने के लिये और केवल अपने श्रेयस् (कल्याण) की प्राप्ति के लिये स्वेच्छया इस उपनिषद् का स्वसम्प्रदायसम्मत अर्थप्रकाशन (भाष्य) कर रहा है॥३॥

श्रीमान् जगद्गुरु आर्य निरञ्जन [1]**मुरुघेश योगी** मेरे ऊपर कृपा करें। बिना गुरुचरणों के कृपाप्रसाद के यह सेवक भाष्यप्रणयन में किस प्रकार प्रवृत्त हो सकता है?॥४॥

प्रकट हुए। आपने कर्नाटक राज्य के चिक्कमंगलूर जिले के बालेहोन्नूर क्षेत्र में वीरपीठ अथवा वीरसिंहासन नाम से अपने धर्मपीठ की प्रतिष्ठा की।
कलियुग में अन्य चार शिवाचार्यों का विवरण इस प्रकार है—

नाम	अवतार क्षेत्र	धर्मपीठ
(क) मरुळाराध्य	अवंतिका का वटक्षेत्र श्रीसिद्धेश्वरलिंग	सद्धर्मपीठ या सद्धर्म सिंहासन, उज्जयिनी ग्राम, जि.बल्लारी (कर्णा.)
(ख) एकोरामाराध्य	रामनाथलिंग (द्राक्षाराम क्षेत्र)	ऊखीमठ (वैराग्यपीठ) केदारक्षेत्र वैराग्यसिंहासन
(ग) पण्डिताराध्य	श्री मल्लिकार्जुन लिंग श्रीशैलक्षेत्र (आन्ध्र)	सूर्यपीठ, सूर्यसिंहासन श्रीशैल (आन्ध्र)
(घ) विश्वाराध्य	श्री विश्वेश्वर ज्योतिर्लिङ्ग काशीक्षेत्र (उत्तरप्रदेश)	ज्ञानपीठ, ज्ञानसिंहासन जंगमवाड़ी मठ, वाराणसी

१. यह प्रार्थना उस जगद्गुरु से की गई है, जिनकी शिवयोगसमाधि चित्रदुर्गस्थित बृहन्मठ में है। श्रीमान् अल्लमप्रभु के परंपरागत श्रीचिन्मूलाद्रि के बृहन्मठ के अन्तराल में विराजमान जगद्गुरु शून्यसिंहासनाधीश्वर श्रीनिरंजन मुरुघराजेन्द्र महास्वामीजी के समाधिस्थल में आसन लगाकर ही भाष्यकार ने इस भाष्य का प्रणयन किया था। जैसा कि इन दो समर्पण पद्यों से ज्ञात होता है—

जगद्गुरुः श्रीमुरुघेशवर्यः कैवल्यरूपः शिवयोगनिष्ठः।
श्रीचित्रदुर्गस्थबृहन्मठेऽस्मिन् विराजते लोकहितैषणाय॥१॥
इदं हि श्वेताश्वतरश्रुतेस्तु व्याख्यानरूपेण मया निबद्धम्।
भाष्यं पवित्रं मुरुघेशपादपद्मेऽर्प्यते मज्जनकस्य तुष्ट्यै॥२॥

CC0. In Public Domain. Jangamwadi Math Collection, Varanasi

Digitization by eGangotri and Sarayu Trust. Funding by MoE-IKS

श्रीतोण्टदार्यो भवरोगवैद्यः समाधिमग्नश्चरजङ्गमाख्यः।
चिदात्मभावे विलसन्मुदैव सम्प्रेरयत्यद्य तदीयभृत्यम्॥५॥

सदानुरक्तो गुरुपादयुग्मे संन्यस्तचित्तः परया हि भक्त्या।
गुरुप्रसादात् कुरुतेऽद्य भाष्यं वेदार्थसारं गुरुतुष्टयेऽस्तु॥६॥

गुब्बय्यपुत्रः सुगृहीतनामा सिद्धार्य एष शिवपादमग्नः।
पितुर्नियोगात् कुरुतेऽद्य भाष्यं सुनिश्चितार्थं खलु चन्द्रिकाख्यम्॥७॥

श्रीवीरगोत्रोत्थित एष भृत्यः श्रीरेणुकाचार्यवरप्रसादात्।
वीरेशयोगान्न च बुद्धिलोभाल्लब्धाधिकारोऽत्र हि सम्प्रयुक्तो॥८॥

श्वेताश्वनामा मुनिसार्वभौमः शिवस्य तत्त्वं विवृणीतुकामः।
स्वेनानुभूतां शिवशक्तिलीलां प्रशंसयत्यत्र तपःप्रभावात्॥९॥

शिवयोगसमाधि में विलीन चरजङ्गमयोगी भवरोगों (सांसारिक रोगों) के वैद्य **'श्रीतोण्टदार्य'** चैतन्यमय आत्मस्वरूप में विलास करते हुए आज प्रसन्नतापूर्वक अपने सेवक को प्रेरित कर रहे हैं॥५॥

यह सेवक सदासर्वदा गुरुवर्य के चरणकमलों पर अनुरक्त रहकर अपना चित्त उन्हें परमभक्तिपूर्वक समर्पित करते हुए गुरुजी के ही कृपाप्रसाद में आज इस भाष्य का प्रणयन कर रहा है। वैदिक अर्थों का सारस्वरूप यह भाष्य मेरे गुरुजी को सन्तुष्टि प्रदान करे॥६॥

श्री शिवचरणों में मग्न **गुब्बय्या** का पुत्र ख्यातिप्राप्त यह **सिद्धप्पाराध्य** अपने पिता की आज्ञा से निर्धारित अर्थप्रकाशक इस **'चन्द्रिका'** भाष्य की रचना कर रहा है॥७॥

श्रीवीरगोत्र से उत्पन्न इस सेवक को **श्रीरेणुकशिवाचार्य** के कृपाप्रसाद से वीरशैव- सम्प्रदाय से सम्बद्ध होने के कारण इस उपनिषद् के भाष्य-लेखन का अधिकार प्राप्त हुआ है। केवल बुद्धिवैभव को प्रदर्शित करने के लिये यह सेवक भाष्यलेखन में प्रवृत्त नहीं हुआ है॥८॥

श्वेताश्वतर नामक सार्वभौम महर्षि शिवतत्त्व को प्रकाशित करने की कामना से अपनी तपस्या के प्रभाव से स्वयं द्वारा अनुभूत शिवशक्ति की लीला की यहाँ प्रशस्ति कर रहे हैं॥९॥

CC0. In Public Domain. Jangamwadi Math Collection, Varanasi

Digitization by eGangotri and Sarayu Trust. Funding by MoE-IKS

तदीयश्रुत्यर्थविवेचनाय भाष्यं प्रवृत्तं शिवसम्प्रदायात्।
सर्वैः परिग्राह्यमिदं यथा स्यात् तथैव यत्नः क्रियतेऽनुरागात्॥१०॥

कर्णाटवाण्या समलङ्कृतं चेद् भाष्यं समूलं लभते प्रसारम्।
एवं विचिन्त्यैव तथा प्रवृत्तं तदीयलाभोऽस्तु जगत्यजस्रम्॥११॥

यद्यत्र दोषो विशदार्थबोधे मदीयबुद्धेर्हि विकासनार्थम्।
निवेद्य निष्णातसुहृद्वरेण्यः गुरुप्रसादं लभतां प्रकामम्॥१२॥

शक्तिविशिष्टं परशिवब्रह्मैव चिदचिन्मिश्रविचित्रजगदाकारेण परिरमते। अतश्च कारणावस्थायां तस्य जगतोऽभेदः, कार्यावस्थायां भेदः। अत एव भेदाभेदयोर्न विरोध इत्यादिकं सविशदं निरूपितं मदीये **'शक्तिविशिष्टाद्वैतदर्शन'**नाम्नि ग्रन्थे। इदं च दर्शनं वीरशैवसम्मतमिति विश्रुतम्। एतद्दर्शनरीत्या श्वेताश्वतरोपनिषदद्य व्याख्यायते।

अद्य उत्तरत्र निरूपयिष्यमाणविषयोपयोगितया पीठिकामारचयति श्वेताश्वतरो महर्षिः प्रथममन्त्रे—

उसके औपनिषद अर्थ का विवेचन करने के लिये वीरशैवसम्प्रदायानुसारी इस भाष्य का प्रवर्तन हुआ है। जिस प्रकार सभी लोग इसे स्वीकार करें, उस प्रकार प्रेमपूर्वक प्रयास किया जा रहा है॥१०॥

यदि इस भाष्य को मूल उपनिषद् ग्रन्थ के साथ कन्नड़ भाषा से सुशोभित किया जाय, तो इसका समुचित प्रचार-प्रसार होना यह विचार कर यह सेवक उस ओर प्रवृत्त हुआ। उसका संसार में निरन्तर लाभ हो॥११॥

यदि इसके निर्मल अर्थप्रकाशन में कोई दोष हो, तो वह मेरी बुद्धि का दोष है। उस बुद्धि को विकसित करने के लिये निवेदन करते हुए यह दक्ष मित्रवर्य कामना करता है कि उसे गुरु का प्रचुर कृपाप्रसाद प्राप्त हो॥१२॥

उपक्रम— शक्तिविशिष्ट परशिवब्रह्म ही उस जगत् का आकार लेकर रमण करता है, जो जगत् चैतन्यस्वरूप (जङ्गम) भी है और उससे शून्य (जड़) भी। वह जगत् विविध विचित्रताओं से परिपूर्ण है। इसलिये कारणावस्था में उस शिव का जगत् से अभेद रहता है और कार्यावस्था में भेद रहता है। अत एव भेद और अभेद में परस्पर विरोध नहीं है इसका विशद वर्णन मेरे (भाष्यकार के) **'शक्तिविशिष्टाद्वैतदर्शन'** नामक ग्रन्थ में किया गया है। यह दर्शन वीरशैवसम्मत दर्शन है ऐसी ख्याति है। इसी दर्शन की पद्धति से अब श्वेताश्वतर उपनिषद् की व्याख्या की जा रही है।

अवतरण— प्रथम मन्त्र में महर्षि श्वेताश्वतर उस भूमिका का उपक्रम कर रहे हैं, जो आगे चलकर निरूपित किये जाने वाले विषयों के लिये उपयोगिनी हो।

CC0. In Public Domain. Jangamwadi Math Collection, Varanasi

Digitization by eGangotri and Sarayu Trust. Funding by MoE-IKS

ॐ ब्रह्मवादिनो वदन्ति—

किं कारणं ब्रह्म, कुतः स्म जाताः,
जीवाम केन क्व च सम्प्रतिष्ठाः।
अधिष्ठिताः केन सुखेतरेषु
वर्तामहे ब्रह्मविदो व्यवस्थाम्॥१॥

ब्रह्म वदन्तीति ब्रह्मवादिनः— ब्रह्मवदनशीला: परशिवब्रह्मस्वरूपविवेचनपरा: शिवयोगमग्ना महर्षय इत्यर्थ:। ते वदन्ति वक्ष्यमाणरीत्या ब्रुवन्ति अथवा विचारयन्तीत्यर्थ:।

किं ते वदन्तीत्याह— **किं कारणमित्यादि**। कारणं दृश्यमान-जगत: कारणत्वेन तत्र तत्र प्रतिपाद्यमानं परशिवाख्यं ब्रह्म किं किंस्वरूपम् इति

ब्रह्मवादिनो वदन्ति— [**'ब्रह्म वदन्ति इति ब्रह्मवादिनः'** – जो 'ब्रह्म' का पाठ अथवा ब्रह्म का प्रवचन करते हैं, वे ब्रह्मवादी होते हैं। 'ब्रह्म' का अर्थ वेद भी होता है। इस अर्थ में ब्रह्मवादी का अर्थ होगा वेदपाठी ब्राह्मण। 'सिद्धान्तशिखामणि'कार 'ब्रह्म'निर्वचन इस प्रकार करते हैं—

तस्माल्लिङ्गमिति ख्यातं सत्तानन्दचिदात्मकम्।
बृहत्वाद् बृंहणत्वाच्च ब्रह्मशब्दाभिधेयकम्॥ (६.३८)

आदि शङ्कराचार्य 'विष्णुसहस्रनामस्तोत्र' में ब्रह्मनिरूपण इस प्रकार करते हैं— **''बृहत्त्वात् बृंहणत्वाच्च सत्यादिलक्षणं ब्रह्म।'** जो सत्यस्वरूप, ज्ञानस्वरूप (चित्स्वरूप) और अन्तरहित हो, वह ब्रह्म है। उसी ब्रह्म के स्वरूप में जो सदा मग्न रहते हैं, वे ब्रह्मवादी हैं। भाष्यकार की दृष्टि में—]

जिनका स्वभाव 'ब्रह्म' अर्थात् परशिवब्रह्म के स्वरूप का विवेचन करना होता है, वे शिवयोगी महर्षि ब्रह्मवादी होते हैं। वे अग्रिम रीति से परस्पर वार्तालाप, अथवा वाद-विवाद, विचार-विनिमय करते हैं—

किं कारणं ब्रह्म इत्यादि। [ब्रह्मवादी जब एकत्र होते, उनके सम्मुख 'ब्रह्म' के सम्बन्ध में मन्त्रोक्त पाँच प्रश्न उपस्थित होते। वे प्रश्न आज भी सार्थक हैं। इस मंत्र में उन्हीं पाँच प्रश्नों का संग्रह है। भाष्यकार कहते हैं—]

(१) किं कारणं ब्रह्म? — स्थावर-जंगम स्वरूप जिस जगत् को हम देखते हैं, परशिव ब्रह्म को यत्र-तत्र उसका कारण निरूपित किया गया है। उस परशिव ब्रह्म का स्वरूप क्या है? यह ब्रह्मस्वरूपविषयक प्रश्न है। अथवा यह परशिवब्रह्म स्थावर

CC0. In Public Domain. Jangamwadi Math Collection, Varanasi

Digitization by eGangotri and Sarayu Trust. Funding by MoE-IKS

स्वरूपप्रश्नः। अथवा ब्रह्म किं कारणं-कीदृशकारणं-किं निमित्तमात्रम्, उत उपादानमात्रम् अथवा उभयरूपमपि? उत्तरवाक्यानुसारेण प्रत्यक्षमनुभूयमानस्यास्य जगतः कारणं किं ब्रह्म उतान्यत्? इति प्रश्नः। एवं कारणप्रश्नः कृतः। अद्य कार्यस्वरूपदृष्ट्या प्रश्नः प्रदर्श्यते **कुत** इत्यादिना। वयं अस्मिन् देहे वर्तमानाः जीवाः कुतो जाताः स्म? केन वा जीवामः? कुत्र वा प्रतिष्ठिता वर्तामहे? एवं केन बलवत्तरेण कारणभूतेन सुखेतरेषु सुखेषु दुःखेषु च अधिष्ठिताः सन्तः ब्रह्मविदो वयम् एतादृशीं सुखदुःखानुभवव्यवस्थामाश्रित्य वर्तामहे। अस्मदिच्छादिकमन्तरापि सुखदुःखादीनां द्वन्द्वानां प्राप्तिर्व्यवस्था वा किंमूलेत्याशयः॥१॥

जंगमात्मक जगत् का किस प्रकार का कारण है? क्या यह केवल निमित्तकारण है? अथवा केवल उपादनकारण है? अथवा निमित्तकारण और उपादानकारण दोनों है? इस प्रकार यह जगत्कारणसम्बन्धी प्रश्न हैं।

अब कार्य के स्वरूप की दृष्टि से श्रुति प्रश्न कर रही है—

(२) कुतः स्म जाताः? — इस शरीर में हम जीवात्मा कहाँ से प्रकट हुए?

(३) जीवाम केन? — हम लोग किसके द्वारा जीवित हैं?

(४) क्व च सम्प्रतिष्ठाः? — हम लोग कहाँ प्रतिष्ठित हैं? किसके सहारे हमारी प्रतिष्ठा (अस्तित्व) है? [**विज्ञानभगवान् 'क्व च सम्प्रतिष्ठा'** इस अनुपलब्ध पाठ को स्वीकार कर कहते हैं कि "मोक्ष की स्थिति में हमलोग किस प्रकार के ब्रह्म में एक होकर विलय प्राप्त करेंगे?" यह इसका अर्थ होगा।]

(५) अधिष्ठिताः केन? इत्यादि— अथवा हम ब्रह्मज्ञानी अत्यन्त शक्तिशाली किसके द्वारा सुखमय अथवा दुःखमय परस्पर विपरीत परिस्थितियों में ढकेले जाकर इस प्रकार की व्यवस्था का आश्रय लेकर रहते हैं? इसका तात्पर्य यह है कि हमारी इच्छा के बिना ही हम लोग सुख-दुःख आदि द्वन्द्वों का जो अनुभव करते हैं उसका बीज क्या है?

मन्त्रार्थ — ब्रह्मज्ञानी परस्पर विचार विनिमय करते हैं कि दृश्यमान जगत् का कारणस्वरूप ब्रह्म किस प्रकार का कारण है? वह निमित्तकारण है? उपादानकारण है? अथवा उभयस्वरूप है? शरीरधारी हमलोग (जीवात्मा) कहाँ से उत्पन्न हुए हैं? हम लोग कहाँ रह रहे हैं? ब्रह्मज्ञानी हमलोग किस प्रबल कारण द्वारा सुख-दुःखादि द्वन्द्वों में रहते हुए जी रहे हैं।।१।।

CC0. In Public Domain. Jangamwadi Math Collection, Varanasi

Digitization by eGangotri and Sarayu Trust. Funding by MoE-IKS

ब्रह्मवादिन: किं विचारयन्तीति प्रदर्शयति—

कालः स्वभावो नियतिर्यदृच्छा
भूतानि योनिः पुरुष इति चिन्त्यम्।
संयोग एषां न त्वात्मभावात्
आत्माप्यनीशः सुखदुःखहेतोः।।२।।

काल इत्यादि। काल: योनि: कारणं वा? **'सर्वाधारः कालः'** इति हि न्याय: प्रसिद्ध:। पदार्थानां स्वभाव एव कारणं वा? नियति: तन्नामकं तत्त्वं कारणं वा? **'नियतिः कर्म'** इति शाङ्करभाष्यम्।

यदृच्छा आकस्मिकमेव वा सर्वं चिदचिदात्मकं वस्तुजालम्? भूतानि पञ्चभूतानि वा जगत्कारणत्वेन व्यवस्थाप्यन्ते? पुरुष: चेतनो वा अस्य जगत:

अवतरण— ब्रह्मवादी क्या विचार करते हैं? इसका उत्तर अग्रिम मन्त्र में प्रदर्शित है—

'कालः स्वभावः' इत्यादि— ['योनि' शब्द का प्रत्येक के साथ सम्बन्ध है जिसका अर्थ है कारण। जैसा कि शाङ्करभाष्य है— **'योनिशब्दः सम्बन्ध्यते।'** आचार्य शङ्कर के मतानुसार काल सभी प्राणियों के स्वरूपपरिवर्तन का कारण होता है। **''कालो नाम सर्वभूतानां विपरिणामहेतुः।''**]

(१) क्या वह काल जगत् का कारण है? जैसा कि यह न्याय प्रसिद्ध है— **''सर्वाधारः कालः''**, ''सबका आधार काल है।''

(२) अथवा क्या **स्वभाव** जगत् का कारण है? [आचार्य शंकर कहते हैं— 'स्वभाव का अर्थ है प्रत्येक वस्तु में रहने वाला धर्म। जैसे अग्नि में उष्णता और दाहकता अग्नि का धर्म है। **''स्वभावो नाम पदार्थानां प्रतिनियतशक्तिः अग्नेरौष्ण्यमिव।'** क्या वह पदार्थों का स्वभाव जगत् का कारण है?]

(३) अथवा क्या **नियति** नामक तत्त्व जगत् का कारण है? जैसा कि शाङ्कर भाष्य है— **'नियतिः कर्म'**। पूरा शाङ्करभाष्य इस प्रकार है— **'नियतिरविषमपुण्यपापलक्षणं कर्म।'** **नियति** का अर्थ है पुण्य-कर्म अथवा पाप-कर्म, जिनका फल कभी भी विपरीत (विषम) नहीं होता] क्या वह **'नियति'** जगत् का कारण है?

(४) अथवा क्या **यदृच्छा**, आकस्मिक घटनाएँ या सभी जड़-चेतन वस्तुएँ जगत् का कारण हैं?

(५) अथवा क्या पृथ्वी, जल, तेज, वायु और आकाश ये **पञ्च महाभूत** जगत् के कारण हैं?

CC0. In Public Domain. Jangamwadi Math Collection, Varanasi

Digitization by eGangotri and Sarayu Trust. Funding by MoE-IKS

कारणम्? अथवा एषां संयोगः समूहो वा कारणम्? समूहस्य कारणत्वं तु न तु नैवोपपद्यते। कुतः? आत्मभावात्-आत्मनः भावात् विद्यमानत्वात्। संहतेः परार्थत्वेन इतरार्थमेव सर्वत्र विद्यमानपरमात्मप्रीत्यर्थमेव प्रवृत्त्या स्वातन्त्रेण तस्याः कारणत्वं न संभवतीत्यर्थः। एवं तर्हि स्वतन्त्रः सर्वप्रेरकः, आत्मैव जीवात्मैव कारणमस्तु इत्यत्राऽऽह— **आत्मापीति**। आत्मापि अनीशः न स्वतन्त्रः। कुतः? **सुखदुःखहेतोः**- सुखदुःखकारणस्य कर्मणः सत्त्वात्

---

(६) अथवा क्या **'पुरुष'** (चैतन्यस्वरूप जीवात्मा) जगत् का कारण है।

[आचार्य शंकर कहते हैं— **'पुरुषो वा विज्ञानात्मा योनिः?'** अथवा क्या विज्ञानात्मा चैतन्यस्वरूप जीव जगत् का कारण है? **'योनिः पुरुष इति चिन्त्या।'** – इसकी व्याख्या **'विवरण'**कार **विज्ञानात्मा** इस प्रकार करते हैं— **'योनिः प्रकृतिः कारणमिति शाक्ताः। पुरुषो हिरण्यगर्भ एव कारणमिति योगशास्त्रविदः।' शाक्तों** के मत में प्रकृति जगत् का कारण है और योगशास्त्रवेत्ताओं के मत में (हिरण्यगर्भ) ही जगत् का कारण है। इस मत में **'किं कारणं ब्रह्म'** इत्यादि पूर्व मंत्र से **'कारणम्'** पद का अनुवर्तन कर इस मन्त्र में प्रत्येक पद के साथ उसे सम्बद्ध करना चाहिये और मन्त्रार्थ करना चाहिये। **'चिन्त्या'** यह शांकरभाष्यसम्मत पाठ है। यहाँ **'चिन्त्यम्'** पाठ स्वीकृत है। दोनों का अर्थ एक ही है।]

इन सब का अर्थ यह है कि काल से लेकर पञ्च महाभूतों तक प्रत्येक वस्तु क्या जगत् का कारण है?

'संयोग एषाम्' इत्यादि। अथवा इनका संयोग समुदाय जगत् का कारण है? इस का चिन्तन करना चाहिये।

[इसका **खण्डन** इस प्रकार है— काल इत्यादि पृथक्, जगत् का कारण नहीं हो सकते। क्योंकि लोक में हम यह देखते हैं कि देश-काल-परिस्थिति इत्यादि सब मिलकर सांसारिक कार्यों के कारण होते हैं पृथक्-पृथक् नहीं।]

(७) **''संयोग एषां न त्वात्मभावात्''**— इनका संयोग या समूह भी जगत् का कारण नहीं हो सकता। क्योंकि वहाँ परमात्मा के रूप में वह विद्यमान है।

इस का तात्पर्य यह है कि कोई भी संघटन अथवा समुदाय स्वयं के लिये कार्य- प्रवृत्त नहीं होता, अपितु परब्रह्म परमात्मा, परमेश्वर को प्रसन्न करने के लिये कार्य प्रवृत्त होता है। स्वयं की प्रेरणा से वह कोई कार्य नहीं करता। अतः वह स्वतंत्र रूप से जगत् का कारण नहीं हो सकता। इस दृष्टि से वह समुदायपरतन्त्र ही है, स्वतंत्र नहीं।

CC0. In Public Domain. Jangamwadi Math Collection, Varanasi

Digitization by eGangotri and Sarayu Trust. Funding by MoE-IKS

विद्यमानत्वात्। अतश्च आत्मापि देहे सर्वत्र व्यापकोऽपि चेतनो जीवः कर्मपरवशः सन् न स्वतन्त्र इति सोऽपि न कारणं भवितुमर्हतीति। तथोच्यते—

"अजो जन्तुरनीशोऽयमात्मनः सुखदुःखयोः"

इति। अतः किं वास्य जगतः कारणमिति विचारोपक्षेपः॥२॥

---

(८) **'आत्माऽप्यनीशः'** इत्यादि— [पूर्वार्ध में यह प्रश्न उपस्थित किया गया था कि क्या 'पुरुष' जगत् का कारण है? हमारा शरीर परब्रह्म परमात्मा का 'नवद्वार' (नौ दरवाजों वाला) 'पुर' (नगर) है, जिसमें परमात्मा जीवभाव से सुप्तावस्था में विद्यमान रहता है, अतः उसे 'पुरुष' कहते हैं। जीवात्मा ही परमात्मा है, वह परमात्मा से भिन्न नहीं है। क्या वह जगत् का कारण है? इसका खण्डन चतुर्थ चरण में है। वीरशैवभाष्यकार कहते हैं—]

तो फिर स्वतन्त्र रूप से सब का प्रेरक आत्मा जीवात्मा ही जगत् का कारण हो? परन्तु ऐसा नहीं हो सकता। क्योंकि वह स्वतन्त्र नहीं है, परतन्त्र है। इसका कारण क्या है? वह जीवात्मा सुख और दुःख के कारण कर्म के अधीन रहता है। अतः सम्पूर्ण शरीर में व्यापक रूप से विद्यमान चेतनस्वरूप जीवात्मा भी यतः कर्मपरवश रहता है, अतः वह भी जगत् का कारण नहीं हो सकता। जैसा कि प्रमाणवचन है—

"अजो जन्तुरनीशोऽमात्मनः सुखदुःखयोः।।"

यतः परमात्मा अजन्मा है, तथापि वह शरीर से जन्म लेने के कारण 'जन्तु' कहलाता है। वह जीवात्मा सुख-दुःख हेतु कर्मों के परवश रहता है।

अतः समस्त सृष्टि का क्या कारण है? यह विचारसंक्षेप है।

मन्त्रार्थ— क्या काल जगत् का कारण है? अथवा स्वभाव, नियति, यदृच्छा, पञ्च महाभूत, योनि (प्रकृति) और पुरुष उनमें से कोई एक क्या जगत् का कारण है? अथवा क्या इनका समुदाय जगत् का कारण है? इनमें से काल से पञ्चभूत तक प्रत्येक जगत् का कारण नहीं हो सकता अथवा प्रकृति भी जगत् का कारण नहीं हो सकती। क्योंकि लोक में हम यह देखते हैं देश, काल, परिस्थितियाँ सब मिलकर जगत् का कारण होते हैं, प्रत्येक नहीं। उसी प्रकार इनका समुदाय भी जगत् का कारण नहीं हो सकता, क्योंकि वह परमात्मा को प्रसन्न के लिए कार्य करता है, स्वतंत्र रूप से नहीं। जीवात्मा (पुरुष) भी जगत् कारण नहीं हो सकता, क्योंकि वह कर्मपरवश है, स्वतंत्र नहीं है।।२।।

CC0. In Public Domain. Jangamwadi Math Collection, Varanasi

Digitization by eGangotri and Sarayu Trust. Funding by MoE-IKS

ते ध्यानयोगानुगता अपश्यन्
देवात्मशक्तिं स्वगुणैर्निगूढाम्।
यः कारणानि निखिलानि तानि
कालात्मयुक्तान्यधितिष्ठत्येकः।।३।।

'ते ध्यानयोगानुगता' इति। एवं स्वबुद्ध्या विचार्य जगत्कारणं निर्धारयितुमशक्तास्ते ब्रह्मवादिनो महर्षयः, **ध्यानयोगानुगताः—** ध्यानं नाम चित्तैकाग्र्यं तदेव **योगः**, तेन अनुगताः समाहिताः सन्तः, जगत्कारणमपश्यन् अन्वभवन्। किं तत्कारणं अन्वभवन्नित्याह— **देवात्मशक्तिमित्यादिना। देवस्य (दिवु क्रीडायाम्–)** क्रीडनं भक्तानुग्रहलीलां कुर्वतः परमात्मनः परशिवब्रह्मणः,

---

अवतरण— इस प्रकार क्रान्तदर्शी महर्षियों ने अपनी बुद्धि से विचार किया और जब वे जगत्कारण का निर्धारण करने में असमर्थ हुए, तब उन्होंने **'ध्यानयोग'** लगाया— **'ते ध्यानयोगानुगता अपश्यन्'** इत्यादि।

[यहाँ 'ध्यानयोग' का अर्थ क्या है? 'शाङ्करभाष्य' और 'वीरशैवभाष्य' दोनों की दृष्टि में ध्यान का अर्थ है चित्त की एकाग्रता, वही योग है। शंकरभगवत्पाद कहते हैं— **''ध्यानं नाम चित्तैकाग्र्यम्, तदेव योगो 'युज्यतेऽनेनेति ध्यातव्यस्वीकारोपायः।''** जिसके द्वारा चित्त को युक्त किया जाता है, वह योग कहलाता है। 'ध्यानयोग' का अर्थ है ध्येय वस्तु की प्राप्ति का उपाय। मेरी दृष्टि में **'ध्यानाद् योगः ध्यानयोगः'** यह समस्तविग्रह करना चाहिये। ध्यान का अर्थ है ईश्वरप्रणिधान। उससे 'योग' अर्थात् समाधि लग जाती है और चित्तवृत्तियों का निरोध होता है। ईश्वरप्रणिधान के लिये प्रणवोपासना आवश्यक है। जैसा कि **मुण्डकोपनिषद्** कहती है—

प्रणवो धनुः शरो ह्यात्मा ब्रह्म तल्लक्ष्यमुच्यते।
अप्रमत्तेन वेद्धव्यं शरवत् तन्मयो भवेत्।।

(मु.उ.२.२-४)]

उस 'ध्यानयोग' के द्वारा समाधिस्थ होकर उन ब्रह्मवादी महर्षियों ने जगत्-कारण को देखा, उसका अनुभव किया। वह जगत्कारण क्या था, जिसका उन्होंने अनुभव किया? उसी का विवेचन है— **'देवात्मशक्तिम्'** इत्यादि।

[**'देवस्य आत्मशक्तिः देवात्मशक्तिः ताम्'** यह इस पद का समासविग्रह है। 'विष्णुसहस्रनामस्तोत्र' में 'देव' शब्द का निर्वचन करते हुए शङ्करभगवत्पाद कहते हैं— **''यतः दीव्यति क्रीडति सर्गादिभिः, विजिगीषते असुरादीन्, व्यवहरति सर्वभूतेषु,**

CC0. In Public Domain. Jangamwadi Math Collection, Varanasi

Digitization by eGangotri and Sarayu Trust. Funding by MoE-IKS

आत्मभूतां प्राणरूपिणीं स्वाभिन्नां सच्चिदानन्दात्मिकां **शक्तिमेव** चिच्छक्तिमेव जगत्कारणम् अपश्यन्। शक्तिशक्तिमतोरभेदात् **'आत्मभूतामि'**ति। एवं च शक्तेर्जगत्कारणत्वे तदभिन्नस्य परशिवब्रह्मणोऽपि जगत्कारणत्वं सिद्धमेव।

अथवा देवस्य परमात्मनः आत्मभूतां स्वस्वरूपां **चिच्छक्ति**मित्यर्थः। शक्तिशक्तिमतोरभेद एव अङ्गीक्रियतेऽस्मिन् सिद्धान्ते। अत एव जगतो ब्रह्म निमित्तम् उपादानं च भवितुमर्हति। यतो हि ब्रह्म जगदुपादानभूतशक्त्या अभिन्नम्। एवं सङ्कल्पाश्रयत्वाद् ब्रह्म निमित्तं च सम्पद्यते। अतश्च भेदाभेदयोरपि सिद्धिः। इयमेव शक्तिः परिणामपरम्परया **प्रकृति**पदवाच्या भवति। प्रकृतिर्नाम प्रकृष्टा अद्भुता कृती रचना। अत एवेयं त्रिगुणद्रव्यं सम्पद्यते, निरालम्बाया रचनाया अनुपपद्यमानत्वात्। एवं च पारमेश्वरी चिद्रूपा शक्तिः सत्त्वरजस्तमोरूपत्रिगुणद्रव्यात्मना परिणमते।

आत्मतया द्योतते, स्तूयते स्तुत्यैः, सर्वत्रः गच्छति, तस्माद् देवः।'' ''यत; परमशिव सृष्टि इत्यादि के साथ क्रीडा करते हैं, असुर इत्यादि पर विजय प्राप्त करना चाहते हैं, सभी प्राणियों के साथ व्यवहार करते हैं, आत्मस्वरूप से द्योतित (प्रकाशित) होते हैं, स्तुतियोग्य पुरुष उनका स्तवन करते हैं, सर्वत्र विचरणशील है, अतः वे देवाधिदेव महादेव हैं।'' इसमें **'दिवु क्रीडायाम्'** धातुपाठ में पठित धातु के अर्थ को लेकर वीरशैवभाष्यकार प्रथम व्याख्या करते हैं—]

(१) ब्रह्मवादी महर्षियों ने भक्तों पर अनुग्रह करने के लिये क्रीडालीला करने वाले परशिव ब्रह्म परमेश्वर की आत्मीय स्वयं-पृथक् न होनेवाली सच्चिदानन्दस्वरूपा प्राणरूपिणी शक्ति अर्थात् चिच्छक्ति को ही जगत्कारण के रूप में देखा।

यतः शक्ति और शक्तिमान् दोनों में भेद नहीं है, अतः चिच्छक्ति को आत्मस्वरूप शक्ति स्वीकार किया गया है। और इस प्रकार चिच्छक्ति की जगत्कारणता सिद्ध होने पर उससे अभिन्न शक्तिमान् परशिव ब्रह्म की भी जगत्कारणता सिद्ध ही है।

(२) अथवा 'देव' का परमेश्वरपरमात्मा अर्थ करने पर ऋषियों ने उसकी स्वरूपभूता आत्मभूता चिच्छक्ति का जगत्-कारण के रूप में साक्षात्कार किया यह वाक्यार्थ होगा। इस सिद्धान्त में भी शक्ति और शक्तिमान् दोनों के अभेद को ही स्वीकार करना पड़ेगा। अत एव परब्रह्म परमशिव जगत् का निमित्तकारण भी हो सकते हैं और उपादानकारण भी। क्योंकि परब्रह्म परमशिव जगत् की उपादानशक्ति से अभिन्न है। इसी प्रकार परब्रह्म-परमेश्वर संकल्प का आश्रयस्थान होने के कारण जगत् का निमित्तकारण्प भी हो सकता है और इस प्रकार भेद और अभेद दोनों की सिद्धि होती है। इसी शक्ति को परिणाम की परम्परा से

CC0. In Public Domain. Jangamwadi Math Collection, Varanasi

Digitization by eGangotri and Sarayu Trust. Funding by MoE-IKS

ननु तर्हि त्रिगुणद्रव्यस्य अङ्गीकाराद् उपादानभूतायां शक्तावपि त्रिगुणसद्भावो वक्तव्यः। एतदनङ्गीकारेऽपसिद्धान्तः सम्भवेत्। शक्तिरत्र चिच्छक्तिरूपा इति हि तव मतमित्यालोच्योक्तम्— **स्वगुणैर्निगूढामिति**। सत्यम्, सत्त्वादयो गुणाः प्रकृतिगता एव। अत एवेयं प्रकृतिर्विचित्ररूपवत्त्वात् सर्वाकर्षकत्वाच्च **माये**ति प्रोच्यते। **''मायां तु प्रकृतिं विद्यात्''** (श्वे.उ. ४.१०) इति हि श्रुतिः। एवं च मायाऽपरनामधेयेयं प्रकृतिश्च चिच्छक्तिपरिणाम एव। परन्तु ते गुणा मूलभूतायां चिच्छक्त्यवस्थायां न व्यक्ताः ; किं तु **निगूढाः**–नितरां गूढा विद्यन्ते। प्रकाशं विनापि वस्तुतस्तत्र विद्यन्त एव। अतस्तैः सत्त्वरजस्तमोभिः स्वगुणभूतैरेव निगूढां— तादृशगुणवत्त्वेन कारणावस्थायां द्रष्टुमनर्हामित्यर्थः।

कथमिदं युज्यते शक्तौ तेन रूपेणानुपलभ्यमानाः सत्त्वादयो मायायां नाम प्रकृतौ लक्ष्यन्त इति चेदुच्यते। परिणामस्यायं प्रभावः सर्वैरप्यङ्गीकरणीय

'प्रकृति' पद से भी सम्बोधित करते हैं। **'प्रकृति'** का अर्थ है प्रकृष्ट कृति, उत्कृष्ट रचना। अतएव यह 'प्रकृति' त्रिगुण द्रव्य के रूप में रूपान्तरित होती है। क्योंकि बिना आलम्बन के किसी रचना का निर्माण सम्भव नहीं है और इस प्रकार परमेश्वर की त्रिगुणात्मिका यह चिच्छक्ति सत्त्व-रज-तमोरूप त्रिगुण द्रव्य के रूप में परिवर्तित होती है और जगत् का निमित्त कारण होती है।]

अब यह प्रश्न उपस्थित होता है कि यदि शक्ति को जगत् का उपादानकारण भी माना जाय तो वहाँ भी तीनों गुणों का अस्तित्व स्वीकार करना होगा, जो शास्त्रीय सिद्धान्त से परे (अपसिद्धान्त) होगा। और आप उस शक्ति को चिच्छक्ति चैतन्यशक्ति कहते हैं। इस का उत्तर है— **'स्वगुणैर्निगूढाम्'**। यह वास्तविकता है कि सत्व, रज और तम 'प्रकृति' में रहने वाले तीन गुण हैं। इसीलिए इस प्रकृति को नानाविध रूपशालिनी और सभी को आकर्षित करनेवाली होने के कारण **'माया'** भी कहते हैं। जैसी की श्रुति है—

''मायां तु प्रकृतिं विद्यान्मायिनं तु महेश्वरम्।'' (श्वे.उ.४.१०)

[प्रकृति को माया समझना चाहिये और उस मायासम्पन्न परमेश्वर परमशिव देवाधिदेव महादेव को मायावी समझना चाहिये।] इस प्रकार माया की पर्यायवाचिनी प्रकृति चिच्छक्ति का ही बदला हुआ रूप है। परंतु मूलस्वरूपा चिच्छक्ति में वे गुण व्यक्त नहीं रहते, अपितु अत्यंत गुप्त रूप से रहते हैं। बिना प्रकाश के भी वे वस्तुतः वहाँ रहते हैं। अतएव चिच्छक्ति के सत्व-रज और तम गुणों को कारणावस्था में हम देख नहीं सकते।

अब यह प्रश्न उपस्थित होता है कि जो गुण कारणावस्था में विद्यमान चिच्छक्ति में प्राप्त नहीं होते, वे सत्त्व आदि गुण माया (प्रकृति) में किस प्रकार लक्षित होते हैं?

CC0. In Public Domain. Jangamwadi Math Collection, Varanasi

Digitization by eGangotri and Sarayu Trust. Funding by MoE-IKS

एव। ताम्बूलपूगादिसंयोगेनोपलभ्यमानः पूर्वमदृष्ट एव रक्तिमवर्णः सर्वानुभवसिद्धः। पूर्वं ताम्बूलादौ तु रक्तिमवर्णो न दृश्यत एव। तथापि तत्र **सत्कार्यवादिभिर्यत्** समाधानं वक्तव्यं तदेव प्रकृतेऽपि भविष्यतीत्यलमतिप्रसङ्गेन।।

एवमेतादृशविलक्षणशक्तिमत्वात् कुत एव परशिवब्रह्मणः सर्वकारणत्वमित्याह–**य** इत्यादिना। य एतादृशोऽद्भुतशक्तिमान् एक एव देवः, कारणभूतानि

इस प्रश्न का समाधान यह है कि परिणाम का यह प्रभाव सभी को स्वीकार करना चाहिये। उदाहरण के लिए पान-सुपाडी-कत्था-चूना आदि के संयोग से लगे हुए पान में जो लालिमा पहिले नहीं देखी जाती, वह अकस्मात् प्रकट होती है यह सभी के अनुभव से प्रमाणित है। परन्तु **सत्कार्यवादियों ने** वहाँ जो समाधान प्रस्तुत किया है, वह समाधान यहाँ भी दिया जा सकता है।

[**सत्कार्यवाद**— सांख्यदर्शन के अनुसार बुद्धि, अहंकार, पञ्च तन्मात्रा, ग्यारह इन्द्रिय और पञ्च महाभूत प्रकृति में अव्यक्त स्थिति में रहते हैं। प्रकृति महदादि का कारण है और महदादि उसके कार्य हैं। इसका नाम है सत्कार्यवाद। इसके पाँच हेतु **'सांख्यकारिका'** में परिगणित हैं—

असदकरणादुपादानग्रहणात् सर्वसम्भवाभावात्।
शक्तस्य शक्यकरणात् कारणभावाच्च सत्कार्यम्।।
(सां.का.९)

वे पाँच हेतु इस प्रकार हैं— (१) जिसका अस्तित्व होता है, उसकी उत्पत्ति होती है, जिसका अस्तित्व नहीं रहता उसकी उत्पत्ति नहीं होती। (२) दही का उपादानकारण दूध है, दही उपादानकारण दूध में अव्यक्तावस्था में रहता है। (३) सर्वत्र सब नहीं हो सकता। जैसे सोने में चाँदी का रहना संभव नहीं है। (४) कुम्भार उसी को बनाता है, जिसे वह बना सकता है। (५) कार्य में कारण के लक्षण विद्यमान रहते है। इन पाँच हेतुओं से यह कहा जा सकता है कि प्रकृति में महत्तत्व आदि अव्यक्त स्थिति में पूर्व से ही रहते हैं। इसका नाम है **सत्कार्यवाद।** भाष्यकार का अभिप्राय यह है कि जिस प्रकार महत्त्व आदि तत्व प्रकृति में अव्यक्तस्थिति में रहते हैं, उसी प्रकार सत्व, रज और तमोगुण चिच्छक्ति में अव्यक्त स्थिति में रहते हैं। माया अथवा प्रकृति में वे व्यक्त नहीं होते।

इसका **शाङ्करभाष्य** इस प्रकार है— **''देवस्य द्योतनादियुक्तस्य मायिनो महेश्वरस्य परमात्मन आत्मभूतामस्वतन्त्रां न सांख्यपरिकल्पितप्रधानादिवत् पृथग्भूतां स्वतन्त्रां शक्तिं कारणमपश्यन्, दर्शयिष्यति च ''मायां तु प्रकृतिं विद्यान्मायिनं तु महेश्वरम्''** (श्वे. उ. ४-१०) इति। **तथा ब्राह्मे– ''एषा चतुर्विंशतिभेदभिन्ना माया परा**

CC0. In Public Domain. Jangamwadi Math Collection, Varanasi

Digitization by eGangotri and Sarayu Trust. Funding by MoE-IKS

जगति कारणत्वेन प्रतिपन्नानि तानि कालजीवादीनि निखिलान्यपि कारणानि अधितिष्ठति, रथं सारथिरिव, अथवा शरीरं जीव इव। अत एव शरीरे क्रियमाणानां सर्वेषां कार्याणां जीव एव यथा कर्ता, तथा प्रकृतिकालजीवादिभिर्निष्पाद्यमानानां सर्वकार्याणां परमात्मैव कर्ता, अतश्च सर्वजगत्स्रष्टा स एवेति निष्कर्षः।।३।।

एवं निखिलजगत्कारणं परशिवब्रह्म सुखेन अनायासेन बोधनाय (तस्य) चक्राकारेण रूपणं कृत्वा वर्णयति श्वेताश्वतरो महर्षिः—

प्रकृतिस्तत्समुत्था।।" तथा च– "मायाऽध्यक्षेण प्रकृतिः सूयते सचराचरम्" (गीता ९.१०) इति। **स्वगुणैः प्रकृतिकार्यभूतैः पृथिव्यादिभिश्च निगूढां कार्याकारेण कारणाकारस्याऽभिभूतत्वत्वात् कार्यात् पृथक् स्वरूपेणोपलब्धुमशक्यामित्यर्थः। तथा च प्रकृतिकार्यत्वं गुणानां दर्शयति व्यासः— "सत्त्वं रजस्तम इति गुणाः प्रकृतिसम्भवाः।।"** (गीता१४.५)।]

यतः परशिवब्रह्म इस प्रकार विलक्षण शक्तिसम्पन्न है, वह किस प्रकार समस्त जगत् का कारण हो सकता है? इस प्रश्न का समाधान उत्तरार्द्ध में है— **'यः कारणानि'** इत्यादि। इस प्रकार अद्भुतशक्तिसम्पन्न एकमात्र देवाधिदेव महादेव चराचर विश्व में जो सम्पूर्ण काल, जीव आदि कारणस्वरूप हैं, उन समस्त कारणों पर उसी प्रकार आरूढ रहता है, जिस प्रकार सारथी रथ पर आरूढ रहता है अथवा जीवात्मा शरीर पर आरूढ रहता है। इसलिये जिस प्रकार जीवात्मा शरीर में रहकर किये जाने वाले कार्य्रों का कर्ता होता है, उसी प्रकार परब्रह्म-परमशिव प्रकृति, काल, जीव इत्यादि द्वारा सम्पादित किये जाने वाले सभी कार्यों का कर्ता होता है। इसीलिये परब्रह्म परमशिव ही सम्पूर्ण स्थावरजंगमस्वरूप जगत् का सृष्टिकर्ता है, यही निष्कर्ष है।

मन्त्रार्थ— पश्चात् ईश्वरप्रणिधान के द्वारा समाधि लगाकर उन ब्रह्मवादियों ने यह अनुभव किया कि भक्तों पर अनुग्रह करने के लिये विविध लीला करने वाले देवाधिदेव महादेव की उनसे अभिन्न चिच्छक्ति ही चराचर विश्व का उपादान-कारण भी है और निमित्तकारण भी। सत्व, रज और तमोगुण उनमें अव्यक्त रूप से विद्यमान हैं। माया (प्रकृति) के रूप में रूप बदलने पर वे गुण उनमें व्यक्त होते हैं। उस अद्भुत मायासम्पन्न शक्तिमान् परमेश्वर काल, स्वभाव इत्यादि समस्त कारणों पर आरूढ रहता है।।३।।

अवतरण— इस प्रकार सम्पूर्ण जगत् के कारणस्वरूप परशिवब्रह्म की अनायास ज्ञानप्राप्ति के लिये महर्षि श्वेताश्वतर उसका **'चक्र'** के रूपक से वर्णन कर रहे हैं—

CC0. In Public Domain. Jangamwadi Math Collection, Varanasi

Digitization by eGangotri and Sarayu Trust. Funding by MoE-IKS

तमेकनेमिं त्रिवृतं षोडशान्तं
शतार्धारं विंशतिप्रत्यराभिः।
अष्टाभिः षड्भिर्विश्वरूपैकपाशं
त्रिमार्गभेदं द्विनिमित्तैकमोहम्।।४।।

तमेकनेमिमिति। तं परमात्मानम्, **एकनेमिम्**-एका मायाप्रकृत्यविद्याशब्दवाच्या शक्तिः, नेमिरिव नेमिः, चक्रस्य मध्यभागः सर्वाधारभूतः यस्य तम्। नेमिरेव च चक्रावयवानाम् आधारभूतेति सर्वानुभवसिद्धम्। तथा मायाशक्तिरेव सर्वजगदाश्रयभूतेत्यर्थः। **त्रिवृतम्**-त्रिभिः सत्त्वरजस्तमोगुणैः वृतं युक्तम्। **षोडशान्तम्**— पञ्चभूतानि एकादशेन्द्रियाणि, आहत्य षोडश अन्तः अवसानं यस्य तं षोडशान्तम्। परिणामपरम्परायास्तत्रैव हि समाप्तिः। **शतार्धारम्**—

'तमेकनेमिम्' इत्यादि। **'तं चक्राकारम् अपश्यन्'** इस प्रकार पूर्वमंत्र से 'अपश्यन्' की अनुवृत्ति करके अन्वय करना चाहिये। अथवा उत्तरमन्त्र से **'अधीमः'** की अनुवृत्ति करके **'तं चक्राकारम् अधीमः'** इस प्रकार अन्वय करना चाहिये। तदनुसार इसका अर्थ होगा— "उस जगत्कारणस्वरूप परब्रह्म परमशिव को ब्रह्मज्ञानी महर्षियों में चक्राकार देखा अथवा उसका चक्राकार अध्ययन-मनन-चिन्तन किया।" उसकी विशेषताएँ अग्रिम रूप से वर्णित हैं—

(१) एकनेमिम्— **'एका नेमिरिव नेमिः यस्य तम्'** इस प्रकार समासविग्रह करने पर इसका अर्थ होगा— जिस प्रकार चक्र की 'नेमि' (मध्यभाग) सबकी आधारभूता होती है, उसी प्रकार माया, प्रकृति और अविद्या शब्द से वाच्य जो शक्ति चक्रस्वरूप परशिवब्रह्म की आधारस्वरूपा थी। क्योंकि नेमि ही चक्र के अवयवों का आधार होती है यह सभी के अनुभवों से सिद्ध है। उसी प्रकार माया शक्ति ही सभी जगत् की आश्रयस्वरूपा है यह इसका तात्पर्य है।

(२) त्रिवृतम्— 'त्रिभिः वृतम्', वह चक्राकार परशिव ब्रह्म जिन आवरणों से घिरा हुआ था, वे तीन आवरण थे— सत्त्व, रज और तम तीन गुण।

(३) षोडशान्तम्— 'षोडशः अन्तः यस्य तम्।' पृथ्वी, जल, तेज, वायु और आकाश ये पञ्च महाभूत और नेत्र, श्रोत्र, नासिका, रसना और त्वचा ये पाँच ज्ञानेन्द्रिय, वागिन्द्रिय (मुख), हाथ, पायु और उपस्थ ये पञ्च कर्मेन्द्रिय तथा एक मन (अन्तःकरण) ये ग्यारह इन्द्रिय सब मिलाकर सोलह तक परब्रह्म परमशिव की विस्तारमर्यादा सीमित है। जैसा कि सांख्यकारिका कहती है— **'षोडशकस्तु विकारः।'**

CC0. In Public Domain. Jangamwadi Math Collection, Varanasi

Digitization by eGangotri and Sarayu Trust. Funding by MoE-IKS

शतस्य अर्धं शतार्धम् पञ्चाशत् प्रत्ययभेदाः अराः यस्य चक्रस्य। **पञ्चविपर्ययभेदाः** प्रसिद्धाः तमः, मोहः, महामोहः, तामिस्रः, अन्धतामिस्र इति। **अशक्तिरष्टाविंशतिधा। तुष्टिर्नवधा। अष्टधा सिद्धिः।** आहत्यैते पञ्चाशत् प्रत्ययभेदाः। तत्र **तमसो** भेदः **अष्टविधः।** अष्टसु प्रकृतिषु अनात्मसु आत्मप्रतिपत्तिविषयभेदेन अष्टविधत्वं प्रतिपत्तेः। **मोहस्य** चाष्टविधो भेदः। अणिमादिशक्ति**र्मोहः**। दशविधो **महामोहः**। शब्दादिविषयेषु पञ्चसु दृष्टानुश्रविकेषु अभिनिवेशः महामोहः। **तामिस्रः** अष्टादशविधः। उक्तदशविधविषयेषु अष्टविधैश्वर्यैः प्रयतमानस्य तदसिद्धौ यः क्रोधः स तामिस्रोऽभिधीयते। **अन्धतामिस्रो**ऽप्यष्टादशविधः। अष्टविधैश्वर्येषु दशसु विषयेषु भुज्यमानेषु अर्धे मृत्युना ह्रियमाणस्य यः शोको जायते सः अन्धतामिस्रः। **अशक्तिर**ष्टाविंशतिधा—एकादशेन्द्रियाणामशक्तिः, अन्तःकरणस्य नवधा, सिद्धीनां विपर्ययात् अष्टधा। आहत्य अष्टाविंशतिविधा अशक्तिः। **तुष्टिर्नवधा** प्रकृत्युपादानकालभाग्याख्याश्चतस्रः, विषयोपरमात् पञ्चेति। एवं विपर्ययाशक्तितुष्टिसिद्ध्याख्याः पञ्चाशत्प्रत्ययभेदाः **'शतार्धारम्'** इत्यनेनोच्यन्ते। अधिकं तु सांख्यतत्त्वकौमुद्यादौ द्रष्टव्यम्।

---

(४) शतार्धारम्— 'शतस्य अर्धं शतार्धम्, शतार्धम् अराः यस्य तम्।'' चक्राकार जिस परशिव ब्रह्म के **पचास प्रत्ययभेद** अर के समान थे। उनकी गणना इस प्रकार है— पाँच (५) विपर्ययभेद प्रसिद्ध हैं— तम, मोह, महामोह, तामिस्र और अन्धतामिस्र। अशक्ति अट्ठाईस (२८) प्रकार की, तुष्टि नौ (९) प्रकार की और सिद्धि आठ (८) प्रकार की है। इस प्रकार कुल मिलाकर पचास प्रत्ययभेद होते हैं। इनके अन्तर्गत पाँच विपर्ययभेदों में अन्यतम **तम** के आठ (८) भेद होते हैं। क्योंकि आठ प्रकार की प्रकृतियाँ, जो आत्मस्वरूप नहीं रहतीं, उनमें हमें जो आत्मस्वरूप का भान होता है, वह आठ प्रकार का होता है। **मोह** के आठ (८) भेद होते हैं। अणिमा आदि शक्तियाँ ही **मोह** हैं। महामोह दस (१०) प्रकार का है। शब्द, रूप, रस, गन्ध और स्पर्श इन पाँच प्रकार के दृष्ट और आनुश्रविक विषयों में अभिनिवेश **महामोह** कहलाता है। तामिस्र-विपर्यय अट्ठाईस (२८) प्रकार है। पूर्वोक्त दस (१०) प्रकार के विषयों में आठ (८) प्रकार के ऐश्वर्य (अणिमादि सिद्धियों) द्वारा प्रयास करने पर जो विफलता मिलती हैं, उससे जो क्रोध होता है, उसे **तामिस्र-विपर्यय** कहते हैं। अट्ठाईस (२८) प्रकार की **अशक्तियों में** ग्यारह (११) इन्द्रियों का असामर्थ्य, अन्तःकरण की नौ (९) प्रकार की अशक्ति, और आठ (८) प्रकार की असिद्धियाँ सम्मिलित हैं। नौ (९) प्रकार की **तुष्टियों में** प्रकृति, उपादान, काल और भाग्य तथा शब्दादि पाँच (५) विषयों से उपरति सम्मिलित हैं। इस प्रकार पाँच (५) विपर्यय, अट्ठाईस (२८) अशक्ति, नौ (९) तुष्टि और आठ (८) सिद्धियों को एकत्र कर पचास (५०) प्रत्ययभेद चक्राकार परशिव ब्रह्म के अरों का अर्द्धशतक कहलाता है। इसकी विशद व्याख्या 'सांख्यतत्त्वकौमुदी' में देखनी चाहिये।

CC0. In Public Domain. Jangamwadi Math Collection, Varanasi

Digitization by eGangotri and Sarayu Trust. Funding by MoE-IKS

विंशतिप्रत्यराः, ताभिः युक्तम्। एवं अष्टकैः षड्भिर्युक्तम्।

"भूमिरापोऽनलो वायुः खं मनो बुद्धिरेव च।
अहङ्कार इतीयं मे भिन्ना प्रकृतिरष्टधा।।" (गीता ७/४)

इत्यष्टौ प्रकृतयः। त्वक्चर्ममांसरुधिरमेदोऽस्थिमज्जाशुक्राणि **अष्टौ धातवः।**

'अणिमा महिमा चैव गरिमा लघिमा तथा।
प्राप्तिः प्राकाम्यमीशित्वं वशित्वं।।"

चेत्यष्टैश्वर्याणि। धर्मज्ञानवैराग्यैश्वर्याधर्माज्ञानावैराग्यानैश्वर्याणि **अष्टौ भावाः।** ब्रह्मप्रजापतिदेवगन्धर्वयक्षराक्षसपितृपिशाचा **इत्यष्टौ देवाः। अष्टौ आत्मगुणाः** दया, क्षान्तिः, अनसूया, शौचमनायासः, मङ्गलम्, अकार्पण्यम्, अस्पृहा चेति।

---

(५) विंशतिप्रत्यराभिः (युक्तम्), (६) अष्टाभिः षड्भिः (युक्तम्)— उस चक्राकार परशिवब्रह्म में बीस प्रत्यर और छः अष्टक जुड़े हुए थे। भगवान श्रीकृष्णः— अर्जुन से कहते हैं—

"पृथ्वी, पवन, जल, तेज, नभ, मन अहंकार व बुद्धि भी।
इन आठ भागों में विभाजित हैं प्रकृति मेरी सभी।।"
(श्रीकृष्णगीता ७/४)

गीता में वर्णित आठ (८) प्रकृतियाँ; त्वचा, चर्म, मांस, रक्त, मेद, अस्थि, मज्जा और शुक्र ये आठ धातु; अणिमा, महिमा, गरिमा, लघिमा, प्राप्ति, प्राकाम्य, ईशित्व और वशित्व ये 'अमरकोष'प्रोक्त आठ ऐश्वर्य (सिद्धियाँ), धर्म, ज्ञान, वैराग्य, ऐश्वर्य और इसके विपरीत अधर्म, अज्ञान अवैराग्य और अनैश्वर्य ये आठ भाव; ब्रह्मदेव, प्रजापति, देव, गन्धर्व, यक्ष, राक्षस, पितर और पिशाच ये आठ देवयोनियाँ, दया, क्षमा, अनसूया, शुचिता, अनायास, मंगल, अकार्पण्य और अस्पृहा ये आठ आत्मगुणः, इन छः अष्टगुणवर्गों से युक्त वह परशिव ब्रह्म है।

[भाष्यकार **बीस प्रत्यरों के** सम्बन्ध में मौन हैं। रथचक्र के अरों को सुदृढ करने के लिए जो कीलें ठोके जाते हैं उन्हें प्रत्यर कहते हैं। **'शांकरभाष्य'** के अनुसार दस विषय और उनके दस विषय बीस प्रत्यर हैं— **'विंशतिप्रत्यरा दशेन्द्रियाणि तेषां च विषयाः शब्द-स्पर्श-रूप-रस-गन्ध-वचनाऽऽदानविहरणोत्सर्गाऽऽनन्दाः। पूर्वोक्तानामराणां प्रत्यरा ये प्रतिविधीयन्ते कीलका अराणां दार्ढ्याय ते प्रत्यरा इत्युच्यन्ते। तैः प्रत्यरैर्युक्तम्।"**टीकाकार **नारायण** के अनुसार षट्चक्र के अन्दर स्थित बीस अंगुलियाँ ही बीस प्रत्यर हैं। **विज्ञान भगवान्** और **उपनिषद् ब्रह्मयोगी** की दृष्टि में आठ वसु और द्वादश आदित्य प्रत्यर हैं।]

CC0. In Public Domain. Jangamwadi Math Collection, Varanasi

Digitization by eGangotri and Sarayu Trust. Funding by MoE-IKS

एतैः षड्भिरष्टकैः अष्टकगुणैर्युक्तम्। **विश्वरूपैकपाशम्** स्वर्गपुत्रादिविषयभेदात् विश्वरूपम्— विश्वरूपो नानारूप एकः कामाख्यः पाशः अस्येति विश्वरूपैकपाशम्। **त्रिमार्गभेदम्**— धर्माधर्मज्ञानमार्गभेदाः अस्येति। **द्विनिमित्तैकमोहम्**— द्वयोः पुण्यपापयोः निमित्तभूतः एकः मोहः यस्मिंस्तत्। देहेन्द्रियमनोबुद्धिजात्यादिषु अनात्मसु आत्माभिमानः अस्येति द्विनिमित्तैकमोहम्। एतादृशं चक्राकारं परशिवब्रह्म **अपश्यन्** इति पूर्वस्माद् अनुवृत्तिः। **अधीम** इति उत्तरस्मादाकर्षो वा।।४।।

एवं चक्राकारेण रूपितमेव ब्रह्म इदानीं नदीत्वेन रूपयति—

पञ्चस्रोतोऽम्बुं पञ्चयोन्युग्रवक्रां
पञ्चप्राणोर्मिं पञ्चबुद्ध्यादिमूलाम्।

---

(७) विश्वरूपैकपाशम्— 'विश्वरूपः एकः पाशः अस्येति विश्वरूपैकपाशम्।' नानास्वरूपों में प्रकट होने वाला एक मात्र मोहपाश सब को बन्धन में डालता है।

(८) त्रिमार्गभेदम्— 'त्रयः मार्गभेदाः अस्येति।' धर्ममार्ग, अधर्ममार्ग और ज्ञानमार्ग तीन मार्गों पर वह चक्राकार परशिवब्रह्म भ्रमण करता है।

(९) द्विनिमित्तैकमोहम्— "द्वयोः निमित्तभूतः एकः मोहः यस्मिन् तत्।" पुण्य और पाप इन दोनों का निमित्त एक मात्र मोह होता है। देह-इन्द्रिय-मन-बुद्धि-जाति आदि में जो आत्मस्वरूप नहीं हैं, उनमें आत्माभिमान जागृत करने वाला मोह ही होता है, जिसके कारण लोग पुण्य और पाप कर्म की ओर प्रवृत्त होते हैं। इस प्रकार परशिवब्रह्म का चक्राकार वर्णन इस मंत्र में है।

मन्त्रार्थ— ब्रह्मवादी महर्षियों में परशिवब्रह्म का रथचक्र के रूप में साक्षात्कार किया, जिसकी एकमात्र नेमि थी माया। वह सत्व-रज और तम इन तीन गुणों के आवरणों से आवृत था। उसकी सीमा सोलह विकारों तक थी। पचास प्रत्ययभेद उसके अर थे। उसके बीस प्रत्यर थे। छः अष्टकों से वह सम्पन्न था। नानारूप मोहपाश उसे खींच रहा था। वह तीन मार्गों पर चलता था। एक मोह जिसे पुण्य और पाप में प्रवृत्त कर रहा था।।४।।

अवतरण— इस प्रकार परशिवब्रह्म का रथचक्र के रूप में निरूपण करने के उपरान्त श्रुति उसका नदी के रूप में निरूपण कर रही है—

'पञ्चस्रोतोम्बुम्' इत्यादि। ब्रह्मज्ञानी हम महर्षिगण उस परशिवब्रह्म का नदी के रूप में चिन्तन-मनन करते हैं। संसारसरिता परशिवब्रह्म का प्रत्यक्षस्वरूप है। उसकी विशेषताएँ इस प्रकार हैं—

CC0. In Public Domain. Jangamwadi Math Collection, Varanasi

Digitization by eGangotri and Sarayu Trust. Funding by MoE-IKS

पञ्चावर्तां पञ्चदु:खौघवेगां
पञ्चाशद्भेदां पञ्चपर्वामधीम:।।५।।

पञ्चस्रोतोऽम्बुमित्यादि। पञ्चस्रोतोऽम्बुम्— पञ्च स्रोतांसि चक्षुरादीनि ज्ञानेन्द्रियाणि अम्बुस्थानानि यस्यास्ताम्। **पञ्चयोन्युग्रवक्राम्**–पञ्चयोनिभि: कारणभूतै: पञ्चभूतै: पृथिव्यादिभि:, उग्रां भीकरां वक्रां सुन्दरीं च। **पञ्चप्राणोर्मिम्**— पञ्च प्राणा:। प्राणशब्द इन्द्रियपर: प्रसिद्ध एव। तथा चात्र कर्मेन्द्रियाण्युच्यन्ते। पञ्चकर्मेन्द्रियाण्येव ऊर्मयस्तरङ्गा यस्यास्ताम्। **पञ्चबुद्ध्यादिमूलाम्**–पञ्चबुद्धीनां चक्षुरादिजन्यानां ज्ञानानाम् आदि: कारणभूतं मन: पञ्चबुद्ध्यादि:, तदेव मूलं कारणम् यस्या: संसारसरित:। **"मन एव मनुष्याणां कारणं बन्धमोक्षयो:"** इति हि प्रमाणम्। **पञ्चावर्ताम्**— पञ्च शब्दादयो विषया: आवर्तवत् प्राणिनां मज्जनस्थानानि। एतादृशा: पञ्च आवर्ता यस्यां ताम्। **पञ्चदु:खौघवेगाम्**– पञ्च

---

(१) पञ्चस्रोतोऽम्बुम्— चक्षु, श्रोत्र, नासिका, रसना और त्वचा ये पाँच ज्ञानेन्द्रिय संसारसरिता के पाँच जलप्रवाह हैं।

(२) पञ्चयोन्युग्रवक्राम्— वह संसारसरिता पृथ्वी, जल, तेज, वायु और आकाश इन मूल कारणस्वरूप पाँच महाभूतों से भयंकर भी प्रतीत होती है और सुन्दर भी लगती है।

(३) पञ्चप्राणोर्मिम्— यहाँ 'प्राण' शब्द का अर्थ इन्द्रिय अर्थात् कर्मेन्द्रिय है। पाँच कर्मेन्द्रिय (वागिन्द्रिय मुख, हाथ, पैर, पायु और उपस्थ) उस संसारसरिता की पाँच लहरियाँ हैं।

(४) पञ्चबुद्ध्यादिमूलाम्— उन पाँच ज्ञानेन्द्रियों से उत्पन्न ज्ञान का आदिकारण है मन। वही संसारसरिता का मूल स्रोत है। जैसा कि प्रमाणवचन है—**'मन एव मनुष्याणां कारणं बन्धमोक्षयो:।"** मनुष्यों के बन्धन और मोक्ष का कारण मन ही होता है।

[तथा च मनस: सर्वहेतुत्वं दर्शयति—
"मनोविजृम्भितं सर्वं यत् किञ्चित् सचराचरम्।
मनसो ह्यमनीभावे द्वैतं नैवोपलभ्यते।।" इति —शाङ्करभाष्यम्]

(५) पञ्चावर्ताम्— शब्द, रूप, रस, गन्ध और स्पर्श ये यथाक्रम श्रोत्र, नेत्र, रसना, नासिका और त्वचा इन पाँच ज्ञानेन्द्रियों के पाँच विषय हैं। जीवात्मा संसारसरिता के इन पाँच भंवरों में वारंवार फसता है।

(६) पञ्चदु:खौघवेगाम्— उस संसारसरिता में गर्भ, जन्म, बुढापा, रोग और मृत्युभय ये पाँच दु:खप्रवाह प्रबलरूप से हैं।

CC0. In Public Domain. Jangamwadi Math Collection, Varanasi

Digitization by eGangotri and Sarayu Trust. Funding by MoE-IKS

दु:खानि गर्भजन्मजराव्याधिमरणदु:खान्येव ओघवेग: यस्यास्ताम्। **पञ्चाशद्-भेदाम्**— 'शतार्धारम्' इत्यत्रोक्तपञ्चाशत्प्रत्ययभेदवतीम्। **पञ्चपर्वाम्**— अविद्याऽस्मितारागद्वेषाऽभिनिवेशा: पञ्चक्लेशभेदा: पञ्चपर्वाणि यस्यास्ताम्, एतादृशीं नदीं ताम् अधीम:।।५।।

---

(७) पञ्चाशद्भेदाम्— वह संसारसरिता पूर्व मन्त्र में 'शतार्द्धारम्' द्वारा संकेतित पचास प्रत्यय भेदों से सम्पन्न है।

(८) पञ्चपर्वाम्— अविद्या, अस्मिता, राग, द्वेष और अभिनिवेश ये पातञ्जलयोग-दर्शनसम्मत पाँच क्लेश उस संसारसरिता के पाँच पर्व हैं।

[**(क) अविद्या— ''अनित्याऽशुचिदुःखानात्मसु नित्यशुचिसुखात्मख्यातिः अविद्या''** (यो.सू. २/५) अनित्य, अपवित्र, दु:ख और अनात्मा को यथाक्रम नित्य, पवित्र, सुख और आत्मा समझना अविद्या है।

(ख) अस्मिता— ''दृग्दर्शनशब्दयोरेकात्मतैव अस्मिता'' (यो.सू. २/६) द्रष्टा पुरुष और दर्शनशक्ति दोनों में अभेदबुद्धि अस्मिता कहलाती है।

(ग) राग— ''सुखानुशयी रागः'' (यो.सू.२/७) सुखोपभोग के बाद उसके पीछे लग जाना राग कहलाता है।

(घ) द्वेष— ''दुःखानुशयी द्वेषः'' (यो.सू. २/८) दु:ख को भोग कर उसके कारण को सोचते हुए क्रोध करना द्वेष कहलाता है।

(ङ) अभिनिवेश— ''स्वरसवाही विदुषोऽपि तथा रूढोऽभिनिवेशः'' (यो.सू. २/९) मृत्यु शाश्वत सत्य है यह जानने वाला भी उससे स्वयं को बचाने का जो प्रयास करता है, वह अभिनिवेश कहलाता है।

ये पाँच क्लेश उस संसारसरिता के पाँच पर्व हैं।]

हम ब्रह्मवेत्ता महर्षियों से परब्रह्म परमात्मा का संसारसरिता के रूप में प्रत्यक्ष साक्षात्कार किया है और उसका अध्ययन-मनन किया है।

मन्त्रार्थ— हम ब्रह्मज्ञानियों के परशिवब्रह्म का साक्षात्कार संसारसरिता के रूप में किया है, जिसके पाँच ज्ञानेन्द्रिय पाँच जनप्रवाह हैं। पाँच महाभूतों के कारण जो उग्र भी है और सुन्दर भी। पंच कर्मेन्द्रिय जिसकी पाँच तरङ्गें हैं। सभी ज्ञानों को आदि-कारण मन जिसका मूल स्रोत है। शब्दादि पाँच विषय जिसके पाँच भँवर हैं। गर्भ, जन्म, जरा, व्याधि और मरण ये पाँच दुःखप्रवाहों से वह वेगवती है। पचास प्रत्यय भेदों से वह विविध प्रकार से लक्षित होती है। अविद्या, अस्मिता, राग, द्वेष और अभिनिवेश ये पाँच क्लेश उस संसारसरिता के पाँच पर्व हैं। इस प्रकार हमलोगों ने परशिवब्रह्म का प्रत्यक्ष विग्रह संसारसरिता का दर्शन-मनन-चिन्तन किया है।।५।।

CC0. In Public Domain. Jangamwadi Math Collection, Varanasi

Digitization by eGangotri and Sarayu Trust. Funding by MoE-IKS

सर्वव्यापकं सर्वात्मकम् अमूर्तं परशिवब्रह्म एव चक्राकारेण नद्याकारेण च सुखज्ञानाय रूपयित्वा एतादृशे कार्यकारणात्मके ब्रह्मचक्रे जीवः कुतः संसरन् सुखदुःखादिकमनुभवति? कुतो वा तस्मात् विमुच्येत? इति प्रश्ने तदुत्तरमाह—

सर्वाजीवे सर्वसंस्थे बृहन्ते
तस्मिन् हंसो भ्राम्यते ब्रह्मचक्रे।
पृथगात्मानं प्रेरितारं च मत्वा
जुष्टस्ततस्तेनामृतत्वमेति ।।६।।

सर्वाजीव इति। सर्वेषां चराचराणां आजीवनं सम्पूर्णजीवनं यस्मिन्। ब्रह्मैवाश्रित्य सर्वे जीवन्ति। **'येन जातानि जीवन्ति'** इत्युच्यते हि। एवं सर्वेषां

अवतरण— अब तक निरूपित किया गया है कि वस्तुतः परशिवब्रह्म सर्वव्यापक और सर्वस्वरूप है। अतएव वह कभी रथचक्र के समान दृष्टिगोचर होता है, तो कभी यह अनुभव होता है कि संसारसरिता अमूर्त परशिवब्रह्म का साकार स्वरूप है। अब यह प्रश्न उपस्थित होता है कि समस्त जगत् जो ब्रह्म का कार्य है, उसके कारणस्वरूप ब्रह्मचक्र में (जो संसारचक्र के रूप में दृष्टिगोचर होता है) जीव किस प्रकार संसरणशील रहते हुए सुख-दुःखादि द्वन्द्वों का अनुभव करता है? अथवा वह किस प्रकार उससे छुटकारा पा सकता है? इसका उत्तर श्रुति स्वयं इस प्रकार दे रही है—

'सर्वाजीवे' इत्यादि। **''बृहन्ते तस्मिन् ब्रह्मचक्रे हंसो भ्राम्यते''** यह इसका खण्डान्वय होगा, जिसका अर्थ है विशाल उस परशिवब्रह्म के साकारस्वरूप संसारचक्र में 'हंस' चक्कर लगाता रहता है। वह **'हंस'** कौन है? 'हिंसा' और गत्यर्थक 'हन्' धातु से यह शब्द निष्पन्न है, जैसा कि धातुपाठ में पठित है— **'हन् हिंसागत्योः।'** इसका निर्वचन दो प्रकार से है— **'हन्ति गच्छति अध्वानम् इति हंसः'**, जो सदा जीवनयात्रा के मार्ग पर चलता रहता है, वह जीव 'हंस' कहलाता है। अथवा **'पापं हन्ति इति वा हंसः'**, जो जन्म लेकर अपने दुष्कृतजनित पापकर्म का क्षय करता है, वह जीव 'हंस' कहलाता है। जब वह जीव देह में आत्मस्वरूप का अभिमान करते हुए मोह में पड़ता है, वहाँ से निकलने का रास्ता उसे दिखलाई नहीं पड़ता। तब वह उसी संसारचक्र में भ्रमण करता है और संसारी कहलाता है। उसकी दो विशेषताएँ हैं—

(क) सर्वाजीवे— वह ब्रह्मचक्र चर-अचर सभी प्राणियों का जीवनाधार है, जैसा कि इस पद का समासविग्रह है— **'सर्वेषाम् आजीवः यस्मिन्, तस्मिन्।'** जैसा कि

CC0. In Public Domain. Jangamwadi Math Collection, Varanasi

Digitization by eGangotri and Sarayu Trust. Funding by MoE-IKS

संस्था प्रलयो यस्मिन्। **'यत्प्रयन्त्यभिसंविशन्ति'** इति उपनिषत्। एवं सकलसृष्टिस्थितिलयहेतुभूते **बृहन्ते** बृहति **तस्मिन् ब्रह्मचक्रे हंसो** जीवः, हन्ति गच्छत्यध्वानमिति हंसः, **'हन् हिंसागत्योः'**। पापं हन्तीति वा हंसः। **भ्राम्यते** देहात्माभिमानादिभिर्मोहित निर्गमनोपायमपश्यन् तत्रैव परिभ्रमति। तत्र हेतुरुच्यते— **पृथगित्यादिना। आत्मानं स्वं प्रेरितारं** परमात्मानं **च पृथक् मत्वा** अत्यन्तविभिन्नं जानन् **भ्राम्यत** इत्यन्वयः। **''अहं ब्रह्मास्मि''** इति खलु पारमार्थिकं तत्त्वज्ञानं बन्धननिवृत्तिहेतुरिति निरूपितं मयाऽन्यत्र। एवं वस्तुतः परमात्मांशभूत एव चैतन्यांशो मलत्रयावृत आत्मानं कर्मपरवशम् अणुं परमात्मनोऽत्यन्तभिन्नं जानातीत्यपि असकृन्निरूपितमेव। अतः सम्यगुक्तम् आत्मानं प्रेरितारं च पृथङ् मत्वा तेन हेतुना ब्रह्मचक्रे भ्राम्यतीति।

कहा जाता है— **'येन जातानि जीवन्ति'**, चराचर प्राणी उत्पन्न होकर जिसके सहारे जीवित रहते हैं।

(ख) सर्वसंस्थे— उसी ब्रह्मचक्र में सभी का प्रलय अथवा विनाश भी होता है— **'सर्वेषां संस्था (प्रलयाः) यस्मिन् तस्मिन्।'** इसमें श्रुतिवचन भी प्रमाण है— **'यत्प्रयन्त्यभिसंविशन्ति'**, जहाँ से जन्म लेते हैं वहीं विलय प्राप्त करते हैं।

इस प्रकार वह ब्रह्मचक्र सृष्टि, स्थिति और प्रलय का कारण अत्यन्त 'बृहन्त' विशाल है, जिसमें 'हंस' (जीव) मोहवश चक्कर लगाता रहता है।

इसका हेतु श्रुति इस प्रकार प्रदर्शित कर रही है— **'पृथग् आत्मानं प्रेरितारं च मत्वा (हंसो ब्रह्मचक्रे भ्राम्यते')**। जब तक जीव स्वयं को और अपने प्रेरक परमात्मा को पृथक्-पृथक् समझता है, तब तक वह संसारचक्र में संसरण करता है। भाष्यकार कहते हैं कि मैंने अन्यत्र यह निरूपित किया है कि **'अहं ब्रह्मास्मि'** यह पारमार्थिक तत्त्वज्ञान बन्धन में छुटकारा पाने का कारण है। 'मैं जीवात्मा ही शिवस्वरूप परब्रह्म हूँ' यह इस महावाक्य का भावार्थ है।

इस प्रकार जीवात्मा परमात्मा का अंशस्वरूप चैतन्यांश है। वह जब आणव, कार्म और मायीय मल से आवृत रहता है, तब स्वयं को कर्मों के अधीन अणुस्वरूप और परमात्मा से अत्यन्त भिन्न समझता है, इसका वारंवार निरूपण किया गया है। इसीलिये यह समुचित ही कहा गया है कि वह स्वयं को और अपने प्रेरक परमात्मा को पृथक्-पृथक् समझता है और इसी कारण ब्रह्मचक्र में भ्रमण करता है।

CC0. In Public Domain. Jangamwadi Math Collection, Varanasi

Digitization by eGangotri and Sarayu Trust. Funding by MoE-IKS

इदानीमेतादृशबन्धान्मोचनोपायमाह— **जुष्ट** इति। **जुष्टः** सेवितः, तेन ईश्वरेण अहं ब्रह्मास्मीति प्रापितसमाधान इत्यर्थः। **ततः** तादृशाभेदज्ञानात्, **अमृतत्वं** मोक्षम् **(एति)** प्राप्नोति। अथवा **'पृथगात्मानमि'**त्यारभ्यैव मोक्षोपाय उच्यते। अयमर्थः उक्तरीत्या सर्वप्रेरकं परमात्मानं प्रेर्यं स्वं च पृथग्भूतं मत्वा– संसारावस्थायां हि भेद इत्यस्मत्सिद्धान्तः स्थापितः **शक्तिविशिष्टाद्वैतदर्शने।** अत इदानीं भेद एव। उपास्योपासकभाव इदानीं वर्तते। अतस्तयोर्भेद इदानीं ज्ञेय एव। एवं भेदज्ञानादेव **तेन** परमात्मना **जुष्टः** स्वानुग्रहविषयीकृतः **ततः** तादृशानुग्रहविषयत्वादेव हेतोः, **अमृतत्वमेति।** भगवानेव हि मोक्षप्रदाता इति **'संसारमोक्षस्थितिबन्धहेतुः'** इत्यत्र वक्ष्यते।।६।।

अब इस बन्धन से छुटकारा किस प्रकार पाया जाय इसका उपाय निरूपित किया जा रहा है— **'जुष्टस्ततस्तेनाऽतिमृत्युमेति।'** वह जब परशिव परमात्मा द्वारा सेवित होता है अर्थात् जब जीवात्मा 'मैं ब्रह्मस्वरूप हूँ' इस प्रकार अनुभव करता है, तब वह इस अभेदज्ञान से अमृतत्व प्राप्त करता है, अमर बन जाता है। उसे मृत्युभय नहीं सताता।

'शक्तिविशिष्टाद्वैतदर्शन' के अनुसार इस मन्त्र में **'पृथगात्मानम्'** इत्यादि उत्तरार्द्ध में मोक्षोपाय वर्णित है। 'शक्तिविशिष्टाद्वैतदर्शन' नामक ग्रन्थ में इसका विस्तार से निरूपण किया गया है। संसारावस्था में उपास्य और उपासकभाव रहता है। इस स्थिति में स्वयं को और परमात्मा को पृथक्-पृथक् समझाना चाहिये। भेद-ज्ञान से ही अर्थात् उपास्य-उपासक भेदभावना से ही परमात्मा जीवात्मा पर अनुग्रह करता है और वह अनुग्रह ही अमरत्व का कारण होता है। भगवान् ही मोक्षप्रदाता भी ही है यह **'संसारमोक्षस्थितिबन्धहेतुः'** इस मंत्रविवेचन में प्रतिपादित किया जानेवाला है।

[श्रीविष्णुधर्मोत्तरपुराण इसका उपबृंहण इस प्रकार करता है—

''पश्यत्यात्मानमन्यं तु यावद् वै परमात्मनः।
तावत् सम्प्राप्यते जन्तुर्मोहितो निजकर्मणा।।
संक्षीणाशेषकर्मा तु परं ब्रह्म प्रपश्यति।
अभेदेनाऽऽत्मनः शुद्धं शुद्धत्वादक्षयो भवेत् ।।'']

मन्त्रार्थ— यह ब्रह्मचक्र अत्यन्त विशाल है, सभी चराचर जीवों की यह आश्रयस्थली और विश्रामस्थली भी है। इस प्रकार ब्रह्मचक्र विशाल और सृष्टि, स्थिति और प्रलय का कारण है, जिसमें हंस (जीव) देहाभिमान के कारण भ्रमण करता रहता है। उपासकस्थिति में वह उपास्य परमात्मा को पृथक् समझता है और उसी की कृपा से उसे *'अहं ब्रह्मास्मि'* इस प्रकार का अभेदज्ञान होता है, जिससे वह अमरत्व प्राप्त करता है, मृत्युभय से छुटकारा पाता है।।६।।

CC0. In Public Domain. Jangamwadi Math Collection, Varanasi

Digitization by eGangotri and Sarayu Trust. Funding by MoE-IKS

एतादृशेन भेदज्ञानेन परमात्मानमेवाऽऽश्रित्य बहवो मुक्ता बभूवुरित्याह—

उद्गीतमेतत् परमं तु ब्रह्म
तस्मिंस्त्रयं सुप्रतिष्ठाक्षरं च।
अत्रान्तरं ब्रह्मविदो विदित्वा
लीना ब्रह्मणि तत्परा योनिमुक्ताः।।७।।

उद्गीतमिति। **एतत्** एवं रीत्या **परमं तु ब्रह्म** परशिवब्रह्म **उद्गीतं** कथितम्। अथवा यदेतत्परमं तु ब्रह्म उद्गीतं तस्मिंस्त्रयं भोक्ता भोग्यं प्रेरिता चेत्येतत् **त्रयं** तिष्ठति। एतदेव **सुप्रतिष्ठाक्षरं च** सर्वाधारभूतम् अक्षरं निर्विकारं च ब्रह्म। **''एतद् वै तदक्षरम्''** इति ब्रह्मणः अक्षररूपत्वम्, **'सदायतनाः सत्प्रतिष्ठाः'** इति जगतः तत्प्रतिष्ठत्वं च प्रसिद्धमेव। अतः सुप्रतिष्ठरूपम् अक्षरं च तदेव। एवमत्र ब्रह्मणि सर्वाधारम् **अन्तरं** भेदं **ब्रह्मविदो विदित्वा** तत्पराः सन्तः **योनिमुक्ताः** जन्मजरामरणेभ्यो मुक्ताः तस्मिन्नेव ब्रह्मणि लीना बभूवुः। परमलय एव मुक्तिः।।७।।

अवतरण— इस प्रकार उपास्य-उपासक के भेदज्ञान से परमेश्वर का आश्रय लेकर बहुत से जीव मुक्त हो गये इस तथ्य को श्रुति इस प्रकार प्रकट कर रही है—

'उद्गीतमेतत्' इत्यादि। और इस प्रकार परशिवब्रह्म का निरूपण किया गया। अथवा जिस परब्रह्म का निरूपण किया गया, उसमें तीन प्रतिष्ठित हैं। [जैसा कि **'भोक्ता भोग्यं प्रेरितारं च मत्वा'** इत्यादि बारहवें मंत्र में कहा गया है।] भोक्ता, भोग्य और प्रेरक की त्रयी उस परशिवब्रह्म का आश्रय लेकर रहती है। सबका आधारस्वरूप **'अक्षर'**, क्षरणरहित निर्विकार परब्रह्म है। **'एतद् वै तदक्षरम्'** इस प्रकार परब्रह्म का अक्षर (क्षरणहीन) स्वरूपनिरूपण किया गया है। **''सदायतनाः सत्प्रतिष्ठाः'** इत्यादि श्रुतिमन्त्र जगत् को उस परब्रह्म में प्रतिष्ठित स्वीकार करता है। इस श्रुति का अर्थ है— ''समस्त प्राणी सत्स्वरूप परब्रह्म को अपना आयतन (घर) बना कर उसमें ही प्रतिष्ठित रहते हैं।'' अतः वही अक्षर परब्रह्म सबका प्रतिष्ठान (अधिष्ठान) स्वरूप है। इस प्रकार उस परब्रह्म में ब्रह्मवेत्ता महर्षि सबके मूल आधारभूत अन्तर (भेद) को जानकर ब्रह्मोपासना में तत्पर होकर विविध योनियों में प्राप्त होने वाले जन्म-वृद्धावस्था-मृत्युभय इत्यादि से छुटकारा प्राप्त कर उसी ब्रह्म में विलीन हो गये। क्योंकि मुक्ति का अर्थ ही है उसी में अत्यन्त विलय प्राप्त करना।

मन्त्रार्थ— जिस परशिवब्रह्म का निरूपण किया गया है, उसमें भोक्ता, भोग्य और प्रेरयिता की त्रयी प्रतिष्ठित है। वही सबका आधारस्वरूप अक्षर (क्षरणहीन) ब्रह्म है। ब्रह्मज्ञानी लोग इस अन्तर को समझ कर ब्रह्मपरायण होकर विविध योनिजन्य जन्म-जरा-मृत्यु इत्यादि विकारों से मुक्त हो गये और उसी में विलीन हो गये।।७।।

CC0. In Public Domain. Jangamwadi Math Collection, Varanasi

Digitization by eGangotri and Sarayu Trust. Funding by MoE-IKS

एवं जीवेश्वरयोः उपासकोपास्ययोर्भेदः किंकृतः? तादृशभेदविलयो वा कथं स्यादित्यत्राह—

संयुक्तमेतत् क्षरमक्षरं च
व्यक्ताव्यक्तं भरते विश्वमीशः।
अनीशश्चात्मा बध्यते भोक्तृभावाद्
ज्ञात्वा देवं मुच्यते सर्वपाशैः।।८।।

संयुक्तमेतद् इति। **व्यक्तम्**— महदादिपृथिव्यन्तं व्यक्तमित्युच्यते। मूलकारणं प्रकृतिश्च **अव्यक्तमु**च्यते। एतदुभयं च क्रमेण **क्षराक्षर**शब्दाभ्याम् उच्यते। अथवा **'क्षरात्मानौ'** इत्यग्रे वक्ष्यमाणौ प्रकृतिपुरुषौ अत्र क्षराक्षरव्यक्ताव्यक्तशब्दैः कथितौ। तथा च परस्परसंयुक्तव्यक्ताव्यक्तरूपप्रकृतिपुरुषात्मकमिदं **विश्वम्, ईशः** ईश्वरः परमात्मा, **भरते** बिभर्ति। तथा हि **गीता**—

"क्षरः सर्वाणि भूतानि कूटस्थोऽक्षर उच्यते।
उत्तमः पुरुषस्त्वन्यः परमात्मेत्युदाहृतः।
यो लोकत्रयमाविश्य बिभर्त्यव्यय ईश्वरः।।"

(१५/१६, १७) इति।

अवतरण— अब यह प्रश्न उपस्थित होता है कि उपासक जीव और उपास्य ईश्वर का यह भेद किस प्रकार किया गया है? और फिर इस प्रकार का भेद किस प्रकार नष्ट हो सकता है? इस विषय में श्रुति यह कह रही है—

'संयुक्तमेतत्' इत्यादि। महत्तत्व से लेकर पृथिवीतत्व तक समस्त तत्व प्रकृतिजन्य विकार 'व्यक्त' नाम से सम्बोधित हैं, क्योंकि वे अनुभवगम्य, प्रकट हैं। उनका मूल कारण प्रकृति **'अव्यक्त'** नाम से सम्बोधित है, क्योंकि वह व्यक्त, प्रकट नहीं होती। इन्हीं को यथाक्रम **'क्षर'** और **'अक्षर'** कहा जाता है। (क्योंकि महत्तत्व से लेकर पृथिवी तक समस्त विकार क्षरणशील, ह्रासोन्मुख हैं और प्रकृति क्षरणरहित है। उन दोनों में परस्पर कार्यकारणभाव है।) अथवा **'क्षरंप्रधानम्'** इत्यादि अग्रिम मंत्र मैं **'क्षरात्मानौ'** इन शब्दों से संकेतित **प्रकृति** और **पुरुष** प्रस्तुत मन्त्र में क्रमशः 'क्षर-अक्षर' तथा 'व्यक्त-अव्यक्त' शब्दों से संकेतित हैं। यह समस्त विश्व जड़ और चेतन, व्यक्त-अव्यक्त, क्षर-अक्षर अथवा प्रकृति-पुरुष दोनों का सम्मिलित स्वरूप है, जिसका भरण-पोषण परशिव ब्रह्म करता है। जैसा कि **'क्षरः सर्वाणि भूतानि'** इत्यादि पद्य द्वारा **श्रीमद्भगवद्गीता** समर्थन करती है।

CC0. In Public Domain. Jangamwadi Math Collection, Varanasi

Digitization by eGangotri and Sarayu Trust. Funding by MoE-IKS

एवं जीवेश्वरयोरुभयोरपि चेतनत्वं समानं सदपि ईश्वरस्य ईश्वरत्वादेव नियामकत्वादेव न च बन्धप्रसक्तिः। न हि कारागृहगतयोः चोरराजभटयोः उभयोरपि बन्धो युज्यते। चोरस्यैव बन्धः, नियाम्यत्वात्। राजभटस्य तु नियामकस्य न बन्धः। तदेतदुच्यते–**''अनीशश्चात्मा बध्यते भोक्तृभावात्''** इति। आत्मा अक्षरपदवाच्यस्तु स्वयं स्वतः, अक्षरत्वादिस्वभाववानपि भोक्तृभावात् भोक्तृत्वात् कर्मफलानुभवहेतोः, अनीशः अनीश्वरः असमर्थो जातः, अत एव बध्यते। तर्हि अस्य बन्धविमोचनं कथमित्यत्राह—**ज्ञात्वे**त्यादिना। **देवं** परमात्मानं भावरूपेण शिरसि सहस्रारचक्रे विराजमानं, प्राणरूपेण हृदये अष्टदलकमले विलसन्तं इष्टरूपेण भ्रूमध्ये प्रकाशमानं च चित्प्रकाशमयं परमेश्वरं **ज्ञात्वा** साक्षात् **सर्वपाशैः** सर्वबन्धैः; लोके पाशेनैव पुरुषादिबन्धनात् पाशपदं प्रयुक्तम्। त्रिविधैः आणवमायीयकार्मिकाख्यैः मलपाशैः **मुच्यते**। जीवस्य शिवांशत्वेऽपि मायाशक्त्याऽऽवृतत्वात् तदीयं विशालं व्यापकं च इच्छाज्ञानक्रियात्मकं शक्तित्रयं

['श्रीकृष्णगीता' में उसका हिन्दी पद्यानुवाद इस प्रकार है—

''क्षर सर्वभूतों को कहा, कूटस्थ है अक्षर सदा।।
कहते जिसे परमातमा उत्तम पुरुष इनसे परे।
त्रैलोक्य में रह ईश अव्यय सर्व जग पोषण करे।।''

—श्रीकृष्णगीता १५/१६,१७]

इस प्रकार यद्यपि जीवात्मा और परमात्मा दोनों का चेतनधर्म समान है, तथापि परब्रह्म-परमेश्वर (परमात्मा) में ईश्वरत्व ही उसका नियामक है, उसका बन्धन सम्भव नहीं है। उदाहरणार्थ यद्यपि चोर और प्रहरी राजसैनिक दोनों ही कारागार में रहते हैं, तथापि दोनों को बन्धन में डालना उचित नहीं होता। चोर ही नियमन (बन्धन) के योग्य होता है। राजसेवक प्रहरी तो उसका नियामक होता है। उसको बन्धन में नहीं डाला जाता। इसी तथ्य को श्रुति तृतीय चरण में प्रकट कर रही है— **''अनीशश्चात्मा बध्यते भोक्तृभावात्।''** यद्यपि जीवात्मा 'अक्षर' = क्षरणधर्मरहित अविनाशी होता है, तथापि देहाभिमान के कारण उसमें भोक्ता का भाव होता है। और इसी भाव के कारण वह सुकृत-दुष्कृत कर्मों के फल पुण्य-पाप आदि का अनुभव करता है। इसीलिए वह असमर्थ हो जाता है और बन्धन में पड़ता है। फिर उसे इस बन्धन से किस प्रकार मुक्ति मिलती है? इसका उत्तर चतुर्थ चरण में है— **''ज्ञात्वा देवं मुच्यते सर्वपाशैः'**। वह परमेश्वर का साक्षात्कार कर समस्त कर्मपाशों से मुक्त होता है यह इसका सामान्य अर्थ है।

CC0. In Public Domain. Jangamwadi Math Collection, Varanasi

Digitization by eGangotri and Sarayu Trust. Funding by MoE-IKS

सङ्कुचितं सद् आणवमायीयकार्मिकमलत्रयरूपेण परिणमते। **शक्तिसङ्कोच एव मलपाश** इति व्यवह्रियते। **आणवाख्यो मलपाशः** इच्छाशक्तेः सङ्कोचरूपः जीवे अणुत्वबुद्धिद्वारा तस्यैवेतरेभ्यः प्रत्येकत्वभावनाम् उत्पादयति। अत एव सर्वव्यापिकायाः इच्छाशक्तेः स्थाने स्वार्थबुद्धिस्तस्मिन् समुत्पद्यते। **मायीयाख्यो मलः** ज्ञानशक्तेः सङ्कोचरूपः जीवे विशालाम् आत्मीयाम् आत्मौपम्यदृष्टिं विश्वजनीनां विवेचनां च परिहाय स्वहितानुवर्तिष्वेव आत्मीयताख्यम् अनुरागरूपं व्यामोहम् उत्पादयति। अत एव विश्वहितासक्ताया ज्ञानशक्तेः स्थाने कतिपयेष्वेव रक्तसम्बन्धिषु आसक्तिम् उत्पादयन्ती व्यामोहदृष्टिस्तस्मिन् सम्भवति। **कार्मिकाख्यो मलः** विश्वहिताचरणसमर्थायाः क्रियाशक्तेः सङ्कोचरूपो जीवे कर्तृत्वाभिमानम्

[वह परमात्मा अन्यत्र कहीं नहीं, हमारे ही शरीर के विभिन्न अवयवों में विभिन्न रूप धारण कर विराजमान है—] वह शिरःस्थित सहस्रार चक्र में भावरूप में विराजमान है, हृदयस्थित अष्टदलकमल में प्राणरूप से विराजमान है और भ्रूयुगलमध्य में इष्टरूप से विराजमान है। इस प्रकार चित्प्रकाशस्वरूप परमेश्वर परब्रह्म-परमशिव का साक्षात्कार कर सर्वविध पाशबन्धनों से मुक्त होता है। यतः संसार में पाश द्वारा ही पुरुष आदि को बन्धन में डाला जाता है, अतः यहाँ 'पाश' पद का प्रयोग किया गया है। वे पाश त्रिविध अज्ञानमल हैं। आणव मल, मायेय मल और कार्मिक मल उनके नाम हैं। यद्यपि जीवात्मा शिव का अंशस्वरूप ही है, तथापि जब वह मायाशक्ति के आवरण से घिर जाता है, तब उसकी विशाल और व्यापक तीन शक्तियाँ अंकुरित होती हैं। वे शक्तियाँ हैं इच्छाशक्ति, ज्ञानशक्ति और क्रियाशक्ति। वे शक्तियाँ यथाक्रम आणव मल, मायीय मल और कार्मिक मल इन तीन मलों का रूप धारण कर अपना स्वरूप परिवर्तन करती हैं। क्योंकि जैसा कि प्रयोग किया जाता है— **'शक्तिसङ्कोच एव मलपाशः'**, त्रिविध शक्तियों का सङ्कुचित स्वरूप ही त्रिविध मलपाश है। **आणव** नामक **मलपाश** इच्छाशक्ति का संकुचित स्वरूप है, जो जीव में अणुत्व बुद्धि उत्पन्न कर एक जीव की दूसरे जीवों से अलगाव की भावना उत्पन्न करता है। अत एव सर्वत्र व्यापक इचछाशक्ति के स्थान पर उस जीव में स्वार्थबुद्धि उत्पन्न होती है। **मायीय** नामक **मलपाश** ज्ञानशक्ति का सङ्कुचित स्वरूप है, जो जीव में विशाल आत्मीयता की भावना, अपने समान दृष्टि और सार्वजनीन विवेचना का त्याग कर केवल अपने हित में लगे हुए प्राणियों के प्रति ही आत्मीयता नामक अनुराग को जन्म देता है, जो एक प्रकार का व्यामोह है। अत एव विश्वहित में आसक्त ज्ञानशक्ति के स्थान पर कतिपय रक्त से सम्बन्धित रिश्तेदारों में ही आसक्ति को उत्पन्न करनेवाली व्यामोहदृष्टि उसमें दृष्टिगोचर होती है। **कार्मिक** नामक **मलपाश** विश्वकल्याण में समर्थ क्रियाशक्ति का सङ्कुचित स्वरूप है, जो जीव में कर्तृत्वाभिमान उत्पन्न करता है। इसीलिये विशाल

CC0. In Public Domain. Jangamwadi Math Collection, Varanasi

Digitization by eGangotri and Sarayu Trust. Funding by MoE-IKS

आपादयति। अत एव विशालायाः क्रियाशक्तेः स्थाने स्वस्यैव हितं साधनीयमित्याकारः कर्माभिमानस्तस्मिन् सञ्जायते। तादृशमलत्रयनिर्वर्त्यमानः परिणामोऽप्यसह्य एव। आणवो जीवस्य सदात्मकं सत्यस्वरूपम् अपहरति, मायीयस्तस्य चिदात्मकं ज्ञानस्वरूपम् अपहन्ति, कार्मिकश्च तस्य आनन्दात्मकं स्वरूपम् अपहाय तामसत्वम् उत्पादयति। एतादृशमलपाशावरणमेव जीवस्य बन्ध उच्यते। एतद्बन्धविमोचनं च कारणशरीरे अव्यक्तरूपे शिरसि विराजमानेन भावरूपेणेश्वरेण जीवस्य संयोगात् सञ्जायते। तेन सह वसितुं योग्यतां सामरस्यरूपमैक्यं साधयितुं शक्तत्वाद् जीवः **योगाङ्ग**मिति व्यवह्रियते। **योगो** नाम जीवपरमयोरैक्यम्। तच्च निरन्तरोपासने साधयितुं निर्मल एव जीवः शक्नोति। सूक्ष्मशरीरे व्यक्ताव्यक्तात्मके हृदये विराजमानेन प्राणरूपेणेश्वरेण मिलित्वा भोगमनुभवितुं शक्तत्वाद् जीवः **भोगाङ्गमिति** व्यवह्रियते। स्थूलशरीरे व्यक्तरूपे भ्रूमध्ये विलसत इष्टरूपस्येश्वरस्योपासनाय जीवः स्वीयं देहेन्द्रियादिकं सर्वं धर्मसाधनं निरभिमानेन समर्पयन् **त्यागाङ्ग**मिति व्यवह्रियते। देहाभिमानत्यागादेव

क्रियाशक्ति के स्थान पर केवल अपना ही कल्याण करना चाहिये, इस प्रकार कर्माभिमान उसमे जन्म लेता है।

इसी प्रकार त्रिविध मलपाशों से उत्पन्न होनेवाला परिणाम भी असह्य ही होता है। आणव मल का परिणाम जीव के सत्-आत्मस्वरूप **सत्य** के स्वरूप को दूर करता है। मायीय मल का परिणाम उसके **चिन्मय ज्ञानस्वरूप** को हटा देता है और कार्मिक मल का परिणाम उसके **आनन्दस्वरूप** का अपहरण कर उसमें तामस भाव उत्पन्न करता हे। इस प्रकार त्रिविध मलपाशों का आवरण ही जीव का **पाशबन्धन** कहलाता है। इस प्रकार के बन्धन से मुक्ति अव्यक्तस्वरूप कारण शरीर में (अर्थात् शिरःस्थित सहस्रार चक्र) में विराजमान भावस्वरूप ईश्वर के साथ जीव का संयोग होने के कारण मिलती है। उसके साथ सामरस्यस्वरूप एकता स्थापित करते हुए रहने की योग्यता पाने में जब जीव समर्थ होता है, तब उसे **'योगाङ्ग'** कहा जाता है। ('योगाङ्ग' शब्द में) 'योग' का अर्थ है जीवात्मा और परमात्मा का सामरस्यस्वरूप एकातमभाव। निर्मल जीव ही निरन्तर उपासना के द्वारा वह समरसभाव प्राप्त कर सकता है। यतः सूक्ष्मशरीर, जो व्यक्त- अव्यक्त उभयात्मक होता है, उसमें हृदयस्थित अष्टदलकमल में प्राण के रूप में विराजमान परमशिव के साथ मिलकर जीव उपभोगक्षम होता है, अतः **'भोगाङ्ग'** कहलाता है। स्थूल शरीर जो व्यक्त रहता है, उस के भ्रूयुगल मध्य में इष्ट के रूप में प्रकाशित परमशिव की उपासना करने के लिये यतः जीव अभिमानशून्य होकर अपना देह-इन्द्रिय आदि धैर्यसाधनस्वरूप सर्वस्वसमर्पण करता है, अतः वह **'त्यागाङ्ग'** कहलाता है। देहाभिमान का त्याग करने

CC0. In Public Domain. Jangamwadi Math Collection, Varanasi

Digitization by eGangotri and Sarayu Trust. Funding by MoE-IKS

जीव इष्टदेवोपासनप्रवणः सम्पद्यते। परमेश्वरलीलाविनोदास्पदत्वाद् जीवस्य **अङ्ग**मिति व्यपदेशो युज्यते। शिरसि, हृदये, भ्रूमध्ये च विराजमानश्चित्प्रकाशो भावप्राणेष्टरूपः सर्वज्ञत्वादिषड्गुणैश्वर्यवत्त्वाद् **लिङ्ग**मिति व्यवह्रियते। तेष्वेव स्थानेषु विराजमानः प्रकाशो योगभोगत्यागात्मको मायया अपहृतैश्वर्यत्वात् अल्पशक्तिकः सन्नपि ईश्वरानुग्रहाद्विमुक्तपाशः अङ्गशब्दवाच्यो भवति। अयं च पाशो गुरोः कटाक्ष**वेधया** तदुपदिष्ट**मन्त्र**पठनेन तदादिष्ट**क्रिया**लिङ्गशुश्रूषया च परिमुच्यते। अत्र **क्रिया** नाम हृदये निवसतः अङ्गुष्ठपरिमितस्येश्वरस्य चिन्मयस्य

के कारण ही जीव इष्टलिङ्ग (इष्टदेव) की उपासना में प्रवण होता है। जीव का 'अङ्ग' (अङ्गस्थल) नाम इसीलिये युक्तियुक्त है कि वह परमेश्वर के लीलाविलास का स्थान (एक मात्र खिलौना) होता है। इस प्रकार शिर, हृदय और भ्रूयुगल के मध्य भाव, प्राण और इष्ट के रूप में विराजमान सत्‌चित्‌प्रकाशरूप परमशिव सर्वज्ञता आदि षट् ऐश्वर्यसम्पन्न होने के कारण **'लिङ्ग'** कहलाता है।

[**''सर्वज्ञता तृप्तिरनादिबोधः**
स्वतन्त्रता नित्यमलुप्तशक्तिः।
अनन्तशक्तिश्च विभोर्विधिज्ञाः
षडाहुरङ्गानि महेश्वरस्य।।

(पारमेश्वरागम, ६.३३)

इस वचन के अनुसार सर्वज्ञता, तृप्ति, अनादिबोध स्वतन्त्रता, नित्य अलुप्तशक्ति और अनन्त शक्ति ये छः महेश्वर के छः ऐश्वर्य हैं।

जिन स्थानों में परमशिव रहता है, उन्हीं स्थानों में अर्थात् शिरःस्थित सहस्रारचक्र में जहाँ भावलिङ्ग के रूप में परम शिव रहते हैं, वहीं योगाङ्ग का वास है। हृदयवर्ती अष्टदलकमल में विराजमान इष्टलिङ्ग के निकट ही भोगाङ्ग का वास है और भ्रूयुगल मध्य में विराजमान इष्टलिङ्ग के निकट त्यागाङ्ग का वास है।] जहाँ पूर्ण चित्-प्रकाशस्वरूप षडैश्वर्यसम्पन्न परमेश्वर को **लिङ्ग** कहते हैं, वहीं उन्हीं स्थानों में विराजमान माया के आवरण से छः ऐश्वर्यों का अपहरण होने के कारण जीव की शक्ति स्वल्प होती है, तथापि परमेश्वर की परम अनुकम्पा से जब वह आणव, मायीय और कार्म मल पाशबन्धन से मुक्त होता है, **'अङ्ग'** कहलाता है। उसका त्रिविध मलपाश गुरु की वेधादीक्षा, उनके द्वारा प्राप्त मन्त्रदीक्षा और उनके द्वारा आदिष्ट क्रियादीक्षा से कट जाता है। यतः वह जीव गुरुचरणों की कृपापूर्ण दृष्टि से अनुगृहीत हो उनके द्वारा उपदिष्ट मन्त्र का जप और उनके द्वारा प्राप्त इष्टलिङ्ग की सेवा-शुश्रुषा-अर्चन आदि करता है। क्रियादीक्षा में **क्रिया** शब्द का अर्थ यह है कि हमारे हृदयस्थित अष्टदल-कमल में जो अंगुष्ठपरिमित चिन्मय परमेश्वर वास करता

CC0. In Public Domain. Jangamwadi Math Collection, Varanasi

Digitization by eGangotri and Sarayu Trust. Funding by MoE-IKS

गुरुकृपया बहिरानीय समाविष्टे तावत्परिमित एव लिङ्गे प्राणभावनया समर्चनम्। एतादृशार्चनेन जीवो निर्ममो निरहङ्कारश्च सम्पद्यते। अयमेव जीवस्य **कार्मिकमलपाशविमोचनक्रमः**। गुरूपदिष्टं प्रणवसहितं पञ्चाक्षरमहामन्त्रं निरन्तरं जपन् जीवः प्रसन्नचेता भूत्वा विश्वम् आत्मीयतया प्रीणयति। इदमेव जीवस्य **मायीयपाशविमोचनम्**। एवं निरहङ्कारो निर्व्यामोहश्च सः शुद्धो भूत्वा अमृतनाडीद्वारा अमृतस्थानं प्रविश्य तत्रामृतस्वरूपे भावलिङ्गे महाप्रकाशे संयुनक्ति। एतदेव **आणवमलपाशविमोचनं** नाम। एवं भावलिङ्गः संयोगादेव जीवः अणुत्वभावनां नैक्यानुसन्धानं भेदबुद्धिं च परित्यज्य अद्वैतरूपमैक्यानन्दम् अनुभवति। इदमेव **मलपाशविमोचनं** मन्त्रनिर्दिष्टं सम्भाव्यमित्यलं विस्तरेण। देहे जीवेश्वरयोरुभयोरवस्थानम् अत्रैव अग्रे स्पष्टं वक्ष्यते—

''द्वा सुपर्णा सयुजा सखाया समानं वृक्षं परिषस्वजाते।
तयोरन्यः पिप्पलं स्वाद्वत्त्यनश्नन्नन्यो अभिचाकशीति।।'' (श्वे.उ.४/६)

है, गुरुकृपा के कारण उसे बाहर उतने ही परिमाण का (अङ्गुष्ठमात्र का) जो लिङ्ग प्राप्त होता है, उसको प्राण समझ कर पूजन-अर्चन करना। इस प्रकार की अर्चना से भक्त जीव ममता और अहङ्कार से मुक्ति पाता है। यह जीव का कार्मिक मलपाश से मुक्ति का क्रम है। जब जीव गुरु द्वारा उपदिष्ट प्रणवसहित पञ्चाक्षर महामन्त्र **''ॐ नमः शिवाय''** का निरन्तर जप करता हे, तब उसका चित्त प्रसन्न होता है और वह समस्त विश्व को आत्मीयता की भावना से प्रसन्न करता है और यही **मायीय पाशबन्धन से मुक्ति** है। इस प्रकार अहङ्कार और व्यामोह का त्याग कर जीव जब शुद्ध-निर्मल होकर अमृतनाडी द्वारा अमृतस्थान में प्रवेश करता है, तब वह वहाँ महाप्रकाशमय अमृतस्वरूप भावलिङ्ग के साथ संयुक्त होता है। इसी का नाम है **आणव मल पाश से छुटकारा**। इस प्रकार भावलिङ्ग के संयोजन से ही जीव अणुत्वभावना, अनेकता का अनुसन्धान और भेदबुद्धि का परित्याग करते हुए अद्वयरूप एकता के आनन्द का अनुभव करता है। यह इस मन्त्र में इसी मलपाशमुक्ति का **'ज्ञात्वा देवं मुच्यते सर्वपाशैः''** द्वारा निर्देश है। अस्तु, अब विषयविस्तार को विराम देना चाहिये। शरीर में परमेश्वर और जीव दोनों की एकत्र स्थिति को यहीं आगे स्पष्ट किया जायेगा—

''द्वा सुपर्णा सयुजा सखाया समानं वृक्षं परिषस्वजाते।
तयोरन्यः पिप्पलं स्वाद्वत्ति अनश्नन्नन्यो अभिचाकशीति।।''(४/६)

(एक साथ रहने वाले ज्ञान-क्रिया आत्मचैतन्य के कारण समानधर्मा दो पक्षी जीव और शिव एक ही वृक्षतुल्य शरीर का आश्रय लेकर रहते हैं। इन दोनों में अन्यतर पक्षी

CC0. In Public Domain. Jangamwadi Math Collection, Varanasi

Digitization by eGangotri and Sarayu Trust. Funding by MoE-IKS

"समाने वृक्षे पुरुषो निमग्नः अनीशया शोचति मुह्यमानः।
जुष्टं यदा पश्यत्यन्यमीशमस्य महिमानमिति वीतशोकः।।" (श्वे. उ.४/७)

एवं श्रुत्युक्तौ जीवेशौ अङ्गलिङ्गशब्दवाच्यौ देहेऽस्मिन् उपासकोपास्यलीलां निर्वहतः। एवं च जीवो वेधाक्रियामन्त्राख्यया दीक्षया सुसंस्कृतः सन् निर्मलो भूत्वा निरन्तरोपासनेन भावलिङ्गे अमृतमये समरसम् एकीभूय आनन्दम् अनुभवितुं प्रभवति। अयं च आनन्दानुभवः शिवानुग्रहादेव अधिगम्यते॥८॥

जीवेश्वरयोः परस्परवैलक्षण्यमेव पुनः प्रपञ्चयति—

ज्ञाऽज्ञौ द्वावजावीशनीशौ
अजा ह्येका भोक्तृभोग्यार्थयुक्ता।

(जीव) परिपक्व फल (कर्मफल सुख-दुःख आदि) का उपभोग करता है और दूसरा पक्षी (शिव) बिना उसका उपभोग किये मात्र उसका साक्षी रहता है।)

समाने वृक्षे पुरुषो निमग्नो अनीशया शोचति मुह्यमानः।
जुष्टं यदा पश्यत्यन्यमीशमामस्य महिमानमिति वीतशोकः।।(४/७)

[माया के कारण मोहपाश में पड़नेवाला जीव वृक्षतुल्य शरीर में तदाकार होकर शोकग्रस्त रहता है और वह उपासना से प्रसन्न होने वाले परमशिव का जब साक्षात्कार करता है और उसके षट् ऐश्वर्य का अनुभव करता है, तब उसका शोक दूर होता है। (पूज्यपूजकभाव के लिये शिव और जीव दोनों में भेदज्ञान आवश्यक होता है।)

इस प्रकार श्रुति जीव और शिव का वर्णन करती है, जिन्हें यथाक्रम 'अङ्ग' और 'लिङ्ग' नाम से जाना जाता है। वे इस शरीर में रहते हुए उपासक और उपास्य की लीला का निर्वाह करते हैं और इस प्रकार जीव वेधा, क्रिया और मन्त्र त्रिविध दीक्षा से संस्कारसम्पन्न होने के कारण निर्मल-शुद्ध होकर निरन्तर उपासना के द्वारा अमृतमय भावलिङ्ग में एकरस, समरस होकर आनन्दानुभव करने में समर्थ होता है। और यह आनन्दानुभूति परमशिव के अनुग्रह से ही प्राप्त होती है।

मन्त्रार्थ— यह सम्पूर्ण जगत् क्षर व्यक्त (प्रकृत) और अक्षर अव्यक्त (पुरुष) स्वरूप है, जिसका भरण परशिवब्रह्म करता है। यतः जीवात्मा अपने को भोक्ता समझता है, अतः वह मलत्रयपाश के बन्धन में पड़ता है। वह परमेश्वर के साक्षात्कार से बन्धनमुक्त होता है।।८।।

अवतरण— पुनश्च श्रुति जीव और शिव की परस्पर विलक्षणता को इस प्रकार प्रदर्शित कर रही है—

CC0. In Public Domain. Jangamwadi Math Collection, Varanasi

Digitization by eGangotri and Sarayu Trust. Funding by MoE-IKS

अनन्तश्चात्मा विश्वरूपो ह्यकर्ता
त्रयं यदा विन्दते ब्रह्ममेतत्।।९।।

ज्ञाऽज्ञौ इति। **ज्ञः** सर्वज्ञः ईश्वरः, **अज्ञः** अनभिज्ञो जीवः, एतौ उभावपि **अजावेव** अनादी एव। परन्तु **ईशनीशौ** आद्यः ईशः, द्वितीयः अनीशः। एवम् **एका** अन्या **अजा** प्रकृतिरपि अस्ति। **''प्रकृतिं पुरुषं चैव विद्ध्यनादी उभावपि''** इति हि गीता (१३/१९)। प्रकृतेः कार्यमाह–**भोक्तृभोग्यार्थयुक्ते**ति। भोक्तुः जीवस्य भोग्यभूतैः अर्थैः शब्दादिविषयैः युक्ता। एवं च ईश्वरः, जीवः, प्रकृतिः इति त्रयाणामप्यजत्वमुक्तम्। **अनन्तः** सर्वव्यापकः परमेश्वरो **हि** यस्मात् **विश्वरूपः,** न तु अणुः कर्मपरवशः अज्ञः। अतः **अकर्ता** पुण्यपापाद्यकर्ता। अतो न ईश्वरो भोक्ता। एवं जीवेश्वरयोर्वैलक्षण्यमुक्तम्। **एतत् त्रयम्** एतादृशं परस्परवैलक्षण्यं

'ज्ञाऽज्ञौ' इत्यादि। शिव और जीव यद्यपि दोनों अनादि अजन्मा हैं, तथापि उन दोनों में शिव 'ज्ञ' अर्थात् सर्वज्ञ और जीव 'अज्ञ' अनभिज्ञ है। इसी प्रकार प्रथम शिव **'ईश'** सबका स्वामी है, परन्तु दूसरा जीव **'अनीश'** परतन्त्र है। **'अजा ह्येका'** इत्यादि। उसी प्रकार (प्रकृति और पुरुष शिव दोनों में) अन्यतर प्रकृति भी **'अजा'** अनादि, जन्मरहित है। जैसा कि गीतावचन है—

प्रकृतिं पुरुषं चैव विद्ध्यनादी उभावपि'' (१३/१९)

जिसका हिन्दी पद्यानुवाद इस प्रकार है—

''यह प्रकृति एवं पुरुष दोनों ही अनादि विचार हैं।''

(श्रीकृष्णगीता १३/१९)

प्रकृति का कार्य उसके विशेषण द्वारा निरूपित है— **''भोक्तृभोग्यार्थयुक्ता।''** देहधारी जीव विषयोपभोग करता है, अत एव वह **'भोक्ता'** है। प्रकृति उसके उपभोगयोग्य शब्द-रूप-रस-गन्ध आदि विषयों को सम्पादित करती है। इस प्रकार शिव, जीव और प्रकृति तीनों का जन्मराहित्य इस मन्त्र में निरूपित है।

'अनन्तश्चात्मा' इत्यादि। परमशिव परमात्मा **'अनन्त'** अन्तरहित सर्वव्यापक है अतएव समग्र विश्व ही उसका स्वरूप है। वह जीव के समान 'अणु' कर्मपरवश और **'अज्ञ'** नहीं है। इसीलिए वह **'अकर्ता'** कर्तृत्वादि अभिमानरहित है। वह पुण्य-पाप आदि कर्म नहीं करता। इसीलिये ईश्वर (शिव) भोक्ता (उपभोगकर्ता) भी नहीं है। (क्योंकि उपभोग के लिये देहधारण आवश्यक है।) यही जीव और शिव की विलक्षणता है।

'त्रयं यदा' इत्यादि। जब जीव इन तीनों (प्रकृति, पुरुष, शिव और स्वयं की) परस्पर विलक्षणता को जानता है, उसी समय वह **'ब्रह्म'** अर्थात् बृहत् और बृंहणशील

CC0. In Public Domain. Jangamwadi Math Collection, Varanasi

Digitization by eGangotri and Sarayu Trust. Funding by MoE-IKS

यदा जानाति यदा पश्यति जीवः, तदैव **ब्रह्मं** परशिवम् आनन्दमयं भावलिङ्गं **विन्दते** प्राप्नोति, ऐक्यसुखमनुभवति। पूर्वमप्युक्तम् **''पृथगात्मानं प्रेरितारं च मत्वा जुष्टस्ततस्तेनामृतत्वमेति''** इति।।९।।

पुनरपि तेषां वैलक्षण्यं विशदयति—

क्षरं प्रधानममृताक्षरं हरः
क्षरात्मानावीशते देव एकः।
तस्याऽभिध्यानाद् योजनात् तत्त्वभावाद्
भूयश्चान्ते विश्वमायानिवृत्तिः।।१०।।

क्षरं प्रधानम् इति। **प्रधानं** प्रकृतिः, **क्षरं** क्षरणस्वभावं सततविकारवत्। **हरः** मलपाशहरणात् भावप्राणेष्टरूपः परमेश्वरः। सः **(अमृताक्षरम्)** अमृतं च

आनन्दमय परमशिवस्वरूप भावलिङ्ग का साक्षात्कार करते हुए सामरस्यमय एकात्मता के सुख का अनुभव करता है।

[**''ईशनीशौ''** — यह वैदिक प्रयोग है, लौकिक प्रयोग में **''ईशानीशौ''** रूप होगा। जैसा कि शाङ्करभाष्य है— **''ईशनीशौ-छान्दसं ह्रस्वत्वम्''** पूर्व में षष्ठ मंत्र में ही कहा गया है— ''पृथगात्मानं प्रेरितारं च मत्वा जुष्टस्ततस्तेनाऽमृतत्वमेति।''

इसी प्रकार **'ब्रह्मम्'** यह मकारान्त प्रयोग भी वैदिक है। जैसा कि **शाङ्करभाष्य** है— **''ब्रह्ममिति मकारान्तं** 'ब्रह्ममेतु मां मधुमेतु माम्' **इतिवच्छान्दसम्''**।]

मन्त्रार्थ— शिव और जीव दोनों अजन्मा होने पर भी शिव सर्वज्ञ है और जीव अल्पज्ञ। शिव स्वतन्त्र, सर्वसमर्थ है, तो जीव परतन्त्र-असमर्थ। केवल एकमात्र प्रकृति जन्मरहित होने पर भी उपभोगक्षम देहधारी जीव के लिये उपभोगयोग्य शब्दादि-विषयसामग्री सम्पादित करती है। परमशिव सर्वव्यापक है। समग्र विश्व उसका स्वरूप है। वह पुण्यपापादिकर्मपरवश नहीं है। जीव जब इन तीनों को शिव और प्रकृति के साथ स्वयं को जानते हुए परमशिव के आनन्दमय भावलिङ्ग का साक्षात्कार करता है, तभी सामरस्य-सुखानुभव करता है, वही ब्रह्म है।।९।।

अवतरण— पुनश्च इस मन्त्र में प्रकृति, शिव और जीव इन तीनों की विलक्षणता का विशद वर्णन की गयी है—

'क्षरं प्रधानम्' इत्यादि। प्रधान अथवा प्रकृति का स्वभाव **'क्षर'** (निरन्तर क्षरणशील) है। **'त्रिविधं मलपाशं हरतीति हरः'** इस निर्वचन के अनुसार त्रिविध आणव-मायीय और कार्मिक मलपाशों का हरण करने के कारण परशिव 'हर' नाम से

CC0. In Public Domain. Jangamwadi Math Collection, Varanasi

Digitization by eGangotri and Sarayu Trust. Funding by MoE-IKS

तत् अक्षरं च। अमृतरूपो जरामरणरहितो मृत्युञ्जयः, अक्षररूपश्चाऽविनाशी। यः एतादृश **एको देवः** सः **क्षरात्मानौ** प्रकृतिपुरुषौ देहजीवौ, **ईशते** नियमति, तदुभयनियामकः सम्पद्यते। **तस्य** सूक्ष्मशरीरभूते हृदये विराजमानस्य अङ्गुष्ठपरिमितस्य प्राणलिङ्गरूपिणः चिन्मयस्य परमेश्वरस्य, **अभिध्यानात्** अभितो ध्यानात्, नैरन्तर्येण चिन्तनात्। **योजनात्** भ्रूमध्ये स्थितस्येष्टलिङ्गाख्यस्य आनन्दमयस्य परमात्मनो नित्याभियोगसम्पादनार्थं स्थूलदेहे यावज्जीवमर्चनार्थं **धारणात्, तत्त्वभावात्** एवमन्तरनुसन्धानेन बहिरुपासनार्थं निरन्तरधारणेन च शिरसि सहस्रारकमले लीलया विहरता सद्रूपेण भावलिङ्गाख्येन परमात्मना सह जीवस्य सामरस्यानुभवात्। एवम् इष्टप्राणभावलिङ्गरूपस्य मूर्तामूर्तात्म-कस्य परमेश्वरस्य **भूयः** पुनः पुनः निर्मलमनस्यनुसन्धानात्, कराभ्यामर्चनात्, भावैक्यानुभावाच्च, **अन्ते** आणवमायीयकार्मिकाख्यमलपाशनिवृत्तौ **विश्वमायानिवृत्तिः** कारणसूक्ष्मस्थूलशरीरेषु सर्वत्राऽऽवृताया मायाया मोहकारिण्यास्तदाख्याया ब्रह्मनिष्ठायाः सत्त्वजस्तमोगुणात्मिकायाः शक्तेः समग्रतया निवृत्तिः सम्भवति।

संकेतित हैं, वे भाव, प्राण और इष्टरूप से [यथाक्रम कारणशरीर के शिरःस्थित सहस्रारचक्र में, सूक्ष्मशरीर के हृदयस्थित अष्टदलकमल में और स्थूलशरीर के भ्रूयुगलमध्य में इष्टरूप से] विराजमान हैं। वे (मरणधर्मरहित होने के कारण) अमृतस्वरूप और 'अक्षर' (क्षरणरहित) हैं। इस प्रकार का द्योतनशील प्रकाशस्वरूप एकमात्र परमशिव (महादेव) क्षर-प्रकृति और ब्रह्मपुर (देह) में शयन करनेवाले जीवात्मा दोनों का नियमन करता है, दोनों को नियन्त्रण में रखता है। सूक्ष्मशरीरस्वरूप हृदय के अष्टदलकमल में अङ्गुष्ठपरिमाण के प्राणलिङ्गस्वरूप चिन्मय परमशिव के निरन्तर ध्यान से भ्रूयुगलमध्यवर्ती इष्टलिङ्गस्वरूप आनन्दमूर्ति परमशिव के साथ नित्यसम्पर्क के लिये स्थूल देह के ऊपर कण्ठ में आजीवन उसके धारण से और इस प्रकार उसकी आन्तर और बाह्य उपासना द्वारा शिरःस्थित सहस्रारचक्र में लीला-विलास करने वाले भावलिङ्गस्वरूप परमशिव की तत्वभावानुभूति-सामरस्यानुभूति से इस प्रकार त्रिविध लिङ्ग के रूप में मूर्त-अमूर्त (साकार-निराकार) निर्मल मन में परमशिव का एकाग्रभाव से ध्यान करने से, दोनों हाथों में लेकर पूजन-अर्चन से और भावात्मक सामरस्यानुभव से जीवात्मा जब अन्त में आणव, मायीय और कार्मिक मलपाशों से छुटकारा पाता है, तब कारणशरीर, सूक्ष्मशरीर और स्थूलशरीर पर सर्वत्र पडा हुआ माया का परदा, जो मोह में डालता है, वह हट जाता है। दूसरे शब्दों में परमशिव परब्रह्म के साथ अभिन्नरूप से विद्यमान सत्व-रज-तम-त्रिगुणात्मिका शक्ति (प्रकृति) समग्र रूप से हट जाती है। 'शिवागम' में माया का निर्वचन इस प्रकार है—

CC0. In Public Domain. Jangamwadi Math Collection, Varanasi

Digitization by eGangotri and Sarayu Trust. Funding by MoE-IKS

"मं शिवं परमं ब्रह्म अयतीति स्वभावतः।
मायेति प्रोच्यते लोके ब्रह्मनिष्ठा सनातनी।।"

इति शिवागमे मायाशब्दनिर्वचनाद् **माया** नाम परशिवब्रह्मनिष्ठा सनातनी शक्तिः। सा च शिवस्य सकाशादेव बहिरागत्य तस्यैव विनोदाय जगद्रूपेण परिणम्य पुनः प्रलये तस्मिन्नेव विलीयत इत्यनुभविनो वदन्ति। एतादृशी माया जीवं सर्वत्र व्यावृत्य मोहयति। एतन्मोहस्याऽऽत्यन्तिकनिवृत्तये देहत्रैविध्ये लिङ्गत्रैविध्योपासनमेव भैषज्यतया विहितम्। एतादृशम् उपासनात्रैविध्यं भगवान् **बादरायणोऽ**पि जीवमुख्यप्राणलिङ्गाधिकरणे उपदिशति—

"अनन्याश्चिन्तयन्तो मां ये जनाः पर्युपासते।
तेषां नित्याभियुक्तानां योगक्षेमं वहाम्यहम्।।"
(गीता ९/२२)

"मं शिवं परमं ब्रह्म अयतीति स्वभावतः।
मायेति प्रोच्यते लोके ब्रह्मनिष्ठा सनातनी।।"

(**'मम् अयतीति माया।'** 'म' का अर्थ है परब्रह्म-परमशिव। उसके पास स्वभावतः ब्रह्मनिष्ठ सनातन लोक में जो जाती है, उस शक्ति को 'माया' कहते हैं।)

इस निर्वचन के अनुसार 'माया' वह सनातन शक्ति है, जो परमशिवस्वरूप परब्रह्म के साथ अविनाभाव सम्बन्ध से रहती है। वही आन्तरिक शक्ति परमशिव के निकट से उसके विनोद के लिये बाहर आकर जगत् का आकार ग्रहण करती है और प्रलयकाल में उसी में विलीन होती है ऐसा अनुभवी लोग कहते हैं। इस प्रकार की माया जीव को चारों ओर से घेर कर मोह में डालती है। इस प्रकार का मोह अथवा अज्ञानरोग है, जिसकी दूर करने के लिये त्रिविध शरीर में त्रिविध लिङ्ग की उपासना का औषधि के रूप में विधान किया गया है। इस प्रकार की त्रिविध उपासना का उपदेश **भगवान् वेदव्यास** ने भी **श्रीमद्भगवद्गीता** के **जीवमुख्यप्राणलिङ्गाधिकरण** में दिया है—

"अनन्याश्चिन्तयन्तो मां ये जनाः पर्युपासते।
तेषां नित्याभियुक्तानां योगक्षेमं वहाम्यहम्।।" (गीता ९/२२)

भगवान् श्रीकृष्ण अर्जुन के व्याज से जीवात्मा को कहते हैं—

"जो जन मुझे भजते सदैव अनन्य भावापन्न हो।
उनका स्वयं मैं ही चलाता योगक्षेम प्रसन्न हो।।"
(श्रीकृष्णगीता ९/२२)

CC0. In Public Domain. Jangamwadi Math Collection, Varanasi

Digitization by eGangotri and Sarayu Trust. Funding by MoE-IKS

इति **भगवद्गीतायां** पराप्रकृतिरूपः परमात्मा अनन्याश्रितानां नित्यसम्पर्कवतां परमभक्तानां योगक्षेमनिर्वाहकः सम्पद्यत इत्यसन्दिग्धतया प्रतिशृणोति। अत्र नित्याभियुक्ताः परमेश्वरस्य नित्याभियोगं निरन्तरसम्पर्कम् अधिगतवन्त इत्यर्थो ज्ञायते। एतादृशः सम्पर्कः परशिवब्रह्मरूपिणो लिङ्गस्य निरन्तरं देहे अन्तर्बहिर्धारणादेव सम्भवति। ब्रह्मलक्षणं तु जगद्व्यापकत्वमेव। तच्च अखण्डजगदाकारत्वं तदाश्रयत्वमिति च विश्रुतम्। एवं सर्वजगदाश्रयत्वात् परशिवब्रह्म अखण्डं लिङ्गं स्थलमिति च वदन्ति लिङ्गतत्त्वविशारदाः। एतादृशम् अगम्यम् अप्रमाणम् अगोचरं च लिङ्गं परशिवब्रह्माख्यम् अव्याजप्रेम्णा मानवशरीरे पूर्वोक्तेषु त्रिषु स्थानेषु भावप्राणेष्टरूपतया भक्तानुग्रहलीलायै स्वयं विराजते। अत एवोक्तम् उपासनात्रैविध्यं भगवता **बादरायणेन**। तच्चाऽस्मिन् मन्त्रे अभिध्यानमिति, योजनमिति, तत्त्वभावश्चेति शब्दैः निरूप्यते। एतादृश्या उपासनायाश्च फलं मायापाशस्याऽऽत्यन्तिकनिवृत्तिरूपमिति अत्रैव निर्दिष्टम्। परं तु न ह्येकदा प्रयुक्तोपासना तादृशं फलं प्रदातुं प्रभवेत्, किन्तु भूयो भूयः

इस प्रकार भगवद्गीता में पराप्रकृतिस्वरूप परमात्मा नित्य सम्पर्क स्थापित करनेवाले अपने आश्रित अनन्य परम भक्तों के योगक्षेम की प्रतिज्ञा कर रहे हैं यह निःसंदिग्ध है। इस पद्य में **'नित्याभियुक्त'** पद का ''जो परमेश्वर से नित्य सम्पर्क करें वे भक्त'' यह अर्थ होता है। इस प्रकार का सम्पर्क परशिव-परब्रह्मस्वरूप परमात्मा के आन्तर एवं बाह्य रूप से त्रिविध लिङ्ग के निरन्तर धारण करने से ही सम्भव है। (**'बृहत्वाद् बृंहणत्वाच्च ब्रह्मशब्दाभिधेयकम्'** (सि.शि.म.६.३८) इस निर्वचन के अनुसार) ब्रह्मशब्द का लक्षण तो जगत् का व्यापकस्वरूप ही है। और वह लक्षण जगत् के अखण्डस्वरूप और उसके आश्रयस्वरूप होने के कारण प्रसिद्ध है। इस प्रकार 'लिङ्गतत्त्व' के विशारद परमशिव परब्रह्म को समग्र जगत् का आधार होने के कारण **'अखण्ड', 'लिङ्ग'** और **'स्थल'** कहते हैं। इस प्रकार का अज्ञेय, अप्रमाण और अदृश्य परशिवब्रह्म नामक लिङ्ग मानव के शरीरस्थित पूर्वोक्त तीन स्थानों में भाव, प्राण और इष्टरूप से भक्तों पर अनुग्रह करने के लिये स्वयं विराज़मान हैं। इसीलिए भगवान् बादरायण (वेदव्यास) ने त्रिविध उपासना का विधान किया है। वही त्रिविध उपासना इस मन्त्र में 'अभिध्यान', 'योजन' और 'तत्वभाव' इन तीन शब्दों से संकेतित है। इस प्रकार की उपासना का फल है मायापाश की आत्यंतिक निवृत्ति। उसका भी निरूपण इस मंत्र में है। परन्तु इस प्रकार की उपासना एक बार करने से फलवर्ती नहीं होती, अपितु वारंवार करने से होती है और मलपाश का समूल विनाश करती हुई भावलिङ्ग के साथ सामरस्यात्मक एकात्मकता का विशिष्ट फल प्रदान करती है। अस्तु, विषय विस्तार को विराम देना चाहिये।

CC0. In Public Domain. Jangamwadi Math Collection, Varanasi

Digitization by eGangotri and Sarayu Trust. Funding by MoE-IKS

प्रयुक्तैव सा समूलघातं मलपाशं हत्वा भावलिङ्गैक्यरूपं विशिष्टं फलं प्रदद्यादित्यलमतिप्रसङ्गेन। विशेषश्चात्र **शक्तिविशिष्टाद्वैतदर्शनस्य** द्वितीयभागे सम्प्रदायाख्ये द्रष्टव्यः।।१०।।

एवं परशिवब्रह्म अन्तर्बहिर्ध्यायतः फलभेदं दर्शयति—

ज्ञात्वा देवं सर्वपाशापहानिः
क्षीणैः क्लेशैर्जन्ममृत्युप्रहाणिः।
तस्याभिध्यानात् तृतीयं देहभेदे
विश्वैश्वर्यं केवल आप्तुकामः।।११।।

''ज्ञात्वा देवम्'' इति। एवंरूपं **देवं** दिव्यप्रकाशं क्रीडार्थमेव सर्वं जगद्व्यापारं निर्वहत् परशिवब्रह्माख्यम् अखण्डं लिङ्गं **ज्ञात्वा** ज्ञानपूर्वकं ध्यात्वा, अथवा ध्यानस्यापि ज्ञानविशेषरूपत्वात् ज्ञात्वा, ध्यात्वेत्येवार्थः। जीवस्य **सर्वपाशापहानिः**

इसका विशेष विवरण (भाष्यकार द्वारा निर्मित) **'शक्तिविशिष्टाद्वैतदर्शन'** नामक ग्रन्थ के सम्प्रदाय नामक द्वितीय भाग में देखना चाहिये।

मन्त्रार्थ— प्रकृति 'क्षर' अर्थात् सतत विकारयुक्त और 'हर' परमशिव अमृतस्वरूप और 'अक्षर'-क्षरणरहित होता है। एकमात्र परमशिव ही प्रकृति और जीवात्मा दोनों पर शासन करता है। उसके निरन्तर चिन्तन, सतत संयोजन और सामरस्यस्वरूप ऐक्यभाव से परममोहकारिणी सर्वत्र आवरणस्वरूपा ब्रह्मनिष्ठ माया का निवारण होता है।।१०।।

अवतरण— जो इस प्रकार परशिव ब्रह्म का अन्तर्बाह्य ध्यान करता है, उसके विभिन्न फल उसे प्राप्त होते हैं। इसी का निरूपण श्रुति इस प्रकार कर रही है—

'ज्ञात्वा देवम्' इत्यादि। इस प्रकार जो दिव्य चित्प्रकाशस्वरूप केवल लीला करने के लिये ही समस्त विश्व का व्यापार करने वाले परशिवब्रह्म नामक अखण्डलिङ्ग का ज्ञानपूर्वक चिन्तन करता है अथवा ध्यान ज्ञानस्वरूप होने के कारण जो परशिवब्रह्म का ध्यान करता है, उस जीवात्मा के बन्धहेतु समस्त पाशों का अर्थात् **पातञ्जलयोगदर्शन**सम्मत अविद्या-अस्मिता-राग-द्वेष और अभिनिवेश नामक पांच क्लेशों का पूर्ण विनाश होता है। इस प्रकार जो मलपाशस्वरूप हैं उन पांच क्लेशों का क्षय होने के कारण वह उन क्षीण दुःखों द्वारा जन्म-मृत्यु के संसारचक्र में भ्रमण से छुटकारा मिलता है।

इस प्रकार संसारचक्र में भ्रमण से छुटकारा मिलने पर पुनश्च क्या होता है? इस प्रश्न का यह समाधान है— **'तस्याऽभिध्यानात्'** इत्यादि। भाव-प्राण और इष्टरूप से

CC0. In Public Domain. Jangamwadi Math Collection, Varanasi

Digitization by eGangotri and Sarayu Trust. Funding by MoE-IKS

सर्वेषां पाशानां बन्धहेतूनाम् अविद्याऽस्मितारागद्वेषाभिनिवेशाख्यानां पञ्चक्लेशानाम् अपहानिः पूर्णविनाशः सम्पद्यते। एवं मलपाशरूपाणां क्लेशानां संक्षयात् **क्षीणैः क्लेशैः जन्ममृत्युप्रहाणिः** जननमरणाख्यं संसारचक्रभ्रमणं निवर्तते। एवं भ्रमणनिवृत्तेः किं भवतीत्यत्रोच्यते— **तस्याभिध्यानादित्यादिना। तस्य** भावप्राणेष्टरूपस्य चित्प्रकाशाख्यस्य परशिवलिङ्गस्य **अभिध्यानात्** निरन्तरानुसन्धानात्, **देहभेदे** शिवदीक्षया विशुद्धे प्रणवपञ्चाक्षरीमन्त्रपूते परमपवित्रे अस्मिन्नेव प्रसादकाये, **तृतीयं** फलं **विश्वैश्वर्यम्,** आद्यं फलं सर्वपाशापहानिरित्युक्तम्, द्वितीयं फलं जन्ममृत्युप्रहाणिरित्युक्तम्। अतो विश्वैश्वर्यं तृतीयं फलमित्युच्यते। विश्वैश्वर्यं नाम पारमैश्वर्यं निग्रहानुग्रहसामर्थ्यम्। ईश्वरस्य भाव ऐश्वर्यं सर्वजगन्नियामकत्वम्। **''ब्रह्मविद् ब्रह्मैव भवति''** इत्युक्तं श्रुतावेव। एवं मुक्तस्य परमेश्वरभावः सर्वत्रोच्यते।

''यदा सर्वे प्रमुच्यन्ते कामा येऽस्य हृदि स्थिताः।
अथ मर्त्योऽमृतो भवत्यत्र ब्रह्म समश्नुते।।'' (बृ.उ.६.१४)

इति श्रुत्या हृदयविकासेन यदा सर्वे कामा अत्यन्तं निवर्तन्ते, तदा अत्रैव अस्मिन्नेव जन्मनि प्रसादरूपेण परिणते देहे जीवो निर्मलो भूत्वा अमृतः

त्रिविध चित्प्रकाशस्वरूप परशिव लिङ्ग के **'अभिध्यान'** अर्थात् निरन्तर चिन्तन के कारण हमारा (जीवात्मा का) प्रसादकाय शिवदीक्षा द्वारा— प्रणव पूर्वक पञ्चाक्षरमन्त्र **'ॐ नमः शिवाय'** की दीक्षा द्वारा पवित्र होता है, तब उसका तीसरा फल होता है विश्वैश्वर्य की प्राप्ति। इसका प्रथम फल समस्त पाशों का विनाश और द्वितीय फल जन्म-मरण से छुटकारा कहा गया है। यहाँ **'विश्वैश्वर्य'** का अर्थ है परमेश्वर की ऐश्वर्यशक्ति अर्थात् पापियों पर निग्रह (दण्डदान) और पुण्यात्माओं पर अनुग्रह (वरदानादि) का सामर्थ्य। ईश्वर का भाव ही **'ऐश्वर्य'** अर्थात् समस्त जगत् पर नियन्त्रण रखना होता है। श्रुति कहती है— **'ब्रह्मविद् ब्रह्मैव भवति।'** ब्रह्मज्ञानी ब्रह्मस्वरूप होता है। इस प्रकार ब्रह्मस्वरूप जो ब्रह्मज्ञानी मुक्त होता है, उसमें परमेश्वर का भाव सर्वत्र वर्णित है—

''यदा सर्वे प्रमुच्यते कामा येऽस्य हृदि स्थिताः।
अथ मर्त्योऽमृतो भवत्यत्र ब्रह्म समश्नुते।।''

"जब जीवात्मा को हृदयस्थित सभी कामनाओं से छुटकारा मिलता है, तब मरणधर्मा जीव अमर हो जाता है और ब्रह्मास्वाद में मग्न होता है'' यह इस श्रुति का अर्थ है। इस प्रकार की अमृतत्व की स्थिति जीवात्मा को प्राप्त करनी चाहिये, जो परशिवब्रह्म

CC0. In Public Domain. Jangamwadi Math Collection, Varanasi

Digitization by eGangotri and Sarayu Trust. Funding by MoE-IKS

सम्पद्यते। एतादृशी अमृतस्थितिरेव जीवेनाऽधिगन्तव्यम् अन्तिमं पारमैश्वर्यम् अत्र तृतीयं फलमित्यभिधीयते। एतत्प्राप्तये अन्यत्र गन्तुम् आवश्यकता नास्ति जीवस्य—

"इह चेदवेदीदथ सत्यमस्ति न चेदिहावेदीन्महती विनष्टिः" (२/५)

इति **केनोपनिषदि** इहाऽस्मिन्नेव मन्त्रपूते दीक्षाग्निदग्धे शरीरे यद्यात्मस्वरूपम् अनुभूयते तदैवायं मर्त्यः सत्यः, अमृतः सम्पद्यते। यदि प्रमादादात्मस्वरूपमत्र नानुभूयते, तदा न कुत्रापि तदधिगन्तुं शक्नोति मानवः। अत्रैव तादृशफलानुभवाय दीक्षाग्निसंस्कृत एव निर्मलो जीवः शक्नोति। संस्काररहितस्तु एतादृशं फलम् अधिगन्तुं न पारयति। अयं चाशयः **ऋग्वेदे** सम्यगाविष्क्रियते। तत्रायं मन्त्रः—

पवित्रं ते विततं ब्रह्मणस्पते प्रभुर्गात्राणि पर्येषि विश्वतः।
अतप्ततनूर्न तदा मोऽश्नुते' इति।

अस्यायमाशयः— मन्त्रद्रष्टा महर्षिरेवं ब्रवीति— **"ब्रह्मणस्पते! ब्रह्मणोऽधिपतिर्ब्रह्मा शिवो मे अस्तु सदाशिवोम्"** इत्युक्तदिशा सृष्टिकर्तुश्चतुर्मुखब्रह्मणोऽपि

के निरन्तर ध्यान का अन्तिम फल है और वही है पारमैश्वर्य। उसी को इस मन्त्र में तृतीय फल नाम से संकेतित किया है। इसकी प्राप्ति के लिये जीव को अन्यत्र जाने की आवश्यकता नहीं है।

"इह चेदवेदीदथ सत्यमस्ति, न चेदिहाऽवेदीन्महती विनष्टिः" इस केनोपनिषद् (२/५) के मन्त्रानुसार इस मन्त्रपवित्र दीक्षा की अग्नि से भस्मसात् शरीर में यदि जीव आत्मस्वरूप का साक्षात्कार करता है, तभी वह मरणधर्मा जीव सत्यस्वरूप मृत्युधर्मरहित हो जाता है। यदि मानव प्रमादवश आत्मस्वरूप की अनुभूति नहीं करता, तब वह कहीं भी जाने में समर्थ नहीं होता। उसकी महती हानि होती है। और यहीं मन्त्रदीक्षा की अग्नि से संस्कृत जीव ही इस प्रकार का अनुभव प्राप्त करने में समर्थ होता है। संस्काररहित मनुष्य तो इस प्रकार का फल पा ही नहीं सकता। और यह आशय ऋग्वैदिक मन्त्र में समुचित रीति से प्रकट किया गया है—

"पवित्रं ते विततं ब्रह्मणस्पते !
प्रभुर्गात्राणि पर्येषि विश्वतः।
अतप्ततनूर्न तदामोऽश्नुते।।"

इस मन्त्र का यह आशय है। मन्त्रद्रष्टा महर्षि इस प्रकार कह रहे हैं— **"ब्रह्मणस्पते।"** यह सम्बोधन उस परशिव ब्रह्म के लिये है, जो सृष्टिकर्ता चतुर्मुख ब्रह्मदेव का भी नियमन

CC0. In Public Domain. Jangamwadi Math Collection, Varanasi

Digitization by eGangotri and Sarayu Trust. Funding by MoE-IKS

नियामकत्वेन व्यवस्थित! हे परशिवब्रह्म! **ते विततं** विस्तृतं रूपं लिङ्गाख्यं सर्वपावयितृत्वात् पवित्रमिति यत् व्यवह्रियते तादृशः **प्रभुः** सर्वरक्षणसमर्थः सन्नपि परमात्मा त्वं गात्राणि विविधान्यपि मानवस्य स्थूल-सूक्ष्म-कारणशरीराणि सर्वत्र **विश्वतः पर्येषि** इष्टप्राणभावरूपेण व्याप्य तिष्ठसि'' इति स्वदेहे स्वस्य हिताय तिष्ठन्तं परशिवलिङ्गं स महर्षिः ससन्तोषं सम्बोधयति। एतादृशलिङ्गविज्ञानेन महर्षिर्धन्यमात्मानं मन्यते। यतो यः **तप्ततनुः** दीक्षाग्नित्रयेण निर्दग्धमलत्रयः, स एवोत्तमसंस्काराद् अन्तर्बहिश्च परशिवलिङ्गं प्राणभावनया धारयितुम् अर्चयितुं च शक्नोति। **(अतप्ततनुः)** अनधिगततादृशदीक्षासंस्कारस्तु जीवः **आम** इत्यभिधीयमानः, तत् लिङ्गं **(नाश्नुते)** नाप्नोति ज्ञातुम् उपासितुं ध्यातुं च न पारयति। एवं सुसंस्कृत एव जीवो देहे परिशुद्धो भूत्वा शिवसायुज्यम्

(नियन्त्रण) कर्ता है। जैसा कि परशिव सदाशिव ब्रह्म के लिये कहा गया है— **''ब्रह्मणोऽधिपतिर्ब्रह्मा शिवो मे अस्तु सदाशिवोम्।''**

[''ब्रह्मदेव के भी अधिपति परशिव ब्रह्म मेरे लिये सदाशिव (सर्वदा मङ्गलमय) हों, ॐ'']

''**ब्रह्मणस्पते !** = ब्रह्मदेव के अधिपति हे परशिवब्रह्म! **'ते'** = तुम्हारा, **विततम्** = विस्तृत लिङ्ग, **पवित्रम्** = जो सभी लोगों को पावन करने के कारण पवित्र कहा जाता है, **प्रभुः** = इसप्रकार सभी का रक्षा करने में समर्थ होने पर भी परमेश्वर तुम, **गात्राणि** = मनुष्य के अनेकविध स्थूल, सूक्ष्म और कारण शरीर को, **विश्वतः पर्येषि** = सभी ओर से इष्ट, प्राण और भाव रूप से व्याप्त कर रहते हो।'' इस प्रकार मन्त्रद्रष्टा महर्षि स्वकीय शरीर में अपना ही कल्याण करने के लिये विराजमान परशिव लिङ्ग को सन्तोषपूर्वक सम्बोधित कर रहे हैं और लिङ्गस्वरूप का साक्षात्कार कर स्वयं को धन्य समझ रहे हैं। क्योंकि जो **'तप्ततनू'** होता है अर्थात् वेधादीक्षा, मन्त्रदीक्षा और क्रियादीक्षास्वरूप त्रिविध दीक्षा की अग्नि से जिसके आणव मायीय और कार्मिक त्रिविध अज्ञानमल भस्मसात् होते हैं, वही उत्तमसंस्कार के कारण आन्तरिक और बाह्यरूप से परशिवलिङ्ग को अपना प्राण समझकर धारण और पूजन में समर्थ होता है। जो **'अतप्ततनू'** अर्थात् त्रिविधदीक्षाग्नि-संस्काररहित होता है उस जीव को **'आम'** कहते हैं। वह जीव न तो वह लिङ्ग प्राप्त कर सकता है, न उसका स्वरूपज्ञान कर सकता है, न उसकी उपासना कर सकता है और न उसका ध्यान कर सकता है।

''देहभेदे विश्वेश्वर्यं केवल आप्तुकामः''— इस प्रकार दीक्षासंस्कार से सुसंस्कृत जीव ही अपने देह में निर्मलता, शुद्धता का अनुभव कर शिवसायुज्य का अनुभव कर

CC0. In Public Domain. Jangamwadi Math Collection, Varanasi

Digitization by eGangotri and Sarayu Trust. Funding by MoE-IKS

अनुभवितुं शक्नोतीत्यभिप्रायः **'देहभेदे'** इति पदेन बोध्यते। इयमेव **'जीवन्मुक्तिरि'**ति अभिधीयते। यः अत्रैव परशिवब्रह्मभावम् अधिगच्छति, स नित्यैश्वर्यमनुभवन् नित्यमुक्तः सम्पद्यते। आप्तुकामः य एतादृशं नित्यवैभवम् अस्मिन्नेव सुसंस्कृते देहे, अधिगम्याऽनुभवितुम् इच्छति, स मुमुक्षुः मुक्तिं प्राप्तुं कामः इच्छा उद्देश्यं यस्य तादृशः सन् **केवलः** सर्वपाशविनिर्मुक्तः केवलात्मस्वरूपमात्रः सम्पद्यते। सः सर्वदा स्वीयानन्दानुभव एव निरतो विषयसुखेषूदासीनः सर्वत्रः समबुद्ध्या

सकता है यह अभिप्राय इस मन्त्र के तृतीय चरणस्थित **'देहभेदे'** इस सप्तम्यन्त पद से अवगत होता है। इसी को **'जीवन्मुक्ति'** कहते हैं। जो इसी शरीर में जीवितावस्था में ही परशिवब्रह्म भाव को प्राप्त करता है, वह नित्य ऐश्वर्य का अनुभव करते हुए नित्यमुक्त हो जाता है।

''आप्तुकामः'' — इस प्रकार जो (नित्यैश्वर्य) नित्य वैभव को इसी सुसंस्कृत शरीर में प्राप्त कर उसका अनुभव करना चाहता है, वह मुमुक्षु 'आप्तुकाम' कहलाता है। क्योंकि 'आप्तुकाम' इस समस्तपद का पर्यायपूर्वक विग्रह इस प्रकार है— **''आप्तुं मुक्तिं प्राप्तुं कामः इच्छा यस्य तादृशः''**। (अर्थात् जो मुक्ति प्राप्त करना चाहता है, वह 'आप्तुकाम' कहलाता है।)

इस प्रकार का मुमुक्षु **'केवल'** सभी पाशबन्धानों से मुक्त 'केवल' आत्मस्वरूप होता है। वह सदा सर्वदा अपनी ब्रह्मानन्दानुभूति में ही मग्न रह कर वैषयिक सुखों के प्रति उदासीन रहकर सर्वत्र समदृष्टि और समान बुद्धि से रहता हे। जो इस प्रकार यहीं पर कैवल्यानन्द का अनुभव करता है, वह शरीर छूटने के पश्चात् विदेहमुक्ति की स्थिति में भी विशुद्ध स्वरूप से ही रहता है। और यहीं इसी शरीर में जो जीव निराकार परशिव के साथ सामरस्यस्वरूप एकता कैवल्य का अनुभव करता है, वह जीव उस देहधारी जीव के समान होता है, जिसके शरीर का आवरणपट पूरा जल गया हो और उसका केवल शरीर बच गया हो। ऐसा व्यक्ति शरीर के साथ वियोग होने पर भी, उसका सम्बन्ध छूटने पर भी उसी कैवल्य का अनुभव करते हुए नित्यसुखी होता है। इस मन्त्र में यह निरूपित किया गया है कि इस प्रकार का फल परशिव ब्रह्म के ध्यान से प्राप्त होता है।

[**शांकरभाष्य** में छान्दोग्य उपनिषद्, प्रश्नोपनिषद्, नृसिंहपूर्वतापिनी उपनिषद्, बृहदारण्यक उपनिषद्, शिवधर्मोत्तरपुराण, ब्रह्मपुराण, लिङ्गपुराण, भगवद्गीता इत्यादि ग्रन्थों के प्रमाणवचन उद्धृत करते हुए ब्रह्मसाक्षात्कार के विविध फलों के अन्तर्गत विश्वैश्वर्यप्राप्ति, कैवल्यमुक्ति (विदेहमुक्ति अथवा जीवन्मुक्ति), अमृतत्वप्राप्ति आदि प्रदर्शित किये गये हैं, जो वहीं द्रष्टव्य हैं।]

CC0. In Public Domain. Jangamwadi Math Collection, Varanasi

Digitization by eGangotri and Sarayu Trust. Funding by MoE-IKS

विराजते, य एवं कैवल्यानन्दम् अत्रैव अनुभवति, स शरीरपातानन्तरं विदेहमुक्तावपि विशुद्धस्वस्वरूपेणैव अवतिष्ठते। अत्रैव य निराकारपरशिवैक्यरूपं कैवल्यम् अनुभवति सः दग्धपट इव देहे वर्तमानः सन् देहवियोगानन्तरमपि तदेव कैवल्यम् अनुभवन् नित्यसुखी भवति। एतादृशं फलं परशिवब्रह्मध्यानाद् भवतीत्यत्रोच्यते।।११।।

उक्तार्थस्याऽवश्यज्ञेयत्वकथनेनोपसंहारः क्रियते—

एतज्ज्ञेयं नित्यमेवात्मसंस्थं
नातः परं वेदितव्यं हि किञ्चित्।
भोक्ता भोग्यं प्रेरितारं च मत्वा
सर्वं प्रोक्तं त्रिविधं ब्रह्ममेतत्।।१२।।

एतज्ज्ञेयम् इति। **आत्मसंस्थम्** आत्मन्येव विद्यमानं न त्वन्यत्रान्वेषणीयमित्यर्थः। **'तमात्मस्थं येऽनुपश्यन्ति धीराः'** इत्यप्यग्रे वक्ष्यते।

शिवधर्मोत्तरे च कथ्यते **"शिवमात्मनि पश्यन्ति प्रतिमासु न योगिनः"** इति। ये तावत् शिवयोगिनः शिवानुभवनिरताः स्वहृदयस्थं स्वीयहृदये प्राणरूपेण

मन्त्रार्थ— उस परशिवब्रह्म के साक्षात्कार के तीन फल हैं- (१) उस चित्प्रकाश- स्वरूप परशिवब्रह्म का ध्यान करने से सभी पाशस्वरूप अविद्या-अस्मिता-राग-द्वेष- अभिनिवेश इन पाँच क्लेशों का समूल विनाश होता है। (२) क्लेशक्षय होने पर जन्ममृत्युस्वरूप संसारचक्र में भ्रमण से छुटकारा मिलता है। और (३) भाव-प्राण-इष्ट-रूप में अवस्थित परशिव ब्रह्म का इस शरीर में निरन्तर ध्यान करने पर त्रिविध-दीक्षासंस्कारसम्पन्न जीव के त्रिविध मल भस्मसात् होते हैं और मुक्ति की कामना करने वाला वह जीव इसी शरीर में कैवल्यमुक्ति और विश्वैश्वर्य प्राप्त कर पापियों का निग्रह करने में और पुण्यात्माओं पर अनुग्रह करने में समर्थ होता है। देहपात के पश्चात् भी उसी कैवल्य का अनुभव करते हुए वह शाश्वत सुख प्राप्त करता है।।११।।

अवतरण— यदि कुछ जानने योग्य है तो वह केवल परशिवब्रह्म है इस प्रतिपादन के साथ इस विषय का उपसंहार किया जा रहा है—

"एतज्ज्ञेयं नित्यमेवाऽऽत्मसंस्थम्"— यह परशिवब्रह्म जीव के स्वरूप में ही विराजमान है, उसका अन्यत्र अन्वेषण नहीं करना चाहिये। जैसा कि **शिवधर्मोत्तरपुराण** का प्रमाण वचन है— **"शिवमात्मनि पश्यन्ति प्रतिमासु न योगिनः"**, जो शिवयोगी

CC0. In Public Domain. Jangamwadi Math Collection, Varanasi

Digitization by eGangotri and Sarayu Trust. Funding by MoE-IKS

विराजमानं परमात्मानं पश्यन्ति अनुभवन्ति, तेषां प्रतिमानपूजनफलस्य सिद्धत्वात् तथोक्तिः। एवमात्मसंस्थम् एतदेव परशिवाख्यं ब्रह्म नित्यं ज्ञेयम्। **नित्यं** सदा **आत्मसंस्थम्** आत्मनि जीवात्मन्येव निवसन्तम् इति वाऽन्वयः।

'बीजे यथाङ्कुरः सिद्धस्तथात्मनि शिवः स्थितः'

इति सिद्धान्तशिखामणौ (५/३६) जीवात्मनि परमात्मन अनुप्रवेश अन्तर्यामित्वेन वर्तनम् अभिधीयते।

एवकारार्थमाह— **'नातः परं वेदितव्यं हि किञ्चित्'** इति। **हि** यस्मात् **अतः** शिवात् (परम्) अन्यत् वेदितव्यं किञ्चिदपि नास्ति। **'येन ज्ञातेन सर्वं ज्ञातं भवति'** इत्येकविज्ञानेन सर्वविज्ञानश्रुतिरप्यमुमेवाशयमाविष्करोति। **''यज्ज्ञात्वा नेह भूयोऽन्यद् ज्ञातव्यमवशिष्यते''**(७.२)।

हैं, अर्थात् जो अपने हृदयकमल में प्राणरूप से विराजमान परशिवब्रह्म का आस्वाद करते हैं वे प्रतिमा में उसका साक्षात्कार नहीं करते। यह इसलिये कहा गया है कि उनके प्रतिमापूजन का फल हृदयकमल में विराजमान ब्रह्मसाक्षात्कार से ही प्राप्त होता है। इस प्रकार अपने में ही विराजमान परशिवब्रह्म का नित्यबोध और नित्यज्ञान करना चाहिये। अथवा इसका अन्वय इस प्रकार भी सम्भव है— **'नित्यम्'** = सदा-सर्वदा, **'आत्मसंस्थम्'** = जीवात्मा में ही विराजमान, **'एतद् ज्ञेयम्'** = उस परशिवब्रह्म का साक्षात्कार करना चाहिये।

'सिद्धान्तशिखामणि' में परमात्मा का जीवात्मा के साथ अन्तर्यामी रूप से एक साथ अनुसरण इस प्रकार वर्णित है—

''बीजे यथाऽङ्कुरः सिद्धस्तथाऽऽत्मनि शिवः स्थितः।।'' (५/३६)

[इस का पूर्वार्द्ध इस प्रकार है— **''चन्द्रकान्ते यथा तोयं सूर्यकान्ते यथाऽनलः।।''**

दोनों का सम्मिलित अर्थ इस प्रकार है— जिस प्रकार चन्द्रकान्तमणि में जल अव्यक्त रूप से रहता है, जिस प्रकार सूर्यकान्तमणि में आग अव्यक्त रहती है और जिस प्रकार धान्यबीज में अङ्कुर अव्यक्त रूप से रहता है, उसी प्रकार अव्यक्त रूप से जीवात्मा में शिव का अव्यक्त रूप से वास रहता है।]

''नातः परं वेदितव्यं हि किञ्चित्''– **'नित्यमेवात्मसंस्थम्'** में एवकार का प्रयोग है, उसे ही इस चरण में स्पष्ट किया गया है। क्योंकि परब्रह्म शिव के अतिरिक्त अन्य जानने योग्य कोई वस्तु नहीं है।

[**मुण्डकोपनिषद्** में महाशाल शौनक मुनि ने अपने गुरु आङ्गिरस के निकट विधिवत् जाकर यह जिज्ञासा की थी— **''कस्मिन्नुभगवो! विज्ञाते सर्वमिदं विज्ञातं**

CC0. In Public Domain. Jangamwadi Math Collection, Varanasi

Digitization by eGangotri and Sarayu Trust. Funding by MoE-IKS

इति भगवद्गीतायामप्युक्तम्। एवं परशिवे ज्ञाते सति न किञ्चिदपि ज्ञातव्यम् अवशिष्यत इति कथं ज्ञेयमित्यत्राह— **भोक्तेत्यादिना। भोक्ता** चेतनो जीव:, **भोग्यम्** अचेतनं प्रधानम्, **प्रेरिता** ईश्वर:, सर्वमेतत् त्रिविधमपि ब्रह्ममिति परशिव एवेति ज्ञात्वा प्रोक्तं ब्रह्मविद्भि: प्रकर्षेण कथितम्। ब्रह्मैकमेव प्रकारत्रयमापन्नमिति ज्ञेयमित्यर्थ:। अत एवोच्यतेऽन्यत्रापि— **''विश्वं भूतं भुवनं चित्रं बहुधा जातं जायमानं च यत्। सर्वो ह्येष रुद्र:'', ''सर्वं खल्विदं ब्रह्म''** इत्यादि (छा.उ. ३.१४)॥१२॥

भवति?'' (१/१/३), भगवन्! किस वस्तु के जान लेने पर समग्र जगत् का ज्ञान होता है?'' उसका उत्तर है—] उस एक परशिवब्रह्म के ज्ञान से समग्र ज्ञान हो जाता है। इस प्रकार मुण्डकोपनिषत् श्रुति भी उसी अर्थ का आविष्कार कर रही है।

''यद् ज्ञात्वा नेह भूयोऽन्यद् ज्ञातव्यमवशिष्यते'' इस प्रकार **श्रीमद्भगवद्गीता** में भी कहा है, जो इस चतुर्थ चरण का उपबृंहण ही है।

इस प्रकार परशिवब्रह्म का ज्ञान होने पर अन्य कुछ जानने योग्य अवशिष्ट नहीं रहता। यह किस प्रकार जानना चाहिये इस का समाधान इस प्रकार है— **'भोक्ता भोग्यम्'** इत्यादि। चेतन जीव **'भोक्ता'** (जड का उपभोग करने वाला) होता है। उपभोगयोग्य प्रधान प्रकृति अचेतन जड **'भोग्य'** होती है। दोनों का **'प्रेरिता'** प्रेरक 'ईश्वर' परमशिव होता है। यह त्रिविध परशिव परब्रह्मस्वरूप ही है। ब्रह्मवादियों ने जोर देकर इस तथ्य का प्रतिपादन किया है कि एक ही परशिव ब्रह्म तीन आकारों में परिणत है, जिसे जानना चाहिये। अतएव अन्यत्र भी इस प्रकार प्रतिपादन किया गया है— **'विश्वं भूतम्'** इत्यादि। उत्पन्न समस्त विश्व, उत्पन्न और उत्पन्न होने वाला चित्रविचित्र जो भुवन है, वह समस्त रुद्र परशिवब्रह्म ही है। **''सर्वं खल्विदं ब्रह्म''**(छा.उ. ३.१४) — दृश्यमान समस्त जगत् ब्रह्मस्वरूप ही है।

मन्त्रार्थ— ब्रह्मज्ञान परशिव ब्रह्म का वह साक्षात्कार है, जो परमशिव जीवात्मा की हृदयगुफा अथवा उसके हृदयकमल में ही अन्तर्यामी बनकर वास करता है। उसको छोड़कर अन्य कुछ जानने योग्य नहीं है। *'भोक्ता'* चेतन जीव, *'भोग्य'* अचेतन प्रकृति और *'प्रेरिता'* उन दोनों का नियामक परमशिव तीनों मिलकर एक अखण्ड ब्रह्मस्वरूप ही है इस तथ्य को ब्रह्मवेत्ता महर्षियों ने जोर देकर कहा है।।१२।।

CC0. In Public Domain. Jangamwadi Math Collection, Varanasi

Digitization by eGangotri and Sarayu Trust. Funding by MoE-IKS

ननु 'नित्यमेवात्मसंस्थमि'त्येतत् कथं ब्रह्मणि सङ्गच्छते? सर्वेषामपि अहमिति प्रतीतौ स्वात्मैव विषयो भवति, न तु तत्र ब्रह्म प्रतीयते। अतः परशिवस्य जीवात्मस्थत्वं कथमुच्यत इति शङ्का जायते। बहुदृष्टान्तैरुपपादनपुरस्सरं शङ्कामिमां परिहरति—

वह्नेर्यथा योनिगतस्य मूर्ति-
र्न दृश्यते नैव च लिङ्गनाशः।
स भूय एवेन्धनयोनिगृह्य-
स्तद्वोभयं वै प्रणवेन देहे।।१३।।

'वह्नेर्यथा योनिगतस्य' इति। (**योनिगतस्य**) योनिः अरणिः, तत्र गतस्य वर्तमानस्य **वह्नेर्मूर्तिः** स्वरूपं **न दृश्यते,** मथनात् प्राग् न विलोक्यत इत्यर्थः। ननु तर्हि योनौ नास्त्येव वह्निरित्यत आह **'नैव च लिङ्गनाश'** इति। अथापि (**लिङ्गनाशः**) लिङ्गस्य काष्ठद्वयसङ्घर्षणजन्यस्य औष्ण्यस्य नाशो विनाशो नास्त्येव न सम्भवत्येव। **स** काष्ठस्थो वह्निः **भूय एव** पुनरेव **इन्धनयोनिगृह्यः** इन्धनम् अरणिः योनिः कारणं यस्य तादृशः इन्धनयोनिः, तथैव गृह्यः चक्षुषा ग्रहणयोग्यः। इन्धनयोनिश्चासौ गृह्यश्च इन्धनयोनिगृह्यो भवतीति शेषः। **तद्वोभय**मित्यत्र वाशब्द इवार्थः। तद् उभयं वा तदुभयमिव। यथा वह्निः पूर्वं विद्यमानोऽपि न गृह्यते, मथनात्तु गृह्यते तद्वदिहापीत्यर्थः। **उभय**मित्यस्योत्तरत्रान्वयो वा आवृत्तिर्वा। तद् वा तदिव तद्वत् **उभयं** जीवपरमात्मानौ देह

अवतरण— अब इस प्रकार की शङ्का उपस्थित होती है कि इस मन्त्र में परशिवब्रह्म को **'नित्यमेवात्मसंस्थम्'** नित्य जीवात्मा के शरीर में ही विराजमान कहा गया है। इसकी सङ्गति किस प्रकार होगी? क्योंकि सभी प्राणियों को जो **'अहम्'** (में हूँ) इस प्रकार अनुभूति होती है, वह आत्मविषयक ही होती है, उसमें ब्रह्मानुभूति नहीं होती। अतः परशिवब्रह्म का निवास जीवात्मा के साथ किस प्रकार निरूपित किया जाता है? इस शङ्का का समाधान अनेक दृष्टान्तों द्वारा किया जा रहा है—

'वह्नेर्यथा' इत्यादि। अरणि में अव्यक्तरूप से विद्यमान अग्नि का स्वरूप जिस प्रकार दृष्टिगत नहीं होता, अर्थात् अरणिमन्थन के पूर्व वह दिखलाई नहीं देता। साथ ही उसमें जो **'लिङ्ग'** अर्थात् पूर्व अरणि और उत्तर अरणि की दो लकड़ियों के संघर्ष से उत्पन्न होने वाली गरमी का विनाश नहीं होता। उन दोनों लकड़ियों के बीच रहने वाला अग्नि अरणिमन्थनद्वारा ही पुनः साक्षात्कारयोग्य होता है। उसी प्रकार इस शरीर में जीवात्मा और परमात्मा का पृथक्-पृथक् साक्षात्कार प्रणवजप द्वारा ही किया जा सकता है।

CC0. In Public Domain. Jangamwadi Math Collection, Varanasi

Digitization by eGangotri and Sarayu Trust. Funding by MoE-IKS

एव प्रणवेन गृह्येते इत्यावृत्य विपरिणाम:। तथा च आत्मस्थोऽपि परमात्मा नहि गृह्यते, **प्रणवेन** तु प्रणवजपेन तावत् **देहे गृह्यते,** अनुभूयत इत्यर्थ:।।१३।।

'प्रणवेन देहे' इत्यत्रोक्तमाशयमेवं व्याकरोति—

स्वदेहमरणिं कृत्वा
प्रणवं चोत्तरारणिम्।
ध्याननिर्मथनाभ्यासाद्
देवं पश्येन्निगूढवत्।।१४।।

स्वदेहमिति। स्वदेहं स्वीयं शरीरं शरीरेणोपलक्षितं हृदयं जीवं वा **अरणिं** कृत्वा अग्न्युत्पादकं साधनं कृत्वा **प्रणवं च उत्तरारणिम्** अग्निवर्धकं साधनमिति परिगृह्य, **ध्याननिर्मथनाभ्यासात्** प्रणववाच्यत्वेन प्रणवावलम्बनत्वेन वा ब्रह्मणो निरन्तरध्यानं तैलधारावद् अविच्छिन्नस्मृतिसन्तानमेव **ध्यानम्,** तदेव **निर्मथनं** उत्तरारणिना मथनतुल्यं घर्षणम्, तस्य **अभ्यासाद्** यावत्साक्षात्कारमनुवर्तनाद्। **निगूढवत्** अरणौ वह्निरिव निगूढतयाऽवस्थितमेव (**देवं**) परमशिवं **पश्येत्**

मन्त्रार्थ— जिस प्रकार अरणि में रहने वाला अग्नि का स्वरूप दृष्टिगोचर नहीं होता, और न उसमें उसके लिङ्ग गर्मी का नाश होता है। वह पुनश्च अरणिमन्थन में से ग्रहण किया जा सकता है; उसी प्रकार इसी शरीर में प्रणव (ओंकार) के जप से जीवात्मा और परमात्मा दोनों का साक्षात्कार किया जा सकता है।।१३।।

अवतरण— 'तद् वोभयं वै प्रणवेन देहे' इस चतुर्थ चरण के आशय का विश्लेषण अग्रिम मन्त्र में इस प्रकार है—

'स्वदेहमरणिं कृत्वा'' इत्यादि। **'स्वदेहम्'** = अपने शरीर अथवा शरीरद्वारा उपलक्षित हृदय अथवा वहीं अन्तर्यामी जीवात्मा को, **'अरणिं कृत्वा'** = अग्नि को उत्पन्न करनेवाली अरणि बनाकर, **प्रणवं च** = और ओङ्कार को **'उत्तरारणिं (कृत्वा)** = नीचे की अरणि बना कर, **'ध्याननिर्मथनाभ्यासात्** = ''प्रणव'' के द्वारा वाच्य अथवा प्रणव (ओङ्कार) के जप का आश्रय लेकर परशिवस्वरूप परब्रह्म का निरन्तर अखण्ड तेल-धारा के समान स्मरण करते रहना इसी को **'ध्यान'** कहते हैं। वही (निर्मथन) मन्थन अर्थात् नीचे की अरणि द्वारा मन्थन के समान घर्षण है। वह ध्यानस्वरूप मन्थन तब तक करना चाहिये, जब तक ब्रह्मसाक्षात्कार न हो। यही अभ्यास है। इस अभ्यास से, **'निगूढवत्'** = जिस प्रकार अरणि में अग्नि अव्यक्तावस्था में रहता है, उसी प्रकार स्वयं में ही अव्यक्त

CC0. In Public Domain. Jangamwadi Math Collection, Varanasi

Digitization by eGangotri and Sarayu Trust. Funding by MoE-IKS

साक्षात्कुर्यात् साधको जीवः॥१४॥

उक्तार्थस्यैव दृढीकरणाय दृष्टान्तान्तराण्याह—

तिलेषु तैलं दधिनीव सर्पि-
रापः स्त्रोतःस्वरणीषु चाग्निः।
एवमात्माऽऽत्मनि गृह्यतेऽसौ
सत्येनैनं तपसा योऽनुपश्यति।।१५।।

तिलेष्विति। यथा **तिलेषु** तैलं तैलयन्त्रपीडनेन प्राप्यते, **दधिनि सर्पिः** घृतं यथा मथनेन प्राप्यते, **स्त्रोतस्सु** नदीषु, नदीप्रदेशेष्विति यावत्; **आपो**

रूप से अवस्थित, **'देवम्'** = चित्प्रकाशस्वरूप परमशिव का **'पश्येत्'** = साधक जीव को साक्षात्कार करना चाहिये।

['कैवल्योपनिषत्' में इसी के समान यह मन्त्र उपलब्ध है—

आत्मानमरणिं कृत्वा प्रणवं चोत्तरारणिम्।
ध्याननिर्मथनाभ्यासात् पापं दहति पण्डितः।। (१/११)

इस मन्त्र में **'स्वदेहं'** के स्थान पर **'आत्मानं'** पाठ है और चतुर्थ चरण में अन्तर है। श्रीसदाशिवशिवाचार्यविरचित **सादाशिवभाष्य** के अनुसार इस का आशय इस प्रकार है— 'पण्डित' अर्थात् शिवानुभवज्ञानी माहेश्वर आदि भक्त अपने चित्त को अरणिस्थित नीचे की लकड़ी और ओङ्कार को ऊपरी लकड़ी बनाकर परमेश्वर के निरन्तर ध्यान और पञ्चाक्षरी-मन्त्रजप के अभ्यास से वाचिक, मानसिक और कायिक समस्त पाप को भस्मसात् करता है।]

मन्त्रार्थ— साधक शिवयोगी का यह कर्तव्य है कि वह अपने शरीर को ऊपर की अरणी-काष्ठ के रूप में और ओङ्कारजप को नीचे की अरणि-काष्ठ के रूप में प्रयुक्त करके ध्यानस्वरूप मन्थन के अभ्यास द्वारा उसी प्रकार चित्प्रकाशस्वरूप परशिवब्रह्म का साक्षात्कार करे, जिसप्रकार निरन्तर अरणिमन्थन द्वारा अरणि में गुप्तरूप से विद्यमान अग्निनारायण का साक्षात्कार किया जाता है।।१४।।

अवतरण— श्रुति उसी अर्थ को और दृढ़ करने के लिये अन्य दृष्टान्त प्रस्तुत कर रही है—

'तिलेषु तैलम्' इत्यादि। जिस प्रकार तिलों को कोल्हू में पीसकर तेल निकाला जाता है, जिस प्रकार दही को मथनी से मथकर घी निकाला जाता है, जिस प्रकार कूआँ,

CC0. In Public Domain. Jangamwadi Math Collection, Varanasi

Digitization by eGangotri and Sarayu Trust. Funding by MoE-IKS

जलानि यथा किञ्चित् खननेन प्राप्यन्ते, अरणीषु च अग्निर्यथा निर्मथनेन लभ्यते; **एवमसौ आत्मा** परमेश्वरः **आत्मनि** जीव एव **गृह्यते** साक्षात्क्रियते। कथमित्यत्राह— **सत्येनेति**। **सत्येन** भूतहितवचनरूपेण तपसा चित्तैकाग्र्येण च।

"मनसश्चेन्द्रियाणां हि चैकाग्र्यं परमं तपः"

इति वचनात्। **यः अनुपश्यति** निरन्तरमात्मानं पश्यति, तस्यैव आत्मनि स्वस्मिन्नेव परमात्मा **गृह्यते** निगृह्यते, संयुज्यत इत्यर्थः॥१५॥

नलकूप इत्यादि खोदकर जलधारा को प्राप्त किया जा सकता है और जिस प्रकार अरणि-मन्थन के द्वारा अग्निनारायण का प्रत्यक्ष-दर्शन किया जा सकता है, उसी प्रकार जनहितकारी सत्यवचन और चित्त की एकाग्रतारूपिणी तपस्या के द्वारा जो निरन्तर चिन्तन करता है वह शिवयोगी अपनी हृदयगुफा में ही अवस्थित परशिवब्रह्मस्वरूप के साथ संयुक्त होता है।

यहाँ **'तपसा'** पद का अर्थ 'चित्त की एकाग्रतारूपिणी तपस्या के द्वारा' यह है। जैसा कि वचन है—

"मनसश्चेन्द्रियाणां हि चैकाग्र्यं परमं तपः।"

मन (अन्तःकरण) और पञ्चज्ञानेन्द्रियों (नेत्र, श्रोत्र, नासिका, रसना तथा त्वचा) को एकाग्र रखना दूसरी ओर भटकने न देना, उन पर नियन्त्रण रखना परम तप (कडी तपस्या) है।

[**'सत्येनैनं तपसा'**— गीता (१७-१५) कहती है—

अनुद्वेगकरं वाक्यं सत्यं प्रियहितं च यत्।
स्वाध्यायाभ्यसनं चैव वाङ्मयं तप उच्यते॥

'श्रीकृष्णगीता' (१७.१५) में इसका हिन्दी पद्यानुवाद इस प्रकार है—

"सच्चे वचन प्रिय और हितकर दुख न जिनसे हो कभी।
स्वाध्याय का अभ्यास भी वाणी तपस्या है तभी॥"]

मन्त्रार्थ— जिस प्रकार तिल से तेल, दही से घी, जलस्रोतों से जल और अरणि से अग्नि प्राप्त किया जाता है, उसी प्रकार सत्यवचनस्वरूप तपस्या के द्वारा जो निरन्तर अनुशीलन करता है, वह शिवयोगी स्वयं में ही परशिवब्रह्म का साक्षात्कार करता है॥१५॥

CC0. In Public Domain. Jangamwadi Math Collection, Varanasi

Digitization by eGangotri and Sarayu Trust. Funding by MoE-IKS

एवामात्मनि गृह्यमाणोऽसौ न जीवात्मा, किन्तु परमात्मैवेति कथनेन प्रकृतविचारं निगमयति—

सर्वव्यापिनमात्मानं क्षीरे सर्पिरिवार्पितम्।
आत्मविद्यातपोमूलं तद् ब्रह्मोपनिषत्परम् तद् ब्रह्मोपनिषत्परमिति।।१६।।

'सर्वव्यापिनम्' इति। **क्षीरे अर्पितं** निगूढतया निक्षिप्तं **सर्पिरिव सर्वव्यापिनं** निगूढतया सर्वत्र विद्यमानम्। **आत्मविद्यातपोमूलम्** आत्मविद्यायास्तपसश्च मूलम्।

"सर्वस्य चाऽहं हृदि सन्निविष्टो मत्तः स्मृतिर्ज्ञानमपोहनं च।"

(गीता, १५.१५)

"भवन्ति भावा भूतानां मत्त एव पृथग्विधाः"

इत्यादिवचनात् सर्वविद्यादीनां परशिवब्रह्मैव मूलम्। अथवा आत्मविद्या तपश्च मूलं प्राप्तिस्थानं यस्य। **"सत्येन तपसा योऽनुपश्यति"** इत्यनुपदमुक्तोऽर्थ

अवतरण— इस प्रकार शिवयोगी स्वयं में ही जिसका साक्षात्कार करता है, वह जीवात्मा नहीं होता, अपितु परमात्मा ही होता है यह निष्कर्ष इस मन्त्र में निकाला गया है—

'सर्वव्यापिनमात्मानम्' इत्यादि। **'क्षीरे अर्पितं सर्पिः इव'** जिस प्रकार घी दूध में गुप्त रूप से निहित रहता है, **'सर्वव्यापिनम्'** = उसी प्रकार अव्यक्त रूप से व्याप्त, **'तत् परं ब्रह्म'** = वह परशिवस्वरूप परब्रह्म, **'आत्मविद्यातपोमूलम्'** = 'आत्म-विद्यायाः तपसश्च मूलम्' इस समासविग्रह के अनुसार आध्यात्मिक विद्या (दर्शनशास्त्र) और तपस्या (सब) का मूल उत्पत्तिस्थान है।

[जैसा कि **'विष्णुसहस्रनामस्तोत्र'** का प्रमाणवचन है—

"योगो ज्ञानं तथा सांख्यं विद्याः शिल्पादिकर्म च।
वेदाःशास्त्राणि विज्ञानमेतत् सर्वं जनार्दनात्।।१३९।।"

ग्रन्थारम्भ में **'हरः ॐ'** इसकी व्याख्या के अवसर पर 'हर' और 'हरि' में कोई अन्तर नहीं है, यह स्पष्ट प्रतिपदित है।]

अथवा **'आत्मविद्या तपश्च मूलं (प्राप्तिस्थानं) यस्य तत्'** इस समासविग्रह के अनुसार जिसका प्राप्तिस्थान आध्यात्मिक दर्शन और तप दोनों है, वह परशिवस्वरूप परब्रह्म ही है यह अर्थ होगा। [**'आत्मसंस्थम्' =**] वह शिवयोगी की आत्मा, उसकी हृदयगुफा में ही विद्यमान है, अन्यत्र नहीं। **(तत्) उपनिषद् =** वह उपनिषद्गम्य अथवा रहस्यमय है।

CC0. In Public Domain. Jangamwadi Math Collection, Varanasi

Digitization by eGangotri and Sarayu Trust. Funding by MoE-IKS

एवमनूदितः। तादृशम् **तद् ब्रह्मोपनिषत्परमिति**। तत् **उपनिषत्** उपनिषद्गम्यम् इत्युपनिषद्गम्यत्वात् तथा उपचारतो निर्देशात् **परमेव ब्रह्म** परशिवब्रह्मैव आत्मसंस्थं नाऽन्यदित्यर्थः। अन्यत्रापि परशिवस्य सत्यतपोभ्यां लभ्यत्वमुक्तम्— **'सत्येन लभ्यस्तपसा ह्येष आत्मा'** (मु.उ. ३.१.५) इति। द्विरुक्तिरध्यायसमाप्त्यर्था॥१६॥

।। इति प्रथमोऽध्यायः ।।

'सत्येन तपसा योऽनुपश्यति' इस पूर्वोक्त मन्त्रभाग का ही अनुवाद इस मन्त्र में **'आत्मविद्यातपोभूतम्'** पद से किया गया है। इसमें विविध वचन प्रमाण हैं—

'सर्वस्य चाहं हृदि संनिविष्टो मत्तः स्मृतिर्ज्ञानमपोहनं च''

(गीता १५/१५)।

इसका हिन्दी पद्यानुसार इस प्रकार है—

''सुधि ज्ञान और अपोह मुझसे मैं सभी में बस रहा''

(श्रीकृष्ण १५/१५)।

''भवन्ति भावा भूतानां मत्त एवं पृथग्विधाः''

भगवान् कहते हैं— ''मुझसे ही समस्त प्राणियों में नानाप्रकार के भाव जन्म लेते हैं।''

अन्यत्र **मुण्डकोपनिषद्** (३.१.५) में भी सत्यवचन और तपश्चरण द्वारा परशिवब्रह्म के साक्षात्कार का वर्णन इस प्रकार किया गया है—

''सत्येन लभ्यस्तपसा ह्येष आत्मा
सम्यग् ज्ञानेन ब्रह्मचर्येण नित्यम्।
अन्तःशरीरे ज्योतिर्मयो हि शुभ्रो
यं पश्यन्ति यतयः क्षीणदोषाः।।''

''तद् ब्रह्मोपनिषत् परम्, तद् ब्रह्मोपनिषत् परम्'' इस प्रकार की द्विरुक्ति अध्यायसमाप्ति का सूचक है।

मन्त्रार्थ— जिस प्रकार दूध में घी अव्यक्त रूप से रहता है, उसी प्रकार परशिवब्रह्म सर्वत्र अव्यक्त रूप से व्याप्त है। परशिवब्रह्म ही आत्मविद्या, तप आदि का मूल है। उपनिषद्गम्य परब्रह्म परशिवब्रह्म ही है, कोई अन्य नहीं।।१६।।

प्रथम अध्याय सम्पूर्ण ।।१।।

❋ ❋ ❋

CC0. In Public Domain. Jangamwadi Math Collection, Varanasi

Digitization by eGangotri and Sarayu Trust. Funding by MoE-IKS

अथ द्वितीयोऽध्यायः

"स्वदेहमरणिं कृत्वा प्रणवं चोत्तरारणिम्।
ध्याननिर्मथनाभ्यासादेवं पश्येन्निगूढवत्।।" (१.१४)

इत्यत्र ध्यानमेव परमात्मसाक्षात्कारसाधनमित्युक्तम्। **ध्यानं** च तैलधारावदविच्छिन्नस्मृतिसन्तानमिति प्रसिद्धम्। इदं च चित्तैकाग्र्यमन्तरा असम्भवि। चित्तैकाग्र्यं च चित्तवृत्तिनिरोधरूपयोगलभ्यम्। **'योगश्चित्तवृत्तिनिरोधः'** (१.१.२) इति हि सूत्रम्। अतो ध्यानोपायं योगमाह अस्मिन्नध्याये। तदङ्गतया च सर्वसाक्षिणं सर्वकारणं परमात्मानं आशास्ते—

युञ्जानः प्रथमं मनस्तत्त्वाय सविता धियः।
अग्नेर्ज्योतिर्निचाय्य पृथिव्या अध्याभरत्।।१।।

'युञ्जान' इति। **युञ्जानः** योगे प्रवर्तमानो जीवः (**प्रथमं**) योगारम्भे **मनः** अन्तःकरणं तद्वृत्तिरूपा **धियः** वा **तत्त्वाय** तत्त्वप्रतिपादकमन्त्रस्मरणाय

अवतरण— **'स्वदेहमरणिं कृत्वा'** इत्यादि (१/१४) मन्त्र में ध्यान को ही परशिवब्रह्मस्वरूप परमात्मा का साधन निरूपित किया गया है। तेल की धारा के समान अखण्ड स्मृतिपरम्परा **'ध्यान'** के नाम से प्रसिद्ध है और यह ध्यान बिना चित्त की एकाग्रता के सम्भव नहीं है। जैसा कि **योगसूत्र** है— **'योगश्चित्तवृत्तिनिरोधः'** (१/१/२), चित्तवृत्तियों पर नियंत्रण रखना चित्त की एकाग्रता अथवा **समाधियोग** कहलाता है। अत एव ध्यान के उपायस्वरूप समाधियोग का वर्णन इस द्वितीय अध्याय में किया गया है। उसके अङ्ग के रूप में सर्वसाक्षी सर्वकारण परमात्मा का स्तवन किया जा जा रहा है—

'युञ्जानः प्रथमं मनः' इत्यादि। **युञ्जानः** = समाधि लगाने में प्रवृत्त साधक जीव, **प्रथमम्** = समाधियोग लगाने के पूर्व, **मनः** = अपने अन्तःकरण, **धियः** = और उसमें प्रवृत्त होने वाली बुद्धि को, **तत्त्वाय** = तत्त्वप्रतिपादक मन्त्र के स्मरण के लिये। (**प्रचोदयात्** = प्रेरित करे।) **सविता** = उस तत्त्वबुद्धि का उत्पादक इष्टलिङ्गस्वरूप परमशिव, **अग्नेः ज्योतिः** = 'अग्नि' शब्द से संकेतित अपने अमूर्त चित्स्वरूप महाप्रकाश का, **निचाय्य** = अपने अंशस्वरूप जीवात्मा में संक्रमित करने के लिये चयन कर, **पृथिव्या अधि** = देहधारी जीव के पार्थिव शरीर में, (**तस्य मनः** = उसके मन,

CC0. In Public Domain. Jangamwadi Math Collection, Varanasi

Digitization by eGangotri and Sarayu Trust. Funding by MoE-IKS

नित्यमुद्योजयेत्। बुद्धेस्तादृश्याः सवितोत्पादकः इष्टलिङ्गरूपः परमेश्वरः अग्नेर्ज्योतिः अग्निशब्दवाच्यस्य स्वप्रकाशस्य स्वीयामूर्ततत्त्वस्य महाप्रकाशं **निचाय्य स्वांशे** जीवे उत्पादयितुं **पृथिव्या अधि** तदीयपार्थिवशरीरे तस्य मनः **आभरत्** तत्त्वैकनिष्ठमापादयत्विति प्रार्थ्यते। **'लोटो लङ्वत्'** (पा.अ.३.४.८५) इत्यनेन लोडर्थे लङ्प्रयोगः साधुः। अयं भावः— ध्याने प्रवृत्ताय पुरुषाय स्वप्रकाशवस्तुनः अस्मिन्नेव शरीरे प्रकाशनाय सर्वव्यापकः परमात्मा मनस्तदनुगुणं सम्पादयति। एवं शिवध्यानरूपे सत्कार्ये प्रवृत्तस्य जीवस्य देवः सहायो भवतीति यावत्॥१॥

अतो वयमपि ध्यानं तदङ्गं योगं वा अनुतिष्ठामह इत्याह—

युक्तेन मनसा वयं देवस्य सवितुः सवे।
सुवर्गेयाय शक्त्या॥२॥

'युक्तेन' इति। **युक्तेन** परशिवब्रह्मणि संयोजितेन **मनसा वयं** तस्य **देवस्य सवितुः** सर्वकारणस्य परशिवब्रह्मणः **सवे** यज्ञे ध्यानरूपे आराधने **सुवर्गेयाय**

अन्तःकरण को), **आभरत्** = ब्रह्मतत्त्व में लगाये। यह प्रार्थना की गयी है। **'लोटो लङ्वत्'** (पा.अ. ३/४/८५) इस सूत्र के अनुसार लोट् लकार (प्रार्थना) के अर्थ में लङ् लकार का प्रयोग समुचित है।

इसका अभिप्राय यह है कि ध्यान में प्रवृत्त शिवयोगी के लिए स्वप्रकाश वस्तु का संक्रमण इसी शरीर में ही इसके लिये सर्वत्यागी परमात्मा मन को उसके अनुरूप बनाता है। इस प्रकार चित्प्रकाशस्वरूप परमेश्वर शिवध्यानस्वरूप सत्कार्य में प्रवृत्त साधक जीव का सहायक होता है।

मन्त्रार्थ— समाधि में प्रवृत्त जीव सर्वप्रथम अपने अन्तःकरण को नित्य मन्त्रजप में लगाये। सद्बुद्धि का प्रेरक इष्टलिङ्गस्वरूप परमशिव अपने तेज को निकालकर अपने अंशस्वरूप जीव के पार्थिव शरीर में संक्रान्त करने के लिये उसके अन्तःकरण को उसमें लगाये॥१॥

अवतरण— इसलिये हमलोग भी ध्यान अथवा उसके अङ्ग के रूप में समाधियोग लगा रहे हैं, इस आशय को अग्रिम वेदमन्त्र स्पष्ट कर रहा है—

'युक्तेन मनसा वयम्' इत्यादि। **युक्तेन** = परशिवब्रह्म में संयोजित, **मनसा** = अन्तःकरण के द्वारा, **वयं** = हम लोग, **देवस्य** = चित्प्रकाशस्वरूप उस दिव्य, **सवितुः** = सभी के प्रेरक सर्वकारणस्वरूप परशिवब्रह्म के, **सवे** = यज्ञ अर्थात् ध्यानरूप आराधना

CC0. In Public Domain. Jangamwadi Math Collection, Varanasi

Digitization by eGangotri and Sarayu Trust. Funding by MoE-IKS

स्वर्गप्राप्तये, मोक्षस्यैव निरुपाधिकसुखरूपत्वात् स्वर्गशब्दोऽत्र मोक्षवाची। शक्त्या यथाशक्ति **प्रयतामह** इति शेषः॥२॥

युत्त्वाय मनसा देवान् सुवर्यतो धिया दिवम्।
बृहज्योतिः करिष्यतः सविता प्रसुवाति तान्॥३॥

'युक्त्वाय' इति। **सविता** पूर्वोक्तदेवः तान् देवान् चक्षुःप्रभृतीनि करणानि **मनसा युक्त्वाय** योजयित्वा **सुवः** स्वर्गं पूर्णसुखरूपं ब्रह्म **यतो** गच्छतो **धिया** समीचीनेन ज्ञानेन **दिवं** द्योतमानं **बृहज्ज्योतिः** परमात्मप्रकाशं **करिष्यतः** प्रकटीकुर्वतः **तान्** देवानिन्द्रियादीनि **प्रसुवाति** प्रेरयतीत्यर्थः।

में, **सुवर्गेयाय** = शाश्वत सुखस्वरूप स्वर्ग प्राप्त करने के लिये, **शक्त्या** = यथाशक्ति, **'प्रयतामहे'** इसका अध्याहार करते हुए इसका अर्थ होगा— प्रयत्न कर रहे हैं।

'सुवर्ग' शब्द यहाँ मोक्ष का वाचक है, क्योंकि मोक्ष ही निरुपाधिक शाश्वत सुखस्वरूप होता है। उसमें आध्यात्मिक, आधिदैविक और आधिभौतिक किसी प्रकार का दुःख नहीं रहता और न उसकी सम्भावना होती है।

मन्त्रार्थ— हम शिवयोगी 'सुवर्ग' अर्थात् शाश्वत सुखस्वरूप मोक्ष प्राप्त करने के लिये एकाग्र मन (अन्तःकरण) से चित्प्रकाशस्वरूप जगत् के कारण परशिवब्रह्म के ध्यानयज्ञ में यथाशक्ति प्रयत्नशील हैं॥२॥

'युक्त्वाय मनसा' इत्यादि। **सविता** = सद्बुद्धि के प्रेरक इष्टलिङ्गस्वरूप परमेश्वर, **देवान्** = उन दिव्य शब्द, रूप, रस, गन्ध और स्पर्श इन विषयों के प्रकाशक श्रोत्र, नेत्र, रसना, नासिका और त्वचा इन पञ्चज्ञानेन्द्रियों को, **मनसा** = अन्तःकरण से, **युक्त्वाय** = संयुक्त करके, **सुवः** = स्वर्गाधिक पूर्णसुखस्वरूप शाश्वत ब्रह्म को, **यतः** = प्राप्त करने वाले साधक के, **धिया** = समीचीन ज्ञान के द्वारा; **दिवम्** = द्योतनशील, **बृहज्ज्योतिः** = परमात्मा के अखण्ड प्रकाश को, **करिष्यतः** = प्रकट करने वाले, **तान्** = इन ज्ञानेन्द्रियों को, **प्रसुवाति** = प्रेरित करते हैं।

इसका भाव यह है कि इस प्रकार परमेश्वर ज्ञानेन्द्रियों को विषयों से विमुख करके क्रमशः साक्षात्कारस्वरूप सम्यग् ज्ञान से परशिव-ब्रह्म की प्राप्ति को सुगम बनाता है। परमेश्वर के कृपाप्रसाद से ही जीव अपने अन्तःकरण में गुप्त रूप से वास करनेवाले उसी परमेश्वर का निर्मल अन्तःकरण से साक्षात्कार करने में समर्थ होता है।

मन्त्रार्थ— सद्बुद्धि के प्रेरक परमशिव ज्ञानेन्द्रियों को मन से संयुक्त करके परब्रह्मज्ञान के मार्ग की ओर प्रस्थान करने वाले साधक के सम्यग् ज्ञान से

CC0. In Public Domain. Jangamwadi Math Collection, Varanasi

Digitization by eGangotri and Sarayu Trust. Funding by MoE-IKS

एवं देवः करणानि विषयेभ्यो विमुखानि कृत्वा क्रमशः साक्षात्काररूप-सम्यग्ज्ञानेन परशिवब्रह्मप्राप्तिमपि सुगमां करोतीति भावः। ईश्वरानुग्रहादेव जीवः स्वान्तर्निविष्टं प्रकाशरूपिणं तमेवेश्वरं निर्मलेन मनसा अनुभवितुं पारयति॥३॥

युञ्जते मन उत युञ्जते धियः
विप्रा विप्रस्य बृहतो विपश्चितः।
वि होत्रा दधे वयुनाविदेक इत्
मही देवस्य सवितुः परिष्टुतिः॥४॥

'युञ्जते' इति। **विप्राः** परशिवब्रह्मसाक्षात्कारे बद्धादराः लिङ्गिनो अलिङ्गिनश्च ब्राह्मणाः (हृदये विराजमाने एतादृशे परमात्मनि) **मनः युञ्जते** योजयन्ति। **उत** अपि च **धियः** इतराण्यपि साधनभूतानि करणानि (**युञ्जते**) तस्मिन् योजयन्ति। धीहेतुत्वाद् इन्द्रियाणामपि धीशब्देन निर्देशः। अथवा मनःपदेनैव सर्वेन्द्रियाणामपि सङ्ग्रहः। अत्र धीशब्दश्च प्रसिद्धार्थक एव। **विप्रस्य** विशेषतः सर्वत्र व्याप्तस्य **बृहतो** महतः **विपश्चितः** सर्वज्ञस्य **सवितुः देवस्य** महादेवस्य **मही** महीयसी **परिष्टुतिः** परितः सर्वत्र अन्तर्बहिश्च स्तुतिः **कर्तव्येति** शेषः।

परमात्मप्रकाश करने वाले उन इन्द्रियों को प्रेरित करे। अर्थात् परमशिव ज्ञानेन्द्रियों को विषय-विमुख कर परब्रह्मप्राप्ति की ओर उन्मुख करे, उन्हें महाप्रकाश से आलोकित करे और सत्प्रेरणा दे॥३॥

'युञ्जते मन' इत्यादि। **विप्राः** = परशिव ब्रह्म के साक्षात्कार में दृढ़ आस्था रखने वाले शिवलिङ्ग धारण करने वाले वीरशैव और उससे भिन्न ब्राह्मण (अपने हृदयकमल में विराजमान परशिव ब्रह्म में), **मनः योजयन्ति** = मन लगाते हैं। **उत** = और, **धियः** = अन्य साधनस्वरूप पञ्चज्ञानेन्द्रियों को भी (**योजयन्ति** = लगाते हैं।) यहाँ बुद्धि के हेतु होने के कारण पञ्च ज्ञानेन्द्रियों का निर्देश **'धी'** शब्द से किया गया है। अथवा **'मनः'** पद से अन्तःकरण और पञ्चज्ञानेन्द्रियों का अर्थबोध होता है। **'धी'** शब्द का प्रसिद्ध अर्थ बुद्धि ही है।

विप्रस्य = विशेषरूप से सब जगह व्याप्त, **बृहतः** = विशाल, **विपश्चितः** = सर्वज्ञ, **सवितुः** = प्रेरक, **देवस्य** = चित्प्रकाशस्वरूप महादेव की, **मही परिष्टुतिः (कर्तव्या)** = सर्वत्र अन्तर्बाह्यरूप से विस्तारपूर्वक स्तुति करनी चाहिये। उस सवितादेव की स्तुति पुनश्च आदरपूर्वक की जा रही है—

CC0. In Public Domain. Jangamwadi Math Collection, Varanasi

Digitization by eGangotri and Sarayu Trust. Funding by MoE-IKS

सवितृदेवं पुनरप्यादरात् स्तौति। **होत्रा** यज्ञदानादिकाः सर्वाः क्रियाः **वयुनावित्** वयुना ज्ञानं प्रार्थयितुरुद्देश इति यावत्। तत् वेत्तीति वयुनावित् अस्मदभिप्रायज्ञ इत्यर्थः। स **एक** अद्वितीयः सविता— इत्थं **विदधे** धत्तवान्। भक्तस्य सर्वाः क्रियाः देव एव बिभर्तीत्यर्थः।।४।।

अत्र ब्रह्मनिष्ठा ब्रह्मारामाः सन्तो जना यथा **ब्राह्मणा** इति व्यवह्रियन्ते तथा जगद्रूपाखण्डलिङ्गप्रेमिणस्तत्प्रीत्यर्थमेव जगति व्यवहरन्तः लिङ्गाधीनप्राणाः साधका **लिङ्गायता** इति, सर्वत्र शिवदर्शनरतास्तदेकनिष्ठाख्यं वीरव्रतमाचरन्तो **वीरशैवा** इति च व्यवह्रियन्त इति विज्ञायते। अतो ब्राह्मण-लिङ्गायत-वीरशैवादिशब्दाः न केवलं जातिवाचकाः किन्तु ब्रह्मनिष्ठारूपधर्मबोधका इत्येतादृशो विशालार्थः **'विप्रास्तं युञ्जते'** इत्यत्र विज्ञायते—

'वि होत्रा' इत्यादि। **होत्राः** = भक्त के, यज्ञ दान इत्यादि सभी अनुष्ठानों को, (वयुना वेत्तीति) **वयुनावित्** = प्रार्थना करने वाले हमारे अभिप्राय को जानने वाला, **एकः** = वह एक सविता प्रेरक महादेव ने, **इत् विदधे** = इसी प्रकार धारण (स्वीकार) किया है। एक महादेव ही भक्त की सभी क्रियाओं को धारण (स्वीकार) करते हैं।

मन्त्रार्थ— 'शिवलिङ्ग' धारण करने वाले वीरशैव और अन्य शिवभक्त ब्राह्मण परशिवब्रह्म साक्षात्कार करने के लिये उसी में अपने अन्तःकरण और समस्त ज्ञानेन्द्रियों को लगाते हैं और अपनी बुद्धि को भी उसी ओर प्रेरित करते हैं। हमें सर्वव्यापी प्रेरक उस महादेव की मन लगाकर अनार्बाह्यरूप से सविस्तार स्तुति करनी चाहिये। केवल वही एक देव हमारे अभिप्राय को जानता है और हमारे सभी यज्ञ-दानादि अनुष्ठानों को सम्पन्न कराता है और उसे स्वीकार करता है।।४।।

अवतरण— 'ब्राह्मण' का अर्थ है ब्रह्मनिष्ठ परशिवब्रह्मस्वरूप परमात्मा में रमण करने वाले लोग। **'लिङ्गायत'** का अर्थ है स्थावर-जङ्गम जगत् के रूप में अवतीर्ण अखण्ड परशिवस्वरूप महालिङ्ग से प्रेम करने वाले और उसी को प्रसन्न करने वाले उसके अधीन शिवयोगी। उसी प्रकार **'वीरशैव'** का अर्थ है सर्वत्र शिव का साक्षात्कार करने वाले, उसमें निष्ठा रखने वाले 'वीर'व्रती। अतः 'ब्राह्मण', 'लिङ्गायत', 'वीरशैव' आदि शब्द केवल जातिवाचक न होकर, परशिवस्वरूप परब्रह्मनिष्ठ अर्थ के बोधक हैं। इस प्रकार का व्यापक अर्थ **'युञ्जते मन उत युञ्जते धियः विप्राः'** इत्यादि पूर्व मन्त्रस्थित **'विप्राः (तं) मनः युञ्जते'** इस अंश से ज्ञात होता है। तदनुसार **'युजे वां ब्रह्म'** इत्यादि। अग्रिम मन्त्र की व्याख्या करनी चाहिये—

CC0. In Public Domain. Jangamwadi Math Collection, Varanasi

Digitization by eGangotri and Sarayu Trust. Funding by MoE-IKS

युजे वां ब्रह्म पूर्व्यं नमोभिः
विश्लोक एतु पथ्येव सूरेः।
शृण्वन्तु विश्वे अमृतस्य पुत्रा
आ ये धामानि दिव्यानि तस्थुः।।५।।

'युजे' इति। एवं च **पूर्व्यं** सर्वापेक्षयाऽपि पूर्वं जातं सर्वादिभूतं भक्तानुग्रहलीलायै स्वीकृतदिव्यमूर्तरूपं **वां ब्रह्म** शक्तिशक्तिमद्रूपं परशिवाख्यं लिङ्गरूपं ब्रह्म। अनेन शक्तिशक्तिमतोरुभयोरपि ब्रह्मत्वप्रतिपादनेन शक्तिविशिष्टमेव परशिवब्रह्मेति स्पष्टमुक्तं भवति। तस्य पूर्व्यमिति विशेषणेन आरम्भप्रभृत्येव ब्रह्म तादृशमेव वर्तत इति सूचितं भवति। एतादृशं शक्तिविशिष्टं ब्रह्म **नमोभिः** नमस्कारैः **युजे** योजयामि नमस्करोमीत्यर्थः।

एवं नमस्कुर्वतो मम **पथि** परशिवप्राप्तिसाधनमार्गे **सूरेरिव** ब्रह्मप्राप्तिमत इव **श्लोकः** कीर्तिर्जय इति यावत्। **वि** विविधः **एतु** प्राप्नोतु। मम ब्रह्मप्राप्तिर्भवत्वित्यर्थः। परशिवसाक्षात्कारोऽस्त्विति यावत्।

स्वयमिव इतरे सर्वेऽपि एवमेव परशिवब्रह्मसाक्षात्कारमधिगच्छन्त्विति आशंसते **'सर्वे जनाः सुखिनो भवन्तु'** इति न्यायेन सर्वे साधकाः निरातङ्कतया सादरं शृण्वन्त्विति।

'पूर्व्यं वां ब्रह्म नमोभिः युजे' = चिच्छक्तिविशिष्ट परशिवब्रह्म वस्तुतः अमूर्त है, किन्तु भक्तों पर अनुग्रह करने के लिये वह दिव्यलिङ्ग के रूप में साकार होता है। वह **'पूर्व्य'** अर्थात् सबसे प्रथम विराजमान है। **'वां ब्रह्म'** इस प्रयोग से "भक्त शक्ति और शक्तिमान् दोनों को ब्रह्मरूप में देखता है। वही इष्टलिङ्ग के रूप में उसके सामने प्रत्यक्ष है। इस प्रकार परशिवब्रह्म शक्तिविशिष्ट ही है, यह स्पष्ट प्रतिपादित है।" भक्त कहता है कि **'पूर्व्य'** अर्थात् प्रारम्भ से ही अव्यक्त रूप में अवस्थित, किन्तु गुरु के समान भक्तों पर अनुग्रह करने के लिये लिङ्ग के रूप में अवतीर्ण साकार चिच्छक्तिविशिष्ट परशिवब्रह्म को मैं अनेक बार प्रणाम करता हूँ।

'(मम) पथि' = मेरे परशिवब्रह्मप्राप्ति के साधन मार्ग में, **सूरेः इव** = जिस प्रकार ब्रह्मसाक्षात्कारकर्ता को (विजय प्राप्त होता है, उसी प्रकार मुझे), **श्लोकः वि एतु** = विविध प्रकार का यश विजय प्राप्त हो। अर्थात् अन्य साधक के समान मुझे भी चिच्छक्तिविशिष्ट परशिवब्रह्म का साक्षात्कार हो।

'सर्वे जनाः सुखिनो भवन्तु' इस रीति से जिस प्रकार सभी के सुख की कामना की जाती है, इसी प्रकार भक्त यह कामना कर रहा है कि मेरे समान अन्य सभी साधक परशिवब्रह्म का साक्षात्कार करें। सभी साधक आतङ्करहित निर्भय होकर सादर सुनें—

CC0. In Public Domain. Jangamwadi Math Collection, Varanasi

Digitization by eGangotri and Sarayu Trust. Funding by MoE-IKS

ये यानि **दिव्यानि धामानि** स्थानानि। दिव्यं धामैव हि मोक्षः। चेतनबहुत्वात् बहुवचनप्रयोगः। **आ तस्थुः** विराजन्ते, (तानि) **विश्वे** सर्वेऽपि **अमृतस्य** मृत्युञ्जयस्य **पुत्राः शृण्वन्तु**। एवं वयं सर्वेऽपि ब्रह्मपुत्राः ब्रह्मांशभूताः मुक्त्यर्हा एव। अतो मदुक्तं श्रुत्वा तन्मार्गे गत्वा मुक्तिं प्राप्नुवन्तु सर्वेऽपि॥५॥

एवं सवितृस्तोत्रपुरस्सरं स्वस्य मुमुक्षुत्वादिकं प्रकटीकृत्य, ये त्वेवं मुमुक्षाहीनाः ते केवलकर्मस्वधिकृता एव भवन्तीत्याह—

अग्निर्यत्राभिमथ्यते वायुर्यत्राधिरुध्यते।
सोमो यत्रातिरिच्यते तत्र सञ्जायते मनः॥६॥

'अग्निर्यत्र' इत्यादि। **यत्र** यस्मिन् कर्मणि **अग्निरभिमथ्यते** प्रेरको भवतीति यावत्। **यत्र च वायुः अधिरुध्यते** मन्त्रोच्चारणादिकार्यनिर्वाहाय साधको भवति। प्राणवायोरधीनं हि मन्त्रोच्चारणादिकं कर्म। **सोमः** उमाशक्तिविशिष्टः परमात्मा

'आ ये धामानि दिव्यानि तस्थुः' (ये दिव्यानि धामानि आ तस्थुः) = जो दिव्य धाम हैं। दिव्य धाम का अर्थ ही मोक्ष है। यहाँ चेतनशील जीवात्मा की अनेकता के कारण बहुवचन का प्रयोग है। **'शृण्वन्तु' अमृतस्य पुत्राः', विश्वेतानि** = दिव्य धाम स्वरूप उसे मोक्ष के विषय में) **'विश्वे अमृतस्य पुत्राः'** = मृत्युञ्जय परमशिव के सभी पुत्र, **'शृण्वन्तु'** = सुनें। इस प्रकार हम सभी साधक परमशिवस्वरूप ब्रह्म के अंशस्वरूप पुत्र मुक्ति प्राप्त करने के योग्य ही हैं। इसलिये मेरा हितोपदेश सुनकर उस सन्मार्ग का अनुसरण करते हुए आप सभी मुक्ति प्राप्त करें।

मन्त्रार्थ— सर्वप्रथम अव्यक्त रूप में अवस्थित और अनन्तर चिच्छक्तिविशिष्ट लिङ्गस्वरूप परशिवब्रह्म को मैं अनेक बार प्रणाम करता हूँ। अन्य ब्रह्मज्ञानी के समान मुझे भी परशिवब्रह्म का साक्षात्कार हो। जिन जीवात्माओं ने उस मोक्षस्वरूप दिव्यधामों को प्राप्त किया है, वे सभी मृत्युञ्जय परमशिव के अंशस्वरूप उसी के पुत्र हे जीवात्माओं ! आप इस बात को निर्भय होकर सुनें। मेरा उपदेश सुनकर सभी सन्मार्ग की ओर अग्रसर हों और मुक्ति प्राप्त करें।।५।।

अवतरण— इस प्रकार **'सविता'** सर्वप्रेरक परशिवब्रह्म की स्तुति के साथ अपना मुमुक्षुत्व आदि प्रकट कर यह तथ्य प्रकट कर रहे हैं कि जो इस प्रकार मुक्ति की कामना नहीं करते, वे केवल कर्म के ही अधिकारी होते हैं, मोक्ष के नहीं—

'अग्निर्यत्राभिमथ्यते' इत्यादि। जिस अनुष्ठान में अग्नि प्रेरक होता है और जिस अनुष्ठान में **प्राणवायु** मन्त्रोच्चारणादि कार्य निर्वाह करने के लिये साधक होता है। क्योंकि

CC0. In Public Domain. Jangamwadi Math Collection, Varanasi

Digitization by eGangotri and Sarayu Trust. Funding by MoE-IKS

यत्र यस्मिन् कर्मणि **अतिरिच्यते** सर्वश्रेष्ठो भासते **तत्र** तादृशे कर्मणि भगवदाराधनरूपे शिवयज्ञे **मनः** मुमुक्षोरेव **सञ्जायते**। मुमुक्षारहितो जीवः अनधिगतान्तस्सुखः बाह्यकर्मस्वेवासक्तो भवति। अमुमुक्षुकृतकर्मणां तु स्वर्गादिरेव फलं न तु ब्रह्मज्ञानमिति तेषां निन्दा कृता।।६।।

अतो ब्रह्मप्राप्तीच्छव एव साधकाः श्रेष्ठा इत्याह—

सवित्रा प्रसवेन जुषेत ब्रह्म पूर्व्यम्।
तत्र योनिं कृण्वसे नहि ते पूर्तमक्षिपत्।।७।।

'सवित्रा' इत्यादि। **प्रसवेन** सर्वकारणेन **सवित्रा** देवेन तदनुग्रहेण **पूर्व्यं** सर्वादिभूतं मूर्तामूर्तोभयात्मकं **ब्रह्म जुषेत** सेवेत प्राप्नुयादित्यर्थः। **तत्र** ब्रह्मणि **योनिं** तत्प्राप्तिकारणभूतां निष्ठां समाधिरूपां **कृण्वसे** कुरुष्व। एवं स्वर्गादि-फलमचिन्तयित्वा शिवबुद्ध्या यज्ञादिकं केवलमूर्तोपासनरूपं प्राकृतं कर्म कुर्वतः

समस्त मन्त्रजपादि अनुष्ठान प्राणवायु के ही अधीन हैं। **'सोम'** अर्थात् उमाशक्तिविशिष्ट परमशिव जिस अनुष्ठान में सर्वश्रेष्ठ प्रकाशित होते हैं, उस भगवदाराधनास्वरूप शिवयज्ञ में मुमुक्षु साधक का मन लगता है। जिसे मोक्ष की कामना नहीं रहती वह जीव आन्तरिक सुख को प्राप्त नहीं करता और केवल बहिर्मुख होकर बाह्य कर्मों में ही आसक्त होता है। मोक्षकाम साधकों से भिन्न जीवों को मात्र स्वर्गादि सुख की प्राप्ति होती है, ब्रह्मज्ञान नहीं। इस प्रकार मुमुक्षुओं से भिन्न जीवों की निन्दा की गयी है।

मन्त्रार्थ— जिस कर्म में अग्नि प्रेरक होता है, प्राणवायु मन्त्रजप में साधक होता है, उमासहित शिव सर्वश्रेष्ठ प्रतीत होते हैं, उस शिवोपासना में मुमुक्षु साधक का मन लगता है, अन्य जीव का नहीं।।६।।

अवतरण— इसीलिए परशिवब्रह्मसाक्षात्कार की कामना करने वाले साधक ही श्रेष्ठ होते हैं, इस अर्थ को श्रुति इस प्रकार प्रकट कर रही है—

'सवित्रा प्रसवेन' इत्यादि। **प्रसवेन** = सर्वकारणस्वरूप, **सवित्रा** = सर्वप्रेरक परशिव ब्रह्म के अनुग्रह से, **पूर्वं ब्रह्म** = सब के आदि कारण मूर्त-अमूर्त उभयस्वरूप परशिवब्रह्म को, **जुषेत** = प्राप्त करे, उसका साक्षात्कार करे। **तत्र** = उस परब्रह्म में, **योनिम्** = उसकी प्राप्ति के साधनस्वरूप समाधियोग को, **कृण्वसे** = लगाना चाहिये।

इस प्रकार स्वर्ग आदि क्षणिक सुखदायक फल की उपेक्षा कर शिवबुद्धि से केवल मूर्त उपासनास्वरूप यज्ञादि प्राकृत अनुष्ठान करनेवाले) **ते पूर्तं कर्म** = तुम्हारा

CC0. In Public Domain. Jangamwadi Math Collection, Varanasi

Digitization by eGangotri and Sarayu Trust. Funding by MoE-IKS

ते तव **पूर्तं** स्मार्तकर्म। इदं श्रौतकर्मणोऽप्युपलक्षकम्। श्रुत्युक्तं स्मृत्युक्तं च सर्वं कर्म देवताराधनरूपं **नहि अक्षिपत्** भोगे त्वां क्षिप्त्वा बन्धं नोत्पादयति। ब्रह्मप्राप्तीच्छया कर्म कुर्वतः पुरुषस्य कर्माणि न बन्धकानि. भवन्तीत्यर्थः।

"कुर्वन्नेवेह कर्माणि जिजीविषेच्छतं समाः।
एवं त्वयि नान्यथेतोऽस्ति न कर्म लिप्यते नरे।।"

इति ह्युच्यते **ईशावास्यश्रुतौ** (ईश उ.२)। ब्रह्मासंस्पृष्टान्येव कर्माणि इहामुत्र च मारकानि भवेयुरिति वैदिकवाङ्मये निश्चितम्। लोकानुभवेऽपि सर्वे साधका एवमेव जानते तथापि मोहेन प्रवर्तन्त इत्याश्चर्यम्।

"शिवभावनया सर्वं नित्यनैमित्तिकादिकम्।
कुर्वन्नपि महायोगी गुणदोषैर्न बाध्यते।।"

देवताराधनस्वरूप सभी श्रौत और स्मार्त अनुष्ठान, **नहि अक्षिपत्** = तुम्हें उपभोग की ओर प्रवृत्त कर बन्धन में नहीं डाल रहा है। इसका तात्पर्य यह है कि जो ब्रह्मसाक्षात्कार की कामना से कर्म करते हैं, उन्हें वे कर्म बन्धनकारक नहीं होते।

कुर्वन्नेह कर्माणि इत्यादि सिद्धान्त ईशावास्योपनिषद् द्वितीय मन्त्र में प्रतिपादित करती है। इस मन्त्र का आशय इस प्रकार है— इस कर्मक्षेत्र में वेदाङ्गसम्मत लिङ्गधारण इत्यादि पतिकर्म करते हुए सौ वर्षों तक जीवित रहना चाहिये। अन्यथा वह पतित की कोटि में आयेगा। शिवसमर्पणबुद्धि से कर्मयोग में रत मानव कर्मफल के लेप से लिप्त नहीं होता। इस प्रकार वैदिक वाङ्मय में यह निश्चय किया गया है कि जो कर्म परशिवब्रह्म से सम्बद्ध नहीं होते, वे इहलोक और परलोक में मारक होते हैं। लोगों का भी यह अनुभव है कि यद्यपि सभी साधक ऐसा ही समझते हैं, तथापि मोह (अज्ञान) के कारण वैषयिक सुखों को प्राप्त करने के लिये बहिर्मुख होकर कर्म की ओर प्रवृत्त होते हैं, यह आश्चर्य का विषय है।

श्रीरेणुक और महामुनि अगस्त्य के संवाद रूप में शिवयोगी शिवाचार्य द्वारा निबद्ध **'सिद्धान्तशिखामणि'** ग्रन्थ भी भावाचारस्थल में दो श्लोकों द्वारा यह प्रतिपादन करता है कि शिवयोगियों द्वारा किये जाने वाले नित्य और नैमित्तिक कर्मानुष्ठान उन्हें बन्धन में नहीं डालते।

उनमें **'शिवभावनया सर्वम्'** इत्यादि पद्य का भाव यह है कि महान् शिवयोगी शिव की समर्पण की भावना से नित्य और नैमित्तिक कर्मों को अनुष्ठित करते हुए भी उनके गुण-दोषों के बन्धन में नहीं पड़ता।

CC0. In Public Domain. Jangamwadi Math Collection, Varanasi

Digitization by eGangotri and Sarayu Trust. Funding by MoE-IKS

''आत्मज्योतिषि सर्वेषां विषयाणां समर्पणम्।
अन्तर्मुखेन भावेन होमकर्मेति गीयते।।''

(सि.शि.१६.७०,७२)

इति रेणुकागस्त्यसंवादरूपः **सिद्धान्तशिखामणिः** भावाचारस्थले शिवयोगिभिः क्रियमाणं नित्यनैमित्तिकं कर्म तान् न बध्नातीति सम्यगुपदिशति। यतः तत्सर्वमपि कर्म शिवभावनया जगद्रूपस्य शिवस्य प्रीत्यर्थमेव निर्वर्त्यते। हृदयकमले प्रकाशमानस्य ज्ञानसूर्यस्य व्यवहारकाले सर्वदा स्मरणमेव शिवयोगिभिर्निर्वर्त्यमानं सन्ध्यावन्दनमिति श्रीरेणुकभगवत्पादाः अगस्त्यमहर्षये प्राक्तने काले यदुपादिशन् तत्सर्वैरप्याधुनिकैः सर्वदा स्मरणीयम्। अन्तर्मुखेन भावेन परशिवाग्नौ समस्तविषयाणां समर्पणमेव होमकर्मेति तैरुपदिष्टो मार्गः सर्वेषामप्यास्तिकानां मान्यः। तपःकर्मजपध्यानज्ञानात्मकं पञ्चयज्ञं नित्यानुष्ठानाय समुपदिष्टमेतैः। तादृशेन पञ्चप्रकारेण यज्ञेन यः शङ्करं पूजयति स एव भक्त

'आत्मज्योतिषि सर्वेषाम्' इत्यादि पद्य का आशय यह है कि 'होमकर्म' का अर्थ सामान्य यजन-याजन न होकर अन्तर्मुख होकर परशिवस्वरूप परमात्मा के चित्प्रकाश महाज्योति में सभी विषयों का समर्पण है। क्योंकि सभी अनुष्ठान शिव की भावना से जगत् के रूप में अवतीर्ण शिव को प्रसन्न करने के लिये ही सम्पादित होते हैं। जगत् के साथ व्यवहार करते समय हृदयकमल के मध्य चित्प्रकाशस्वरूप विराजमान ज्ञानसूर्य का सर्वदा स्मरण ही शिवयोगियों द्वारा किया जाने वाला सन्ध्या-वन्दन होता है, इस प्रकार श्री रेणुकभगवत्पाद ने अगस्त्य महर्षि को पूर्व युग में जो उपदेश दिया है, उसे सदा-सर्वदा सभी आधुनिक साधकों को स्मरण रखना चाहिये। अन्तर्मुखभावना द्वारा परशिवस्वरूप अग्निदेवता को समस्त विषयों का समर्पण ही होमकर्म है, उनके द्वारा प्रदर्शित यह मार्ग सभी आस्तिकों को मान्य है। आपने पञ्च महायज्ञों के नित्य अनुष्ठान का जो उपदेश दिया है, उसके अन्तर्गत तपश्चरण, निष्काम कर्म, मन्त्रजप, परशिवब्रह्म का ध्यान और ब्रह्म-साक्षात्कार का समावेश है। इस प्रकार पञ्चमहायज्ञों द्वारा जो शिवपूजन करता है, भक्त के रूप में उसका ही स्मरण किया जाता है। उसी प्रकार का भक्त शिवयोगसाम्राज्य पर प्रतिष्ठित होकर संसार में अलिप्त भाव से व्यवहार करते हुए ब्रह्मानन्द का नित्य अनुभव कर सकता है। अब विस्तार को विराम देना चाहिये।

CC0. In Public Domain. Jangamwadi Math Collection, Varanasi

Digitization by eGangotri and Sarayu Trust. Funding by MoE-IKS

इति स्मर्यते। तादृश एव भक्तः शिवयोगसाम्राज्यमधितिष्ठन्नेव लोके निर्लिप्ततया व्यवहरन् नित्यानन्दमनुभवितुं शक्नोतीत्यलमतिविस्तरेण।।७।।

'योनिं कृण्वसे' इति ब्रह्मप्राप्तिसाधनानुष्ठानमुपदिष्टम्। तच्च साधनं योगरूपम्। तत्प्रकारः कथ्यते—

त्रिरुन्नतं स्थाप्य समं शरीरं
हृदीन्द्रियाणि मनसा सन्निवेश्य।
ब्रह्मोडुपेन प्रतरेत विद्वान्
स्रोतांसि सर्वाणि भयावहानि।।८।।

त्रिरुन्नतमिति। त्रीणि उरोग्रीवाशिरांसि उन्नतानि यस्मिन् शरीरे तत् **त्रिरुन्नतं समं** ऋजु **शरीरं स्थाप्य** संस्थाप्य **हृदि** हृदये **इन्द्रियाणि** चक्षुरादीनि **मनसा** सह **सन्निवेश्य** स्थापयित्वा, सन्नियम्येत्यर्थः। **विद्वान्** योगमार्गरहस्यज्ञः **भयावहानि** भीकराणि जन्मजरामरणरूपाणि **सर्वाणि स्रोतांसि** प्रवाहान् **ब्रह्मोडुपेन** ब्रह्म प्रणवः

मन्त्रार्थ— सर्वादिकारण सत्प्रेरक परमशिव की कृपा से शिवयोगी ब्रह्मसाक्षात्कार करे, उसके लिये ध्यानमग्न होकर समाधि में लीन हो। श्रौत-स्मार्त सभी प्रकार के अनुष्ठान शिवयोगी को बन्धनकारक नहीं होते।।७।।

अवतरण— पूर्व मन्त्र में **'योनिं कृण्वसे'** इत्यादि द्वारा ब्रह्मप्राप्ति के साधन का उपदेश दिया गया है और वह साधन हैं **समाधियोग**। उसी का निरूपण अब किया जा रहा है—

'त्रिरुन्नतं स्थाप्य समं शरीरम्'— (त्रीणि उन्नतानि यस्मिंस्तत् त्रिरुन्नतं समं शरीरं स्थाप्य) — अपने शरीर के तीन अवयवों– वक्षःस्थल, गरदन और सिर को उन्नत और सीधा सरल करके; (यहाँ पर **'स्थाप्य'** वैदिक प्रयोग है, लौकिक संस्कृत में **'संस्थाप्य'** अथवा **'स्थापयित्वा'** प्रयोग होगा)। **'हृदीन्द्रियाणि मनसा सन्निवेश्य'**— अपने श्रोत्र, नेत्र, रसना, नासिका और त्वचा इन पाँच ज्ञानेन्द्रियों को अन्तःकरण के साथ स्थापित अर्थात् नियंत्रित कर; **'ब्रह्मोडुपेन प्रतरेत विद्वान्'** इत्यादि— **विद्वान्** योगमार्ग के रहस्यों का मर्मज्ञ, **भयावहानि** जन्म-मरण-वृद्धावस्था आदि भयस्वरूप- डरावने, **सर्वाणि स्रोतांसि** सभी जलप्रवाहों को, **ब्रह्मोडुपेन प्रतरेत** ओङ्कार की नाव से पार करना चाहिये।

'प्रणवं चोत्तरारणिम्' इत्यादि मन्त्रभाग द्वारा प्रणव (ओंकार) को ब्रह्मप्राप्ति का साधन कहा गया है। अतः यहाँ 'ब्रह्म' शब्द का अर्थ ब्रह्मप्राप्ति का साधन ओंकार है।

CC0. In Public Domain. Jangamwadi Math Collection, Varanasi

Digitization by eGangotri and Sarayu Trust. Funding by MoE-IKS

स एवोडुपः प्लवः स्रोतस्तरणसाधनं **'प्रणवं चोत्तरारणिम्'** इति पूर्वमुक्तत्वात्। तादृशेन प्रणवेन तद्रूपेणोडुपेन प्रतरेत अतिक्रमेत्॥८॥

प्राणायामक्षपितमलस्यैव चित्तशुद्ध्या योगानुष्ठानसम्भवात् प्राणायामोऽत्रोपदिश्यते—

प्राणान् प्रपीड्येह संयुक्तचेष्टः
क्षीणे प्राणे नासिकयोच्छ्वसीत।
दुष्टाश्वयुक्तमिव वाहमेनं
विद्वान् मनो धारयेताप्रमत्तः॥९॥

'प्राणान् प्रपीड्येह' इत्यादि। **संयुक्तचेष्टः**—

"युक्ताहारविहारस्य युक्तचेष्टस्य कर्मसु।
युक्तस्वप्नावबोधस्य योगो भवति दुःखहा॥" (गीता ६/१७८)

[जैसा कि **गीता** कहती है— **"ॐ तत्सदिति निर्देशो ब्रह्मणस्त्रिविधः स्मृतः।"** (गीता १७.२३)] वही भवसागर पार करने वाली छोटी नौका है। **'उडुप'** शब्द का अर्थ जलप्रवाह को पार करने का साधन छोटी नौका होता है, जैसा कि **अमरकोष** का वचन है— **'उडुपं तु प्लवः पोतः।'**]

मन्त्रार्थ— पहले अपने वक्षस्थल, गर्दन और सिर को उन्नत और सरल रखना चाहिये। फिर अन्त.करण के साथ अपने ज्ञानेन्द्रियों पर नियन्त्रण स्थापित करना चाहिये। अनन्तर योगी को चाहिये कि वह ओंकार की नौका बनाकर भयावह जलस्रोतों को पार करे॥८॥

अवतरण— प्राणायाम करने से जब आणव, मायीय और कार्मिक अज्ञानमल का क्षालन होता है, तभी चित्त, अन्तःकरण की शुद्धि होती है। चित्तशुद्धि के द्वारा ही समाधि लगाना सम्भव होता है। अतः इस मन्त्र में प्राणायाम का उपदेश दिया जा रहा है—

'प्राणान् प्रपीड्येह संयुक्तचेष्टः' इत्यादि— (संयुक्ताः चेष्टाः यस्य सः संयुक्तचेष्टः)। **'युक्ताहारविहारस्य युक्तचेष्टस्य'** इत्यादि (६/१७) भगवद्गीता में प्रतिपादित उपदेश के अनुसार जिसके क्रियाकलाप (वाणी पर नियंत्रण आदि) नियंत्रित होते हैं, उसके लिये समाधियोग सभी सांसारिक दुःखों का नाश करने वाला होता है। जैसा कि इसका हिन्दी पद्यानुवाद है—

"जब युक्त सोना, जागना, आहार और विहार हो।
हो दुःखहारी योग जब परिमित सभी व्यवहार हों॥"
(श्रीकृष्णगीता, ६/१७८)

CC0. In Public Domain. Jangamwadi Math Collection, Varanasi

Digitization by eGangotri and Sarayu Trust. Funding by MoE-IKS

इत्याद्युक्तरीत्या **संयुक्ता** सम्यक् युक्ता **चेष्टा** व्यापारः यस्य तादृशः सः **प्राणान् प्रपीड्य** प्रकर्षेण पीडयित्वा, निरोधनं कृत्वा। तत्प्रकारश्च योगसिद्धेन गुरुणैवोपदेष्टव्यः। **इहाऽस्मिन्** शरीरे **प्राणे क्षीणे** शक्तिहान्या लघुत्वं प्राप्ते **नासिकयोच्छ्वसीत** शनैः शनैः श्वासमुत्सृजेत्, न मुखेन वेगात्। एवं प्राणायामं कुर्वन् **विद्वान्**

इस प्रकार नियमित रूप से कार्यकलाप करनेवाले समाधियोगनिरत योगी को चाहिये कि वह प्राणायाम द्वारा अपने प्राणों को निरुद्ध करे। इस प्रकार का उपदेश साधक योगी को ही करना चाहिये।

पुनश्च इस शरीर में प्राणवायु की मात्रा कम होने पर और शरीर हल्का होने पर, नासिका द्वारा धीरे-धीरे सांस को छोड़ना चाहिये। मुँह से जोर-जोर से साँस नहीं लेनी चाहिये।

'दुष्टाश्वयुक्तामिव' इत्यादि। फिर जिस प्रकार सावधान सारथी अनियंत्रित घोड़ों से जुते हुए रथ को उन घोड़ों पर नियंत्रण रखकर संभालता है, उसी प्रकार प्राणायाम के समय योगी सावधान होकर अपने अनियंत्रित मन को संभाले।

[**कठोपनिषद्** कहती है—

"यस्त्वविज्ञानवान् भवत्ययुक्तेन मनसा सदा।
तस्येन्द्रियाण्यवश्यानि दुष्टाश्वा इव सारथेः।।३/५।।"

शांकरभाष्य में **प्राणायाम** का निर्देश इस प्रकार है— **"प्राणायामक्षपितमनोमलस्य चित्तं ब्रह्मणि स्थिरं भवतीति प्राणायामो निर्दिश्यते। प्रथमं नाडीशोधनं कर्तव्यम्। ततः प्राणायामेऽधिकारः। दक्षिणनासिकापुटमङ्गुल्याऽवष्टभ्य वामेन वायुं पूरयेद् यथाशक्ति। ततोऽनन्तरमुत्सृज्यैवं दक्षिणेन पुटेन समुत्सृजेत्। सव्यमपि धारयेत्। पुनर्दक्षिणेन पूरयित्वा सव्येन समुत्सृजेत् यथाशक्ति। त्रिःपञ्चकृत्वो वा एवमभ्यस्यतः सवनचतुष्टयमपररात्रे मध्याह्ने पूर्वरात्रेऽर्धरात्रे च पक्षान्मासाद् विशुद्धिर्भवति। त्रिविधा प्राणायामो रेचकः पूरकः कुम्भक इति।"**

इसका आशय इस प्रकार है— जिसका अन्तःकरण प्राणायाम द्वारा निर्मल होता है, परब्रह्म परमात्मा में उसकी समाधि लगती है। नाडीशोधन के बाद प्राणायाम का अधिकार प्राप्त होता है। प्रथम दक्षिण नासिकापुट को अंगुठे से दबाकर यथाशक्ति ऊपर की ओर सांस खींचनी चाहिये। फिर उसे छोड़कर वाम नासिकापुट को दबाना चाहिये। पुनश्च दाहिने नासापुट से सांस खींचकर उसे बायें नासापुट से यथाशक्ति छोड़ना चाहिये। इस प्रकार तीन अथवा पाँच बार चार बेला में प्राणायाम का अभ्यास करना चाहिये। वे चार बेलाएँ हैं— अवशिष्ट रात्रि, अरुणोदय वेला, मध्याह्नवेला, पूर्वरात्रि और अर्धरात्रि। इस प्रकार जो

CC0. In Public Domain. Jangamwadi Math Collection, Varanasi

Digitization by eGangotri and Sarayu Trust. Funding by MoE-IKS

योगी प्राणायामकाले **दुष्टाश्वयुक्तमिव** दुष्टैः अशिक्षितैः दमनं कर्तुमशक्यैः अश्वैः इन्द्रियरूपैः हयैर्युक्तमेनं लोकानुभवदृष्टं (**वाहं**) रथमिव **अप्रमत्तः** अतीव सावधानः सन् **मनः** स्वीयमन्तःकरणं **धारयेत** धारयेत्।।९।।

अभ्यास करता है, उसका नाड़ीशोधन कम से कम एक पखवारे के भीतर अथवा अधिक से अधिक एक मास के भीतर अवश्य होता है। प्राणायाम तीन प्रकार का है— **रेचक** = हवा को धीरे-धीरे नीचे छोड़ना, **पूरक** = हवा को धीरे-धीरे ऊपर खींचना और **कुम्भक** = प्राणवायु का निरोध करना। शांकरभाष्य इसमें अनेक प्रमाणवचन उपस्थित करता है, जिनमें अन्यतम यह प्रमाणवचन है—

''प्राणायामं ततः कुर्याद् रेचपूरककुम्भकैः।
प्राणापानसमायोगः प्राणायामः प्रकीर्तितः।।''

रेचक, पूरक और कुम्भक त्रिविध प्राणायाम करना चाहिये। हृदयस्थित प्राणवायु और गुदास्थित अपान वायु दोनों के संयोग को प्राणायाम कहते हैं।

श्रीमद्भगवद्गीता मोक्षप्राप्ति के लिये प्राणप्रयाणकाल में मूर्धास्थित सहस्रारचक्र में प्राणनिरोध और प्रणवजप का स्पष्ट उपदेश देती है—

''सर्वद्वाराणि संयम्य मनो हृदि निरुध्य च।
मूर्ध्न्याधायाऽऽत्मनः प्राणमास्थितो योगधारणाम्।।
ओमित्येकाक्षरं ब्रह्म व्याहरन् मामनुस्मरन्।
यः प्रयाति त्यजन् देहं स याति परमां गतिम्।।''

—गीता ८/१२-१३

इसका हिन्दी पद्यानुवाद इस प्रकार है—

''सब इन्द्रियों को साध कर निश्चल हृदय में मन धरे।
फिर प्राण मस्तक में जमाकर धारणा योगी करे।।
मेरा लगाना ध्यान कहता ॐ अक्षर ब्रह्म ही।
तन त्याग जाता जीव जो परम गति है वही।।''

—श्रीकृष्णगीता ८.१२-१३]

मन्त्रार्थ— अपने क्रियाकलापों पर संयम बरतनेवाले योगी को चाहिये कि वह इस शरीर में कुंभक प्राणायाम द्वारा प्राण का निरोध कर प्राण की मात्रा कम होने पर धीरे-धीरे उसे नासापुट से छोड़े। योगशास्त्रवेत्ता साधक इस प्रकार सावधान होकर मन पर उसी प्रकार नियंत्रण करें, जिस प्रकार सारथी सावधान होकर रथ में जुड़े हुए अनियंत्रित घोड़े पर लगाम कसता है।।९।।

CC0. In Public Domain. Jangamwadi Math Collection, Varanasi

Digitization by eGangotri and Sarayu Trust. Funding by MoE-IKS

अथ योगाभ्यासाय युक्तं प्रदेशं निर्दिशति—

समे शुचौ शर्करावह्निवालुका–
विवर्जिते शब्दजलाश्रयादिभिः।
मनोऽनुकूले न तु चक्षुपीडने
गुहानिवाताश्रयणे प्रयोजयेत्।।१०।।

'समे' इति। **समे** निम्नोन्नतभागरहिते **शुचौ** परिशुद्धे **शर्करावह्निवालुका-विवर्जिते** शर्करा: क्षुद्रविला:, वह्नि: तापहेतु: अग्नि:, वालुका: सिकता: एभिर्विवर्जिते। एवमेव **शब्दजलाश्रयादिभिः** शब्द: कलहादिध्वनि:, जलं सर्वप्राण्युपभोग्यतटाकादि:, आश्रय: जनानां वासस्थानभूतो मण्डप:, **'मण्डपोऽस्त्री जनाश्रयः'** इत्यमर:। एभिरपि **विवर्जिते** इत्यनुवृत्ति:। तथा च जनरहिते विविक्तदेश इत्यर्थ:। तटाकादीनां सामीप्ये मण्डपादीनां सान्निध्ये च जलार्थिनां विश्रान्तिकामानां जनानां समावेशाद् योगाभ्यासस्य महानातङ्क: सञ्जायेत। अत एतदतिरिक्त: प्रदेश अधिगन्तव्य:।

अत्र प्रतिपादितानां विशेषणानां उद्देशभूतं फलमाह— **'मनोऽनुकूल'** इति। एतादृशो हि देश: योगाभ्यासं कुर्वत: पुरुषस्य मनस अनुकूल: स्यात्।

अवतरण— अब श्रुति योगसाधना के उपयुक्त प्रदेश का निर्देश इस प्रकार कर रही है—

'समे शुचौ' इत्यादि। **समे** = योगसाधना की भूमि समतल होनी चाहिये, ऊबड़-खाबड़, नीची-ऊँची नहीं, **शुचौ** = वह अत्यन्त निर्मल पवित्र होनी चाहिये, अस्वच्छ नहीं। **शर्करावह्निवालुकाविवर्जिते** = उसमें कंकड़-पत्थर, दाहक अग्नि, बालू के कण आदि नहीं होना चाहिये। **शब्दजलाश्रयादिभिः (विवर्जिते)** = उसमें किसी प्रकार का कोलाहल-लड़ाई झगड़े का शोरगुल, जलाशय-मण्डप आदि नहीं होना चाहिये, **मण्डपोऽस्त्री जनाश्रयः** इस अमरकोश के वचनानुसार मण्डप वह स्थान है, जहाँ लोग आश्रय लेते हैं। क्योंकि वहाँ भीड़ एकत्र होती है। अत: वह प्रदेश सर्वथा निर्जन होना चाहिये। तालाब इत्यादि के पास और मण्डप, देवालय आदि के निकट जल की और विश्राम की कामना करने वाले लोग आते हैं। वहाँ जनसंपर्क होने के कारण वह स्थान योगाभ्यासी व्यक्ति के लिये आतंक उत्पन्न करता है। अत: इसके विपरीत प्रदेश योगसाधना के लिये उपयुक्त समझना चाहिये। अब तक प्रतिपादित विशेषणों का फल अग्रिम विशेषणों में है— **मनोऽनुकूले** = वह प्रदेश योगाभ्यास करने वाले साधक के मन के अनुरूप होना चाहिये अथवा जिस स्थान पर मन रमे, वहाँ योगी योगसाधना करे इस प्रकार सामान्य

CC0. In Public Domain. Jangamwadi Math Collection, Varanasi

Digitization by eGangotri and Sarayu Trust. Funding by MoE-IKS

अथवा यत्रावस्थाने मनः अनुकूलं स्यात् तादृशे इति सामान्यत उक्तिः। मनः अन्तःकरणम्। तस्यानुकूल्यमेव नालम्, किन्तु **न तु चक्षुपीडन** इत्याह–चक्षुषः पीडानावहे दर्शनीयप्रकृतिसौन्दर्यविशिष्ट इत्यर्थः। चक्षुःपदस्य विसर्गलोपः छान्दसः। **'गुहानिवाताश्रयणे'** इत्यत्र गुहा गिरिगुहादिः। निवातः वातरहितम् आश्रयणम् आश्रयस्थलम्। गुहारूपं यद् वातरहितमाश्रयणं तद् गुहानिवाताश्रयणं तादृश एकान्ते प्रदेशे **प्रयोजयेत्** प्रकर्षेण युञ्जीत चित्तं परशिवब्रह्मणि हृदयस्थितेश्वरे सम्यक् युञ्जीत। सावधानतया चित्तैकाग्र्ययुक्तः परमात्मानं ध्यायीतेत्यर्थः॥१०॥

एवं योगाभ्यासं कुर्वतः पुरुषस्य अभिव्यक्तिचिह्नान्याह—

नीहारधूमार्कानिलानलानां
खद्योतविद्युत्स्फटिकाशशीनाम्।
एतानि रूपाणि पुरस्सराणि
ब्रह्मण्यभिव्यक्तिकराणि योगे।।११।।

कथन है। **न तु चक्षुपीडने** = मन अन्तःकरण है, केवल उसकी अनुकूलता ही नहीं देखनी चाहिये, अपितु वह प्रदेश ऐसा होना चाहिये, जहाँ नेत्रों को किसी प्रकार का कष्ट न हो। वहाँ प्राकृतिक सुहावने दृश्य नेत्रों को आह्लाद देने वाले हों। **'चक्षुःपीडने'** इस प्रकार लौकिक संस्कृत में प्रयोग होता है। विसर्गलोप वैदिक है।

गुहानिवाताश्रयणे = पहाड़ी गुफा, जहाँ हवा तक न पहुँचे ऐसा प्रदेश हो। **प्रयोजयेत्**— इस प्रकार के निर्जन वासरहित एकान्त प्रदेश में अपनी हृदयगुफा में जीवात्मा के साथ वास करने वाले परशिवब्रह्म में अपने मन को योगसाधना द्वारा एकाग्र होकर लगाना चाहिये। अर्थात् सावधान होकर चित्त को एकाग्र करके परमात्मा का ध्यान करना चाहिये।

मन्त्रार्थ— साधक उस प्रदेश में जाकर योगाभ्यास करे जो समतल हो, वह उबड़-खाबड़ न हो। उसमें कंकड़-पत्थर,बालुका, आग आदि न हो। जहाँ कोलाहल हो, वहाँ साधना नहीं करनी चाहिये। जलाशय, मण्डप आदि योगसाधना के उपयुक्त प्रदेश नहीं है, क्योंकि वहाँ भीड़ होती है। वह स्थान ऐसा होना चाहिये, जहाँ मन रमे। योगाभ्यासी का मन वहाँ नहीं रमता, जहाँ नेत्रों को पीड़ा पहुँचे। पर्वत गुफा निर्वात-निर्जन प्रदेश में योगाभ्यासी का मन रमता है। वहीं चित्त एकाग्र कर अन्तर्यामी परमात्मा का ध्यान करना चाहिये।।१०।।

अवतरण— श्रुति इस प्रकार योगसाधना करने वाले साधक के अभिव्यक्तिचिह्नों का प्रतिपादन इस प्रकार कर रही है—

CC0. In Public Domain. Jangamwadi Math Collection, Varanasi

Digitization by eGangotri and Sarayu Trust. Funding by MoE-IKS

'नीहारधूमे'ति। **नीहारः** शिशिरादिसमये उषःकाले पतन् सूक्ष्महिमकणः श्वेतवर्णः। **धूमः** धूमवर्णः वह्निजन्यः प्रसिद्धः। **अर्कः** आदित्यः पिङ्गलवर्णः। अनिलः वायुः। **अनलः** अग्निः लोहितवर्णः। **खद्योतः** रात्रौ गाढे तमसि दृश्यमानः खेचरोऽग्निकणाभो जन्तुः। **विद्युत्** तडित्। **स्फटिकः** श्वेतवर्णः स्वच्छः पाषाणः। शशी चन्द्रः। तेषाम् **एतानि रूपाणि पुरस्सराणि** प्रथमतो भासमानानि **योगे** योगाभ्याससमये **ब्रह्मण्यभिव्यक्तिकराणि** परशिवब्रह्मणः दिव्यप्रकाशसूचकानि भवन्ति। पुरो दृश्यमानान्येतानि रूपाणि साधकाय ब्रह्मप्रकाशाभिव्यञ्जकानि सम्पद्यन्ते। प्रपञ्चस्तावत् नीहारादिभिर्वस्तुभिर्व्याप्तः सन् विचित्रो वर्तते। परन्तु अयं सर्वोऽपि प्रपञ्चः ब्रह्मणः परिणाम एव। योगाभ्यासे निरतो जीवः सर्वमिमं चित्रविचित्रं प्रपञ्चं ब्रह्मभावेनैव पश्यति। सर्वे वर्णाः, सर्वाणि पदानि क्षणद्योतमानानि सर्वाणि वस्तूनि, इतराणि च तत्त्वानि योगसाधकेन परमात्मभावनयैव गृह्यन्त इत्यर्थः॥११॥

एवं समाधिस्थस्य सिद्धेः सूचकान्युक्त्वा इदानीमव्युत्थितव्युत्थितदशयोः साधारणाः सिद्धीः कथयति। योगाभ्यासनिरतः साधकः पञ्चतत्त्वमयं स्थूलदेहम्

नीहारधूमार्कानिलानलानाम्' इत्यादि। शिशिर, हेमन्त आदि ऋतुओं में भोर के समय जो सफेद कोहरा पड़ता है, उसे **नीहार** कहते हैं। योगाभ्यास करते समय साधक योगी के सामने परशिव ब्रह्म के प्रकाशक कतिपय चिह्न प्रकट होते हैं। उनके आँखों के सामने कोहरा छाता है। धुआँ सा उठने लगता है। फिर सूर्य का प्रकाश और पुनः आँधी आती है। अनन्तर लाल रंग की आग की चिनगारी सी दृष्टिगोचर होती है। फिर जुगनू की चमक दिखलाई देती है। फिर बिजली चमकती है। फिर स्फटिक का प्रकाश और पश्चात् चन्द्र का आलोक दृष्टिगोचर होता है। उक्त सभी चिह्न साधक को परशिवब्रह्म के साक्षात्कार की पूर्वसूचना देते हैं। समस्त प्रपञ्च नीहार से लेकर चन्द्र तक नौ वस्तुओं से व्याप्त है। किन्तु यह समस्त प्रपञ्च परशिवब्रह्म का परिणाम है। योगाभ्यास में लीन जीव इस समस्त चित्र-विचित्र सृष्टि को परशिव ब्रह्म के रूप में ही देखता है। सभी वर्ण, सभी पद क्षणिक प्रकाशमान सभी वस्तुएँ और अन्य समस्त तत्त्वों को योगसाधनारत साधक परमात्मस्वरूप समझकर ही स्वीकार करता है।

मन्त्रार्थ— नीहार, धूम, सूर्य, वायु, अग्नि, जुगनू, विद्युत, स्फटिक और चन्द्र ये समस्त स्वरूप परशिवब्रह्म के ही अभिव्यंजक हैं। अर्थात् समस्त प्रपञ्च ब्रह्म का परिणाम है। योगाभ्यासरत साधक जीव समस्त प्रपञ्च को परशिवब्रह्म के रूप में ही देखता है।।११।।

अवतरण— इस प्रकार समाधियोग की साधना में रत साधक ही सिद्धि के अभिव्यञ्जक चिह्नों का निरूपण कर अब अव्युत्थित और व्युत्थित दोनों दशाओं के

CC0. In Public Domain. Jangamwadi Math Collection, Varanasi

Digitization by eGangotri and Sarayu Trust. Funding by MoE-IKS

अन्त:करणचतुष्टयं च शिवमयमेव पश्यति। एवं देहस्य शिवमयत्त्वेन द्योतनमेव **अव्युत्थितदशे**त्युच्यते। अन्त:करणस्य सत्परिणामात् पञ्चतत्त्वात्मको बहि:प्रपञ्चोऽपि शिवस्यैव परिणाम इति भासते। एतादृशं द्योतनं **व्युत्थितदशे**त्युच्यते। आरम्भदशायां देह: शिवभावेनैवाऽनुभूयते। व्युत्थितदशायां तु बाह्य: सर्वोऽपि सन्निवेश: तथैव शिवरूपतया भासते। एतयोरवस्थयोर्योगिनोऽनुभवमत्र प्रकाशयति महर्षि:—

पृथिव्यप्तेजोऽनिलखे समुत्थिते
पञ्चात्मके योगगुणे प्रवृत्ते।
न तस्य रोगो न जरा न मृत्यु:
प्राप्तस्य योगाग्निमयं शरीरम्।।१२।।

'पृथिव्यप्तेजोऽनिलखे समुत्थिते' इति। पृथिवी, अप्, तेज:, अनिल: वायु:, खम् आकाश: एतानि पञ्चभूतानि। तेषां कार्याणि गन्धादीनि पृथिव्यादिपदैरुच्यन्ते। तेषु **समुत्थितेषु**। एवमुक्ते कोऽर्थो विज्ञेय:? इत्यत्र विवरणं **पञ्चात्मक** इति। **पञ्चात्मके** पञ्चभूतात्मकेषु **योगगुणे** योगगुणेषु

अन्तर्गत साधारण (समान) सिद्धियों का निरूपण किया जा रहा है। योगाभ्यास में लीन साधक (पृथ्वी-जल-तेज-वायु-आकाश इन पञ्च महाभूतों के) पञ्चतत्त्वों से निर्मित स्थूल शरीर और अन्त:करणचतुष्टय (महत्तत्त्व, मन, बुद्धि और अहंकार) को शिवस्वरूप ही देखता है। इस प्रकार पाञ्चभौतिक स्थूल शरीर का शिवस्वरूप में प्रकाशन **'अव्युत्थितदशा'** कहलाती है। अन्त:करण के परिणाम (रूपान्तरण) के कारण पञ्चतत्त्वों से निर्मित समस्त बाह्यप्रपञ्च भी शिव का ही रूपान्तरण प्रतीत होता है। ऐसी स्थिति **'व्युत्थितदशा'** कहलाती है। आरंभिक अव्युत्थितदशा में पाञ्चभौतिक शरीर का अनुभव शिवभावना से ही किया जाता है। व्युत्थितदशा में बाह्य समस्त प्रपञ्च भी उसी प्रकार शिवस्वरूप प्रतीत होता है। महर्षि श्वेताश्वतर योगी के इन्हीं दोनों अनुभवों को यहाँ प्रकाशित कर रहे हैं—

पृथिव्यप्तेजोऽनिलरवे समुत्थिते— 'पृथिवी च आप: च तेज: च अनिलश्च खं च इति तेषां समाहार: पृथिव्यप्तेजोऽनिलखम् तस्मिन्' इस समाहार द्वन्द्वसमास से सम्बद्ध एकवद्भाव द्वारा **'पृथिव्यप्तेजोऽनिलखे'** इस समस्त पद में पृथिवी, जल, तेज, वायु और आकाश इन पञ्च महाभूतों का निर्देश है। इन पञ्चभूतों के गन्ध आदि कार्यों को यहाँ पृथिवी आदि पदों से निरूपण किया गया है। उनका प्रादुर्भाव होने पर ;

इस प्रकार के कथन का यहाँ क्या अर्थ समझना चाहिये? इसका विवरण है **'पञ्चात्मके योगगुणे प्रवृत्ते'** — साधक की योगसाधना के प्रभाव से जब उसमें पृथिवी,

CC0. In Public Domain. Jangamwadi Math Collection, Varanasi

Digitization by eGangotri and Sarayu Trust. Funding by MoE-IKS

योगप्रभावजन्येषु सत्सु गन्धरसरूपस्पर्शशब्दात्मकेषु गुणेषु प्रवृत्तेषु योगिनि सम्भवत्सु पञ्चतत्त्वविस्ताररूपः प्रपञ्चः परशिवमय एव भासते। तदा प्रपञ्चः सर्वोऽपि स्वस्मिन्नेवाऽवस्थित इत्यनुभूयते। योगी अन्तर्यदनुभवति तदेव बहिः सर्वत्र व्याप्तं पश्यति। बहिर्यद् वर्तते तत् सर्वमप्यन्तरेवानुभूयते तेन। एवमन्तर्बहिश्चाभेददृष्टिस्तस्मिन् स्थिरीक्रियते। तदा प्रभृति भेदभावनैव निवर्तते। एतादृश्यामवस्थायां पृथिव्या गन्धवत्या यो गुणः सः तद्योगिनः साधकस्य च सम्भवति। तथा अद्भ्यो रसः, तेजसो रूपमिति क्रमादित्यर्थः। तथोक्तम्—

"ज्योतिष्मती स्पर्शवती तथा रसवती परा।
गन्धवत्यपरा प्रोक्ता चतस्रस्तु प्रवृत्तयः।।
आसां योगप्रवृत्तीनां यद्येकापि प्रवर्तते।
प्रवृत्तयोगं तं प्राहुः योगिनो योगचिन्तकाः।।" इति।

एवं योगसिद्धस्य **तस्य** योगिनः **न रोगः, न जरा, न मृत्युः,** रोगजरामरणदुःखानि नोत्पद्यन्ते।

जल, तेज, वायु और आकाश इन पञ्चमहाभूतों के गन्ध, रस, रूप, स्पर्श और शब्द पाँच गुण यथाक्रम प्रकट होते हैं ; तब सारा प्रपञ्च परशिवरूप ही प्रतीत होता है, जो पञ्चतत्त्वों का विस्तारमात्र है। उस समय समस्त प्रपञ्च का अनुभव योगी स्वयं में ही करता है। योगी जो आन्तरिक अनुभूति करता है, वही अनुभूति उसे सर्वत्र बाह्य व्यापक रूप से होती है। इस प्रकार उसमें अन्तर्बाह्य अभेद दृष्टि स्थिर होती है। उस समय से उसकी भेदभावना ही निवृत्त (समाप्त) होती है। ऐसी स्थिति में गन्धवती पृथिवी का जो गुण होता है, वह साधक योगी में भी जन्म लेता है। उसी प्रकार जल का गुण रस, तेज का गुण रूप इत्यादि यथाक्रम योगी में उत्पन्न होते हैं। जैसा कि प्रमाणवचन है— **'ज्योतिष्मती स्पर्शवती'** इत्यादि। इसका आशय यह है कि योगियों की प्रवृत्ति चार प्रकार की होती है— (१) ज्योतिष्मती, (२) स्पर्शवती, (३) रसवती और (४) गन्धवती। इन चार प्रवृत्तियों में से किसी की एक में भी प्रवृत्ति होती है, योग का चिन्तन करने वाले योगी उसे योग में ही प्रवृत्त कहते हैं।

'न तस्य रोगो न जरा न मृत्युः'— इस प्रकार जो सिद्धयोगी होता है, उसे न तो रोग होता है, न बुढ़ापा आता है और न उसकी मृत्यु होती है। अर्थात् उसे न तो रोग का, न बुढ़ापे का और न मृत्यु का भय लगता है। उसे इनसे जरा भी दुःख नहीं पहुँचता।

CC0. In Public Domain. Jangamwadi Math Collection, Varanasi

Digitization by eGangotri and Sarayu Trust. Funding by MoE-IKS

कुतो नोत्पद्यन्त इत्यत्राह— **प्राप्तस्येति**। **योगाग्निमयं** योग एवाग्निः सर्वदोषपरिहारकः तन्मयं शरीरं **प्राप्तस्य** दिव्यदेहमधिगतस्य जरादिकं न सम्भवति। ननु योगिनामपि शरीरे वार्धक्यादिकं सम्भवत्येव। तच्च सार्वजनीनम्। एवमेव अन्ते तच्छरीरस्य त्यागं नाशं च पश्याम एव। ततश्च कथं न जरा न मृत्युर्न रोग इत्यादि इति चेत्, सत्यमस्ति रोगजरामरणादिकम्। तत्सर्वं स्थूलस्य भौतिकस्य शरीरस्यैव, न तु योगलब्धस्य दिव्यशरीरस्य। योगाग्निमयशरीरस्य खलु तथोच्यते। अतो न दोष इति सर्वं समीचीनम्॥१२॥

पुनरपि योगसिद्धस्य महात्मनः चिह्नान्याह—

लघुत्वमारोग्यमलोलुपत्वं
वर्णप्रसादः स्वरसौष्ठवं च।

उसमें इनका भय क्यों नहीं लगता? इसमें हेतु है— **'प्राप्तस्य योगाग्निमयं शरीरम्'** — योगसाधना की अग्नि, जो योगी के समस्त विकारों का शमन करती है, इस प्रकार जब साधक का शरीर दिव्य योगमय हो जाता है, तब उसमें रोग, जरा और मृत्यु की सम्भावना नहीं रहती।

अब यह प्रश्न उपस्थित होता है कि योगियों के शरीर में भी उसी प्रकार वार्धक्य, रोग इत्यादि का आक्रमण होता है, जिस प्रकार सब लोगों के शरीर में। अन्त में उसके शरीर का नाश भी हम देखते हैं। फिर **'न तस्य रोगो न जरा न मृत्युः'** इसकी संगति किस प्रकार लगेगी? यह प्रश्न स्वाभाविक है और यह वास्तविकता भी है; क्योंकि रोग-जरा-मृत्यु आदि को योगी भी प्राप्त करता है। किन्तु वे उसके पाञ्चभौतिक स्थूल शरीर को ही प्राप्त होते हैं, **'योगाग्निमय शरीर'** योगसाधना द्वारा प्राप्त दिव्य शरीर को नहीं। अतः ऐसा कथन दोषपूर्ण नहीं है, अपितु समीचीन है।

मन्त्रार्थ— जब सिद्धयोगी में पृथिवी, जल, तेज, वायु और आकाश इन पञ्च महाभूतों के गन्ध, रस, रूप, स्पर्श और शब्द ये पाँच गुण योगप्रभाव से उत्पन्न होते हैं, तब योगी उन्हें परशिवस्वरूप ही देखता है। उसे अन्तर्बाह्य सभी अनुभूति शिवस्वरूप ही होती है। उसकी सारी की सारी भेदभावना मिट जाती है, सर्वत्र अभेददृष्टि फैलती है। ऐसी स्थिति में यद्यपि साधक स्थूल देह में रोग, जरा और मृत्यु का अनुभव करता है, तथापि योगसाधना द्वारा प्राप्त उसका दिव्य शरीर रोग, जरा, मृत्यु आदि का भय और दुःख प्राप्त नहीं करता।।१२।।

अवतरण— पुनश्च श्रुति सिद्ध योगी महात्मा के अभिव्यंजक चिह्नों का प्रतिपादन इस प्रकार कर रही है— **'लघुत्वम्'** इत्यादि।

CC0. In Public Domain. Jangamwadi Math Collection, Varanasi

Digitization by eGangotri and Sarayu Trust. Funding by MoE-IKS

गन्धः शुभो मूत्रपुरीषमल्पं
योगप्रवृत्तिं प्रथमां वदन्ति।।१३।।

लघुत्वं शरीरस्य लाघवाख्यो गुणः गुरुत्वाभावः। शरीरस्य गुरुत्वं सर्वानर्थकारीति प्रसिद्धम्। **आरोग्यम्** अरोगस्य भावः रोगराहित्यम्। **अलोलुपत्वं** लोलुपः विषयलम्पटः तस्य भावः लोलुपत्वम्। चापल्याप्रकृतिरिति यावत्। न लोलुपत्वमलोलुपत्वं विषयान्वेषणचापल्याभावः। **वर्णप्रसादः** वर्णस्य कृष्णगौरादेः प्रसादः प्रसन्नता नयनानन्दरूपत्वमित्यर्थः। **स्वरसौष्ठवं च** स्वरस्य कण्ठस्वरस्य सौष्ठवं सुश्राव्यत्वम्। चकारः समुच्चयार्थः। **गन्धः** शरीरगन्धः **शुभो** मनोहरः सञ्जायते। **मूत्रपुरीषम्,** पीतस्य जलस्य बहिर्निस्सारणं मूत्रं, तथैव भुक्तस्यान्नस्य बहिर्निस्सारणं पुरीषं तदुभयमपि **अल्पम्** अल्पप्रमाणतया प्रवर्तते अधिकजलपाने अधिकान्नभोजनेऽपि वा तदपेक्षयाप्यल्पम्। एतां दशां **प्रथमां योगप्रवृत्तिं**

---

(१) **लघुत्वम्** — शरीर की लघुता अर्थात् हलकापन एक गुण है। गुरुता (भारीपन) बड़ा भारी अनर्थकारी दोष होता है। वह गुरुता योगी महात्मा में नहीं होती। उसका शरीर हलका रहता है।

(२) **आरोग्यम्** — सिद्ध महात्मा को किसी प्रकार ही व्याधि नहीं रहती, वह सदा नीरोग-स्वस्थ रहता है।

(३) **अलोलुपत्वम्** — विषयसुख में आसक्त व्यक्ति लोलुप होता है। सिद्ध महात्मा में वैषयिक सुखों के प्रति अनासक्ति का भाव होता है। वह विषयों के पीछे नहीं भागता, चञ्चल अथवा व्यग्र नहीं रहता।

(४) **वर्णप्रसादः** — सिद्ध योगी के महात्मा का वर्ण चित्ताकर्षक रहता है, चाहे वह गोरा हो अथवा काला, उसे देखकर अन्तःकरण प्रसन्न होता है।

(५) **स्वरसौष्ठवं च** — और उसका कण्ठस्वर सुश्राव्य होता है।

(६) **गन्धः शुभः** — उसके शरीर का गन्ध भी अन्तःरण को प्रसन्न करनेवाला शुभ होता है।

(७) **मूत्रपुरीषमल्पम्** — अधिक जलपान और अधिक भोजन करने पर भी सिद्ध महात्मा स्वल्प मात्रा में मल-मूत्र विसर्जन करता है।

महात्मा में उक्त सात विशेषताएँ योगाभ्यास के प्रारम्भिक काल में दृष्टिगोचर होती हैं, जो आरंभिक योगसिद्धि के व्यञ्जक हैं।

CC0. In Public Domain. Jangamwadi Math Collection, Varanasi

Digitization by eGangotri and Sarayu Trust. Funding by MoE-IKS

योगारम्भावस्थासूचिकां **वदन्ति**। योगाभ्यासे प्रवृत्तस्य इदं सर्वमपि लक्षणं परिदृश्यते। आरम्भकालेऽनुकूलतयैतानि चिह्नानि दृश्यन्त इत्यर्थः। योगे एतान्यारम्भकालसिद्धिरूपाणि भवन्तीति तात्पर्यम्।।१३।।

अथ योगाभ्यासात् साधकेनाधिगतां परमां सिद्धिमाह—

यदैव बिम्बं मृदयोपलिप्तं
तेजोमयं भ्राजते तत् सुधान्तम्।
तद्वात्मतत्त्वं प्रसमीक्ष्य देही
एकः कृतार्थो भवते वीतशोकः।।१४।।

'यदैव बिम्बम्' इत्यादि। **तेजोमयं** स्वभावतः प्रकाशमानं सुवर्णेन रजतेन वा कृतं **बिम्बं** प्रतिमादिकं पूर्वं **मृदया** मृदा मृत्तिकया **उपलिप्तम्** अत्यन्तं मलिनीकृतं सत् पश्चात् **सुधान्तं** सम्यक्कृतशुद्धिम्, सुधौतमित्यर्थः। सुधान्तमिति छान्दसः प्रयोगः। एवं कुतशुद्धिकं तद् यथैव **भ्राजते** तेजोमयमेव प्रकाशेत, **तद्वा तथैवात्मतत्त्वम्**

मन्त्रार्थ— शरीर में हलकापन, निरोग रहना, विषयों के प्रति अनासक्ति, प्रसन्नतादायक वर्णकान्ति, स्वरमाधुरी, शरीरसौरभ और स्वल्पमात्रा में मलमूत्र-विसर्जन योगसाधना की प्रारंभिक सफलताएँ हैं।।१३।।

अवतरण — अब श्रुति योगसाधना द्वारा साधक को प्राप्त परम सिद्धि का निरूपण इस प्रकार कर रही है— **'यदैव बिम्बम्'** इत्यादि।

'यदैव तद्वा' ये दोनों प्रयोग **'यथैव तथा'** के अर्थ में किये हैं। **'यथैव'** शाङ्करभाष्यसम्मत पाठ है। दोनों का अर्थ एक है।

स्वाभाविक रूप से देदीप्यमान प्रकाशसम्पन्न सोने अथवा चाँदी की प्रतिमा आदि जब मिट्टी से लिपी-पुती होती है, तब अत्यन्त मलिन-अस्वच्छ गन्दी होती है। फिर यदि उसे अच्छी तरह से धो डाला जाय, तो वह **'सुधान्त'** अर्थात् अच्छी तरह से साफ सुथरा प्रतीत होता है। **'सुधान्तम्'** यह वैदिक प्रयोग है। **'सुधौतम्'** उसका परिष्कृत रूप है। इसका तात्पर्य यह है कि जिस प्रकार अच्छी तरह से साफ सुथरा व्यक्ति अपने तेजोमय अंश से ही प्रकाशित होता है; ठीक उसी प्रकार जब कोई अकेला विरला देहधारी महात्मा ही परशिवस्वरूप परमात्मतत्त्व का सम्यक् रीति से साक्षात्कार करता है, तब शोकमुक्त होता है। उसके सभी सांसारिक क्लेश दूर होते हैं। वह जीवन्मुक्त और कृतार्थ-धन्य हो जाता है। स्वयं प्रकाशमान आत्मतत्त्व अनादि कर्मजन्य वासना के कारण स्वस्वरूप को तिरोहित करने के कारण सांसारिक दशा में दुःखमय हो जाता है। आत्मतत्त्व के बोध से जब वह

CC0. In Public Domain. Jangamwadi Math Collection, Varanasi

Digitization by eGangotri and Sarayu Trust. Funding by MoE-IKS

एकः कश्चिदतीव विरलः **प्रसमीक्ष्य** सम्यगनुभूय **वीतशोको** गतसंसारक्लेशः जीवन्मुक्तः **कृतार्थो भवते** धन्यः सम्पद्यते। स्वतः स्वप्रकाशमात्मतत्त्वं हि अनादिकर्मवासनावशात् तिरोहितनिजस्वरूपं सत् संसारावस्थायां दुःखमयं भासते। तत्त्वज्ञानेन अनादिकर्मवासनाया निरासे तदेवात्मतत्त्वं योगदशायां निजरूपेण भासते। एतादृशमात्मतत्त्वं स्वतः आनन्दरूपं यः पश्यत्यनुभवति सः संसारे विद्यमानोऽपि तत्रत्यदुःखादिभिरसंस्पृष्टः सुखी धन्यश्च भवति॥१४॥

पूर्वोक्तमेवाशयं विशदयति—

यदाऽऽत्मतत्त्वेन तु ब्रह्मतत्त्वं
दीपोपमेनेह युक्तः प्रपश्येत्।
अजं ध्रुवं सर्वतत्त्वैर्विशुद्धं
ज्ञात्वा देवं मुच्यते सर्वपाशैः॥१५॥

यदेत्यादिना। युक्तः योगनिष्ठः **पुरुषः यदा तु** यस्यामवस्थायां हि आत्मतत्त्वेन स्वेनात्मना तत्त्वभूतेन करणरूपेण **'आत्मानमरणिं कृत्वा'** (के.

कर्मवासना दूर हो जाती है, तब योगसाधना की स्थिति में स्वस्वरूप में प्रकाशित होता है। इस प्रकार के सच्चिदानन्दस्वरूप परमात्मतत्त्व का जो साक्षात्कार करता है, वह संसार में रहते हुए भी वहाँ के दुःखों से अस्पृष्ट रहता है और सदा सुखी एवं धन्य हो जाता है।

मन्त्रार्थ— जिस प्रकार स्वयं प्रकाशमान रत्न, चाँदी-सोने आदि के टुकड़े पर मिट्टी जम जाय, तो वह मलिन होता है और नहीं चमकता और पुनश्च मिट्टी के धुलने पर वह चमकने लगता है। ठीक उसी प्रकार जब तक शरीरधारी स्वस्वरूप की समीक्षा नहीं करता, तब तक दुःखी रहता है। जब उसे आत्मसाक्षात्कार होता है, उसका शोक दूर हो जाता है। ऐसा महात्मा बिरला ही होता है, जो आत्मसाक्षात्कार से शोकमुक्त हो अपने को धन्य-कृतार्थ समझता है।।१४।।

अवतरण— पूर्वमन्त्र में यह प्रतिपादित किया गया है कि **'एकः कृतार्थो भवते वीतशोकः'** अर्थात् देहधारी जीव परब्रह्म परमात्मा का साक्षात्कार कर दुःखों से छुटकारा पाता है। अब यह प्रश्न है कि वह इन दुःखों से किस प्रकार छुटकारा पाता है? इस प्रश्न का समाधान इस मन्त्र में है। पूर्वोक्त मन्त्र के आशय को ही इस मन्त्र में स्पष्ट कर रहे हैं—

'यदात्मतत्त्वेन तु' इत्यादि। [**अद्वैतवेदान्तदर्शन**सम्मत व्याख्या से इस व्याख्या में अन्तर है। **शाङ्करभाष्य** के अनुसार इस मन्त्र का आशय यह है— जीव योगी दीपतुल्य

CC0. In Public Domain. Jangamwadi Math Collection, Varanasi

Digitization by eGangotri and Sarayu Trust. Funding by MoE-IKS

उ. १/११) इत्यादौ आत्मन: परमेश्वरसाक्षात्कारहेतुत्वमुक्तमेव। तेन जीवात्मना, कीदृशेन? **दीपोपमेन** दीपसदृशेन। दीपो यथा स्वयं प्रकाशमान एव अन्येषां घटादीनामपि दर्शनहेतुर्भवति तथैवायं जीव: स्वयं स्वप्रकाशस्सन् परमेश्वर-साक्षात्कारहेतु: सम्पद्यते। अतो दीपसादृश्यमुक्तम्। एतादृशेन स्वेनात्मना **इहा**स्मिन्नेव लोके अस्मिन्नेव जन्मनि, अस्मिन्नेव शरीरे वा **ब्रह्मतत्त्वं** परशिवलिङ्गतत्त्वं **प्रपश्येत्** सम्यगवलोकयेत् साक्षात्कुर्यात् साधको जीव:।

कीदृशं ब्रह्मतत्त्वमित्यत्रोक्तम्— **अजमि**त्यादि। **अजं** न जायत इत्यजमुत्पत्ति-रहितम्। अत एव **ध्रुवं** नित्यं स्थिरं नाशरहितम्। **सर्वतत्त्वै:** पृथिव्याद्यचित्तत्त्वै-

---

प्रकाशमान स्वस्वरूप को पहचान कर परब्रह्म परमात्मा का साक्षात्कार करता है, तब वह सभी बन्धनों से मुक्त होता है। जब तक वह आत्मस्वरूप को नहीं पहचानता, तब तक अविद्या और उसके विकारों से स्पृष्ट होने के कारण सांसारिक पाशबन्धनों में पड़ा रहता है, जब वह देहाभिमानशून्य होकर स्वस्वरूप को पहचानता है, तब वह ब्रह्मस्वरूप होता है। जैसा कि **बृहदारण्यक उपनिषद्** का मन्त्र है— **'तदाऽऽत्मानमेवाऽवेदाऽहं ब्रह्माऽस्मि'** (बृ.उ. ६/४/१०) तब जीव ने स्वस्वरूप को इस प्रकार पहिचाना— 'मैं परब्रह्मस्वरूप ही हूँ' — द्रष्टव्य शांकरभाष्य। वीरशैवदर्शन इस अर्थ से सहमत नहीं है। **वीरशैवभाष्यकार** इसकी व्याख्या इस प्रकार करते हैं—]

युक्त: = योगसाधना में रत साधक, **यदा तु** = जिस अवस्था में, **आत्मतत्त्वेन** = करणरूप स्वस्वरूप आत्मतत्त्व द्वारा। जैसा कि **'आत्मानमरणिं कृत्वा'** (कै.उ. १/११) इत्यादि मन्त्र में जीवात्मा को परमेश्वर के साक्षात्कार का हेतु कहा गया है। [सदाशिव भाष्य में इसका अर्थ स्वकीय निर्मल चित्त किया गया है— **''आत्मानं स्वनिर्मलचित्तमित्यर्थ:। 'आत्मा चित्ते शरीरे च' इत्यमरोक्ते:।।''** पूर्ण मन्त्र और आशय **'सिक्तेषु तैलं'** (१.५) इत्यादि व्याख्यान के अवसर पर भावार्थदीपिका में द्रष्टव्य है।] वह जीवात्मस्वरूप आत्मतत्त्व किस प्रकार है? **दीपोपमेन** = दीप के समान है। जिस प्रकार दीपक स्वयं प्रकाशित होते हुए घट-पट इत्यादि अन्य पदार्थों का प्रकाश-हेतु होता है, उसी प्रकार जीव स्वयं प्रकाशमान होते हुए परमेश्वर के साक्षात्कार का कारण होता है। इस प्रकार दीपतुल्य स्वस्वरूप द्वारा साधक जीव, **इह** = इस लोक में, इस जन्म में अथवा इस शरीर में, **ब्रह्मतत्त्वं प्रपश्येत्** = परशिव लिङ्गस्वरूप परब्रह्मतत्त्व का साक्षात्कार करे।

वह ब्रह्मतत्त्व किस प्रकार का है? उसकी विशेषताएँ उत्तरार्ध में हैं— **अजम्** = उसका जन्म नहीं होता, अतएव वह जन्मरहित है, **ध्रुवम्** = अत एव वह नित्य, स्थिर,

CC0. In Public Domain. Jangamwadi Math Collection, Varanasi

Digitization by eGangotri and Sarayu Trust. Funding by MoE-IKS

विशुद्धमस्पृष्टम्। जीवस्तावत् पृथिव्यादिसूक्ष्मभागैरुपहित एव, संसारदशायां बद्धावस्थ एव वर्तेत। परमेश्वरस्तु एभिर्वियुक्त इति विश्रुत एव। अतस्स विशुद्धः सदैव। एतादृशं **देवं** स्थूलसूक्ष्मकारणशरीरेषु निर्लिप्ततया विराजमानमिष्टप्राण-भावलिङ्गाख्यं परमेश्वरं **(ज्ञात्वा)** यो जानाति सः, **सर्वपाशैः** सकलकर्मबन्धैः पूर्वोक्ताणवमायीयकार्मिकमलै**र्विमुच्यते** जीवः सर्वबन्धेभ्यो विमुक्तः सम्पद्यते।

अत्रोपासकस्य जीवस्याऽऽत्मतत्त्वेनेति पदेन, उपास्यस्य परशिवलिङ्गस्य ब्रह्मतत्त्वपदेन च निर्देशादुभयत्राऽपि तत्त्वपदप्रयोगात् जीवेश्वरयोः अङ्गलिङ्गयो-रुभयोरपि परमार्थसत्यत्वमुक्तम्। एतेन जीवमिथ्यात्ववादः अद्वैतमतसम्मतो निरस्तः। अङ्गलिङ्गयोः बद्धावस्थायां स्वाभविक एव भेदः, बुद्धावस्थायां स्वाभाविक एवाऽभेद

नाशरहित है। **'सर्वतत्त्वैः विशुद्धम्'** [शांकरभाष्य के अनुसार परमात्मा अविद्या और उसके कार्यों के स्पर्श से रहित है— **'अविद्यातत्कार्यैर्विशुद्धमसंस्पृष्टम्।'** वीरशैवभाष्य के अनुसार] **'पृथिव्याद्यचित्तत्त्वैर्विशुद्धमसंस्पृष्टम्'** [पृथिवी-जल-तेज-वायु और आकाश इनके सूक्ष्मभाग सांख्यदर्शन के अनुसार पञ्चतन्मात्राएँ हैं। वे यथाक्रम इस प्रकार हैं— गन्धतन्मात्रा, रसतन्मात्रा, रूपतन्मात्रा, स्पर्शतन्मात्रा और शब्दतन्मात्रा। ये तन्मात्राएँ चित्तत्त्व नहीं हैं, अपितु जड़ हैं।] परमात्मा पृथिवी आदि से इन सूक्ष्म जड़तत्त्वों से अस्पृष्ट होता है। जीव तो देहधारण करने के कारण सांसारिक अवस्था में इनकी सूक्ष्म मात्राओं से सम्बद्ध ही रहता है। अतएव वह बन्धन की स्थिति में रहता है। परमात्मा इनसे असम्बद्ध रहता है, यह प्रसिद्ध ही है। अतः वह सदा विशुद्ध ही रहता है।

देवम् — चित्प्रकाशस्वरूप वह परमेश्वर निर्लिप्त रूप से स्थूलशरीर में इष्टलिङ्ग का, सूक्ष्मशरीर में प्राणलिङ्ग का और कारणशरीर में भावलिङ्ग का रूप धारण कर विराजमान है। **(तं) ज्ञात्वा मुच्यते सर्वपाशैः** = इस प्रकार के उत्पत्तिरहित, निश्चल और विशुद्ध चित्प्रकाशस्वरूप परमात्मा को जो जानता है, वह जीव सभी प्रकार के पाशों, समस्त कर्मबन्धनों, पूर्वोक्त आणव-मायीय-कार्मिक मलों से छुटकारा पाता है। सभी प्रकार के बन्धनों से मुक्ति पाता है, मुक्त हो जाता है।

इस मन्त्र के **'आत्मतत्त्वेन'** इस पद से उपासक जीव का अङ्गस्थल के रूप में और **'ब्रह्मतत्त्वम्'** इस पद से उपास्य परमेश्वर का लिङ्गस्थल के रूप में निर्देश किया गया है, **'आत्मतत्त्वेन'** और **'ब्रह्मतत्त्वम्'** दोनों पदों में **'तत्त्व'** पद का प्रयोग है, जिसके द्वारा दोनों को पारमार्थिक सत्य के रूप में स्थापित किया गया है। इस प्रकार अद्वैतवेदान्त-दर्शनसम्मत जीवमिथ्यात्ववाद का खण्डन होता है।

CC0. In Public Domain. Jangamwadi Math Collection, Varanasi

Digitization by eGangotri and Sarayu Trust. Funding by MoE-IKS

इत्यादि सप्रमाणं विचारितमेव **शक्तिविशिष्टाद्वैतदर्शने** विविधमतानां परस्परतोलनेन। देहे विद्यमानस्य जीवस्येव तदुद्धरणार्थमव्याजप्रेम्णा तेनैव सह निर्लिप्ततया विराजमानस्य लिङ्गरूपिणः शिवस्याऽपि संसारदशायां बद्धावस्था किं सम्भवेद् वेत्याशङ्कायां स्वतन्त्रस्य भक्तानुग्रहलीलामनुवर्तमानस्य वशीकृतमायाशक्तिकस्य ज्ञानक्रियाद्यद्भुतसामर्थ्यवत आदर्शकर्मयोगिनः परशिवलिङ्गस्य न कदापि देहे बन्धः सम्भवेदिति सम्यग् विशदीकृतं **शक्तिविशिष्टाद्वैतदर्शने**। यद्यस्याऽपि बन्धः सम्भवेत् तदा तस्येश्वरत्वमेव न युज्येत। अतोऽत्र आक्षेपस्य नावसरः॥१५॥

[वस्तुतः शांकरवेदान्त जीवमिथ्यात्ववाद नहीं, अपितु जगन्मिथ्यात्ववाद को स्वीकार करता है। उस दर्शन में जीवात्मा परमात्मा का अंश और परमात्मा अंशी है, जैसा कि प्रसिद्ध है— **'ब्रह्म सत्यं जगन्मिथ्या जीवो ब्रह्मैव नापरः।''**]

जीवात्मा और परमात्मा दोनों एक ही शरीर में साथ-साथ रहते हैं। अङ्गस्थल के रूप में अवतीर्ण उपासक जीवात्मा और लिंगस्थल के रूप में अवतीर्ण उपास्य परमेश्वर दोनों का बन्धन की स्थिति में (जीवात्मा का स्वस्वरूप न पहिचानने पर) भेद होता है। (जब जीवात्मा को स्वस्वरूप का ज्ञान होता है, तब) उस प्रबुद्ध स्थिति में स्वाभाविक रूप से अभेद रहता है। इस प्रकार विविध मतों का तुलनात्मक अध्ययन करते हुए **'शक्तिविशिष्टाद्वैतदर्शन'** ग्रन्थ में प्रमाणपूर्वक सविस्तार विवेचन किया गया है। अब यह प्रश्न उपस्थित होता है कि जीव का उद्धार करने के लिये ही उसके साथ निर्लिप्त रूप से उसी शरीर में रहने वाले लिङ्गरूप से अवस्थित परमशिव की बन्धन में स्थिति सम्भव है क्या? इसका उत्तर यही है कि परमेश्वर वस्तुतः स्वतन्त्र है, उसने मायाशक्ति को अपने वश में कर लिया है, यह सत्य है। तथापि भक्तों पर अनुग्रह करने के लिये वह इस लीला का अनुसरण कर रहे हैं। उनमें ज्ञानशक्ति-क्रियाशक्ति आदि का अद्भुत सामर्थ्य है। वे आदर्श कर्मयोगी हैं। परशिवलिङ्गस्वरूप परमात्मा का (जीवात्मा के साथ देह में रहते हुए भी) कभी भी बन्धन सम्भव नहीं है, इन सब तथ्यों का विशद विवेचन **'शक्तिविशिष्टद्वैतदर्शन'** में किया गया है। अगर परमात्मा का बन्धन सम्भव हो, तो उनका ईश्वरत्व सम्भव ही नहीं है। अतः इस विषय में किसी प्रकार के आक्षेप का अवसर नहीं है।

मन्त्रार्थ— शिवयोगी अङ्गस्थल के रूप में प्रकाशमान उपासक दीपतुल्य स्वस्वरूप आत्मतत्त्व से लिङ्गस्थल के रूप में प्रकाशमान उपास्य परशिवस्वरूप ब्रह्मतत्त्व का जब साक्षात्कार करता है, तब वह सभी आणव-मायीय और कार्मिक मलपाशों के बन्धनों से मुक्त होता है। वह परशिवस्वरूप परब्रह्म जन्मरहित, निश्चल तथा पृथिवी आदि प्रपञ्चतत्त्वों की सूक्ष्मतन्मात्राओं से सम्बद्ध नहीं है। वे विशुद्ध चित्प्रकाश हैं तथा जीवात्मा के साथ ही उसके स्थूल, सूक्ष्म और कारण शरीर में यथाक्रम इष्ट, प्राण और भावलिङ्ग के रूप में वास करते हैं। उन्हें जानकर साधक योगी पाशमुक्त होता है।।१५।।

CC0. In Public Domain. Jangamwadi Math Collection, Varanasi

Digitization by eGangotri and Sarayu Trust. Funding by MoE-IKS

एवं बन्धमुक्तिप्रकारं निर्दिश्य तादृशमुक्तेः परमेश्वरानुग्रहलभ्यत्वेन अन्ते परमेश्वरनमस्कारेण प्रकृतमुपसंहरति—

एष हि देवः प्रदिशोऽनु सर्वाः
पूर्वो हि जातः स उ गर्भे अन्तः।
स एव जातः स जनिष्यमाणः
प्रत्यङ् जनांस्तिष्ठति सर्वतोमुखः।।१६।।

'एष हि' इति। **एष** एव **देवः** परमेश्वरः **प्रदिशोऽनु** चतुर्दिशः चतुरुपदिशश्च **सर्वाः** निखिला अपि सम्पद्यते। सर्वोऽप्ययमेव, तस्य सर्वरूपत्वादिति भावः। अतस्सर्वशब्दस्तस्मिन्नेव युक्ततयान्वेति। **स उ** स एव **पूर्व** आद्यो हिरण्यगर्भो जातस्सम्भूतः। अन्तर्गर्भे गर्भान्तर्वर्तमानः स एव।

''बीजं मां सर्वभूतानां विद्धि पार्थ सनातनम्''

इति **गीतायां** (७/१०) कृष्णद्वारा परमशिव एवोपदिशति। एवं च **स उ** स एव जातः शिशुः, **जनिष्यमाणोऽपि** स एव। अतः **स एव** सर्वतोमुखः **सर्वान्**

अवतरण— इस प्रकार श्रुति **'ज्ञात्वा देवं मुच्यते सर्वपाशैः'** इस मन्त्रभाग से पाशबन्धनों से जीव की मुक्ति का निर्देश करती हुई वह शाश्वत मुक्ति परमेश्वर के ही कृपाप्रसाद से प्राप्त होने के कारण अन्त में परमेश्वर को प्रणामपूर्वक प्रकृत विषय का उपसंहार कर रही है—

'एष हि देवः' इत्यादि। प्राची, दक्षिणा, प्रतीची और उत्तरा ये चार मुख्य दिशाओं और आग्नेय, नैर्ऋत्य, वायव्य और ईशान चार उपदिशाओं के रूप में यह परमशिवस्वरूप परमात्मा रूपान्तरित होता है। सब कुछ परमशिव ही है, क्योंकि वह सभी का रूप धारण कर सकता है। उसी के साथ 'सर्व' शब्द का अन्वय करना सयुक्तिक, तर्कसंगत है। वही सर्वप्रथम **हिरण्यगर्भ** के रूप में अवतीर्ण, उत्पन्न हुए। गर्भ के भीतर भी उसी का वास है। जैसा कि गीता (७.१०) की उक्ति है—

''बीजं मां सर्वभूतानां विद्धि पार्थ ! सनातनम्''

इस प्रकार भगवद्गीता में श्रीकृष्ण परमशिव यह उपदेश दे रहे हैं कि —

''हे पार्थ ! जीवों का सनातन बीज हूँ, आधार हूँ''

(श्रीकृष्णगीता ७/१०)

इसीलिये शिशु के रूप में उसका जन्म हुआ है और आगे भविष्य में भी उसी का जन्म होने वाला है। इसीलिये वह **'सर्वतोमुख'** सब के सम्मुख होकर सभी चेतन जीवों

CC0. In Public Domain. Jangamwadi Math Collection, Varanasi

Digitization by eGangotri and Sarayu Trust. Funding by MoE-IKS

जनान् चेतनात्मकजीवान् **प्रत्यङ् तिष्ठति** तदन्तर्गतः सर्वत्र स एव सर्वात्मकः **सर्वतोमुख**स्तिष्ठति॥१६॥

यो देवो अग्नौ यो अप्सु
यो विश्वं भुवनमाविवेश।
य ओषधीषु यो वनस्पतिषु
तस्मै देवाय नमो नमः॥१७॥

य एतादृशो **देवः** महाप्रकाशरूपः परमेश्वरः **अग्नौ** वह्नौ औष्ण्यरूपेण तिष्ठति। **यः अप्सु** जले शैत्यरूपेण तिष्ठति। **य ओषधीषु** शाल्यादिसस्येषु रोगनिवारकत्वरूपेण तिष्ठति। **वनस्पतिषु** अश्वत्थादिवृक्षेषु सर्वजीवसुखावहत्वरूपेण तिष्ठति। एवं **यः विश्वं भुवनं** लोकम् **आविवेश** व्याप्याऽतिष्ठत् **तस्मै** तादृशाय **देवाय** महादेवाय सर्वकारणाय शिवाय परशिवब्रह्मणे नमो

के भीतर अन्तर्यामी बनकर विराजित है। इसीलिये वह सर्वस्वरूप सर्वान्तर्यामी और सर्वतोमुख होकर रहता है।

[**शांकरभाष्य** की दृष्टि में **'सर्वतः मुखानि यस्य सः सर्वतोमुखः'** इस समस्तविग्रह के अनुसार समस्त प्राणियों के मुख उसी परमेश्वर के मुख हैं।]

मन्त्रार्थ— परमशिवस्वरूप परमेश्वर दिशा और उपदिशास्वरूप भी है। सर्वप्रथम हिरण्यगर्भ के रूप में उसी का जन्म हुआ है। वही सबके भीतर विराजमान है। शिशु के रूप में उसी का जन्म हुआ है और आगे भी उसी का जन्म होगा। वह 'सर्वतोमुख' इसलिये है कि वह समस्त चेतन जीवों के हृदयकमल में अन्तर्यामी बनकर रहता था॥१६॥

'यो देवा अग्नौ'' इत्यादि। **यः देवः** = इस प्रकार के दिव्य महाप्रकाशस्वरूप जो परमशिव, **अग्नौ** = अग्नि में उष्णता के रूप में **(आविवेश)** = सर्वत्र व्याप्त होकर विराजमान हैं, **यः अप्सु (आविवेश)** = जो जल में शीतलता के रूप में व्याप्त हैं, **यः ओषधीषु (आविवेश)** = जो शालि आदि धान्यों में रोगनिवारक तत्त्व के रूप में रहते हैं, **यः वनस्पतिषु (आविवेश)** = जो पीपल आदि वृक्षों में सब जीवों के सुखदाता के रूप में स्थित हैं, **यः विश्वं भुवनम् (आविवेश)** = इस प्रकार जो समस्त विश्व को व्याप्त कर सर्वत्र प्रविष्ट हैं, **तस्मै देवाय नमो नमः** = इस प्रकार सर्वत्र व्याप्त सर्वकारणकारण महाप्रकाशमय परशिवब्रह्म को वारं वार नमस्कार।

CC0. In Public Domain. Jangamwadi Math Collection, Varanasi

Digitization by eGangotri and Sarayu Trust. Funding by MoE-IKS

नमः। नमस्कारोऽयं भक्त्या समर्प्यते। द्विरुक्तिरत्र आदरातिशयमध्यायसमाप्तिं च द्योतयति॥१७॥

।। इति द्वितीयोऽध्यायः ।।२।।

'नमो नमः' इस प्रकार दो बार उच्चारण नमस्कार का पौनःपुन्य अत्यन्त आदर और अध्यायसमाप्ति का अभिव्यञ्जक है॥१७॥

मन्त्रार्थ— जो परमेश्वर, अग्नि, जल, औषधि और वनस्पति सर्वत्र समस्त विश्व को व्याप्त कर अवस्थित हैं, उस दिव्य महाप्रकाशस्वरूप सर्वकारणकारण परशिवब्रह्म को वारंवार नमस्कार है।।१७।।

।। इस प्रकार द्वितीय अध्याय सम्पूर्ण हुआ।।२।।

***

CC0. In Public Domain. Jangamwadi Math Collection, Varanasi

Digitization by eGangotri and Sarayu Trust. Funding by MoE-IKS

अथ तृतीयोऽध्यायः

एवं परमात्मनः सर्वत्राऽवस्थितिः सर्वात्मता च प्रोक्ता। तदिदं कथं घटत इति शङ्कायां दृष्टान्तेन तदुपपाद्य निराकरोति—

य एको जालवानीशत ईशनीभिः
सर्वान् लोकानीशत ईशनीभिः।
स एवैक उद्भवे सम्भवे च
य एतद् विदुरमृतास्ते भवन्ति।।१।।

'य एक' इति। अत्र **जालवानित्यनेन** ऊर्णनाभिदृष्टान्तः सूच्यते। तद्वद् य **एक** एव परमात्मा **जालवान्** जगदुपादानद्रव्यभूतत्रिगुणात्मकमायाजालवान् सन् **ईशनीभिः** स्वीयासाधारणशक्तिभिः सर्वं जगत् **स्रष्टुमीशते** समर्थः सम्पद्यते। अत एव **सर्वानपि लोकानीशनीभिः** स्वासाधारणशक्तिभिरे**वेशते** सर्वलोकनियामको भवति। एवं **स एक एवोद्भवे** विभूतियोगे **सम्भवे** प्रादुर्भावे च **ईशते** शक्तः

अवतरण— इस प्रकार परमशिवस्वरूप परब्रह्म परमात्मा की सर्वत्र व्यापक स्थिति और सर्वात्मकता का प्रतिपादन किया गया। अब यह प्रश्न उपस्थित है कि यह कैसे सम्भव है? इस मन्त्र में इस प्रश्न का समाधान दृष्टान्त द्वारा किया गया है—

'य एक' इत्यादि। यहाँ **'जालवान्'** इस पद में 'ऊर्णनाभि' का दृष्टान्त सूचित है। [**'ऊर्णा-नाभौ यस्य सः ऊर्णनाभिः'** इस समासविग्रह के अनुसार जिसकी नाभि (केन्द्रस्थल) में ऊर्णातन्तु होते हैं, वह मकड़ी **'ऊर्णनाभि'** कहलाती है। परमेश्वर उस 'ऊर्णनाभि' अर्थात् मकड़ी के समान है, जो अपना जाला स्वयं बुनती है और फिर अपने में ही समेट लेती है। **'मुण्डकोपनिषद्'** कहती है— **'यथोर्णनाभिः सृजते गृह्यते च'** (१/१/७)] 'ऊर्णनाभि के समान परमेश्वर **''जालवान्''** मायाजालसम्पन्न है, त्रिगुणात्मिका प्रकृति ही उसकी माया है, जो जगत् का उपादानद्रव्य अथवा उपादानकारण है।

[**श्रीमद्भगवद्गीता** (७/१४) कहती है— **''दैवी ह्येषा गुणमयी मम माया दुरत्यया।''** परमेश्वर की सत्वरजस्तमोमयी त्रिगुणात्मिका प्रकृति अथवा माया का उल्लंघन करना अत्यन्त कठिन है। **'जालम् अस्ति अस्येति जालवान्'** इस निर्वचन के अनुसार **'तदस्यास्त्यस्मिन्निति मतुप्'** (अ. ५/२/९४) इस सूत्र से मतुप प्रत्यय करने के उपरान्त **'मादुपधायाश्च मतोर्वो'** (अ.८.२.९) इस सूत्र से 'म' के स्थान पर 'व' आदेश होता है।]

यः एक एव = जो परमेश्वर अकेले ही, **जालवान्** = तन्तुजालसम्पन्न ऊर्णनाभि के साथ मायाजालसम्पन्न होकर, **ईशनीभिः** = अपनी अभिन्न असाधारण शक्तियों से, **ईशते**

CC0. In Public Domain. Jangamwadi Math Collection, Varanasi

Digitization by eGangotri and Sarayu Trust. Funding by MoE-IKS

सम्भवति। **एतदिदं** तत्त्वं **ये विदुः** साक्षात्कुर्युस्ते **अमृता** अमर्त्यधर्माणः (**भवन्ति**) सम्पद्यन्ते। सर्वमपि जगत् ब्रह्मण एवोत्पन्नं ब्रह्मविभूतिरूपं चेति ये पश्यन्ति न

= समस्त चराचर विश्व की सृष्टि कर सकता है। **सः एक एव** = वह अकेले ही, बिना किसी दूसरे की सहायता के ही, **ईशनीभिः** = अपनी असाधारण शक्तियों से ही, **सर्वान् लोकान् ईशते** = समस्त भुवनों पर नियन्त्रण रखता है। **सः एव एकः** = वह अकेले ही, **उद्भवे** = विभूतियोग, **सम्भवे च** = और प्रादुर्भाव में, (**ईशते** = समर्थ होता है।)

[यह व्याख्या **शांकरभाष्य** का अक्षरशः अनुकरण करती है। इसका अर्थ है कि परमेश्वर अकेले ही जगत् की सृष्टि और उसके प्रादुर्भाव (विस्तार) में समर्थ है। **शंकरानन्द** कहते हैं— **''उद्भवे-उदूर्ध्वमनेकधा भवनम् उद्भवः, तत्र** सम्भवे– **सम्यक् स्वात्मरूपेण भवनं सत्तामात्रेण वर्तमानत्वं सम्भवः, संहार इत्यर्थः। तत्र''**— अर्थात् अनेक प्रकार उत्पत्ति **'उद्भव'** है और वहाँ केवल अस्तित्व के रूप में रहना ही **'सम्भव'** है। दूसरे शब्दों में परब्रह्म परमात्मा में विलीन होकर अपना अस्तित्व खो देना ही 'सम्भव' अथवा **'संहार'** है। यह व्याख्या अधिक संगत प्रतीत होती है और 'ऊर्णनाभि' दृष्टान्त से मेल खाती है। **गीता** कहती है—

''सर्वभूतानि कौन्तेय! प्रकृतिं यान्ति मामिकाम्।
कल्पक्षये पुनस्तानि कल्पादौ विसृजाम्यहम्।।
प्रकृतिं स्वामवष्टभ्य विसृजामि पुनः पुनः।
भूतग्राममिमं कृत्स्नमवशं प्रकृतेर्वशात्।।''
(गीता, ९.७-८)

इसका पद्यानुवाद इस प्रकार है—

''कल्पान्त में मेरी प्रकृति में जीव लय होते सभी।
जब कल्प का आरम्भ हो, मैं फिर उन्हें रचता तभी।।
अपनी प्रकृति आधीन कर, इस भूत गण को मैं सदा।
उत्पन्न वारंवार करता जो प्रकृतिवश सर्वदा।।''
(श्रीकृष्णगीता, ९.७-८)

इस प्रकार **'स एवैक उद्भवे सम्भवे च (ईशते)'** का अर्थ होगा— वह परमेश्वर एकाकी ही प्रकृतिपरवश हो जगत् के आविर्भाव और तिरोभाव में समर्थ होता है।]

ये = जो लोग, **एतद् विदुः** = इस तथ्य को जानते हैं, **ते** = वे लोग, **अमृताः भवन्ति** = अमृतत्व प्राप्त करते हैं (जो मृत्युलोक में होते हैं, वे मर्त्यधर्मा होते हैं। किन्तु जो जीवन्मुक्त होते हैं, मर्त्यधर्म से परे होते हैं। उन्हें मृत्युभय नहीं सताता। उनका भौतिक शरीर भले ही रोग-जरा-मृत्युभय से प्रभावित हो, किन्तु उनका योगाग्निमय दिव्य शरीर

CC0. In Public Domain. Jangamwadi Math Collection, Varanasi

Digitization by eGangotri and Sarayu Trust. Funding by MoE-IKS

तु ग्रन्थपठनप्रवचनमात्रेण जानन्ति, किन्तु स्वयं योगसाधनेनाऽनुभवन्ति ते मुक्ता भवन्तीत्यर्थः॥१॥

एको हि रुद्रो न द्वितीयाय तस्थुः
इमान् लोकानीशत ईशनीभिः।
प्रत्यङ्जनांस्तिष्ठति सञ्चुकोपान्तकाले
संसृज्य विश्वा भुवनानि गोपाः॥२॥

'एको ही'ति। हीति प्रसिद्धौ। **रुद्रः** 'रुदं संसारदुःखं भवरोगात्मकं द्रावयती'ति रुद्रः। संसारदुःखपरिहारकस्तादृश **एक एव** हि सः। न हि द्वावीश्वरौ भवितुमर्हतः। एवं चेदीश्वरशब्द एव न कदापि प्रयुज्येत। **'एकमेवाऽद्वितीयं ब्रह्म'** (छा.उ. ६.२.१) इति खलु सकलकारणं सर्वव्यापकं च ब्रह्मैकमेवेति श्रूयते। **'सर्वो ह्येष रुद्रः'** इत्यत्रापि सर्वात्मकस्यैकस्यैव श्रवणात्। अतो भवरोगवैद्यो मोक्षदाता भगवान् रुद्रः परमात्मा सर्वव्यापकोऽपि तत्त्वदृष्ट्यैक एवेति विश्रुतम्। अत एव ब्रह्मवादिनो द्वितीयाय तादृशाय वस्त्वन्तराय न

इन विकारों से अप्रभावित रहता है।) जो लोग समस्त जगत् को परशिवब्रह्म से उत्पन्न और परब्रह्म की विभूति के रूप में देखते हैं, वे उसे केवल ग्रन्थपाठ और प्रवचनमात्र से वस्तुतः नहीं जान सकते। वे स्वयं योगसाधना द्वारा उसका अनुभव करते हैं।

मन्त्रार्थ— एकमात्र परशिव ब्रह्म उसी प्रकार मायाजालसम्पन्न है, जिसप्रकार ऊर्णनाभि (मकड़ी) अपने तन्तुजाल से सम्पन्न होकर अपने से अभिन्न तन्तुओं द्वारा जाल बुनती है, उसी का घर बनाकर उसमें रहती और फिर उसे अपने में ही समेट लेती है, उसी प्रकार परशिवब्रह्म स्वयं से अभिन्न अपनी असाधारण शक्तियों से चराचर जगत् की सृष्टि करने में समर्थ होता है। उन्हीं शक्तियों द्वारा वह समस्त लोकों पर नियन्त्रण रखता है। ऊर्णनाभि (मकड़ी) के समान परब्रह्म परमेश्वर अकेले ही अपनी अभिन्न शक्तियों से जगत् का आविर्भाव, विस्तार और फिर अपने में ही तिरोभाव कर सकता है। जो इस तथ्य को हृदयंगम करते हैं, वे अमर हो जाते हैं॥१॥

'एको हि रुद्रः न द्वितीयाय तस्थुः' — यह प्रसिद्ध है कि **'रुदं (संसारदुःखं) द्रावयति इति रुद्रः'** इस निर्वचन के अनुसार भवरोगस्वरूप सभी दुःखों का निवारणकर्ता होने के कारण परमशिव का **'रुद्र'** नाम सार्थक है। इस प्रकार का वह अकेला ही है। ईश्वर दो नहीं हो सकते। यदि ऐसा हो, तो 'ईश्वर' शब्द का प्रयोग ही न हो। **'एकमेवाऽद्वितीयं**

CC0. In Public Domain. Jangamwadi Math Collection, Varanasi

Digitization by eGangotri and Sarayu Trust. Funding by MoE-IKS

तस्थुः न प्रतीक्षामकुर्वन् न निरीक्षितवन्त इत्यर्थः। तस्मिन् सति न त्वन्यापेक्षा। क्षुधार्तः पुरुषः गौरवेण लब्धमन्नं विसृज्याऽऽहारान्वेषणाय नाऽन्यत्र गच्छति, न हि तदर्थं वा प्रयतते। अतो ब्रह्मवादिनः सर्वात्मकं रुद्रमनुभूय तृप्ता बभूवुरित्येतत् सम्यक् शोभते। **'तस्थे'** इति पाठे **हि** यस्माद् **रुद्रः द्वितीयाय** स्वव्यतिरिक्तसाधनाय **न तस्थे** न प्रतीक्षितवान् अतस्तस्य नाऽन्यापेक्षा। अत एव **ब्रह्मसूत्रे**ऽपि **'उपसंहारदर्शनान्नेति चेन्न क्षीरवद्धि'** (२/१/२४), **'विकरणत्वान्नेति चेत्तदुक्तम्'** (२/१/३१) इत्यादौ परशिवस्य द्वितीयं वस्तु

ब्रह्म' इत्यादि श्रुति का महावाक्य 'समस्त जगत् का कारण और सर्वव्यापक अद्वितीय ब्रह्म ही है', यह प्रतिपादन करता है। **'सर्वो ह्येष रुद्रः'** इस वेद मन्त्र में भी अद्वितीय रुद्र को ही सर्वात्मक कहा गया है। अतः भवरोगवैद्य मोक्षदाता भगवान् रुद्रशिव सर्वत्र व्यापक होने पर तात्त्विक दृष्टि से एक ही है, यह विश्वविश्रुत है। अत एव ब्रह्मवादी महर्षियों ने अन्य सत्य की प्रतीक्षा नहीं की और न उसका निरीक्षण ही किया। उसके होने पर दूसरे तत्त्व की अपेक्षा ही नहीं होती। भूख से व्याकुल व्यक्ति आदरपूर्वक प्राप्त भोज्यसामग्री छोड़कर दूसरी आहारसामग्री खोजने के लिये न तो अन्यत्र जाता है और न उसके लिये प्रयत्न करता है। इसलिये ब्रह्मवादी लोग सर्वव्यापी रुद्रशिव को हृदयंगम कर तृप्त हो गये, यह अर्थ शोभन प्रतीत होता है। **'न द्वितीयाय तस्थे'** इस पाठ को स्वीकार करने पर प्रथम चरण का अर्थ होगा— यतः रुद्र ने अपने से भिन्न साधन खोजने के लिये प्रतीक्षा नहीं की अतः उसे किसी अन्य साधन की अपेक्षा नहीं है। अतएव ब्रह्मसूत्र में भी **''उपसंहारदर्शनान्नेति चेन्न क्षीरवद्धि''** (ब्र.सू. २/१/२४) **''विकरणत्वान्नेति चेत् तदुक्तम्''** (ब्र.सू. २/१/३१) इत्यादि सूत्रों में अपने से भिन्न अन्य साधन के विना अपेक्षा की ही परशिव को सृष्टि का एकमात्र अद्वितीय कारण कहा गया है।

[**'उपसंहारदर्शनात्'** इत्यादि सूत्र का आशय यह है— 'लोक में यह देखा जाता है कि कुम्हार आदि जब घटादि बनाते हैं, तब मिट्टी, चक्र, दण्ड, सूत्र आदि अनेक उपादानों की सहायता से उसका निर्माण करते हैं। परशिव ब्रह्म बिना उपादानसामग्री के ही उसका निर्माण कैसे कर सकता है? इस प्रकार की शंका नहीं करनी चाहिये; क्योंकि दूध जिस प्रकार स्वयं ही दही बन जाता है, उसी प्रकार परशिव ब्रह्म विना किसी की सहायता से जगत् की सृष्टि करता है।

'विकरणत्वान्नेति चेत्' इत्यादि सूत्र का आशय इस प्रकार है— अब पुनश्च यह आशंका उठती है कि परशिव ब्रह्म 'करण' अर्थात् इन्द्रियों से शून्य है। जैसा कि **'बृहदारण्यक उपनिषद्'** में याज्ञवल्क्य गार्गी से कहते हैं— **'एतद् वै यदक्षरं गार्गि!**

CC0. In Public Domain. Jangamwadi Math Collection, Varanasi

Digitization by eGangotri and Sarayu Trust. Funding by MoE-IKS

अनपेक्ष्यैव सृष्टिकारणत्वमुक्तम्। यो रुद्र **इमान्** सर्वानपि **लोकानीशनीभिः** स्वासाधारणीभिरीशितृत्वशक्तिभि**रीशत** ईष्टे। स्वाभाविकमेव तस्य सर्वेश्वरत्वमित्यर्थः। अत एव वक्ष्यति—

'पराऽस्य शक्तिर्विविधैव श्रूयते स्वाभाविकी ज्ञानबलक्रिया च'
(श्वे.उ. ६/८) इति।

स एवेश्वरः स्वीयासाधारणशक्तिप्रभावादेव **जनान्** प्राणिवर्गान् सर्वान् **प्रत्यङ्**तेष्वन्तरात्मभूत**स्तिष्ठति**। स एव सर्वेष्वन्तर्यामितया वर्तत इत्यर्थः। एवं

ब्राह्मणा अभिवदन्ति,...... अचक्षुष्कमश्रोत्रमवागमनः'— हे गार्गी, ब्रह्मज्ञानी परशिव ब्रह्म को, जो क्षरणरहित अविनाशी है, उसे चक्षु-श्रोत्र-वागिन्द्रिय से शून्य और अन्तःकरणरहित कहते हैं। फिर वह कार्य करने में समर्थ कैसे हैं? यह सम्भव ही नहीं है।' इसका समाधान श्रुति स्वयं करती है। इसी उपनिषद् में श्रुति कहती है—

"अपाणिपादो जवनो ग्रहीता पश्यत्यचक्षुः स शृणोत्यकर्णः" (श्वे.उ. ३.३/१९)। यद्यपि परशिव ब्रह्म को न तो पैर हैं और न हाथ। तथापि वह हाथ-पैर के सभी कार्य सम्पन्न करता है। वह वेग से दौडता है और सब वस्तुओं को ग्रहण भी करता है, नेत्र न होते हुए भी देखता है और कान न होते हुए भी सुनता है। इस प्रकार इन्द्रियों के अभाव में परशिव ब्रह्म बिना उपादान के भी सभी सृष्टि कर सकता है।]

"इमान् लोकानीशत ईशनीभिः"— जो रुद्रशिव इन सभी लोकों को अपने से अभिन्न असाधारण 'ईशितृत्व' अर्थात् प्रशासकीय शक्तियों से नियन्त्रित करता है, उन पर अपना शासन चलाता है। अत एव उसका सभी लोकों का स्वामित्व या ईश्वरत्व स्वाभाविक ही है। जैसा कि आगे चलकर यही श्रुति कहती है—

"पराऽस्य शक्तिर्विविधैव श्रूयते स्वाभाविकी ज्ञानबलक्रिया च"
(श्वे.उ. ६/८)।

[**'न तस्य कार्यं करणं च विद्यते'** इत्यादि मंत्र का यह उत्तरार्द्ध है। सम्पूर्ण मन्त्र का आशय यह है कि दिव्य महाप्रकाश परमशिव की नाना प्रकार की सर्वोत्कृष्ट शक्ति सुनी जाती है। वह स्वाभाविक नित्य सहज प्रसिद्ध है। स्वयं इच्छारूपिणी वह शक्ति अन्तरंग में चिन्मयी, ज्ञानस्वरूपिणी और बहिरंग में क्रियारूपिणी होती है, जिसकी क्रिया सदा प्रबल होती है।]

'प्रत्यङ्जनांस्तिष्ठति'— वही परमेश्वर अपनी असाधारण शक्ति के प्रभाव से सभी प्राणियों में आत्मस्वरूप से विराजमान है। वही सबकी हृदयगुफा में अन्तर्यामी बन कर रहता है, यह इसका तात्पर्य है।

CC0. In Public Domain. Jangamwadi Math Collection, Varanasi

Digitization by eGangotri and Sarayu Trust. Funding by MoE-IKS

विश्वा भुवनानि समस्तानि जगन्ति ब्रह्मरूपेण **संसृज्य** सृष्ट्वा **गोपा** विष्णुरूपेण पालको भूत्वा **अन्तकाले** प्रलयकाले **सञ्चुकोच** कालरुद्ररूपेण संहार्य सर्वेषामपि जीवानां जडवस्तूनां च प्रलये स्वीयामूर्तस्थितौ तदीयकर्मवासनाभिः सहैव विलयनमाश्रयं ददाति। एवं सर्वेभ्योऽपि निष्पक्षपातेन समदर्शनेन च आश्रयप्रदानात् **'द्युभ्वाद्यायतनं'** परशिवब्रह्म **'स्थलमिति'**, **'लिङ्गमि'**ति च व्यवह्रियते, तच्च समीचीनमेव। अव्याजप्रेमिणं परमात्मानं विहाय तदंशभूतानां तदीयानां चेतनानां

'संसृज्य विश्वा भुवनानि गोप्ता'— वही परमशिव विष्णु के रूप में समस्त विश्व की सृष्टि करते हुए पालक हो गये।

'सञ्चुकोचाऽन्तकाले'— प्रलयकाल में कालरुद्र के रूप में सभी चेतन जीव और जड वस्तुओं का संहार कर अपनी निराकार अमूर्त स्थिति में उन्हें कर्मवासनाओं के साथ अपने में विलीन करता है, समेट लेता है। इस प्रकार सभी को पक्षपातरहित होकर आश्रय प्रदान करने के कारण **'द्युभ्वाद्यायतन'** परशिवब्रह्म को 'स्थल' और 'लिङ्ग' संकेतित किया जाता है और वह समीचीन ही है।

[**'द्युभ्वाद्यायतनं स्वशब्दात्'** (ब्र.सू. १.३.१) इस ब्रह्मसूत्र की ओर संकेत करते हुए परशिवब्रह्म को **'द्युभ्वाद्यायतन'** कहा गया है। **'द्यौश्च भूश्च द्युभुवौ, द्युभुवौ आदि यस्य तदिदं द्युभ्वादि। तस्य आयतनं परशिवब्रह्म।'** अर्थात् द्युलोक, भूलोक आदि का आयतन (आश्रयस्थल) परशिव ब्रह्म ही हो सकता है। **'मुण्डकोपनिषद्'** कहती है—

''यस्मिन् द्यौः पृथिवी चान्तरिक्षमोतं मनः सह प्राणैश्च सर्वैः।
तमेवैकं जानथ आत्मानमन्या वाचो विमुञ्चथाऽमृतस्यैष सेतुः।।''
(मु.उ. २.२.५)

ब्रह्मश्री उमचिगिशंकरशास्त्रीकृत वीरशैवभाष्य के अनुसार इस मंत्र का अर्थ इस प्रकार है— जिस परशिवलिङ्ग की महाशक्ति में द्यौ (स्वप्रकाशता शक्ति), पृथ्वी और अन्तरिक्ष तथा अन्य महाभूत समाविष्ट हैं तथा 'प्राण' अर्थात् बाह्य इन्द्रियों के साथ अन्तःकरण मन भी समाविष्ट है, उसी एकमात्र परमात्मा का तत्त्वज्ञान प्राप्त करो। केवल पंचाक्षर मंत्रजप करो, अन्य वाणी का परित्याग करो, वही अमृतत्व (मोक्ष) का सेतु है। इसी श्रुति में **'तमेवैकमात्मानं जानथ'** इस चरण में 'आत्म'शब्द द्वारा इसका समर्थन किया गया है। ब्रह्मसूत्रस्थ **'स्वशब्दात्'** यह पद इसी को सूचित कर रहा है।]

निर्व्याज प्रेम करने वाले परमात्मा को छोड़ कर उसके अंशस्वरूप चेतन जीवों को भला अन्य कौन आश्रय देगा? अतएव उसका **'लिङ्गस्थल'** नाम अन्वर्थ है।

CC0. In Public Domain. Jangamwadi Math Collection, Varanasi

Digitization by eGangotri and Sarayu Trust. Funding by MoE-IKS

को वाऽन्यः आश्रयं दद्यात्? अत एव तस्य **'लिङ्गस्थलमि'**ति नाम अन्वर्थतया विराजते॥२॥

एवं तस्य सर्वान्तर्यामित्वात् तस्य सर्वतोमुखत्वमाह—

विश्वतश्चक्षुरुत विश्वतोमुखो
विश्वतो बाहुरुत विश्वतस्पात्।
सं बाहुभ्यां धमति सम्पतत्रैः
द्यावाभूमी जनयन् देव एकः॥३॥

'विश्वतश्चक्षुरि'ति। **विश्वतश्चक्षुः** सर्वतोनेत्रः। सर्वं सदा पश्यतीत्यर्थः। **उत** अपि च **विश्वतोमुखः** सर्वतोमुखः सर्वत्राऽप्रतिहत इत्यर्थः। **उत** अपि च

जैसा कि 'सिद्धान्तशिखामणि' का वचन है—

"लयं गच्छति यत्रैव जगदेतच्चराचरम्।
पुनः पुनः समुत्पत्तिं तल्लिङ्गं ब्रह्म शाश्वतम्॥
तस्माल्लिङ्गमिति ख्यातं सत्तानन्दचिदात्मकम्॥"

(सि.शि.म., ६/३७-३८)

जिसमें समस्त जगत् विलय प्राप्त करता है और पुनः पुनः उत्पन्न होता है, उस सच्चिदानन्दस्वरूप परशिव ब्रह्म को लिङ्ग कहते हैं।]

मन्त्रार्थ— एकमात्र रुद्र शिव भवरोगनिवारक हैं। अत एव ब्रह्मज्ञानियों ने किसी अन्य की प्रतीक्षा नहीं की, वह अकेले ही अपनी इच्छा-ज्ञान और क्रिया शक्ति से समस्त लोकों पर शासन करता है और सभी प्राणियों की हृदयगुफा में वास करता है और प्रलयकाल में कालरुद्र के रूप में उसे अपने में समेट लेता है॥२॥

'विश्वतश्चक्षुरुत' इत्यादि। [यह मन्त्र **ऋग्वेद (१०/८१/३), अथर्ववेद (१३/२/२६), वाजसनेयी संहिता (१७/१९), तैत्तिरीय संहिता (४/६/२४), तैत्तिरीयारण्यक (१०/१/३)** और **महानारायणोपनिषत् (१२)** में भी उपलब्ध है। इस मंत्र पर शंकराचार्य, उव्वट, महीधर, शङ्करानन्द, नारायणतीर्थ, विज्ञानभगवान् आदि भाष्यकारों की विविध व्याख्याएँ प्राप्त हैं। **महानारायणोपनिषत्** श्रीवृषभेन्द्र पण्डित शिवाचार्यप्रणीत श्री शैवभाष्य से सुशोभित है।]

परशिवस्वरूप परब्रह्म परमेश्वर सभी स्थावर जंगम प्राणियों के भी अन्तर्यामी बनकर वास करता है। अत एव सभी प्राणियों के नेत्र, मुख, भुजाएँ और चरण परशिवब्रह्म के ही उक्त सभी इन्द्रिय हैं।

CC0. In Public Domain. Jangamwadi Math Collection, Varanasi

Digitization by eGangotri and Sarayu Trust. Funding by MoE-IKS

विश्वतोबाहुः सर्वतोबाहुः। **उत** अपि च **विश्वतस्पात्** सर्वतश्चरणः। तथा च सर्वव्यापकः सर्वदर्शन इत्युक्तं भवति। एवं सर्वतोबाहुत्वात् सर्वत्रापि सर्वं **बाहुभ्यां** भुजाभ्यां सन्धमति संयोजयति। उपसर्गयोगात्तादृश अर्थः शङ्कराचार्यादिभिरप्यङ्गीकृतः। एवं सर्वतोमुख-त्वादेव **पतत्रैर्नेत्ररूपैः** पक्षैः सर्वं सर्वत्र संयोजयति सः। एवं सर्वत्राऽप्रतिहतत्वादेव **एकः** सन्नपि स एव

विश्वतश्चक्षुः— वह अनन्त-नेत्र-सम्पन्न है। चारों ओर उसके नेत्र हैं। वह सदा सर्वदा देखता है। वह स्वेच्छा से कहीं भी रूपादि का ग्रहण कर सकता है।

विश्वतोमुखः— वह अपरमित मुखों से सुशोभित है। सभी प्राणियों के मुख परमशिव के ही मुख हैं। वह सर्वत्र अप्रतिहत है।

विश्वतोबाहुः— समस्त प्राणियों की भुजाएँ परमेश्वर की भुजाएँ हैं। **'विश्वतोहस्तः'** यह श्रीशैवभाष्यसम्मत पाठ है, जिसका अर्थ यह है कि वह असंख्य हस्तसम्पन्न है। उसकी भुजाएँ सभी ओर हैं।

विश्वतस्पात्— जीवमात्र के चरण परमेश्वर के ही चरण हैं। वह अगणित चरणसम्पन्न है, अत एव सर्वत्र व्यापक और सर्वदर्शन है।

'सम्बाहुभ्यां धमति सम्पतत्रैः' इत्यादि। परमेश्वर **'विश्वतोबाहु'** होने के कारण अपनी भुजाओं से सर्वत्र सभी संयोजित करता है और **'विश्वतोमुख'** होने के कारण नेत्ररूपी पक्षों से सभी सर्वत्र संयुक्त करता है।

[भाष्यकार **शङ्करानन्द** के अनुसार जब परमेश्वर **'द्यावापृथिवी'** (आकाश और धरती) का जन्म करता है, तब विविध प्रकार की ध्वनियाँ होती हैं। समस्त संसार की रचना का कारण धर्म (पुण्य) और अधर्म (पाप) हैं, जो पमरेश्वर की दो भुजाएँ हैं। वे ही सृष्टि-रचना के हेतु हैं।

श्रीशैवभाष्य में **'धमति'** के स्थान पर **'नमति'** पाठ है। यहाँ **'द्यावापृथिवी'** का अर्थ केवल 'आकाश और पृथ्वी' न होकर समस्त लोक है। वह समस्त लोकों को जन्म देकर 'आत्माराम' हो जाता है। अर्थात् अपने में ही रमण करता है। **श्रीशैवभाष्य** के अनुसार **'बाहुभ्यां नमति सम्पतत्रैः'** इत्यादि का अर्थ यह है कि 'परमेश्वर आकाश-पृथ्वी आदि समस्त सृष्टि करते हुए समस्त प्राणियों को चरण-हस्तादि समस्त इन्द्रियों से युक्त स्थूल शरीर के साथ संयुक्त करेगा— **''एको देवः शिवः द्यावापृथिवी जनयन् आकाशभूमी उत्पादयन् बाहुभ्यां हस्ताभ्यां पतत्रैश्चरणैश्च नमति योजयति। सृष्टेनाजीवानां पादादिकरणविशिष्टस्थूलशरीरसंयोगं करिष्यतीत्यर्थः।''**]

मन्त्रार्थ— परमशिवस्वरूप परब्रह्म परमात्मा के अनन्त नेत्र, अनन्त मुख, अनन्त भुजाएँ और अनन्त चरण हैं; क्योंकि सभी प्राणियों के नेत्र, मुख, भुजाएँ

CC0. In Public Domain. Jangamwadi Math Collection, Varanasi

Digitization by eGangotri and Sarayu Trust. Funding by MoE-IKS

द्यावाभूमी आकाशपृथिव्यौ, सर्वान् लोकानिति यावत्। **जनयन्** उत्पादयन्नात्मारामो विराजते। एक एव सर्वं जगदुत्पादयामासेत्यर्थः॥३॥

एवं तस्याऽचेतनजगत्कर्तृत्वमुक्त्वा चतुर्मुखादिचेतनसृष्ट्यभिधानेन च तादृशः परमात्मा स्वस्मै समीचीनां बुद्धिं ददात्विति प्रार्थयते—

यो देवानां प्रभवश्चोद्भवश्च
विश्वाधिको रुद्रो महर्षिः।
हिरण्यगर्भं जनयामास पूर्वं
स नो बुद्ध्या शुभया संयुनक्तु॥४॥

'यो देवानामि'ति। **रुद्रः** संसारदुःखनाशकः परमात्मा **यो देवानामिन्द्रादीनां** देवानां **प्रभव** उत्पत्तिकारणम्। **उद्भवो** वैभवकारणम्। अत एव **विश्वाधिकः** सर्वोत्कृष्टः।

और चरण उसी परमेश्वर के इन्द्रिय हैं। अनन्तभुजासम्पन्न होने के कारण वह सभी को जोड़ता है। सर्वतोमुख होने के कारण नेत्ररूपी पक्षों से सभी को संयुक्त करता है। सर्वत्र अप्रतिहतगति होने के कारण धरती-आकाश आदि सभी सृष्टि की करता है। चित्प्रकाश परमशिव ने अकेले ही समस्त सृष्टि की है॥३॥

अवतरण— इस प्रकार परमशिव की अचेतन-स्थावर जगत् की सृष्टिकारिता प्रतिपादित करते हुए अब यह प्रतिपादित किया जा रहा है कि वही चतुर्मुख ब्रह्मदेव आदिचेतन जगत् का सृष्टिकर्ता है। श्रुति यह प्रार्थना कर रही है कि वह हमें समीचीन बुद्धि दे—

'यो देवानाम्' इत्यादि। संसार के समस्त दुःखों का नाश करने वाले जो 'रुद्र' शिव इन्द्रादि देवों के उत्पत्ति और उनके वैभव के कारण हैं।

[**शङ्कराचार्य** के अनुसार परमेश्वर **'उद्भव'** अर्थात् **विभूतियोग** के हेतु हैं— **'उद्भवो विभूतियोगः।'** **शङ्करानन्द, विज्ञानभगवान्, उपनिषद्योगी** के मत में रुद्र-शिव से ही इन्द्रादि देवताओं की उत्पत्ति और उसमें ही उनका विलय होता है।] अतएव जो (रुद्र परमेश्वर) 'विश्वाधिक' अर्थात् सर्वोत्कृष्ट एवं 'महर्षि' महाज्ञानी मन्त्रद्रष्टा ऋषि हैं।

[**शाङ्करभाष्य**सम्मत पाठ के अनुसार वे 'विश्वाधिप' अर्थात् विश्व के पालक स्वामी हैं— **'विश्वस्याऽधिपो विश्वाधिपः विश्वस्य पालयिता।'** उसी रुद्र ने सृष्टि के पूर्व 'हिरण्यगर्भ' चतुर्मुख ब्रह्मदेव को जन्म दिया।

इस उपनिषद् के **शाङ्करभाष्य** के अनुसार 'हिरण्यगर्भ' शब्द का निर्वचन इस प्रकार है— **'हितं रमणीयमुज्ज्वलं ज्ञानं गर्भेऽन्तः सारो यस्य तं (हिरण्यगर्भम्)।'** जिनके गर्भ में कल्याणकारी उज्ज्वल ज्ञानसार था, उस 'हिरण्यगर्भ' को जन्म दिया।

CC0. In Public Domain. Jangamwadi Math Collection, Varanasi

Digitization by eGangotri and Sarayu Trust. Funding by MoE-IKS

महर्षिर्महाश्चासौ ऋषिश्च महर्षिः महाज्ञानीत्यर्थः। एतादृशो यो रुद्रः **पूर्वं** सृष्ट्यादौ **हिरण्यगर्भं** चतुर्मुखब्रह्माणं **जनयामास**ोत्पादिवान्। **स** रुद्रो **नः** अस्मान् **शुभया** समीचीनया मङ्गलकरया **बुद्ध्या** धिया **संयुनक्तु** संयोजयतु यया बुद्ध्या परगतिं प्राप्नुयाम तादृशीं बुद्धिं ददातु देवः। परमात्मैव हि सर्वकारणमिति वक्ष्यति—

"स विश्वकृत् विश्वविदात्मयोनिः ज्ञः कालकालो गुणी सर्वविद्यः।
प्रधानक्षेत्रज्ञपतिर्गुणेशः संसारमोक्षस्थितिबन्धहेतुः।।" इति ॥
(श्वे.उ. ६/१६)

गीतायामपि—

"तेषां सततयुक्तानां भजतां प्रीतिपूर्वकम्।
ददामि बुद्धियोगं तं येन मामुपयान्ति ते।।" (१०.२०)

'विष्णुसहस्रनामस्तोत्र' में 'हिरण्यगर्भ' शब्द दो बार आया है— **'हिरण्यगर्भो भूगर्भः'** (२१) और **'हिरण्यगर्भः शत्रुघ्नः'** (५७)। प्रथम पद का निर्वचन इस प्रकार है— **हिरण्याण्डान्तर्वर्तित्वात् हिरण्यगर्भः ब्रह्मा विरिञ्चिः, तदात्मा'** हिरण्मय (सुवर्णनिर्मित) अण्ड के भीतर विराजमान होने के कारण ब्रह्मदेव का हिरण्यगर्भ नाम सार्थक है। जैसा कि प्रमाणवचन है— **'हिरण्यगर्भः समवर्तताग्रे भूतस्य जातः पतिरेक आसीत्।'** (ऋ. सं. १०/१२१/१)।

द्वितीय निर्वचन इस प्रकार है— **'हिरण्यगर्भसम्भूतिकरणं हिरण्यमयम् अण्डं यद् वीर्यसम्भूतं तद् अस्य गर्भ इति हिरण्यगर्भः।'** 'हिरण्यगर्भ' (ब्रह्मदेव) के जन्म का कारण हिरण्मय अण्ड है। वह जिसके गर्भ में उत्पन्न हुआ, वह भगवान् का उत्पत्ति-स्थान भी हिरण्यगर्भ है। प्रस्तुत सन्दर्भ में इस उपनिषद् के शांकरभाष्य और विष्णुसहस्रनामस्तोत्र का प्रथम निर्वचन सयुक्तिक प्रतीत होता है।]

वे रुद्र शिव हमें मङ्गलमयी सद्बुद्धि से संयुक्त करें, जिससे हम परमगति (मुक्ति) प्राप्त करें। **'स विश्वकृद् विश्वविदात्मयोनिः'** (६/१६) इत्यादि अग्रिम मंत्र में यह प्रतिपादन किया जायेगा कि परमात्मा सभी कारणों का कारण है। **'तेषां सततयुक्तानाम्'** (१०/१०) इत्यादि भगवद्गीता के श्लोक में स्पष्ट कहा गया है कि भगवान् ही अपने आश्रितों को स्वयं की (परमात्मा की) प्राप्ति में सहायक ज्ञान प्रदान करते हैं। इसका हिन्दी अनुवाद इस प्रकार है—

"इस भांति होकर युक्त जो नर नित्य भजते प्रीति से।
मतियोग ऐसा दूँ, मुझे वे पा सकें जिस रीति से।।"
(श्रीकृष्णगीता १०.२०)

CC0. In Public Domain. Jangamwadi Math Collection, Varanasi

Digitization by eGangotri and Sarayu Trust. Funding by MoE-IKS

इति स्वाश्रितानां स्वप्राप्तिहेतुभूतं ज्ञानं भगवानेव ददातीति सुस्पष्टमेवोच्यते।।४।।

एवममूर्तं परशिवं स्तुत्वा तस्य प्रार्थनां च कृत्वा ततो मूर्तमपि परशिवं स्तुत्वा प्रार्थयते मन्त्रद्वयेन महर्षिः—

या ते रुद्र शिवा तनूरघोराऽपापकाशिनी।
तया नस्तनुवा शन्तमया गिरिशन्ताभिचाकशीहि।।५।।

'या त' इति। हे **रुद्र** संसारमोचक भवरोगवैद्य, **ते** तव **या तनूरघोरा** पावनी शान्ता च वर्तते। उक्तं चान्यत्रापि **''तस्यैते तनुवौ घोराऽन्या शिवाऽन्या''**

'सिद्धान्तशिखामणि' में इस श्रुति के आधार पर (**'विश्वाधिक'** पाठ स्वीकार करते हुए) **माहेश्वर भक्त** का यह स्वरूप स्थिर किया गया है—

''विश्वस्मादधिको रुद्रो विश्वानुग्रहकारकः।
इति यस्य स्थिरा बुद्धिः स वै माहेश्वरः स्मृतः।।''

(सि.शि.म., १०/८)

'विश्वाधिपः' पाठ स्वीकार करते हुए परमशिव के विश्वाधिपत्व की ओर इसी मंत्र का संकेत 'सिद्धान्तशिखामणि' में किया गया है—

विश्वाधिपत्वमीशस्य लिङ्गमूर्तेः स्वभावजम्।
अनन्यदेवसादृश्यं श्रुतिराह सनातनी।।

(सि.शि.म., ११/३४)

एतदर्थ इन दोनों कारिकाओं का शाङ्करभाष्य और 'तात्पर्यदीपिका' व्याख्या द्रष्टव्य है।]

मन्त्रार्थ— सर्वरोगनिवारक जिस रुद्रशिव ने इन्द्रादि देवताओं को जन्म दिया और जो उनके वैभवकारण हैं, वे रुद्रशिव सर्वोत्कृष्ट और महाज्ञानी हैं। जिन्होंने सृष्टि के पूर्व ब्रह्मदेव को जन्म दिया, वे हमें शुभ बुद्धि प्रदान करें, हमें शाश्वत मुक्ति मिले।।४।।

अवतरण— इस प्रकार महर्षि श्वेताश्वतर ने अमूर्त निराकार परशिव की स्तुति और उनसे प्रार्थना की है। अब वे दो मन्त्रों से उनके साकार स्वरूप की स्तुति करते हुए उनसे इस प्राकर प्रार्थना कर रहे हैं—

'या ते रुद्र !' इत्यादि। हे संसार को मुक्ति प्रदान करने वाले भवरोग वैद्य **'रुद्र !'**, जैसा कि कहा गया है— **''तस्यैते तनुवौ-घोराऽन्या, शिवाऽन्या''**— उस रुद्रशिव

CC0. In Public Domain. Jangamwadi Math Collection, Varanasi

Digitization by eGangotri and Sarayu Trust. Funding by MoE-IKS

इति। **अपापकाशिनी** पुण्याभिव्यक्तिकरी, पापं सर्वं नाशयित्वा पुण्यहेतुभूता। **तया तनुवा** तन्वा। तनुशब्दस्य तृतीयैकवचनान्तं रूपं छान्दसम्। कीदृश्या? **नः** अस्माकं **शन्तमया** शन्तमा अतिसुखरूपा निरतिशयानन्दरूपेत्यर्थः। तादृश्या, **हे गिरिशन्त!** गिरौ स्थित्वा शं सुखं तनोतीति गिरिशन्तः कैलासवासी शिवः।

की दो मूर्तियाँ हैं— जिनमें घोर भिन्न है और शिव भिन्न है। उसमें जो मूर्ति (शरीर) अघोर पवित्र एवं शान्त है और 'अपाप' अर्थात् पुण्य को अभिव्यक्त करनेवाली है, वह सभी पाप का नाश कर पुण्य का कारण होती है।

[यह व्याख्या वीरशैवभाष्य और शांकरभाष्यसम्मत है। शांकरभाष्य में अन्य अर्थ इस प्रकार प्रकाशित हैं— **''अथवा शिवा शुद्धाऽविद्यातत्कार्यविनिर्मुक्ता सच्चिदाद्वयब्रह्मरूपा न तु घोरा। अपापकाशिनी स्मृतिमात्राघनाशिनी पुण्याभिव्यक्तिकरी।''** अथवा अविद्या (अज्ञान) और उसके कार्यों से होने के कारण सत्चिदानन्दात्मक अद्वितीय परब्रह्मस्वरूप है। वह 'घोर' भयङ्कर नहीं है, अपितु चन्द्रमण्डल के समान आह्लादकारिणी रोम-रोम-गद्-गद् करने वाली है।''

शिवयोगि-शिवाचार्यविरचित **''सिद्धान्तशिखामणि''** ग्रन्थ में इस श्रुति का दो बार संकेत किया है—

''अघोरान्याऽपापकाशीति या ते रुद्र! शिवा तनूः।
यजुषा गीयते यस्मात् तस्माच्छैवोऽघवर्जितः।।''

(सि.शि.म., ६/६२)

''नित्यं भाति तदीयस्त्वं या ते रुद्र! शिवा तनूः।
अघोराऽपापकाशीति श्रुतिराह सनातनी।।''

(सि.शि.म., १०/५९)

दोनों पद्यों में यह वेदमन्त्र इष्टलिङ्ग की स्तुति के रूप में संकेतित है। **श्रीमरितोण्टदार्य** ने **'अघोरान्याऽपापकाशी'** इत्यादि पद्य की अपनी **'तत्त्वप्रदीपिका व्याख्या'** में इसका अर्थ इस प्रकार किया है—

अस्याः श्रुतेरयमर्थः— **'भो रुद्र! ते तव शिवा मङ्गलस्वरूपा या तनूः** 'लिङ्गं तु शिवयोर्देहः' **इत्यागमोक्तेः शिवशक्त्यात्मिका लिङ्गमूर्तिः, सा अघोरा शान्ता अपापकाशी अपापेषु भक्तेषु काशत इति अपापकाशी (अपापकाशिनी) इष्टलिङ्गरूपेण तत्र स्थिताः।।''**

इस वेदमन्त्र का अर्थ इस प्रकार है— 'हे रुद्र!' तुम्हारी **'लिङ्गं तु शिवयोर्देहः'** इस आगमप्रमाण के अनुसार शिवशक्तिस्वरूपा मंगलमयी जो मूर्ति है, निष्पाप भक्तों की हृदयगुफा में और उनके वक्षःस्थलपर इष्टलिङ्ग के रूप में विराजमान है।

CC0. In Public Domain. Jangamwadi Math Collection, Varanasi

Digitization by eGangotri and Sarayu Trust. Funding by MoE-IKS

सर्वेभ्यः सुखं तन्वन् हे रुद्र निराकारपरमात्मन्! **अभिचाकशीहि** अभिपश्य, सम्यक् निरीक्षस्वास्मान्। भवदीयया कालरुद्ररूपया मूर्त्या भवान् नास्मान् पश्यतु ; किन्तु सर्वहितावहया शिवरूपया मङ्गलकारिण्या मूर्त्यैव अस्मान् सदयं कटाक्षस्व।।५।।

यामिषुं गिरिशन्त हस्ते विभर्ष्यस्तवे।
शिवां गिरित्र! तां कुरु मा हिंसीः पुरुषं जगत्।।६।।

'यामिषुमि'ति। हे **गिरिशन्त!** गिरौ स्थित्वा सुखं तन्वन् हे रुद्र! अस्तवे दुष्टेष्वभक्तेषु प्रक्षेपाय **यामिषुं** बाणं **हस्ते बिभर्षि** धारयसि **हे गिरित्र!** गिरौ स्थित्वा त्राणनं रक्षणं कुर्वन्, **ता**मिषुं शस्त्रं **शिवां** मङ्गलकरीं **कुरु** कुरुष्व। **पुरुषं** चेतनं **जगत्** अचेतनं च। चेतनाचेतनात्मकं हि विश्वम्। तत् **मा हिंसीः** मा

''अघोराऽपापकाशीति'' (६/६२) इत्यादि श्लोक का अर्थ यह है कि यतः यजुर्वेद का यह मंत्र तुम्हारी लिङ्गमूर्ति की इस प्रकार स्तुति करता है, अतः इष्टलिङ्गधारण करनेवाला वीरशैव पापमुक्त होता है।

''नित्यं भाति तदीयस्त्वम्'' (१०/५९) इत्यादि श्लोक का अर्थ यह है कि ''हे रुद्र! तुम उसी इष्टलिङ्ग में नित्य प्रकाशमान रहते हो, जिसकी स्तुति **'या ते रुद्र!'** इत्यादि यजुर्वेद का सनातन मंत्र भी करता है।'']

'तया तनुवा' — उस इष्टलिङ्गमूर्ति से। यह प्रयोग वैदिक है। लौकिक संस्कृत में 'तनु' शब्द का तृतीया एक वचन में **'तन्वा'** रूप होता है। **'शन्तमया'** — जो अत्यन्त सुखस्वरूप निरतिशय आनन्दप्रदात्री है, उससे ; **'गिरिशन्त!'** — कैलास पर रहकर सभी को सुख प्रदान करने वाले हे निराकार परमात्मा! **'अभिचाकशीहि'**— आप हमारा सम्यक् निरीक्षण करें। आप अपनी 'कालरुद्र' मूर्ति से न देखें, अपितु मंगलमयी मूर्ति से दयापूर्वक कटाक्षपात करें।

मन्त्रार्थ— कैलासवासी, सभी को सुख प्रदान करने वाले हे रुद्रशिव! तुम्हारी जो अघोर पवित्र शान्त इष्टलिङ्गमूर्ति है, उससे तुम हमारी ओर कृपा कटाक्ष करो।।५।।

'यामिषुम्' इत्यादि। **'हे गिरिशन्त'** = हे कैलाशवासी सभी को आनन्द देने वाले रुद्रशिव!, **'अस्तवे'** = दुष्ट नास्तिक शिवद्रोहियों पर चलाने के लिये, **'याम् इषुं हस्ते बिभर्षि** = तुम जिस बाण को हाथ में धारण करते हो, **'गिरित्र'** = कैलासयपर्वत पर रहकर सभी की रक्षा करने वाले हे शंकर!, **'तां शिवां कुरु'** = उस बाण को मङ्गलमय करो। **'मा हिंसीः पुरुषं जगत्'** = देहधारी समस्त जीवों और अखिल स्थावर जगत् का विनाश मत करो।

CC0. In Public Domain. Jangamwadi Math Collection, Varanasi

Digitization by eGangotri and Sarayu Trust. Funding by MoE-IKS

पीडय। भवदीयं क्रूरशक्त्यादिकं भक्तेष्वस्मासु मा प्रयुङ्क्ष्व। अस्मान् वात्सल्यपूर्णया दृष्ट्या रक्षेति यावत्। एवं चेश्वरः पापानां भगवद्विमुखानामेव क्रूरो भयङ्करः न तु भक्तानामाश्रितानामित्युक्तं भवति॥६॥

एवं परमात्मानं स्तुत्वा तद्ज्ञानादेव मुक्तिरिति प्रतिपादयति—

ततः परं ब्रह्मपरं बृहन्तं
यथानिकायं सर्वभूतेषु गूढम्।
विश्वस्यैकं परिवेष्टितारम्
ईशं तं ज्ञात्वाऽमृता भवन्ति॥७॥

'ततः परमि'ति। **ततश्चे**तनरूपाज्जगतः सर्वस्यापि कारणत्वात्, **ब्रह्मपरं** ब्रह्मणश्चतुर्मुखात् सकललोककारणत्वेन प्रसिद्धादपि **परं** तस्यापि कारणभूतं

'ब्रह्मपुर' (शरीर) में सुप्तावस्था में रहने वाला जीवात्मा चेतन होता है और स्थावर जगत् अचेतन होता है। इस प्रकार समस्त विश्व चेतन और अचेतन स्वरूप है। उसे पीड़ा मत दो। आपकी क्रूरशक्ति का प्रयोग हमारे जैसे भक्तों पर मत करो। वात्सल्यपूर्ण दृष्टि से हमारी रक्षा करो। इससे यह सूचित होता है कि जो पापात्मा भगवान् से विमुख होते हैं, उन जीवों के लिये 'कालरुद्र' शिव क्रूर भयंकर होते हैं, आश्रित भक्तों के लिये नहीं। उनके लिये वे 'शंकर' होते हैं।

[भक्त यह प्रार्थना कर रहा है कि हे शिव! तुम हमें अपने साकार ब्रह्मस्वरूप का साक्षात्कार कराओ। समस्त चेतन-अचेतन जगत् में परमात्मा का वास है। उसकी हिंसा का अर्थ है, परमात्मा का अन्तर्ध्यान होना। अतः भगवान् से हिंसा का निषेध कर रहा है।]

मन्त्रार्थ— कैलासवासी समस्त जगत् की रक्षा करने वाले हे शंकर! तुम क्रूरशक्तिस्वरूप जिन बाणादि शस्त्रों को पापियों पर चलाने के लिये हाथों में धारण करते हो, उन्हें मंगलमय, शान्त करो। चेतन अचेतन समस्त जगत् की हिंसा मत करो॥६॥

अवतरण— इस प्रकार श्रुति परमेश्वर की स्तुति करती हुई यह प्रतिपादन कर रही है कि ब्रह्मज्ञान से ही मुक्ति होती है—

'ततः परम्' इत्यादि। **'ततः परम्'** = उस चेतनस्वरूप जगत् से उत्कृष्ट; क्योंकि परमेश्वर सबका कारणस्वरूप और सारा प्रपञ्च उसका कार्यस्वरूप है। अतः **'ब्रह्मपरम्'** = चतुर्मुख ब्रह्मदेव समस्त लोकों के निर्माणकर्ता होने के कारण जगत् का कारणस्वरूप

CC0. In Public Domain. Jangamwadi Math Collection, Varanasi

Digitization by eGangotri and Sarayu Trust. Funding by MoE-IKS

बृहन्तं सर्वव्यापकत्वेन महत् **यथानिकायं** यथाशरीरमेव **सर्वभूतेषु गूढं** सर्वप्राणिष्वपि निगूढतयाऽवस्थितं **विश्वस्य सर्वस्याप्येकं परिवेष्टितारं** सर्वं क्रोडीकृत्य व्याप्याऽवस्थितं **तमीशं** परमेश्वरं **ज्ञात्वा** साक्षात्कृत्य **अमृता** मुक्तिभाजो **भवन्ति** ब्रह्मवादिनः। तद्दर्शनेनैव मुक्तिर्नान्यथेत्यर्थः।।७।।

एवं परमात्मज्ञानान्मुक्तिमुक्त्वा मुक्तेरुपायो नान्यः कश्चिदस्तीत्याह स्वानुभावं प्रमाणीकुर्वन् श्वेताश्वतरो महर्षिः—

वेदाहमेतं पुरुषं महान्त-
मादित्यवर्णं तमसः परस्तात्।
तमेव विदित्वाऽतिमृत्युमेति
नाऽन्यः पन्था विद्यतेऽयनाय।।८।।

अहम् एतं वर्णितं (**पुरुषं**) परमात्मानं पूर्णं सर्वव्यापकम् **आदित्यवर्णं** स्वप्रकाशस्वरूपं **तमसो**ऽज्ञानरूपेभ्यस्त्रिगुणेभ्यः **परस्ताद्** दूरतो विद्यमानं त्रिगुणातीतं

हैं, उनका भी कारण परब्रह्म है। **'बृहन्तम्'** = वह सर्वव्यापक होने के कारण अत्यन्त विशाल हैं। **'यथानिकायं सर्वभूतेषु गूढम्'** = प्रत्येक शरीर के अन्तर्गत सभी प्राणियों के हृदयकमल में अन्तर्यामी बनकर गुप्त रूप से वास करता है। (अतएव जीवात्मा देहाभिमान के कारण स्वस्वरूप का विस्मरण करता है।) **'विश्वस्यैकं परिवेष्टितारम्'** = साथ ही वह बाहर से भी समस्त विश्व को वेष्टित करता है। **'ईशं तं ज्ञात्वा अमृता भवन्ति'** = उस परब्रह्मस्वरूप परमेश्वर का साक्षात्कार कर ब्रह्मज्ञानी अमृतत्व मुक्ति प्राप्त करते हैं। ब्रह्मसाक्षात्कार से ही मुक्ति मिलती है, अन्य प्रकार से नहीं यही इसका तात्पर्य है।

मन्त्रार्थ— समस्त चराचर जगत् और उसके सृष्टिकार्य ब्रह्मदेव से भी उत्कृष्ट सर्वव्यापक होने के कारण अत्यन्त विशाल सभी देहधारी जीवों में गुप्तरूप से विराजमान और साथ ही बाहर से भी समस्त विश्व को वेष्टित करनेवाले उस परशिवस्वरूप परब्रह्म परमात्मा का साक्षात्कार कर ब्रह्मज्ञानी अमर बन जाते हैं।।७।।

अवतरण— महर्षि श्वेताश्वतर अपने अनुभव को प्रमाण के रूप में प्रस्तुत करते हुए परमेश्वरस्तुतिपूर्वक यह प्रतिपादन कर रहे हैं कि परमात्मसाक्षात्कार से ही मुक्ति मिलती है—

'वेदाहमेतम्' इत्यादि। **अहम्** = मैं श्वेताश्वतर महर्षि, **एतम्** = इस प्रकार पूर्ववर्णित उस, **तमसः परस्तात्** = अज्ञान स्वरूप सत्व-रज-तम इन तीन गुणों से दूर

CC0. In Public Domain. Jangamwadi Math Collection, Varanasi

Digitization by eGangotri and Sarayu Trust. Funding by MoE-IKS

परञ्ज्योतिस्वरूपं **वेद** जाने। इतरोऽपि जन**स्तमेव** पुरुषं **विदित्वा मृत्युं** संसार**मत्येति**। सर्वेऽपि जीवाः परमात्मज्ञानादेव भवबन्धमतिक्रम्य गच्छेयुः। कुतः? यतो **नान्यः पन्था विद्यतेऽयनाय। अयनाय** परगतिप्राप्तये **अन्यः** परमात्मज्ञानव्यतिरिक्तः **पन्थाः** मार्गः, उपाय इत्यर्थः। **न विद्यत** एव। वक्ष्यति च—

"यदा चर्मवदाकाशं वेष्टयिष्यन्ति मानवाः।
तदा देवमविज्ञाय दुःखस्यान्तो भविष्यति।।" (श्वे.उ.६/२०)इति।।

अतस्तत्साक्षात्कारो मुक्तिहेतुरिति फलितम्।।८।।

कुतः परमात्मज्ञानादेव मुक्तिरुच्यत इत्यत्र यतस्ततोऽप्युत्तमः कश्चिदुपायो नास्त्यत एव तथोक्तमित्याह—

यस्मात् परं नापरमस्ति किञ्चिद्
यस्मान्नाणीयो न ज्यायोऽस्ति कश्चित्।

ही रहने वाले त्रिगुणातीत, **आदित्यवर्णम्** = सूर्य के समान स्वकीय चित्प्रकाशमय परम ज्योति:स्वरूप, **महान्तं पुरुषम्** = ब्रह्मपुर (शरीर) में सुप्तावस्था में वास करने वाले पूर्ण (षोडशकलासम्पन्न) परमात्मा को, **वेद** = जानता हूँ।

(दूसरा भी व्यक्ति) **तमेव विदित्वा** = उसी पूर्ण पुरुष का साक्षात्कार कर, **मृत्युम् अत्येति** = मृत्युभय अर्थात् संसार को पार कर जाता है। अर्थात् सभी जीव परमात्मा के साक्षात्कार से सांसारिक बन्धनों को अतिक्रमण करते हैं। **नान्य पन्थः विद्यतेऽयनाय**— परमगति (मुक्ति) को प्राप्त करने के लिये परमात्मसाक्षात्कार से भिन्न अन्य कोई उपाय नहीं है। जैसा कि **'यदा चर्मवदाकाशम्'** = (६/२०) इत्यादि मंत्र में आगे चलकर प्रतिपादित है। अतः मुक्ति का हेतु ब्रह्मसाक्षात्कार ही है यह सम्पूर्ण कथन का निष्कर्ष है।

मन्त्रार्थ— मैं (श्वेताश्वतरमुनि) अज्ञान से परे त्रिगुणातीत परमप्रकाश-स्वरूप सर्वव्यापक उस पूर्णपुरुष को जानता हूँ। उस परमात्मतत्त्व का साक्षात्कार कर व्यक्ति मृत्यु को भी पार कर जाता है। परमगति (मुक्ति) की प्राप्ति के लिये ब्रह्मसाक्षात्कार से भिन्न कोई अन्य उपाय नहीं है।।८।।

अवतरण— क्योंकि परमात्मसाक्षात्कार से ही मुक्ति प्राप्त होती है और उसके लिये उससे श्रेष्ठ कोई अन्य उपाय नहीं है। इसीलिये श्रुति इस प्रकार आदेश दे रही है—

'यस्मात् परम्' इत्यादि। जिस परशिवब्रह्म से विश्व में कुछ भी उत्कृष्ट नहीं है, यतः अखण्ड ब्रह्माण्डमण्डल में विद्यमान चल और अचल विश्वप्रपञ्च उसी परशिव ब्रह्म से

CC0. In Public Domain. Jangamwadi Math Collection, Varanasi

Digitization by eGangotri and Sarayu Trust. Funding by MoE-IKS

वृक्ष इव स्तब्धो दिवि तिष्ठत्येक-
स्तेनेदं पूर्णं पुरुषेण सर्वम्।।९।।

'यस्मात् परमिति।' यस्मात् परशिवब्रह्मण **अपरमन्यत् परमुत्कृष्टं** किञ्चिदपि **नास्ति** विश्वे। ब्रह्माण्डे विद्यमानस्य चराचरजगज्जालस्य परशिवोत्पन्नत्वात् तमेवाऽनुसृत्य जीवनादन्ते तस्मिन्नेव विलयनात् परमात्मैव आश्रयस्थानम्, रक्षणमूलं विश्रान्तिस्थलमिति च निश्चीयते। एवं सर्वाधारभूतत्वादेव परमात्मा लिङ्गमिति व्यवह्रियते।

''लिङ्गमध्ये जगत् सर्वं लिङ्गादन्यन्न विद्यते''

इति सिद्धान्तशिखामणिवचनात् सर्वस्यापि परशिवमयत्वं प्रसिद्धम्। तथापि परमात्मा सर्वस्यापि नियामकत्वेन तदन्तरेव वर्तनात् तस्मादन्तर्यामिण उत्कृष्टं वस्तु यत्र कुत्रापि नास्त्येव। चेतनेषु सच्चिदानन्दरूपेण, जडेषु चिदानन्द-रूपयोगस्तमसात्यन्तं तिरोहितत्वात् सद्रूपेणैव परमात्मनोऽवस्थानात् सर्वत्राव्यक्ततयावस्थित: परमात्मैव सर्वोत्कृष्ट इत्यत्र न कस्यापि विमतिर्विप्रति-पत्तिर्वा।

उत्पन्न हुआ है, उसी का अनुसरण करना उसकी जीवनयात्रा का उद्देश्य है और अन्त में उसी में उसका विलय भी होता है, अत: यह निश्चित है कि परशिवस्वरूप परब्रह्म परमात्मा ही समस्त स्थावर-जंगम स्वरूप जगत् का आश्रयस्थान, रक्षण का मूल और विश्रामस्थान है। इसीलिये समस्त प्रपञ्च का आश्रयभूत होने के कारण ही परब्रह्म परमात्मा को 'लिङ्ग' कहा जाता है—

''लिङ्गमध्ये जगत् सर्वं लिङ्गादन्यन्न विद्यते''[१] इस **सिद्धान्तशिखामणि** के वचनानुसार समस्त जगत् की परशिवब्रह्मस्वरूप में प्रसिद्धि है। तथापि परमेश्वर सबके नियामक के रूप में उसके अन्तस्तल में ही विद्यमान होने के कारण कहीं भी उस अन्तर्यामी परशिवब्रह्म से उत्कृष्ट कोई वस्तु नहीं है। यत: चेतन जीवों में वह सच्चिदानन्दरूप में विराजमान है, जड वस्तुओं में तमोगुण (अज्ञान) के कारण उसका चित्स्वरूप और आनन्दस्वरूप अत्यन्त आच्छादित रहता है। सत्स्वरूप से परमेश्वर सर्वत्र विराजमान है। अत: अव्यक्तरूप में सर्वत्र अवस्थित परमात्मा ही सर्वोत्कृष्ट है, इसमें न तो किसी का मतभेद है और न सन्देह।

---

१. लिङ्ग के बीच में समस्त जगत् है। लिङ्ग से भिन्न कुछ भी नहीं है।

CC0. In Public Domain. Jangamwadi Math Collection, Varanasi

Digitization by eGangotri and Sarayu Trust. Funding by MoE-IKS

यस्माच्च लिङ्गरूपाद् परशिवात् **अणीय** अत्यन्तसूक्ष्मं वा **किञ्चिदपि** वस्तु **नास्ति** न विद्यते यत्र कुत्रापि। **''अणोरणीयान् महतो महीयान्''** (श्वे.उ. ३/२०) इति खलु श्रुतिरुपदिशति परमात्मस्वरूपम्। अत: परमात्मैव सूक्ष्मतमं वस्त्विति परिगणितम्। **यस्माल्लिङ्गात् ज्यायो** महान् वा **कश्चिदन्यो नास्त्येव**। यश्च **वृक्ष इव स्तब्धो** निश्चलो **दिवि** परमाकाशे निराधारे **एकोऽ**द्वितीय एव अप्रतिहतशक्तिकस्सन् न केवलं साकाररूपतया भुवि किन्तु चिदाकाशेऽपि निराकारतया तिष्ठति विराजते। **तेन** तादृशेन मूर्तामूर्तोभयात्मकेन **पुरुषेण** लिङ्गरूपेण परमशिवेन **इदं सर्वं** चराचरात्मकं जगत् पूर्णं व्याप्तं विराजते।

''पूर्णमदः पूर्णमिदं पूर्णात्पूर्णमुदच्यते।
पूर्णस्य पूर्णमादाय पूर्णमेवावशिष्यते।।'' (बृ.उ.५.१)

इति श्रुतौ पूर्णेन परशिवलिङ्गेन पूर्णत्वात् विश्वस्यापि पूर्णत्वं श्रूयते। अतो न मिथ्यात्वप्रसङ्गः।।९।।

यस्मान्नाणीयो न ज्यायोऽस्ति कश्चित् — जिस लिङ्गस्वरूप परशिवब्रह्म से 'अणु' अत्यन्त सूक्ष्म कोई वस्तु कहीं नहीं है। क्योंकि श्रुति ही **''अणोरणीयान् महतो महीयान्''**[1] (श्वे.उ.३.२०) इस प्रकार परमात्मा के स्वरूप का वर्णन कर रही है। अतः परमात्मा की गणना सूक्ष्मतम वस्तु के रूप में की गयी है। उसी प्रकार परशिवलिङ्ग से महान् वस्तु कोई नहीं है।

वृक्ष इच स्तब्धो दिवि तिष्ठत्येकः— जिस प्रकार वृक्ष निश्चल रहता है, उसी प्रकार जो प्रतिहत ब्रह्मस्वरूप परमात्मा न केवल 'द्यौ' परमाकाश में, जो आधाररहित है, उसमें एकाकी शक्तिहोकर लिङ्गरूप में विराजमान है ; अपितु भूमण्डल के अन्तर्गत भी चिन्मय आकाश में भी निराकार बनकर रहता है।

''तेनेदं पूर्णं पुरुषेण सर्वम्'— उस मूर्त-अमूर्त-उभयस्वरूप लिङ्गाकार विद्यमान परमशिव से यह चराचर जगत् पूर्ण रूप से व्याप्त है।

''पूर्णमदः पूर्णमिदं पूर्णात् पूर्णमुदच्यते।
पूर्णस्य पूर्णमादाय पूर्णमेवावशिष्यते।।''[2]

---

१. परमात्मा सूक्ष्म से भी सूक्ष्मतम और स्थूल से भी स्थूलतम अथवा विशाल से भी विशालतम है।
२. जीव ही शिव है, शिव ही जीव है। दोनों पूर्ण हैं। 'पूर्ण' (लिङ्गस्थल) से पूर्ण (अङ्गस्थल) का उद्रेक होता है। अन्त में दीक्षित पूर्ण जीव कारणस्वरूप शिव का पूर्णस्वरूप बनकर पूर्ण परशिवलिङ्गस्वरूप अवशिष्ट रहता है।

CC0. In Public Domain. Jangamwadi Math Collection, Varanasi

Digitization by eGangotri and Sarayu Trust. Funding by MoE-IKS

ततो यदुत्तरतरं तदरूपमनामयम्।
य एतद्विदुरमृतास्ते भवन्त्यथेतरे दुःखमेवापियन्ति।।१०।।

'ततः' इति। **ततः** सर्वैर्दृश्यमानात् शिवमयाज्जगतोऽपि **यदुत्तरततरमुत्कृष्टं** सर्वकारणं साक्षिरूपं तमसः परं परञ्ज्योतिस्स्वरूपं परशिवब्रह्म **तच्च** वस्तुतः **अरूपं** रूपादिरहित**मनामयम्** आमय आणवादिमलत्रयाख्यो दोषस्तद्रहितं निर्मलमित्यर्थः। **एतत्** तेजोरूपं सर्वाधारं निरञ्जनं तत्त्वं **ये** अनुभाविनो

इस वेदमन्त्र में पूर्ण परशिवलिङ्गद्वारा पूर्ण होने के कारण समस्त विश्व की सम्पूर्णता प्रतिपादित है, अतः जगन्मिथ्यात्व का कोई प्रसंग ही नहीं है।

[**'महानारायणोपनिषद्'** (१०/२०) में भी यह मन्त्र है। श्री वृषभेन्द्र पण्डित शिवाचार्य प्रणीत श्रीशैवभाष्य में **'दिवि महाकैलासे दहराकाशे वा'** अर्थ किया गया है। तदनुसार परमशिव महाकैलासपर्वत पर अथवा दहराकाश में प्रकाशमान हैं। **'तेनेदं पूर्णं पुरुषेण सर्वम्'** की व्याख्या वहाँ इस प्रकार की गयी है—**''तेन पुरुषशब्दितशिवेन'', ''पुरुषो वै रुद्रस्तन्महो नमो नमः'', ''तत्पुरुषाय विद्महे'' इत्यादिषु पुरुषस्य शब्दस्य शिवे रूढिर्दृश्यते पङ्कजादिवत्। सर्वमिदं परिदृश्यमानं चराचरप्रपञ्चं पूर्णं भरितमित्यर्थः।''** वीरशैवभाष्य के अनुसार इस मंत्र में 'पुरुष' शब्द, शिव के लिये प्रयुक्त है। वह उसी प्रकार रूढ शब्द है, जिस प्रकार पङ्कज आदि शब्द। **''पुरुषो वै रुद्रः। तन्महो नमो नमः'', ''तत्पुरुषाय विद्महे महादेवाय धीमहि तन्नो रुद्रः प्रचोदयात्''** इत्यादि मन्त्रों में भी पुरुष शब्द का शिव अर्थ रूढ दृष्टिगोचर होता है। उस परमशिव से दृश्यमान समस्त चर अचर प्रपञ्च व्याप्त है।

शांकरभाष्य में **''दिवि द्योतनात्मनि स्वे महिम्नि''** व्याख्या की गयी है, तदनुसार इसका अर्थ होगा ''अद्वितीय परमेश्वर द्योतनात्मक प्रकाशस्वरूप अपनी महिमा में ही प्रतिष्ठित है।'']

मन्त्रार्थ— उस परमेश्वर से उत्कृष्ट अन्य कुछ भी नहीं है। न तो उससे अन्य कुछ सूक्ष्मतम है और न विशालतम। जिस प्रकार आकाश में वृक्ष आधारहीन स्थिति में निश्चल स्थिर रहता है, उसी प्रकार परमशिव परम आकाश और चिदाकाश दोनों में निराधार स्थिति में साकार और निराकार बनकर विराजमान हैं। समस्त जगत् उस परमशिव से व्याप्त है।।९।।

'ततो यदुत्तरतम्' इत्यादि। **ततः** = सर्वसाधारण द्वारा दृष्टिगोचर शिवस्वरूप तथा जङ्गमात्मक संसार से भी, **यदुत्तरतरम्** = जो सर्वोत्कृष्ट, सभी का कारणस्वरूप अन्धकार

CC0. In Public Domain. Jangamwadi Math Collection, Varanasi

Digitization by eGangotri and Sarayu Trust. Funding by MoE-IKS

विदुर्ज्ञातवन्तस्ते अमृता अमरणधर्माणो **भवन्ति**। **"अतिमृत्यमेति"** इति हि पूर्वमेवोक्तम्। लिङ्गविज्ञानिन एव निर्मलाः सन्तो विमुक्तमरणभयाः सम्पद्यन्ते। **अथे**ति वाक्यभेदसूचनाय। **इतरे** ये एतादृशं स्थूलसूक्ष्मकारणशरीरेष्विष्टप्राण–भावात्मकतया विराजमानं महाप्रकाशस्वरूपं परमशिवं न जानन्ति ते, **दुःखमेव** सततदुःखमेव **अपियन्ति** प्राप्नुवन्ति। अथवा **अपि** इति भिन्नं पदम् एवकारार्थकम्। दुःखमेव यान्त्यपि प्राप्नुवन्त्येवेत्यर्थः॥१०॥

सर्वाननशिरोग्रीवः सर्वभूतगुहाशयः।
सर्वव्यापी च भगवान् तस्मात् सर्वगतः शिवः॥११॥

'सर्वाननशिरोग्रीव' इति। सर्वेषु जीवेषु आननं मुखं, शिरः मूर्धा, ग्रीवा कण्ठः यस्य सः सर्वाननशिरोग्रीवः। पूर्वं **"विश्वतश्चक्षुरुत विश्वतोमुखो विश्वतोबाहुः"** (३.३) इत्यत्रोक्तस्यैव विश्वव्यापकस्य परशिवाख्यस्याऽखण्डलिङ्गस्य प्रकारान्तरेण

से परे परमज्योतिस्वरूप परशिव ब्रह्म है, **तच्च** = वह, **अरूपम्** = रूपहीन अर्थात् आणव, मायीय और कार्मिक इन तीन अज्ञानमलों अथवा आध्यात्मिक, आधिदैविक और आधिभौतिक त्रिविध दुःखों से रहित है। **ये** = जो अनुभवी, **एतत्** = इस तेजःस्वरूप सर्वाधार निरञ्जन तत्त्व को, **विदुः** = जानते हैं, **ते** = वे ज्ञानसम्पन्न लोग, **अमृताः भवन्ति** = अमर हो जाते हैं, मृत्युधर्मा नहीं रहते। क्योंकि पूर्व में ही श्रुति **'तमेव विदित्वाऽतिमृत्युमेति'** (३/८) यह प्रतिपादन कर चुकी है। जो लिङ्गविज्ञानवेत्ता होते हैं वे ही निर्मल, विकाररहित और मृत्युभय से मुक्त होते हैं।

'अथेतरे दुःखमेवापियन्ति' 'अथ' अव्यय भिन्न वाक्य का सूचक है। **इतरे** = जो इस प्रकार स्थूल, सूक्ष्म और कारणशरीर में यथाक्रम इष्ट, प्राण और भावरूप से विराजमान महाप्रकाशस्वरूप परमशिव को नहीं जानते, **ते** = वे, **दुःखमेव** = निरन्तर दुःख में ही **'अपि'** पर को भिन्न मानकर उसका अर्थ **'एव'** करना चाहिए। इसका भी अर्थ वही होगा— दुःख ही प्राप्त करते हैं।

मन्त्रार्थ— दृश्यमान शिवस्वरूप जगत् से भी उत्कृष्ट सर्वाधारस्वरूप जो महाप्रकाश चित्तत्त्व है, जो रूपहीन और विकारशून्य उसको जानते हैं, वे अमर होते हैं और जो उसे नहीं जानते वे निरन्तर दुःख ही भोगते हैं॥१०॥

'सर्वाननशिरोग्रीवः' इत्यादि। **सर्वाननशिरोग्रीवः** = सभी जीवों में अथवा प्रत्येक जीव में विद्यमान सुख, शिर और कण्ठ जिस परशिवब्रह्म के ही उक्त अवयव हैं। **"विश्वतश्चक्षुरुत विश्वतोमुखो विश्वतोबाहुः"** (३/३) इत्यादि पूर्व-मन्त्र में निर्दिष्ट

CC0. In Public Domain. Jangamwadi Math Collection, Varanasi

Digitization by eGangotri and Sarayu Trust. Funding by MoE-IKS

विवरणमिदम्। परमात्मैव सर्वेषु प्राणिषु मुखशिरःकण्ठादिरूपैः परिणतो विराजते। स एव सर्वप्राणिनां शरीरेषु सकलान्यपि अवयवानि सर्वाणीन्द्रियाणि च सृष्ट्वा तद्रूपतया परिणम्य स्वयमेव तत्रानुप्रविष्टवान्। **"तत् सृष्ट्वा तदेवाऽनुप्राविशत्।"** (तै.उ. २/६) इति खलु श्रुतिरुपदिशति परमात्मनो जगद्रूपेण परिणामं तदन्तर्वसतिं च। एवं च सर्वत्र सर्वविधकार्यकारणसमर्थः सन् परमात्मैव **सर्वभूतगुहाशयः** सर्वेषां भूतानां प्राणिनां गुहायां हृदयगुहायां शेत इति सर्वभूतगुहाशयः सर्वप्राणिष्वन्तरात्मतयाऽवस्थितः प्राणलिङ्गरूपीत्यर्थः। **गीतायामपि—**

"अहमात्मा गुडाकेशः! सर्वभूताशयस्थितः" (१०/२०)

इत्युपदिश्यते। अत एव **सर्वव्यापी** च स **भगवान्** षड्गुणैश्वर्यसम्पन्नः **शिवः** परमशिवः मङ्गलकरः सर्वेषां **सर्वगतः** सर्वत्र सदा वर्तमान एव। तेन विना न

विश्वव्यापक परशिव नामक अखण्ड लिङ्ग का ही प्रकारान्तर से यह वर्णन है। परमात्मा ही सभी प्राणियों में मुख-शिर-कण्ठ आदि अवयवों के रूप में स्वरूप बदल कर विराजता है। वही सम्पूर्ण प्राणियों के शरीरों में समस्त अवयव और सकल इन्द्रियों की सृष्टि कर, उन अवयवों और इन्द्रियों के रूप में रूपान्तरित होकर स्वयं ही उसमें प्रवेश कर गया। **'तत् सृष्ट्वा "तदेवाऽनुप्राविशत्"** (तै.उ., २/६)। इस मन्त्र में वेदमाता परब्रह्म परमात्मा का जगत् के रूप में रूपान्तरण और उसके अन्तर्गत निवास को प्रमाणित कर रही है। इस प्रकार परमेश्वर ही सभी जगह सभी प्रकार के कार्य करने में समर्थ होते हुए;

"सर्वभूतगुहाशयः"— सभी जीवों की हृदय गुफा में सुप्तावस्था में रहता है। अर्थात् प्राणलिङ्ग के रूप में सभी प्राणियों की अन्तरात्मा बनकर वहाँ वास करता है। गीता भी यही कहती है—

"अहमात्मा गुडाकेश ! सर्वभूताशयास्थितः" (गीता १०/२०)

"मैं सर्व जीवों के हृदय में अन्तरात्मा पार्थ ! हूँ।" (श्रीकृष्णगीता १०/२०)

"सर्वव्यापी" अतएव परमेश्वर सर्वत्र सब जगह, समस्त चराचर जगत् और जीवों में व्याप्त है। **"भगोऽस्यास्तीति भगवान्"** — 'भग' अर्थात् षड्विध ऐश्वर्य से सम्पन्न होने के कारण ही परमेश्वर **'भगवान्'** हैं।

[इसमें यह प्रमाणवचन है—

"ऐश्वर्यस्य समग्रस्य धर्मस्य यशसः श्रियः।
ज्ञानवैराग्ययोश्चैव षण्णां भग इतीरणा।।"

(वि.पु., ६-४-७४)

CC0. In Public Domain. Jangamwadi Math Collection, Varanasi

Digitization by eGangotri and Sarayu Trust. Funding by MoE-IKS

किञ्चिदप्यस्तीत्यर्थः। **''तेन विना तृणमपि न चलति। तस्य भासा सर्वमिदं विभाति।''** (श्वे.उ. ६/१४) एवं सर्वाधिष्ठानभूतः परमात्मा सर्वमावृत्यापि निर्लिप्ततयैवाऽवतिष्ठते।

''न तदस्ति विना यत्स्यान्मया भूतं चराचरम्''

मया विना यच्चराचरं वस्तु विद्यते तदेव न कुत्राप्युलभ्यत इति **गीतायामपि** भगवानुपदिशति– **''सर्वं समाप्नोषि ततोऽस्ति सर्वः''** (११/४७) एवं सर्वरूपतया परिणतत्वादेव परमात्मनोऽखण्डलिङ्गाभिधानमन्वर्थतया शोभते।।११।।

महान् प्रभुर्वै पुरुषः सत्त्वस्यैष प्रवर्तकः।
सुनिर्मलामिमां शान्तिमीशानो ज्योतिरव्ययः।।१२।।

'महान् प्रभुरि'ति। **महान् प्रभुः** सकललोकानामप्यधिपतिः। वक्ष्यति च **''पतिं पतीनाम्''** इत्यादि। **एषः** परमशिवः **सत्त्वस्य प्रवर्तकः** सत्त्वगुणप्रति-

---

षड्विध 'भग' इस प्रकार हैं— (१) ऐश्वर्य, (२) धर्म, (३) यश, (४) सम्पत्ति, (५) ज्ञान और (६) वैराग्य। इन षड्विध समग्र 'भग' (गुणों) से सम्पन्न होने के कारण परमेश्वर का **'भगवान्'** नाम सार्थक है।]

'तस्मात् सर्वगतः शिवः'— इस कारण से परमशिव सदा सर्वत्र विराजमान हैं। उनके बिना कुछ भी नहीं है, किसी का अस्तित्व नहीं है। उसके बिना एक तिनका भी नहीं हिलता। **'तस्य भासा सर्वमिदं विभाति'** — परमात्मा के महाप्रकाश से ही जगत् को प्रकाशित करने वाले सूर्यचन्द्रादि भी प्रकाशित होते हैं (श्वे.उ., ६/१४)। इस प्रकार सभी का अधिष्ठानस्वरूप परमेश्वर सभी को वेष्टित करके भी निर्लिप्त रूप से ही रहता है।

''न तदस्ति विना यत् स्यान्मया भूतं चराचरम्' उस वस्तु का अस्तित्व ही नहीं है, जो मेरे बिना हो। समस्त चराचर वस्तु का अस्तित्व मेरे बिना उपलब्ध नहीं हो सकता। मैं सर्वत्र व्याप्त हूँ। इस प्रकार गीता भी उपदेश देती है— **'सर्वं समाप्नोषि ततोऽसि सर्वः''** (गीता, ११/४०) 'भगवन्! आप सबका उपसंहार भी करते हैं, अतः सर्वस्वरूप हैं।' इस प्रकार सर्वस्वरूप होने के कारण ही परमात्मा का अखण्ड 'लिङ्ग' अभिधान सार्थक है।

मन्त्रार्थः— परमेश्वर सब प्राणियों के शरीरों में उनके मुख, सिर, ग्रीवा आदि अवयव बनकर भी रहते हैं और उनकी हृदयगुफा में भी वास करते हैं। वे सर्वत्र व्याप्त और षडैश्वर्यसम्पन्न हैं। अतएव परमशिव सर्वत्र व्याप्त रहते हैं।।११।।

CC0. In Public Domain. Jangamwadi Math Collection, Varanasi

Digitization by eGangotri and Sarayu Trust. Funding by MoE-IKS

बन्धकभूतस्य तमस अपसरणेन सत्त्वगुणविकासकः। अथवा एष परमशिवः सत्त्वस्य सकलवस्तूनां कारणभूत उच्यते। **"किं कारणं ब्रह्म"** (१/१) इत्येव ह्यत्रारम्भः कृतः। तेन संहर्ता कालरुद्रस्त्रिमूर्त्यन्तर्गतः अमूर्तपरशिवस्य घोरं रूपमिति परिगण्यते। किन्तु सर्वमङ्गलकरस्य तस्याघोरं रूपं यद् वर्तते तदेव शिवपदेनोच्यते। एवमेव च संसारमोक्षस्थितिबन्धहेतुत्वात् **सः** परमशिव एव सर्वकारणभूतः साक्षादेव सत्त्वगुणप्रवर्तक इत्युच्यते।

अतो रुद्रे यत्तमोगुणप्राचुर्यं केषुचित् पुराणेषु कल्पितं तदसाध्विति स्पष्टमत्र प्रतिभाति। अमूर्तस्य परमशिवस्य यद् घोरं रूपं कालरुद्राह्वयं तत्रापि ज्ञानक्रियासमन्वयदृष्टेः सत्त्वात् तमसो लेशोऽपि न सम्बद्ध्यते। प्रलयाधिकारी कालरुद्रः यस्य जीवस्य देहावसानकालः सन्निहित इति पूर्वं ज्ञात्वैव तत्प्राणमानेतुं स्वीयं सेवकं यमं तत्र प्रेषयति। एवं सम्यग् विदित्वा कार्यं सदा जागरूकतया कारयन् कालरुद्रः कथं तामस उच्येत? अमूर्तपरशिवस्य अघोररूपे दिव्यमङ्गलविग्रहे

'महान् प्रभुर्वै पुरुषः' इत्यादि। **महान् प्रभुः** = वे समस्त लोकों के अधिपति, स्वामी हैं। जैसा कि आगे कहा गया है— **"पतिं पतीनाम्"**= वे पतियों, पालनकर्ताओं के भी अधिपति हैं।

"सत्वस्यैष प्रवर्तकः" — परमेश्वर बाधक तमोगुण (अज्ञान) का निवारण कर प्रकाशस्वरूप सत्वगुण प्रवर्तन करते हैं। अथवा ये परमशिव समस्त वस्तुओं की सत्ता (सत्व) का कारण है। क्योंकि इस उपनिषद् का श्रीगणेश ही **'किं कारणं ब्रह्म'** (१/१) इस ब्रह्म- जिज्ञासा के साथ किया गया है। संसारकर्ता 'कालरुद्र' ब्रह्मा-विष्णु-महेश की त्रिमूर्ति के अन्तर्गत निराकार अमूर्त परशिव के घोर रूप में परिगणित हैं। किन्तु सर्वमङ्गलकारी परमेश्वर का जो अघोर रूप है, वह 'शिव' पद से सम्बोधित है और इसीप्रकार संसार की मुक्ति, स्थिति और बन्धन का कारण होने से परमशिव ही साक्षात् सत्वगुणप्रवर्तक कहे जाते हैं।

अतः कतिपय पुराणों में रुद्र में जो तमोगुण की प्रचुरता की कल्पना की गयी है, वह यहाँ पर स्पष्टरूप से समीचीन (साधु) नहीं प्रतीत होती। अमूर्त परशिव का 'कालरुद्र' नामक जो घोर स्वरूप है, वहाँ भी ज्ञान और क्रिया का समन्वय है, वहाँ 'तमस्' का लेशमात्र भी सम्बन्ध नहीं है। प्रलय के लिये अधिकृत प्रभु 'कालरुद्र' जिस जीव का प्राणत्यागसमय निकट आता है, उस समय पूर्व से ही उसका अन्तकाल समझकर उसके प्राणापहरण के लिये वे अपने सेवक यम को वहाँ भेजता है। इस प्रकार समीचीन रूप से

CC0. In Public Domain. Jangamwadi Math Collection, Varanasi

Digitization by eGangotri and Sarayu Trust. Funding by MoE-IKS

शिवे तावत् सत्त्वप्रवर्तकत्वश्रवणात् तमसः प्रसक्तिरेव नास्ति। कालरुद्रः प्रलयाधिकारनिर्वाहात् तामसप्रकृतिक इति मूढाः भ्रान्त्या वदन्ति। तमेव मूर्तशिवमिति मन्यमाना अविवेकिनो दिव्यमूर्तरूपे कैलासवासिनि शिवेऽपि तामसप्रकृतिकत्वमारोपयन्ति। तच्च भ्रान्तिमूलमिति **"सत्त्वस्यैष प्रवर्तकः"** इति श्रुतिवाक्येन स्पष्टं ज्ञायते।

एवं चैतादृशगुणप्रवर्तकत्वेन किमुक्तं भवतीत्यत्रोच्यते— **'सुनिर्मलामि'**त्यादि। **सुनिर्मलां** सकलदोषविनिर्मुक्ता**मिमां** ब्रह्मविद्भिः ब्रह्मज्ञानिभिरनुभूयमानां शान्तिं प्रति **ईशानः** प्रेरयिता। एवं च सत्त्वगुणवृद्ध्या शाश्वतशान्तिः फलं लभ्यते। तथा च शिव एव मोक्षप्रदातेत्यर्थः। **अव्ययो** नाशरहितः। शाश्वतं **ज्योतिः** प्रकाशरूपं परंज्योतिरिति यावत्।

अयं स्वप्रकाशरूप अमूर्तः परमशिवः अस्मदुपासनेन प्रसन्नो भूत्वा शिवात्मकेन दिव्यरूपेण अस्मान् दर्शनपूर्वकमनुगृह्य शिवयोगिभिरनुभूयमानां देहेन्द्रियप्रवर्तमानशिवलीलावैभवसाक्षात्कारजन्यां परमां शान्तिं सदयं वितरत्विति प्रार्थ्यते॥१२॥

सदा जागरुक होकर कार्यसम्पादित कराने वाले कालरुद्र को किस प्रकार 'तामस' कहा जा सकता है। अमूर्त परशिव की अघोर मूर्ति में दिव्यमंगल शरीरसम्पन्न सत्वप्रवर्तकता प्रसिद्ध होने के कारण तमोगुण का स्पर्श भी नहीं है। जो मोहग्रस्त अज्ञानी होते हैं वे भ्रमवश यह कहते हैं कि यतः 'कालरुद्र' प्रलयाधिकारी हैं।, वे उस अधिकार का निर्वहन कराते हैं, अतः तामस प्रकृति के हैं। जो विवेकशून्य होते हैं, वे उसे ही शिव का मूर्तरूप समझकर दिव्यमूर्ति कैलासवासी शिव पर भी तामसप्रकृति होने का आरोप लगाते हैं। यह विचार भ्रान्तिमूलक है, यह स्पष्टरूप से **'सत्वस्यैण प्रवर्तकः'** इस मन्त्रभाग द्वारा ही ज्ञात होता है।

इस प्रकार शिव की सत्वगुणप्रवर्तकता का प्रतिपादन करने से क्या निष्कर्ष निकलता है? इस जिज्ञासा का समाधान है—

"सुनिर्मलामिमां शान्तिम् ईशानो ज्योतिरव्ययः' वह परमशिव ब्रह्मज्ञानियों द्वारा अनुभवैकवेद्य, अत्यन्त निर्मल, सम्पूर्ण विकारों से मुक्त और शान्ति का प्रेरक होता है। इस प्रकार सत्वगुणवृद्धि की फलश्रुति शान्तिप्राप्ति है। शिव ही मोक्ष प्रदाता है। यह इसका तात्पर्य है। **'अव्ययः'** = वे अविनाशी हैं। **ज्योतिः** = वे परमज्योतिःपुञ्जस्वरूप हैं। वे स्वप्रकाशस्वरूप अमूर्त परम शिव हमारी उपासना से प्रसन्न होकर शिवस्वरूप दिव्य मंगल मूर्ति का दर्शन देकर हमें अनुगृहीत करें और शिवयोगियों द्वारा अनुभूत देह और

CC0. In Public Domain. Jangamwadi Math Collection, Varanasi

Digitization by eGangotri and Sarayu Trust. Funding by MoE-IKS

एवं परमात्मस्वरूपमुपवर्ण्य तदीयज्ञानादेव मुक्तिरित्याह—

अङ्गुष्ठमात्रः पुरुषोऽन्तरात्मा
सदा जनानां हृदये सन्निविष्टः।
हृदा मनीषा मनसाऽभिक्लृप्तः
य एतद् विदुरमृतास्ते भवन्ति।।१३।।

'अङ्गुष्ठमात्र' इति। सर्वज्ञः सर्वव्यापकोऽपि उपासकानामनुग्रहाय तदीतहृदयगुहायां प्रविष्टत्वात् तदुपाधिकतया परमेश्वरः अङ्गुष्ठमात्रोऽङ्गुष्ठपरिमित इत्युच्यते। **''हृद्यपेक्षया तु मनुष्याधिकारत्वात्''** इत्युक्तम्। तादृशः **पुरुषोऽन्तरात्मा** सर्वान्तर्यामी सन् **सदा जनानां** प्राणिनां **हृदये** हृदयगुहायां दहराकाशे **सन्निविष्टो**ऽवतिष्ठते। अयं च प्राणज्योतिरूपो महालिङ्गाख्यः परमात्मा **(हृदा) मनीषा** निर्मलया स्वच्छया बुद्ध्या **मनसा** अन्तःकरणेन च **अभिक्लृप्तः** सम्यक् ज्ञातुमर्हः सम्पद्यते। **''मनसा तु विशुद्धेन ग्राह्यः''** इत्यन्यत्र श्रूयते।

इन्द्रियों के माध्यम से परम शिव के लीलावैभव के साक्षात्कार से उत्पन्न, मात्र उन्हीं से अनुभवगम्य परमशान्ति को दयापूर्वक प्रदान करें इस प्रकार की प्रार्थना उत्तरार्द्ध से अभिव्यक्त हो रही है।

मन्त्रार्थ— परम शिव सम्पूर्ण लोकों के अधिपति, तमोगुण के निवारक, सत्वगुण के प्रवर्तक और महाप्रकाशस्वरूप हैं। वे अत्यन्त निर्मल परमशान्ति के प्रेरयिता, तेजःपुञ्जस्वरूप और अविनाशी हैं। वे हमें मुक्ति दें।।१२।।

अवतरण— इस प्रकार परमात्मा के स्वरूप का वर्णन कर श्रुति यह प्रतिपादित कर रही है कि उसके साक्षात्कार से मुक्ति मिलती है—

'अङ्गुष्ठमात्रः'— सर्वज्ञ और सर्वव्यापक होने पर भी उपासक शिवभक्तों पर अनुग्रह करने के लिये उनकी हृदयगुफा में प्रविष्ट होने के कारण उनकी उपाधि से युक्त परमेश्वर को 'अङ्गुष्ठमात्र' कहा जाता है। जैसा कि प्रमाणवचन है— **'हृद्यपेक्षया तु मनुष्याधिकारत्वात्'**; जब मनुष्ययोनि में परमात्मा अपने को जब अधिकृत करता है, तब उसका हृदय अङ्गुष्ठप्रमाण रहता है, अतः परमेश्वर भी अङ्गुष्ठप्रमाण बन जाता है।

''अङ्गुष्ठमात्रः पुरुषोऽन्तरात्मा''— इस प्रकार अंगूठे के बराबर का पुरुष सभी के भीतर अन्तर्यामी बनकर बैठता है। [इसीलिये उसे **'पुरुष'** कहते हैं। जैसा कि शांकरभाष्य है— **'पूर्णत्वात् पुरि शयनाद् वा।'** विष्णुसहस्रनामस्तोत्र में शंकरभगवद्पाद इसका भाष्य इस प्रकार करते हैं— पुरं शरीरम्, तस्मिन् शेते (इति) पुरुषः।

CC0. In Public Domain. Jangamwadi Math Collection, Varanasi

Digitization by eGangotri and Sarayu Trust. Funding by MoE-IKS

एतन्महालिङ्गाख्यं परमप्रकाशं **ये सुकृतिनो विदुः** साक्षात्कुर्वन्ति **ते अमृता** मृत्युपाशनिर्मुक्ता नित्यसुखिनो नित्यतृप्ताश्च **भवन्ति**।।१३।।

परमात्मान अङ्गुष्ठमात्रत्वे कथिते तेन तस्य परिमितत्वभ्रान्त्याः व्यावृत्त्यर्थं आकाशवत् सर्वाधारत्वात् तस्य व्यापकत्वमाह—

सहस्रशीर्षा पुरुषः सहस्राक्षः सहस्रपात्।
स भूमिं विश्वतो वृत्त्वाऽत्यतिष्ठद् दशाङ्गुलम्।।१४।।

''नवद्वारं पुरं पुण्यमेतैर्भावैः समन्वितम्।
प्राप्य शेते महात्मा यस्तस्मात् पुरुष उच्यते।।''

(महा.भा.शां.प., २१०-३०)

उसी स्तोत्र में अन्यत्र वे इसका निर्वचन इस प्रकार करते हैं— **'सर्वस्मात् पुरा सदनात् सर्वपापस्य सादनात् वा पुरुषः।'** प्राणिमात्र का शरीर **'नवद्वार ब्रह्मपुर'** अर्थात् परमशिवस्वरूप परब्रह्म का नगर नौ दरवाजों वाला है, जिसके नौ दरवाजे इस प्रकार हैं— दो नेत्र, दो कान, दो नासापुर, एक मुख, एक गुदा और एक उपस्थ (योनि अथवा लिङ्ग)। यतः उस पुण्यमय परम पवित्रभावों से युक्त नगर में वह महान् परमात्मा सुप्तावस्था में वास करता है और उसका अंश जीवात्मा देह, इन्द्रिय आदि अभिमान के कारण स्वस्वरूप को भूल जाता है, अतः 'पुरुष' कहलाता है। सर्वप्रथम स्थिति और समस्त पापों का निरसनकर्तृत्व के कारण भी 'पुरुष' कहलाता है। उसमें किसी प्रकार की न्यूनता नहीं है, अतः वह अखण्ड 'पूर्ण पुरुष' है।]

'सदा जनानां हृदये सन्निविष्टः'— वह सभी प्राणियों की हृदयगुफा अथवा दहराकाश में अन्तःप्रविष्ट है। **'हृदा मनीषा'** इत्यादि। उस प्राणज्योतिर्मय महालिङ्ग नामक परमात्मा का साक्षात्कार निर्मल-मलरहित स्वच्छ बुद्धि और अन्तःकरण से अच्छी तरह सम्भव है। जैसा कि अन्य प्रमाणवचन हैं— **''मनसा तु विशुद्धेन ग्राह्यः''**, उस परमात्मा को विशुद्ध अन्तःकरण से प्राप्त किया जा सकता है। इस महाप्रकाशस्वरूप 'महालिङ्ग' नामक परम शिव को जो पुण्यात्मा जानते हैं, वे अमर अर्थात् मृत्युपाश के बन्धन से मुक्त शाश्वतसुखसम्पन्न और नित्य तृप्त रहते हैं।

मन्त्रार्थ— वह परमेश्वर अङ्गुष्ठप्रमाण 'पुरुष' है, जो देहधारी मनुष्य की हृदयगुफा में अङ्गुष्ठप्रमाण बनकर रहता है। वह सदा प्राणियों के दहराकाश में विराजमान है। जो पुण्यात्मा अपनी शुद्ध बुद्धि और निर्मल अन्तःकरण से उसे जानते हैं, वे अमर होते हैं।।१३।।

अवतरण— 'अङ्गुष्ठमात्रः पुरुषः' इत्यादि पूर्व मन्त्र में परम-पुरुष परमेश्वर की केवल अङ्गुष्ठप्रमाण कहने के कारण जो भ्रान्ति होती है, उस भ्रान्ति का निवारण करने

CC0. In Public Domain. Jangamwadi Math Collection, Varanasi

Digitization by eGangotri and Sarayu Trust. Funding by MoE-IKS

'सहस्रशीर्षा' इति। **'विश्वतश्चक्षुः'** इत्यादिमन्त्रोक्तरीत्या सहस्रशीर्षत्वादिकं परमात्मनोऽखण्डलिङ्गरूपस्य सर्वव्यापकस्वरूपसूचकमिति द्रष्टव्यम्। **स** एतादृशः **पुरुषः भूमिं** निखिलं जगत् **अति** अतीत्य **विश्वतः** सर्वास्वपि दिक्षु **वृत्त्वा** आवृत्य स्थित्वा **दशाङ्गुलं** नाभेरुपरि दशाङ्गुलपरिमितं यत् हृदयं **तदत्यतिष्ठत्।** सर्वव्यापकोऽपि सन् प्रभुः हृदयप्रदेशे अङ्गुष्ठमात्र उपासकानुग्रहाय निवसति।

"समस्तजगदात्मापि शङ्करः परमेश्वरः।
भक्तस्य हृदयाम्भोजे विशेषेण विराजते।।" (१०/७१)

के लिये उसकी व्यापकता अग्रिम मंत्र में प्रतिपादित है, क्योंकि वह आकाश के समान सबका आधार है—

'सहस्रशीर्षा पुरुषः'[१] इत्यादि। **'विश्वतश्चक्षुरुत विश्वतोमुखः'** (३/३), **'सर्वाननशिरोग्रीवः'** (३/११) इत्यादि मन्त्रों में वर्णित रीति से इस मन्त्र में उस परमेश्वर का सहस्रशीर्ष आदि में वर्णन उस अखण्ड महालिङ्ग के सर्वव्यापक स्वरूप का सूचक है यह समझना चाहिये।

[पूर्वार्द्ध का आशय इस प्रकार है— (मानवयोनि में प्रविष्ट वह परमपुरुष अङ्गुष्ठप्रमाण होने पर भी) सहस्र अर्थात् अगणित मस्तकों, अगणित नेत्रों और अगणित चरणों से सम्पन्न हैं। क्योंकि विश्व के सभी प्राणियों के मस्तक, नेत्र, चरण आदि सभी अवयव उसके अवयव हैं।]

सः = इस प्रकार का वह परमपुरुष, **भूमिम् अति** = समस्त जगत् का अतिक्रमण कर, **विश्वतः वृत्वा** = समस्त दिशाओं को घेरते हुए, **दशाङ्गुलम्** = नाभि के ऊपर अवस्थित दस अंगुल के हृदय प्रदेश में, **अत्यतिष्ठत्** = (अंगूठे के आकार का सूक्ष्म शरीर धारण कर) अवस्थित है। सर्वव्यापक सर्वसमर्थ सबका स्वामी होने पर भी परमशिव उपासक भक्त पर अनुग्रह करने के लिये हृदयप्रदेश में अङ्गुष्ठमात्र बनकर विराजमान हैं।

"समस्तजगदात्माऽपि शङ्करः परमेश्वरः।
भक्तस्य हृदयाम्भोजे विशेषेण विराजते।।"

---

१. इस का हिन्दी पद्यानुवाद इस प्रकार है—
'है असंख्य शिर नेत्र पादयुत आदिपुरुष का दिव्य सुवेष।
सकल भूमि व्यापित कर ऊपर दस अङ्गुल वह रहता शेष।।'
—वेदमूर्ति श्री मङ्गलेश्वर ढुण्ढिराज बादल।

CC0. In Public Domain. Jangamwadi Math Collection, Varanasi

Digitization by eGangotri and Sarayu Trust. Funding by MoE-IKS

इति **सिद्धान्तशिखामणौ** भक्तहृदये परमात्मन अवस्थानं निर्दिष्टम्। एवं सर्वेषामन्तस्थः परमेश्वरः निर्मलमानसैरेव साधकैरनुभूयते॥१४॥

एवं तस्य सर्वव्यापकत्वात् सर्वात्मकत्वमप्याह। **गीतायां** हि **''सर्वं समाप्नोषि ततोऽसि सर्वः''** (११/४०) इति सर्वव्यापकत्वात् परमात्मनः सर्वरूपत्वमुच्यते। तदपि परमेश्वरस्यैव वचनम्। आप्तवाक्यं तदेव प्रमाणयन्नत्राप्याह—

इस प्रकार **'सिद्धान्तशिखामणि'** (१०/७१) में भक्त के हृदयकमल में परमात्मा की प्रतिष्ठा का निर्देश है।

[इस कारिका का आशय इस प्रकार है— सर्व प्राणियों को सुख प्रदान करने वाला परमशिव भावाभावस्वरूप समस्त जगत् की अन्तरात्मा होने पर भी शिवभक्तों के हृदयकमल में विशेष रूप से विराजता है।]

इस प्रकार केवल निर्मल अन्तःकरण के साधक ही सभी प्राणियों के अन्तस्तल में विराजमान परमशिव का साक्षात्कार करते हैं।

[वह परमपुरुष 'अङ्गुष्ठमात्र' होने पर भी सर्वव्यापक अनादि-अनन्त है इसी का प्रतिपादन **'पुरुषसूक्त'** में है। इस मंत्र से ही सोलह ऋचाओं के 'पुरुषसूक्त' का अवतरण है। **'सायणभाष्य'** के अनुसार समस्त प्राणियों को समष्टिरूप में ब्रह्माण्ड का शरीर धारण करने वाला वह विराट् पुरुष अनन्तशीर्ष, अनन्तनेत्र और अनन्त चरणों से सुशोभित है। वह ब्रह्माण्डगोलक के आकार के भूमण्डल को चारों ओर से घेरकर दशाङ्गुलपरिमित स्थान में अर्थात् ब्रह्माण्ड के बाहर भी जो प्रदेश है, उसे घेर कर विराजता है।

'खद्योत'कार भास्कररायभारतीदीक्षित इस मंत्र के पूर्वार्द्ध की व्याख्या इस प्रकार करते हैं—

सहस्रशीर्षा पुरुष इत्येकं नाम ते स्फुटम्।
सहस्रनेत्रचरणः सहस्राक्षः सहस्रपात्॥५८७॥]

मन्त्रार्थ— समस्त प्राणियों की समष्टि के रूप में विद्यमान परमशिव अनन्त मस्तक, अनन्त नेत्र और अनन्त चरणों में सम्पन्न है। वह वर्तुलाकार ब्रह्माण्डमण्डल को घेरकर प्राणिमात्र के नाभिकमल के ऊपर अवस्थित दश अङ्गुल के हृदयप्रदेश में अंगूठे के बराबर सूक्ष्मशरीर धारण कर विराज रहा है॥१४॥

अवतरण— इस प्रकार परमपुरुष सर्वव्यापक होने के कारण उसकी सर्वात्मकता का भी प्रतिपादन किया गया है। क्योंकि गीता में **'सर्वं समाप्नोषि ततोऽसि सर्वः'** (११/४०) इस प्रकार सर्वव्यापक होने के कारण उसका सर्वस्वरूप धारण करना भी

CC0. In Public Domain. Jangamwadi Math Collection, Varanasi

Digitization by eGangotri and Sarayu Trust. Funding by MoE-IKS

पुरुष एवेदं सर्वं यद् भूतं यच्च भव्यम्।
उतामृतत्वस्येशानो यदन्नेनातिरोहति।।१५।।

'पुरुष एवेदमि'ति। **यत् भूत**मतीतम्, **यच्च भव्यं** भविष्यत्। पूर्वापर-कालयोर्ग्रहणाद् वर्तमानस्यापि स्वतो ग्रहणम्। एवं त्रिकालवर्ति वस्तु यत् सर्वात्मकमखण्डलिङ्गं विराजते **इदं सर्वं पुरुष एव। 'सर्वं खल्विदं ब्रह्म'** इतिवत् लिङ्गजगतोरभेदेन निर्देशः।

एतादृश अभेदः **शिवगीताया**मपि शिवेन दण्डकारण्ये सीतावियोगदुःखिने रामायाप्युपदिष्टः—

"विश्वं भूतं च भुवनं विचित्रं बहुधा तथा।
जातं च जायमानं यत् तत् सर्वं रुद्र उच्यते।।"

इति पञ्चदशाध्याये।

प्रतिपादित है। यह परमेश्वर का ही वाक्य है। उसी आप्तवाक्य को प्रमाणित करते हुए अग्रिम वर्णन है— **'पुरुष एवेदम्'**[१] इत्यादि।

'यद् भूतं यच्च भव्यम्' जो बीता हुआ है और जो आगे आने वाला है, पूर्ववर्ती और पश्चात्वर्ती भूत और भविष्य दोनों कालों का ग्रहण करने के कारण उसके अन्तर्गत स्वतः मध्यवर्ती वर्तमानकाल व्यञ्जित है। इस प्रकार तीनों कालों में जो वस्तु सर्वात्मक अखण्ड लिङ्ग विराजता है, **'इदं सर्वं पुरुष एव'** वह सब पुरुष ही है।

[**शाङ्करभाष्य** और **सायणभाष्य** के अनुसार **'यदिदं सर्वम्'** का वाच्य अर्थ होगा 'जो वर्तमान जगत् दृष्टिगोचर होता है।' ऐसी स्थिति में व्यञ्जना की आवश्यकता ही नहीं है।] जिस प्रकार **'सर्वं खल्विदं ब्रह्म'** इस महावाक्य में परशिवब्रह्म और जगत् का अभेद प्रदर्शित किया गया है, उसी प्रकार इस मन्त्र में भी महालिङ्गस्वरूप परमपुरुष का और जगत् का अभिन्न रूप से निर्देश किया गया है।

दण्डकारण्य में जब श्रीराम सीता के वियोग से दुःखी रहते हैं, तब भगवान् शिव न उन्हें इसी प्रकार का उपदेश शिवगीता के पन्द्रहवें अध्याय में दिया है—

"विश्वं भूतं च" इत्यादि। वर्तमान, भूत और भविष्य तीनों कालों में अनेक प्रकार का चित्र-विचित्र जो विश्वप्रपञ्च दृष्टिगोचर होता है, वह सब 'रुद्र' कहलाता है।

---

१. **'वर्तमान आगामि सहित सब वही पुरुष है अतीतकाल।**
अन्नोत्पन्न प्राणियों सह वह प्रभू मुक्ति का भी जगपाल।।'

वे. मू. श्रीमंगलेश्वर ढुं. बादल

CC0. In Public Domain. Jangamwadi Math Collection, Varanasi

Digitization by eGangotri and Sarayu Trust. Funding by MoE-IKS

तत्र रुद्राह्वयस्य सर्वशिवङ्करस्य लिङ्गस्य तत्परिणामभूतस्य जगतश्चैक-रूपत्वमुपवर्णितम्। व्यवहारकाले जगद्ब्रह्मणोः शरीरशरीरिभावः तन्मूलक-सामानाधिकरण्यनिर्देशश्च सुविशदं निरूपित एव **शक्तिविशिष्टाद्वैतदर्शने** जगत्स्वरूपविवेचनावसरे।

"तरङ्गादिर्यथा सिन्धोः स्वरूपान्नाऽतिरिच्यते।
तथा शिवात् पराकाशाद् विश्वमेतन्न भिद्यते।।

"यथा पुष्पपलाशादिर्वृक्षरूपान्न भिद्यते।
तथा शिवात् पराकाशाज्जगतो नास्ति भिन्नता।।"

(सि.शि.म.१९/७२-७३)

वहाँ 'रुद्र' नामक समस्तविश्व के कल्याणकारी महालिङ्ग और उसके परिणामस्वरूप रूपान्तरित जगत् का अभेद प्रदर्शित है। **'शक्तिविशिष्टाद्वैतदर्शन'** ग्रन्थ में जगत् के स्वरूपविवेचन के अवसर पर व्यवहार के समय जगत् और परब्रह्म दोनों में जो शरीरशरीरिभाव और तन्मूलक सामानाधिकरण्य रहता है इसका विशद निरूपण है।

[**सायणभाष्य** के अनुसार वर्तमान-भूत-भविष्य त्रैकालिक कल्पों में विराजमान प्राणियों के जो शरीर हैं, वे विराट्पुरुष के ही अवयव हैं— **'यथाऽस्मिन् कल्पे वर्तमानाः प्राणिदेहाः सर्वेऽपि विराट्पुरुषस्याऽवयवाः, तथैवाऽतीतागामिनोरपि कल्पयोर्द्रष्टव्यमित्यभिप्रायः।"** (द्र. पुरुषसूक्त मं. २)]

"तरङ्गादिर्यथा[1] सिन्धोः स्वरूपान्नातिरिच्यते।
तथा शिवात् पराकाशाद्[2] विश्वमेतन्न भिद्यते।।"

(सि.शि.म., १९/७२)

[जिस प्रकार समुद्र की तरङ्गें उसके स्वरूप से पृथक् नहीं होती, उसी प्रकार पराकाश (चिदाकाश) स्वरूप शिवाय से यह विश्वप्रपंच भिन्न नहीं है।]

"यथा पुष्प[3]पलाशादिर्वृक्षरूपान्न भिद्यते।
तथा शिवात् पराकाशाज्जगतो नास्ति भिन्नता।।"

(सि.शि.म., १९/७३)

[जिस प्रकार वृक्ष के स्वरूप से उसमें रहने वाले फूल-पत्ते आदि अलग नहीं होते, उसी प्रकार पराकाशस्वरूप शिव से स्थावर-जंगम जगत् की भिन्नता नहीं है।]

---

१. तरङ्गादि यथा — पाठान्तरम्।
२. चिदाकाशात् — पाठान्तरम्।
३. पलाशादि वृक्ष — पाठान्तरम्।

CC0. In Public Domain. Jangamwadi Math Collection, Varanasi

Digitization by eGangotri and Sarayu Trust. Funding by MoE-IKS

"आत्मशक्तिविकासेन शिवो विश्वात्मना स्थितः।
कुटीभावाद् यथा भाति पटः स्वस्य प्रसारणात्।।"

(सि.शि.म.१०/६६)

एवं महाकाशस्थले शिवजगन्मयस्थले च रेणुकाचार्याः शिवजगतोर्वास्तवमभेदं प्रतिपादयन्ति। एवमेवाष्टमूर्तिनिरसनस्थले—

"शरीरभूतादेतस्मात् प्रपञ्चात् परमेष्ठिनः।
आत्मभूतस्य देवस्य नाभेदो न पृथक् स्थितिः।।
अचेतनत्वात् पृथ्व्यादेरज्ञत्वादात्मनस्तथा।
सर्वज्ञस्य महेशस्य नैकरूपत्वमिष्यते।।"

(सि.शि.म.१०/५२-५३)

"आत्मशक्तिविकासेन शिवो विश्वात्मना स्थितः।
कुटी भावाद् यथा भोति पटः स्वस्य प्रतारणात्।।"

(सि.शि.म., १०/६६)

[जिस प्रकार पट अपने को फैलाकर कुटी के रूप में सुशोभित होता है, उसी प्रकार अपने से अभिन्न चित्शक्ति के विकास से परमशिव विश्व के रूप में प्रतिष्ठित है।]

इस प्रकार श्रीरेणुकाचार्य महाकाशस्थल और शिवजगन्मयस्थल में शिव और जगत् का वास्तविक अभेद प्रतिपादित करते हैं।

"शरीरभूतादेतस्मात् प्रपञ्चात् परमेष्ठितः।
आत्मभूतस्य देवस्य नाभेदो न पृथक् स्थितिः।।"

(सि.शि.म., १०/५२)

इस प्रकार **रेणुकगीता** के अष्टमूर्तिनिरसनस्थल में परमशिव और प्रपञ्च का भेदाभेद वर्णित है।

[इसका आशय इस प्रकार है— सारा का सारा प्रपञ्च परमशिव का शरीर है और परमशिव उनकी आत्मा है। परमेश्वर के शरीरस्वरूप प्रपञ्च से आत्मस्वरूप परमशिव का न तो अभेद है और न भेद।]

"अचेतनत्वात् पृथ्व्यादेरज्ञत्वादात्मनस्तथा।
सर्वज्ञस्य महेशस्य नैकरूपत्वमिष्यते।।"

(सि.शि.म., १०/५३)

इस कारिका में यह प्रतिपादित किया गया है कि यतः पृथ्वी आदि पञ्चमहाभूत जड हैं, जीवात्मा चेतन होने पर भी अल्पज्ञ है और परमैश्वर्यसम्पन्न चैतन्यस्वरूप परम शिव सर्वज्ञ है, अतः तीनों में एकरूपता विवक्षित नहीं है।

CC0. In Public Domain. Jangamwadi Math Collection, Varanasi

Digitization by eGangotri and Sarayu Trust. Funding by MoE-IKS

इति शरीरभूतात् प्रपञ्चात् चेतनरूपस्य परमेश्वरस्य न सर्वथा अभेदः सम्भवति ; तथैव पूर्णभेदोऽपि न युज्यत इति जगद्ब्रह्मणोर्भेदाभेदं ते पूज्यचरणा निरूपयन्ति। यतो जगद्ब्रह्मणोर्न सर्वथा भेदः न च सर्वथा अभेदः वक्तुं शक्यते। अतः श्रुतौ शरीरशरीरिभावेन **'पुरुष एवेदं सर्वम्'** इति निर्देशः कृतः।

उत अपि च अमृतत्वस्य मुक्तेरपि य **एवेशानो** नियामकः। **यत्** यः **अन्नेना**न्नवद्भोग्येन वस्तुना **अतिरोहत्यति**क्रम्य गच्छति। लोके विद्यमानसर्वभोग्य-वस्त्वपेक्षयापि आनन्दमयः स एव सर्वेषां विश्रान्तिस्थलम्। अतस्तस्यानुभवात् परमं सुखं नोपलभ्यत एव।

''शिव एव जगत् सर्वं शिव एवाऽहमित्यपि।
भावयन् परमो योगी नित्यानन्दं समश्नुते।।''

(सि.शि.म.१९/८४)

इस प्रकार शरीरस्वरूप जड़ प्रपञ्च से चेतनस्वरूप परमेश्वर का सर्वथा अभेद सम्भव नहीं हे। उसी प्रकार पूर्वभेद भी युक्तियुक्त नहीं हे। इस रीति से पूज्यपाद **रेणुकाचार्य** जगत् और ब्रह्म दोनों के भेदाभेद का प्रतिपादन करते हैं। यतः जगत् और परब्रह्म दोनों में न तो सर्वथा अभेदनिरूपण किया जा सकता है और न सर्वथा भेदनिरूपण, अतः इस मन्त्र में शरीरशरीरिभाव से **'पुरुष एवेदं सर्वम्'** इस प्रकार का निर्देश किया गया है।

'उतामृतत्वस्येशानः' वह परमशिव 'अमृतत्व' अर्थात् मुक्ति का भी नियामक है।

'यदन्नेनाऽतिरोहति' — जो अमृतत्व अन्न जैसे भोग्य वस्तु से दूर चला जाता है। यतः लोक में विद्यमान सभी भोग्य वस्तुओं की अपेक्षा आनन्दस्वरूप परमशिव ही सभी प्राणियों का विश्रामस्थल है, अतः भौतिक क्षणिक सुखोपभोग्य सामग्री से चरम सुख की प्राप्ति नहीं हो सकती।

''शिव एव जगत् सर्वं शिव एवाऽहमित्यपि।
भावयन् परमो योगी नित्यानन्दं समश्नुते।।''

(सि.शि.म., १९/८४)

[इस प्रकार जगत् शिवस्वरूप ही है और उसमें अवस्थित मैं भी शिवस्वरूप ही हूँ' इस प्रकार भावना करने वाला योगी नित्यानन्द का अनुभव करता है। **'भवदोषैर्न बाध्यते'** इस प्रकार पाठभेद मानने पर चतुर्थ चरण का अर्थ होगा— इस प्रकार भावना करने वाला शिवयोगी सांसारिक विकारों से लिप्त नहीं रहता।]

इस मत के अनुसार शिवस्वरूप योगी समस्त जगत् को शिवस्वरूप देखते हुए संसार में रहकर भी 'पुष्करपलाश' न्याय से निर्लिप्त रहकर सर्वोत्कृष्ट सन्तोष (आह्लाद)

CC0. In Public Domain. Jangamwadi Math Collection, Varanasi

Digitization by eGangotri and Sarayu Trust. Funding by MoE-IKS

इति **सिद्धान्तशिखामणिर्वदति।** एतदनुसारेण शिवस्वरूपो योगी जगत् सर्वं शिवमयं पश्यन् संसारे वर्तमानोऽप्यलिप्ततद्दोषः परमोत्तमं सन्तोषमनुभवति। एवं परमात्मैव निरतिशयसुखास्पदत्वात् सर्वैरन्वेष्टव्य इत्यर्थः।।१५।।

का अनुभव करता है। इस प्रकार परमशिव ही निरतिशय आनन्दधाम होने के कारण उसी का अन्वेषण करना चाहिये यही इसका आशय है।

[**आचार्य सायण** भी जगत् को परमेश्वर का रूपान्तरण स्वीकार करते हैं, जो प्राणियों को कर्मफल भोगने के लिये वह स्वीकार करता है— **"उत अमृतत्वस्य देवत्वस्य (मोक्षस्य) अयमीशानः यद् यस्मात् कारणादन्नेन प्राणिनामन्नेन भोग्येन निमित्तेनाऽतिरोहति स्वकीयां कारणावस्थामतिक्रम्य जगदवस्थां प्राप्नोति। तस्मात् प्राणिनां कर्मफलभोगाय जगदवस्थास्वीकारान्नेदं तस्य वस्तुत्वमित्यर्थः।"** — पुरुषसूक्त मं-२, सायणभाष्य।

सायणाचार्य के मत में **'अन्न'** का अर्थ प्राणियों की उपभोग्य वस्तु है। आचार्य शंकर—

"तपसा चीयते ब्रह्म ततोऽन्नमभिजायते।" (मु.उ., १/१/८)

इस मंत्रव्याख्यान में 'अन्न' का अर्थ उपभोगयोग्य अव्यक्त प्रकृति करते हैं। वे कहते हैं— **'ततो ब्रह्मणः अन्नम्—अद्यते भुज्यते इत्यन्नम्, अव्याकृतं साधारणं संसारिणां व्याचिकीर्षितावस्थारूपेण जायते।'** जो विस्तारशील और विस्तृत है वह **'ब्रह्म'** है। उससे **'अन्न'** उत्पन्न होता है। यहाँ 'अन्न' का अर्थ है, प्राणियों के द्वारा जिसका उपभोग किया जाय वह वस्तु। जब जीवों का अव्याकृत कारण प्राणियों के कर्मफलोपभोग के लिये व्याकृत अवस्था को प्राप्त करता है, **'अन्न'** कहलाता है। **विज्ञानभगवान्** और **उपनिषद्-ब्रह्मयोगी** उसे **'माया'** कहते हैं, जिसके द्वारा शुद्ध ब्रह्म अपने वास्तविक स्वरूप को छोड़कर जगत् के रूप में परिणत होता है। आचार्य **शङ्कर** के मत में विराट् पुरुष (परम शिव) अपने शरीरस्वरूप उस समस्त प्रपञ्च और अमृतत्व का भी स्वामी है।

उमचिगि शङ्करशास्त्रीजी के मत में वह 'अन्न' त्रिगुणात्मिका प्रकृति है, जो ब्रह्म से उत्पन्न होती है— **"एवमुपाचितात् विमर्शशक्तिविशिष्टात् ब्रह्मणः ऊर्णनाभ्यादेस्तन्त्वादिकमिव स्वांशेनाऽविभूतिऽज्ञाने बन्धरूपे प्रतिस्फुटितात् अन्नम् 'अद्यते इत्यन्नम्' त्रिगुणात्मकं प्रधानाख्यमभिजायते, प्रादुर्भवति।"** — मु.उ.१.१.८ शांकरी व्याख्या)

मन्त्रार्थ— भूत-भविष्य और वर्तमान त्रैकालिक समस्त वस्तु जो अखण्ड लिङ्ग के रूप में विद्यमान है, विराट्पुरुष ही है। वही अमृतत्व का नियामक है। जो क्षणिक भोग्य वस्तु से आच्छादित होते हैं, वे उस चरम सुख को प्राप्त नहीं कर सकते। निर्विकार परम शिवयोगी ही उस शाश्वत सुख को प्राप्त कर सकता है। अतः मुक्ति के लिये अमृतत्व के स्वामी का ही अन्वेषण करना चाहिये।।१५।।

CC0. In Public Domain. Jangamwadi Math Collection, Varanasi

Digitization by eGangotri and Sarayu Trust. Funding by MoE-IKS

पुनरप्यमूर्तं शिवं वर्णयति—

सर्वतः पाणिपादं तत्
सर्वतोऽक्षिशिरोमुखम्।
सर्वतः श्रुतिमल्लोके
सर्वमावृत्य तिष्ठति।।१६।।

'सर्वत' इति। सर्वतः पाणयः पादाश्च यस्य तत् **सर्वतःपाणिपादम्।** अमूर्तं परशिवब्रह्म निखिलजगदाश्रयत्वात् लिङ्गमिति भाव्यते अनुभविभिः।

''लीयते गम्यते यत्र जगदेतच्चराचरम्।
तस्माल्लिङ्गमिति प्रोक्तं तल्लिङ्गं ब्रह्म केवलम्।।''

अवतरण— पुनश्च वेदमाता अमूर्त (निराकार) शिव का वर्णन कर रही है—

''सर्वतः पाणिपादं तत्'' इत्यादि— [**'सर्वतः पाणयः पादाश्च यस्य तत् सर्वतःपाणिपादम्'** इस समासविग्रह के समान ही **'सर्वतः अक्षीणि शिरांसि मुखानि यस्य तत् सर्वतोऽक्षिशिरोमुखम्', सर्वतः श्रुतिः अस्येति सर्वतः श्रुतिमत्'** इस प्रकार सभी पदों का समासविग्रह करना चाहिये।]

परशिवब्रह्म अमूर्त निराकार होने पर भी सम्पूर्ण जगत् का आश्रय होने के कारण अनुभवी ब्रह्मज्ञानी महात्मा 'लिङ्ग' के रूप में उसका साक्षात्कार करते हैं। जैसा कि **'सिद्धान्तशिखामणि'** ग्रन्थ में **'लीयते गम्यते यत्र'**[१] इत्यादि कारिका के अन्तर्गत परशिव ब्रह्म का अखण्ड लिङ्ग के रूप में निर्देश किया गया है। उसका आशय यह इस प्रकार है— क्योंकि जहाँ पर दृश्यमान समस्त चराचर जगत् विलीन होता है, अतः उसे लिङ्ग कहा जाता है। वह लिङ्गस्वरूप केवल परशिव ब्रह्म ही है। यह लिङ्ग अदृश्यरूप से

---

१. 'सिद्धान्तशिखामणि' के जंगमबाड़ी संस्करण में यह उपलब्ध नहीं है, उक्त दो कारिकाएँ उपलब्ध हैं—

''लयं गच्छति यत्रैव जगदेतच्चराचरम्।
पुनःपुनः समुत्पत्तिं तल्लिङ्गं ब्रह्म शाश्वतम्।।
तस्माल्लिङ्गमिति ख्यातं सत्तानन्दचिदात्मकम्।
बृहत्वाद् बृंहणत्वाच्च ब्रह्म शब्दाभिधेयकम्।।''

(सि. शि. म., ६/३७३-३८)

अन्यत्र यह पद्य उपलब्ध है—

''ब्रह्मविष्ण्वादयो देवाः सर्वे वेदादयस्तथा।।
लीयन्ते यत्र गम्यन्ते तल्लिङ्गं ब्रह्म केवलम्।।''

(सि. शि. म., १२/३३)

CC0. In Public Domain. Jangamwadi Math Collection, Varanasi

Digitization by eGangotri and Sarayu Trust. Funding by MoE-IKS

इति **सिद्धान्तशिखामणौ** परशिवब्रह्म अखण्डलिङ्गमिति निर्दिश्यते। इदं च लिङ्गमदृश्यतया सर्वत्र विराजत एव। सन् हृदयप्रकाश एवैतादृशं लिङ्गरूपं ब्रह्म। तस्य पाणयः पादाः अक्षीणि शिरांसि मुखानि च सर्वत्र विराजन्ते, किन्त्वस्माकं प्राकृतिकेन्द्रियगोचराणि न भवन्ति। एवं च लिङ्गादन्यत्र न किञ्चिदपि विद्यते यत्र कुत्रापि जगत्यस्मिन् तल्लिङ्गविलासमये परमपवित्रे॥१६॥

सर्वेन्द्रियगुणाभासं सर्वेन्द्रियविवर्जितम्।
सर्वस्य प्रभुमीशानं सर्वस्य शरणं बृहत्।।१७।।

सर्वेन्द्रियगुणाभासम् — सर्वाणि इन्द्रियाणि चक्षुरादीनि, तेषां गुणाः रूपरसादयः, तैः सह आसमन्ताद् भासमानमपि इन्द्रियाधीनगुणानुभवादीनां

सर्वत्र (सभी देशों और सभी कालों में) विराजित है। साथ ही वह लिङ्गस्वरूप परशिवब्रह्म हृदयकमल का प्रकाश ही है। उसके हाथ, पैर, सिर, मुख, नेत्र, श्रोत्र सर्वत्र हैं, किन्तु हमारे प्राकृतिक इन्द्रिय उन्हें ग्रहण नहीं कर सकते और इस प्रकार इस लोक अर्थात् परमलिङ्गमय शिव के लीलाविलासस्वरूप इस जगत् में वह परशिवब्रह्म सबको वेष्टित कर रहता है। उसके अतिरिक्त इस जगत् में किसी का भी अस्तित्व नहीं है।

[**श्रीमद्भगवद्गीता** (१३.१३) में भी यह पद्य उपलब्ध है। इसका अर्थ इस प्रकार है—

''सर्वत्र उसके पाणि पद, सिर नेत्र मुख सब ओर ही।
सब ओर उसके कान हैं सर्वत्र फैला है वही।।''

—श्रीकृष्णगीता १३/१३]

मन्त्रार्थ— उस निराकार परशिवब्रह्म के, जो लिङ्गरूप में सर्वत्र विद्यमान है और हृदयकमल में जिसका महाप्रकाश है, उसके हाथ, पैर, नेत्र, सिर, मस्तक, कान आदि अवयव सर्वत्र विद्यमान हैं। साथ ही वह शिवलीलामय जगत् में सबको व्याप्त कर प्रकाशित है। (उसे ब्रह्मज्ञानी ही देख सकते हैं, सर्व साधारण नहीं।)।।१६।।

सर्वेन्द्रियगुणाभासम्' इत्यादि। सभी इन्द्रियों में पञ्च ज्ञानेन्द्रियों— चक्षु, श्रोत्र, जिह्वा, नासिका और त्वगिन्द्रिय का ; पञ्च कर्मेन्द्रियों— वागिन्द्रिय, हाथ, पाद, पायु और उपस्थ का, अन्तःकरण, बुद्धि और मन का समावेश होता है। उनके गुणों के अन्तर्गत पञ्चज्ञानेन्द्रियों के रूप, शब्द, रस, गन्ध और स्पर्श पञ्चकर्मेन्द्रियों के वचन, आदान, विहरण, मलमूत्रविसर्जन कर्म तथा अन्तःकरण के ज्ञान और संकल्प गुण

CC0. In Public Domain. Jangamwadi Math Collection, Varanasi

Digitization by eGangotri and Sarayu Trust. Funding by MoE-IKS

सत्वेऽपि वस्तुतः **सर्वेन्द्रियविवर्जितं** तल्लिङ्गम्। **''अपाणिपादो जवनो ग्रहीता''** (३/१९) इत्यादिना श्रुतिरमूर्तं परशिवं वर्णयति। अत एव **सर्वस्यापि** जगतः **प्रभुं** नियमनादिसमर्थम्। **ईशानं** परमेश्वरं **सर्वस्याऽ**पि जगतो **बृहन्**मुख्यं **शरणं** रक्षकम्। अतः स एव सर्वरक्षकः परमकारुणिको महादेवः सर्वैः भक्त्या समाश्रयणीय इत्यर्थः॥१७॥

समाविष्ट हैं। इन गुणों से यद्यपि सर्वत्र परशिव प्रकाशित है, तथापि वह वस्तुतः सभी इन्द्रियों से मुक्त है, क्योंकि वह अमूर्त है, उसका कोई शरीर नहीं है। जैसा कि **'अपाणिपादो जवनो ग्रहीता'** (३/१९) इत्यादि मन्त्र में परशिव का अमूर्त वर्णन किया गया है।

[इस मन्त्र का पूर्वार्द्ध **भगवद्गीता** में यथावत् है। इसकी व्याख्या करते हुए **आचार्य शंकर** कहते हैं कि वस्तुतः परब्रह्म परमात्मा का न तो कोई शरीर होता है और न कोई ज्ञानेन्द्रिय और न कोई कर्मेन्द्रिय। अन्तःकरण से भी वह मुक्त है। उक्त इन्द्रिय-वृत्तियों का आभास होने कारण परमेश्वर पर उनका अध्यारोप किया जाता है। जैसा कि **बृहदारण्यक उपनिषद्** का वचन है— **''ध्यायतीव लेलायतीव''** (४/३/७) — वह मानो ध्यान करता है, वह मानो चेष्टा करता है। किन्तु **'अपाणिपादो जवनो ग्रहीता पश्यत्यचक्षुः स शृणोत्यकर्णः'** (श्वे.उ., ३/१९) इत्यादि मन्त्र में इन्द्रियरहित होने पर भी परब्रह्म परमात्मा की कर्मकारिता और रूपादिग्रहण का जो वर्णन है, वह उसकी सर्वशक्तिमत्ता का प्रदर्शन करने के लिये है, साक्षात् क्रियाशीलता को सूचित करने के लिये नहीं — द्रष्टव्य भगवद्गीता (१३/१४) — शांकरभाष्य और आनन्दगिरिकृत- टीका।]

सर्वस्य प्रभुमीशानम् — परमेश्वर परमशिव सबका प्रभु, समस्त जगत् का नियन्त्रण करने में समर्थ है। वह अखण्ड ब्रह्माण्डमण्डल का स्वामी है। **सर्वस्य शरणं बृहत्** — वह सभी का मुख्यरक्षक शरणदाता है। [आचार्य शंकर के मत में विशाल कारण है— **'सर्वस्य शरणं परायणं बृहत्कारणं च।'**]

परम शिव सभी की रक्षा करने वाले और परमदयालु हैं। अतः समस्त भक्त उस महादेव का ही श्रद्धा और भक्तिपूर्वक अवलम्बन करें यही इसका आशय है।

मन्त्रार्थ— परम शिव अमूर्त अर्थात् शरीर और इन्द्रियों से रहित होने पर भी सर्वशक्तिसम्पन्न होने के कारण उन इन्द्रियवृत्तियों से प्रकाशित है। वह सर्वसमर्थ, सबका स्वामी, सबका शरणदाता और समस्त जगत् का कारण है।।१७।।

CC0. In Public Domain. Jangamwadi Math Collection, Varanasi

Digitization by eGangotri and Sarayu Trust. Funding by MoE-IKS

नवद्वारे पुरे देही हंसो लेलायते बहिः।
वशी सर्वस्य लोकस्य स्थावरस्य चरस्य च।।१८।।

'नवद्वार' इति। **नवद्वारे** शिरसि नेत्रद्वयं, श्रोत्रद्वयं, नासापुटद्वयं, मुखं चेति सप्तद्वाराणि। अधः पायूपस्थे द्वे द्वारे। आहत्यस्मिन् शरीरे नव द्वाराणि सन्ति। तादृशेऽस्मिन् **पुरे** शरीरे **देही** देहं स्वीकृत्येन्द्रियैः सह व्यवहरन् जीवः परमात्मनश्चेतनांश यव। **'अहं स एवे'**ति निरन्तरानुसन्धानादयं जीवः **हंस** उच्यते। यदा सः शिवतादात्म्यमधिगच्छति तदा सः परमहंसो भविष्यति। अपि च संसारदशायां सः अन्तरनुसन्धानं परित्यज्य **बहिः** बहिर्मुखो विषयभोग एव **लेलायते** संसरन् वर्तते। एतस्यां स्थितौ सः सहजतया शिवाद् भिन्न एव वर्तते। परशिवात् सम्पूर्णं पराङ्मुखो जीवः मायाशक्तिपरिणामभूते देहे भोगमनुभवन् स्वीयां शिवांशरूपां वास्तवीं स्थितिं विस्मरति। वस्तुतस्तु **सः सर्वस्य लोकस्य वशी** स्वायत्तीकरणसमर्थ एव। **स्थावरस्य** जडवर्गस्य, **चरस्य** गमनशीलस्य चेतनवर्गस्य **च** वशीकरण-सामर्थ्यं यद्यपि तस्मिन् वस्तुतो वर्तते। किन्तु तादृशी शक्तिः बद्धावस्थायां

'नवद्वारे पुरे देही' — जीवात्मा चैतन्यस्वरूप परमात्मा का चेतनांश ही है। देह उस चैतन्यमय परब्रह्म का **'नवद्वार पुर'** (नौ दरवाजों वाला नगर) है। उस नवद्वार पुर सिर मे सात दरवाजे हैं— दो आँखें, दो कान, दो नासापुट और एक मुख। नीचे दो दरवाजे हैं पायु (गुदा) और उपस्थ (लिङ्ग अथवा योनि)। उस देहस्वरूप नवद्वारपुर में इन्द्रियों के साथ व्यवहार करने वाला परमात्मा का चैतन्यांशस्वरूप जीवात्मा 'देही' कहलाता है।

हंसो लेलायते बहिः— वह जीव **'अहं स एव'** (मैं वही परब्रह्म परमात्मा हूँ) इस प्रकार निरन्तर अनुसन्धान करता है अतः **'हंस'** कहलाता है। जब वह शिव के साथ तादात्म्य स्थापित करता है, तब भविष्य में **'परमहंस'** हो जाता है। किन्तु सांसारिक स्थिति में जब वह आन्तरिक अनुसन्धान छोड़ता है और बहिर्मुख होकर वैषयिक सुखलोलुप रहता है, तब वह **'देही'** कहलाता है। ऐसी स्थिति में वह सहजस्थिति में परम शिव से पृथक् ही रहता है। पर शिव से सम्पूर्ण रूप से विमुख देहाभिमानग्रस्त जीव मायाशक्ति के परिणाम से रूपान्तरित देह में वैषयिकसुखोपभोग करते हुए अपनी शिवांशस्वरूप वास्तविकता को विस्मृत करता है।

वशी सर्वस्य लोकस्य स्थावरस्य चरस्य च— वस्तुतः वह समस्त लोक को अपने वश में करने में समर्थ है ; **'स्थावर'** जड़वर्ग और **'चर'** जंगम (गमनशील)

CC0. In Public Domain. Jangamwadi Math Collection, Varanasi

Digitization by eGangotri and Sarayu Trust. Funding by MoE-IKS

सङ्कुचिता सती बुद्धावस्थायां विकसिता भवति। विकासस्थितौ जीवः स्वीयं वास्तवमभेदानन्दमनुभवितुं प्रभवति। एवं शिवांशस्य जीवस्य शिवात् कालभेदेनाऽवस्थाभेदेन च भेदाभेदौ व्यवस्थया अन्वितो। लौकिकविषयानुभवसमये शिवजीवयोर्भेदो व्यवस्थितः सहजतया। महाविषये परशिवे यदा समरसं विलीयते जीवस्तदा तस्य परमशिवैक्यरूपः अभेदानन्दो व्यवस्थाप्यते।।१८।।

एवं जीवस्य देहसम्बन्धात् तदधीनज्ञानप्रवृत्या शिवाद् वैलक्षण्यमाह—

अपाणिपादो जवनो ग्रहीता
पश्यत्यचक्षुः स शृणोत्यकर्णः।
स वेत्ति वेद्यं न च तस्याऽस्तिवेत्ता
तमाहुरग्र्यं पुरुषं महान्तम्।।१९।।

चेतनवर्ग को वश करने का सामर्थ्य उसमें है। किन्तु बद्धावस्था (मलपाशों से बन्धन की स्थिति में) जीव की उस प्रकार की शक्ति संकुचित होती है और 'बुद्धावस्था' (अज्ञानमलपाशों का आवरण हटने से प्रबुद्धस्थिति) में वह शक्ति विकास प्रात करती है। विकास की स्थिति में जीव वास्तविक अभेदानन्द का अनुभव कर सकता है।

इस प्रकार पूर्णचैतन्यस्वरूप परम शिव से शिवांशस्वरूप जीव का कालभेद और अवस्थाभेद की दृष्टि से भेद और अभेद प्रतिपादित है। लौकिक विषयों का अनुभव करते समय सहज रूप से शिव और जीव का भेद सिद्ध होता है। जिस समय शाश्वत विषयस्वरूप परमशिव में जीव समस्त होकर विलीन होता है, तब परमशिव के एकात्मतास्वरूप जीव का अभेदानन्द प्रतिष्ठित होता है।

मन्त्रार्थ— जब नौ दरवाजों वाले ब्रह्मपुर में जीव रहकर भी स्वस्वरूप को भूलकर विषयसुखलोलुप होकर बहिर्मुख विचरण करता है, तब वह *'देही'* कहलाता है। जब वह *'अहं सः'* (मैं उसी परब्रह्म का स्वरूप हूँ) इस प्रकार अनुभव करता है, तब *'हंस'* कहलाता है। जब वह जीव परमशिव के साथ सामरस्य स्थापित करता है, तब *'परमहंस'* कहलाता है। ऐसा जीव ही स्थावर जंगमात्मक समस्त लोक को अपने वश में, अपने अधीन कर सकता है।।१८।।

अवतरण— इस प्रकार जीव का देह के साथ सम्बन्ध होने के कारण उसकी जिज्ञासा अथवा ज्ञानप्रवृत्ति उस शरीर के अधीन होती है। परमशिव उससे विलक्षण है, इस बात का श्रुति इस प्रकार प्रतिपादन कर रही है—

CC0. In Public Domain. Jangamwadi Math Collection, Varanasi

Digitization by eGangotri and Sarayu Trust. Funding by MoE-IKS

'अपाणिपाद' इति। **अपाणिपादः** पाणिपादाद्यवयवरहितोऽपि सः सर्वशक्तत्वात् पाणिकार्यं ग्रहणं पादकार्यं गमनं च निर्वहति। **जवनो** वेगेन गमनशीलः। **ग्रहीता** पाण्यभावेऽपि पाणिकार्यस्य ग्रहणस्यापि कर्ता। एवम**चक्षुश्च**क्षुरिन्द्रियरहितोऽपि परमात्मा स्वयमेव सर्वं जगत् **पश्यति। अकर्णः** श्रोत्रेन्द्रियरहितोऽपि सः **शृणोति** सर्वमाकर्णयति। सदा सर्वज्ञो भगवान्नित्यर्थः। लोके यद्य**द्वेद्यं** ज्ञातुमर्हं वर्तते तत्सर्वं **स वेति। "तस्य विज्ञानेन सर्वं विज्ञातं भवती"**ति महर्षयः प्रतिज्ञां च कृतवन्तः। एवं सर्वात्मकत्वात् सर्वज्ञत्वादेव च **(तस्य)** परमशिवस्य **वेत्ता** तं ज्ञातुं शक्तोऽन्यः कश्चन **नास्त्येव।**

"वेदाहं समतीतानि वर्तमानानि चार्जुन।
भविष्याणि च भूतानि मां तु वेद न कश्चन।।" (७/२६)

इति **गीतायाम**पि भगवतः सर्वैरदृष्टत्वं सर्वद्रष्टृत्वं चोच्यते। **"अदृष्टं द्रष्टृ"** इति च **श्रुतिर्निर्दिशति** परमात्मस्वरूपविवेचनावसरे। **तमेव महान्तं पुरुषमग्र्य**माद्यं सर्वेषामप्यादिभूतमाहुर्ब्रह्मविदो वदन्ति।।१९।।

अपाणिपादो जवनो ग्रहीता— पाणि और पाद (हाथ और पैर) कर्मेन्द्रिय के प्रतीक हैं। इसका तात्पर्य यह है कि परमेश्वर को न तो हाथ-पैर होते हैं और न अन्य वागिन्द्रिय, पायु और उपस्थ ये कर्मेन्द्रिय। तथापि सर्वशकितसम्पन्न होने के कारण वह हाथ का कार्य ग्रहण चरण का कार्य गमन आदि विना उन इन्द्रियों की सहायता के ही करता है।

पश्यत्यचक्षुः स शृणोत्यकर्णः— इस मन्त्र में पूर्व चक्षु और कर्ण पूर्ववत् अन्य ज्ञानेन्द्रियों के प्रतीक हैं। अर्थात् परमशिव नेत्रहीन होते हुए भी विना उसकी सहायता से सब कुछ देखता है। श्रवणहीन होने पर भी बिना उसके सहारे सब कुछ सुनता है। इस प्रकार अन्य ज्ञानेन्द्रियशून्य होने पर भी वह उन इन्द्रियों के कार्य करता है।

स वेत्ति वेद्यम् = भगवान् सर्वज्ञ हैं, जो जानने योग्य हैं, वह सबकुछ जानते हैं।

महाशाल शौनक में महर्षि अङ्गिरस से यह प्रश्न किया— **कस्मिन्नु भगवो ! विज्ञाते सर्वमिदं विज्ञातं भवति?** (मु.उ., १.१.३)] तब महर्षि ने यह प्रतिज्ञा की है— **तस्य विज्ञानेन सर्वं विज्ञातं भवति'**; उस 'अक्षर' परमशिव के ज्ञानमात्र से सभी ज्ञान हो जाता है। इस प्रकार परशिव सर्वात्मक और सर्वज्ञ हैं।

न च तस्याऽस्ति वेत्ता = किन्तु परमशिव को जाननेवाला कोई नहीं है, उसे कोई नहीं जान सकता।

श्रीमद्भगवद्गीता में भी भगवान् का सर्वद्रष्टा के रूप में और सबके द्वारा अज्ञेय के रूपमें **'वेदाहं समतीतानि'** इत्यादि (७/२६) पद्य में वर्णन किया गया है।

CC0. In Public Domain. Jangamwadi Math Collection, Varanasi

Digitization by eGangotri and Sarayu Trust. Funding by MoE-IKS

ननु न च तस्यास्ति वेत्ता चेत् कथं स उपास्य इत्यत्र समाधत्ते—

अणोरणीयान् महतो महीयान्
आत्मा गुहायां निहितोऽस्य जन्तोः।
तमक्रतुं पश्यति वीतशोको
धातुः प्रसादान्महिमानमीशम्।।२०।।

अणोरणीयानिति। अणोः सूक्ष्मादप्यत्यन्तमणुः। एवं **महतोऽपि** वस्तुनो **महीयान्** अत्यन्तं महानेतादृशोऽपि सन् **अस्य जन्तोः** प्राणिनो **गुहायां** हृदयाकाशे स **आत्मा निहितो** निविष्ट इत्यर्थः। **तं** परमात्मानम् **अक्रतुं** क्रतुः सङ्कल्पस्तद्रहितः

श्रीकृष्णगीता में जिसका हिन्दी पद्यानुवाद इस प्रकार है—

''होंगे, हुए हैं जीव जो मुझ को सभी का ज्ञान है।
इनको किसी की किन्तु कुछ मेरी नहीं पहिचान है।।''

परमात्मा के स्वरूपविवेचन के प्रसंग में वेदमाता भी **''अदृष्टं द्रष्टृ'** (परशिव ब्रह्म अदृश्य है, किन्तु वह सब का दर्शक है) इस प्रकार वर्णन करती है। [**बृहदारण्यक उपनिषद्** कहती है— **'नाऽन्योऽतोऽस्ति द्रष्टा'** (३/७/२३) — उस निरुपाधिक परशिव ब्रह्म का कोई द्रष्टा (देखनेवाला) कोई नहीं है।]

तमाहुरग्र्यं पुरुषं महान्तम् = ब्रह्मज्ञानी महात्मा उसी परमशिव को सर्वाग्रगण्य आद्य महान् पुरुष कहते हैं।

[**कैवल्य उपनिषद्** कहती है—

''अपाणिपादोऽहमचिन्त्यशक्तिः पश्याम्यचक्षुः स शृणोम्यकर्णः।
अहं विजानामि विविक्तरूपो न चास्ति वेत्ता मम चित्सहायः।।'']

मन्त्रार्थ— न तो अमूर्त परशिवब्रह्म के हाथ, पैर आदि कर्मेन्द्रिय हैं और न नेत्र, श्रोत्र आदि ज्ञानेन्द्रिय। तथापि वह सर्वशक्तिसम्पन्न होने के कारण बिना उनकी सहायता के ग्रहणशीलता, गमन, देखना, सुनना आदि कार्य करता है। वह सर्वज्ञ है, किन्तु अज्ञेय है। ब्रह्मवेत्ता उसे अग्रगण्य महापुरुष कहते हैं।।१९।।

अवतरण— अब यह जिज्ञासा होती है कि यदि उस परशिव ब्रह्म को कोई जाननेवाला ही नहीं है, फिर उसकी उपासना किस प्रकार सम्भव है? इसका समाधान यह मन्त्र कर रहा है—

'अणोरणीयान्' इत्यादि। वह परमशिव 'अणु' (सूक्ष्म) से भी 'अणीयान्'- सूक्ष्मतम आकार धारण करता है और 'महान्' (विशाल) से भी 'महीयान्' अत्यन्त विशाल आकार ले सकता है।

CC0. In Public Domain. Jangamwadi Math Collection, Varanasi

Digitization by eGangotri and Sarayu Trust. Funding by MoE-IKS

अक्रतुः तं विषयभोगाद्यर्थसङ्कल्परहितं **महिमानं** महामहिमविशिष्टम् **ईशं** परमेश्वरं **धातुः** सर्वसृष्टिविधायकस्य तस्यैव परमेश्वरस्य **प्रसादादनुग्रहात् यः पश्यति सः वीतशोको** भवतीति यावत्॥२०॥

एतादृशपरमात्मदर्शनं सुशकं भवेत् तदनुग्रहे सतीत्यत्र स्वानुभवमेव प्रमाणत्वेन दर्शयति महर्षिरधुना—

वेदाहमेतमजरं पुराणं
सर्वात्मानं सर्वगतं विभुत्वात्।
जन्मनिरोधं प्रवदन्ति यस्य
ब्रह्मवादिनो हि प्रवदन्ति नित्यम्।।२१।।

[कैवल्य उपनिषद् भी यही कहती है— **'अणोरणीयानहमेव तद्वत् महानहम्'** (२०)]

वह जीव की **'गुहा'** हृदयाकाश में प्रविष्ट है। **'अक्रतु'** अर्थात् विषयोपभोगादि अर्थ एवं काम के संकल्प से अस्पृष्ट है। जो महामहिम समस्त सृष्टिकर्ता उस परमेश्वर का उसी परमेश्वर की कृपा से साक्षात्कार करता है, वह शोकमुक्त आध्यात्मिक-आधिदैविक-आधिभौतिक त्रिविध दुःखरहित होता है।

[अथवा **'धातुः प्रसादात्'** यह पाठभेद मानकर **शङ्करभगवत्पाद** इसका भिन्न अर्थ भी करते हैं— **''अथवेन्द्रियाणि धातवः शरीरस्य धारणात्, तेषां प्रसादात् विषयदोषदर्शनमलाद्यपनयनात्। अथवा दुर्विज्ञेय आत्मा कामिभिः प्राकृतपुरुषैः।''**

यतः इन्द्रियाँ शरीर को धारण करती है, अतः वे 'धातु' कहलाती हैं। जब तक वे वैषयिक वस्तु देखती है, तब तक वे परमेश्वर को नहीं देख सकतीं। जब यह अज्ञानमल हट जाता है, तब परमेश्वर को देख सकती हैं। यही परमात्मा का परम अनुग्रह है। अन्यथा कामासक्त साधारण जीव को परमात्मा का साक्षात्कार करना अत्यन्त कठिन है। जैसा कि **'मुण्डकोपनिषद्'** कहती है— **'यमेवैष वृणुते तेन लभ्यः''** (३.२.३)। परमशिव जिसका वरण करते हैं, वही जीव परमशिव का साक्षात्कार कर सकता है, अन्य नहीं। यह मन्त्र **'कठोपनिषद्'** (१/२/२०) में भी उपलब्ध है।]

मन्त्रार्थ— वह अमूर्त चिच्छक्तिमय परमशिव सूक्ष्म से सूक्ष्मतम और महान् से महतम आकार धारण कर सकता है। वह जीव की हृदयगुफा में अवस्थित है। वह परम शिव संकल्परहित है। उसी की कृपा से जब उसका अज्ञानमल हट जाता है, तब जीव उसका साक्षात्कार कर शोकमुक्त होता है।।२०।।

अवतरण— परमेश्वर का अनुग्रह होने पर उक्त विशेषताओं से सम्पन्न परशिव का दर्शन सम्भव है इस तथ्य को दृढ करने के लिए मन्त्रद्रष्टा महर्षि स्वानुभव को प्रमाण के रूप में प्रस्तुत कर रहे हैं—

CC0. In Public Domain. Jangamwadi Math Collection, Varanasi

Digitization by eGangotri and Sarayu Trust. Funding by MoE-IKS

'वेदाहमेतमि'ति। **पुराणं** पुरातनं **सर्वात्मानं** सर्वान्तर्यामिणं **विभुत्वात् सर्वगतं** चैतादृशं परमात्मानम् **अहं वेद** जानामि इत्यत्र स्वानुभव एव प्रमाणम्। अथाऽन्येषां वचनमपि प्रमाणमित्याह— **ब्रह्मवादिनो** ब्रह्मविदः शिवयोगिसार्वभौमाः **यस्य** परशिवस्य **जन्मनिरोधम्** उत्पत्त्यादिराहित्यं **नित्यं प्रवदन्ति**। सर्वकारणभूतमपि परशिवं स्वयमुत्पत्त्यादिरहितमिति ब्रह्मज्ञानिनोऽपि वदन्तीत्यर्थः। एवं च यं महर्षिः स्वीयमिवेतरेषामनुभवमपि अखण्डलिङ्गात्मकस्य परशिवब्रह्मणः सनातनत्वे प्रमाणयति। अनुभवैकगम्यस्य चेतनात्मकस्य अमूर्तस्य लिङ्गस्य निर्मले हृदये साक्षात्कारः महर्षिवचनप्रामाण्येनैव साधनीयः। यो आत्मनि विश्वसिति स एव महर्षीणामनुभवं बहुमनुते। तेनैव सद्रूपं प्रकाशमयं प्राणलिङ्गमनुभूयते। स एव परमां शान्तिमधिगच्छति। निर्ममो निरहङ्कारः स एव सर्वेष्वपि निर्लिप्ततया विराजमानं शिवं साक्षात्कर्तुं शक्नोति॥२१॥

।। इति तृतीयोऽध्यायः ।।३।।

'वेदाहमेतमजरं पुराणम्' इत्यादि। [इस प्रकार का अनुभव **श्वेताश्वतर** महर्षि— **''वेदाहमेतं पुरुषं महान्तमादित्यवर्णं तमसः परस्तात्'** (३/८) इस मन्त्र में प्रकट कर चुके हैं। पुनश्च वे इस मन्त्र में यह कह रहे हैं—] 'पुरातन' होने पर भी 'अजरम्' जरारहित (तरुण) सभी प्राणियों की हृदयगुफा में आत्मा के रूप में प्रविष्ट सर्वान्तर्यामी व्यापक होने के कारण सभी में प्रतिष्ठित उस चिन्मय परमात्मा को मैं जानता हूँ। इस विषय में मेरा अपना अनुभव ही प्रमाण है।

अन्य मन्त्रद्रष्टा ऋषियों का वचन भी इसमें प्रमाण है। ब्रह्मज्ञानी सार्वभौम शिवयोगी परशिव के उत्पत्ति आदि के अभाव का नित्य प्रतिपादन करते हैं। अर्थात् वे यह प्रमाणित करते हैं कि सर्वकारणस्वरूप परमशिव स्वयं जन्म-जरा इत्यादि विकारों से मुक्त हैं। महर्षि के वचन को प्रमाण मानकर ही मात्र अनुभवगम्य चेतनस्वरूप अमूर्त लिङ्ग का निर्मल हृदय में साक्षात्कार करना चाहिये। जो अपने ऊपर विश्वास करता है, वह महर्षियों के वचनों का समादर करता है। वही सत्यस्वरूप प्रकाशमय प्राणलिङ्ग का अनुभव करता है। वह परम शान्ति प्राप्त करता है। ममता और अहंकार से मुक्त वह जीवात्मा सभी प्राणियों में विराजमान 'शिव' का साक्षात्कार करता है। क्योंकि वह सभी प्राणियों में अलिप्त भाव से विराजमान है।

मन्त्रार्थ— मैं उस अजर-पुरातन सभी प्राणियों की आत्मा बनकर शिवांशस्वरूप सर्वव्यापक सर्वत्र अवस्थित परमेश्वर को जानता हूँ। (केवल मैं श्वेताश्वतर महर्षि) अपना अनुभव नहीं बतला रहा हूँ, अपितु) अन्य ब्रह्मज्ञानी भी उस अनुभव से परमेश्वर को अजन्मा एवं नित्य-सनातन प्रमाणित करते हैं।।२१।।

।। तृतीय अध्याय सम्पूर्ण ।।३।।

***

CC0. In Public Domain. Jangamwadi Math Collection, Varanasi

Digitization by eGangotri and Sarayu Trust. Funding by MoE-IKS

अथ चतुर्थोऽध्यायः

''तमक्रतुं पश्यति वीतशोको धातुः प्रसादात्'' (३/२०) इत्यत्र परमेश्वरप्रसादादेव तदीयदर्शनं विहितम्। परमेश्वरप्रसादश्च कथं लभ्य इति शङ्कायां विविधविभूतिमहिमविशिष्टस्य तस्य स्तुतिप्रार्थनादिरूप एव तत्प्रसाद-प्राप्त्युपाय इति स्वीयाचरणेनोपदिशति महर्षिः—

य एकोऽवर्णो बहुधा शक्तियोगाद्
वर्णाननेकान्निहितार्थो दधाति।
वि चैति चाऽन्ते विश्वमादौ स देवः
स नो बुद्ध्या शुभया संयुनक्तु।।१।।

'य एक' इति। **'अशब्दमस्पर्शमरूपमव्ययम्'** (कठ.उ.१/३।१५) इत्यत्र प्रतिपादितो **यो**ऽमूर्तः परमशिव; **अवर्णः** स्वयं रूपजात्यादिरहितः **एको**ऽद्वितीयः

अवतरण— ''तमक्रतुं पश्यति वीतशोको धातुः प्रसादात्'' (३/२०) इस मन्त्र में परमशिव के कृपाप्रसाद से ही उसके दर्शन का विधान है। परमेश्वर का कृपा- प्रसाद किस प्रकार प्राप्त करना चाहिये? यह प्रश्न उपस्थित होने पर महर्षि श्वेताश्वतर अपने आचरण द्वारा ही उसका समाधान इस प्रकार कर रहे हैं कि यतः परमशिव विविध ऐश्वर्य और अनेक प्रकार की महिमा से मण्डित हैं, अतः उसी प्रकार की स्तुति और प्रार्थना ही उनके कृपाप्रसाद की प्राप्ति का उपाय है— 'एकोऽवर्णः' इत्यादि।

'एकोऽवर्णः'— वह परमशिव अद्वितीय, 'अवर्ण' अर्थात् रूप, जाति आदि भेद से रहित अमूर्त-निराकार है।

जैसा कि **'कठोपनिषत्'** में इस प्रकार प्रतिपादित है—

''अशब्दमस्पर्शमरूपमव्ययं तथाऽरसं नित्यमगन्धवच्च यत्।
अनाद्यनन्तं महतः परं ध्रुवं निचाय्य तन्मृत्युमुखात् प्रमुच्यते।।''

(क.उ.१.३.१५)

जो शब्द, स्पर्श, रूप, रस, गन्ध आदि विषयों से रहित, नित्य, अव्यय, अविनाशी, अनादि, अनन्त, महत्तत्त्व से भी विलक्षण और ध्रुव-शाश्वत सत्य है, उस परमशिव को जानकर जीव सदा के लिये मृत्युमुख से छूट जाता है।

''यः शक्तियोगात्''— ''जो परम शिव अपने में विद्यमान चित्र-विचित्र अनन्त शक्ति के प्रभाव से, **''अनेकान् वर्णान्''** = नानाविध रूप, रस, गन्धादि

CC0. In Public Domain. Jangamwadi Math Collection, Varanasi

Digitization by eGangotri and Sarayu Trust. Funding by MoE-IKS

सः परमात्मा **शक्तियोगात्** स्वस्मिन् विद्यमानविचित्रानन्तशक्तिप्रभावात् **अनेकान् वर्णान्** अनेकविधरूपजात्यादिविशिष्टान् पदार्थान् **निहितार्थः** निगृहीतप्रयोजनः, स्वार्थनिरपेक्ष एवेत्यर्थः। **बहुधा** अनेकप्रकारेण **आदौ विदधाति** करोति, सृजतीत्यर्थः। अथवा **'बहुधा शक्तियोगात्'** इत्यप्यन्वयो युज्यते। **'पराऽस्य शक्तिर्विविधैव श्रूयते'** (श्वे.उ. ६/८) इत्यस्यामेवोपनिषदि श्रूयते। एवं सृष्टं विश्वम् अन्ते प्रलयकाले **वि** एति च स्वस्मिन् लयं प्रापयति च। य एवं जगत् सृजति संहरति चेति कथनात् स्थित्यादीनामपि स्वतः प्राप्तिर्भवति। य एतादृशः **स** एव देवः क्रीडनपरः, क्रीडयैवानायासेन लीलार्थं स्वविनोदाय सर्वं कार्यं निर्वहतीत्यर्थः। स **देवो** नः अस्मान् **शुभया बुद्ध्या** तत्राप्त्यनुगुणया समीचीनबुद्ध्या

अनेक गुणसम्पन्न विविध प्रकार के पदार्थों की, **''निहितार्थः (सन्)''** = स्वार्थनिरपेक्ष होकर, **''बहुधा आदौ विदधाति''** = अनेक प्रकार से सर्वप्रथम सृष्टि करता है। अथवा **'बहुधा शक्तियोगात्'** ऐसा अन्वय भी युक्तिसंगत है; क्योंकि इसी उपनिषद् में **''पराऽस्य शक्तिर्विविधैव श्रूयते स्वाभाविकी ज्ञानबलक्रिया च''** (६.८) इस प्रकार वेदमन्त्र उपलब्ध है। **''अन्ते च विश्वं व्येति'' (वि+एति)** = और अन्त में स्वयं द्वारा सृष्ट उस स्थावर जङ्गमात्मक जगत् का अपने में ही विलय करता है। (जो इस प्रकार प्रथम जगत् की सृष्टि और अन्त में संहार करता है) **''दधाति विचैति चान्ते विश्वमादौ''** इस प्रकार कथन से परमशिव की स्थिति हेतुता भी अर्थापत्ति प्रमाण से स्वतः प्राप्त है।

'स देवः' — [विष्णुसहस्रनामस्तोत्र में **'देव'** शब्द का निर्वचन करते हुए **शङ्कर-भगवत्पाद** कहते हैं— **''यतः दीव्यति क्रीडति सर्गादिभिः विजिगोषते असुरादीन्, व्यवहरति सर्वभूतेषु, आत्मतया द्योतते, स्तूयते स्तुत्यैः, सर्वत्र गच्छति तस्माद् देवः।''**

यतः परमशिव सृष्टि, स्थिति, संहार आदि के द्वारा क्रीडा करते हैं, आसुरी प्रवृत्ति के असुर आदि प्राणियों पर विजय प्राप्त करना चाहते हैं, सभी प्राणियों के साथ व्यवहार करते हैं, आत्मस्वरूप से द्योतित होते हैं, स्तुत्य भी उनकी स्तुति करते हैं और सर्वत्र गतिशील हैं, अतः उनका **'देव'** नाम सार्थक है। इन अर्थों में 'दीव्यतीति देवः' इस व्युत्पत्ति के अनुसार **भाष्यकार** कहते हैं—]

जो इस प्रकार की विशेषताओं से सम्पन्न हैं, उनका **'देव'** नाम सार्थक है। यतः सृष्टि, स्थिति, संहारादि की क्रीडा में सदा तत्पर रहते हैं और उसी क्रीडा अथवा लीला से अनायास अपने विनोद के लिए सभी कार्यों का निर्वाह करते हैं।

CC0. In Public Domain. Jangamwadi Math Collection, Varanasi

Digitization by eGangotri and Sarayu Trust. Funding by MoE-IKS

संयुनक्तु संयोजयतु। अस्माकं स्वप्राप्त्यनुगुणां बुद्धिं स एवानुगृह्णात्विति प्रार्थयते श्वेताश्वतरो महर्षिरव्याजप्रेम्णा सार्वजनिकहितेच्छया।।१।।

एवं परमेश्वरस्य सर्वोपादानत्वात् सर्वात्मकत्वादिरूपां तद्विभूतिमाह—

तदेवाग्निस्तदादित्यस्तद् वायुस्तदु चन्द्रमाः।
तदेव शुक्रं तद् ब्रह्म तदापस्तत् प्रजापतिः।।२।।

'तदेवे'ति। परमशिवस्यैव परब्रह्मसूचनाय पूर्वं पुल्लिङ्गान्तयच्छब्दनिर्दिष्टस्यैव तस्येदानीं नपुंसकलिङ्गे तच्छब्देन कथनं तस्य चेतनाचेतनजगद्रूपतामभिव्यनक्ति। यथा स एव महादेवः चेतनवर्गोऽभवत् तथैव जडवर्गोऽप्यभवत् प्राक्तने सृष्टिकाले स्वस्यैव विनोदाय। अत एव तस्य त्रिभिरपि लिङ्गैर्निर्देशो युज्यते।

तदेव परमशिवाख्यं परं ब्रह्म **अग्निः, तदेव आदित्यः, तदेव वायुः, तदेव चन्द्रमाः। शुक्रं** परिशुद्धं यद्यद्वर्तते तत्सर्वमपि तदेव परब्रह्म। तदेव ब्रह्म

"सः देवः अस्मान् शुभया बुद्ध्या संयुनक्तु" वे परमशिव महादेव हमें ब्रह्मसाक्षात्कार के अनुकूल सद्बुद्धि से संयुक्त करें।

परमशिव हमें आत्मसाक्षात्कार के अनुकूल सद्बुद्धि देकर अनुगृहीत करें। इस प्रकार महर्षि श्वेताश्वतर सार्वजनिक कल्याणकामना से निर्व्याज प्रेम रखते हुए यह प्रार्थना कर रहे हैं।

मन्त्रार्थ— जो परमशिव अमूर्त होने के कारण रूपादिरहित है, वह सर्वप्रथम अपनी इच्छा, ज्ञान और क्रियाशक्ति के द्वारा नाना प्रकार के पदार्थों की सृष्टि करते हुए जगत् की सृष्टि, उसका पालन और संहार करते हैं, वे सर्ग, स्थिति और संहार की लीला में तत्पर महादेव ब्रह्मसाक्षात्कार प्राप्ति के लिये हम जिस प्रकार प्रेरित हों, वैसी सद्बुद्धि हमें प्रदान करें।।१।।

अवतरण— सबका उपादान होने के कारण परमशिव की सर्वात्मकता का वर्णन श्रुति इस प्रकार कर रही है— **'तदेवाग्निः'** इत्यादि।

परमशिव ही परब्रह्म है— यह सूचित करने के लिये **'य एकोऽवर्णः'** इत्यादि मन्त्र में प्रथम 'यत्' सर्वनाम का पुल्लिङ्ग में निर्देश किया गया है और इस मन्त्र में 'तत्' सर्वनाम का नपुंसक लिङ्ग में निर्देश किया गया है, जो उस परब्रह्म के चेतन-अचेतनात्मक जगत्-स्वरूप को अभिव्यक्त कर रहा है। प्राचीन काल में सृष्टि करते समय अपने विनोद के लिये जिस प्रकार महादेव चेतन वर्ग हो गए, उसी प्रकार जड (अचेतन) वर्ग भी। अतएव उस परशिव परब्रह्म का तीनों लिङ्गों में निर्देश युक्तिसंगत है।

CC0. In Public Domain. Jangamwadi Math Collection, Varanasi

Digitization by eGangotri and Sarayu Trust. Funding by MoE-IKS

हिरण्यगर्भरूप: चतुर्मुखो ब्रह्मापि स एव। **तदेव आपः** जलमपि स एव। तदेव ब्रह्म **प्रजापतिर्विराड्**रूप:।

एवं परमात्मा स्वयममूर्त: सन्नपि भक्तानुग्रहलीलायै प्राकृतमूर्तरूपमपि परिगृह्य मूर्तामूर्त इति विश्रुतो विराजते। पञ्चतत्त्वात्मकोऽयं प्रपञ्च:सर्वोऽपि सर्वकारणस्य परमशिवस्य प्राकृतं मूर्तात्मकमचेतनं रूपमेव। ब्रह्मेन्द्रादय:सर्वेऽपि जीवचेतनास्तस्य दिव्यमूर्तरूपस्यांशा एव। कैलासवासी पार्वतीपति: शिवस्तु परमशिवस्य अमूर्तस्य कृत्स्नं दिव्यं मूर्तं रूपमिति विशदीकृतं **शक्तिविशिष्टाद्वैतदर्शने**। घनीभूतं घृतं भोजनसौकर्याय यथा द्रवीभवति तथा अमूर्त एव परमशिव: भक्तानुग्रहलीलायां दिव्यमूर्तरूपेण शिव: सम्पद्यते। तयोर्भेदो न विद्यते। साकार: शिव: भक्तेभ्यो निर्दिष्ट: ; निराकारस्तु परमशिव: मुक्तेभ्यो वर्तते। भक्त: साकारं शिवं समर्च्य तत्प्रसादेन बन्धविमुक्त: निराकारे परमशिवे समरसतया विलीनो भवति। अयमेवाशय: सम्यगाविष्कृतोऽन्यत्र।

वह परशिव परब्रह्म ही अग्नि है, वही सूर्य है, वही पवन है और वही चन्द्र है। तथा 'शुक्र' परिशुद्ध जो जो वस्तु है, वह सभी परब्रह्म है, (अथवा वह शुक्रादि अन्य ग्रहस्वरूप है)। वही हिरण्यगर्भस्वरूप चतुर्मुख ब्रह्मदेव भी है। वही (जल के रूप में अवतीर्ण वरुणदेवता अथवा) साक्षात् जलस्वरूप भी है। वही विराट्स्वरूप प्रजापति है।

इस प्रकार परशिवस्वरूप परब्रह्म परमात्मा स्वयं अमूर्त-निराकार होते हुए भी भक्तों पर अनुग्रह करने के लिये प्रकृतिजन्य मूर्तस्वरूप स्वीकार कर साकार-निराकार दोनों रूप में विख्यात है। पञ्चतत्त्वों से निर्मित यह समस्त प्रपञ्च समस्त विश्व के कारणस्वरूप परशिव की प्राकृत साकार अचेतन (जड) प्रतिमा ही है। [1]ब्रह्मदेव, इन्द्र आदि सभी चेतन जीव दिव्यरूपधारी परमशिव के अंश ही हैं। कैलासपर्वत पर वास करनेवाले पार्वतीपति भगवान् शिव तो निराकार परमशिव का साकार सम्पूर्ण दिव्यस्वरूप हैं, यह समस्त विषय विशद रूप से **'शक्तिविशिष्टाद्वैतदर्शन'** ग्रन्थ में निरूपित है। जिस प्रकार जमा हुआ घी भोजन में सुकरता के लिये द्रव बन जाता है, उसी प्रकार निराकार परमशिव भक्तों पर अनुग्रह करने के लिये दिव्य मूर्तस्वरूप लेकर महादेव बन जाते हैं। उन दोनों में भेद नहीं है। साकार शिव का निर्देश भक्तों के लिये है और निराकार परमशिव का मुक्तों के लिये। भक्त लिङ्गरूपधारी साकार शिव की अर्चना कर उसकी कृपा से बन्धनों से छुटकारा पाते हुए निराकार परमशिव में

---

१. **"स ब्रह्मा स शिव: सेन्द्र: सोऽक्षर: परम: स्वराट्।**
स एव विष्णु: स प्राण: स कालोऽग्नि: स चन्द्रमा।।" तुलनीय कै.उ. १.८।

CC0. In Public Domain. Jangamwadi Math Collection, Varanasi

Digitization by eGangotri and Sarayu Trust. Funding by MoE-IKS

''उमासहायं परमेश्वरं प्रभुं त्रिलोचनं नीलकण्ठं प्रशान्तम्।
ध्यात्वा मुनिर्गच्छति भूतयोनिं समस्तसाक्षिं तमसः परस्तात्।।''

(कै.उ.,७)

इति श्रुतौ ध्यानाय साकारः शिवो निर्दिश्यते। पाशविमोचनानन्तरं मुक्तस्य विलयनाय सर्वसाक्षि सर्वकारणममूर्तं परमशिवाख्यं परब्रह्मैव निर्दिश्यते। जीवोऽपि स्वतो निराकार एव। साकारशिवस्य अर्चनायैव तस्य देहेन्द्रियाद्याकारः परमशिवेनाऽनुगृहीतः। अतः स आकारसहकारेणैव साकारशिवस्यानुग्रहं लब्ध्वा ततः निराकारपरमशिवैक्यसुखं विन्दते। एवं परमात्मा निराकारःसन्नेव साकारशिवो

सामरस्यभाव से विलीन होता है। यही आशय अन्यत्र समीचीन रूप से प्रकट किया गया है।

'उमासहायं परमेश्वरं प्रभुम्' इत्यादि मन्त्र में ध्यान के लिये साकार शिव का निर्देश किया गया है।

[यह मन्त्र **'कैवल्योपनिषत्'** (१.७) का है। यह **षट्पदी** है। इसके प्रथम दो चरण इस प्रकार हैं—

''तमादिमध्यान्तविहीनमेकं विभुं चिदानन्दमरूपमद्भुतम्''

इस मन्त्रभाग में परमशिव का निराकार ध्यान है, जिसका भाव इस प्रकार है— 'वह परमशिव आदि-मध्य-अन्तविहीन एक अखण्ड-अद्वितीय, सर्वव्यापक, चिन्मय, आनन्दस्वरूप अद्भुत है।'

उनका साकार ध्यान— **''उमासहायं परमेश्वरं प्रभुं त्रिलोचनं नीलकण्ठं प्रशान्तम्''** वे ही अमूर्त परमशिव इस प्रकार दिव्यरूप ग्रहण करते हैं— अपनी शक्ति उमा के साथ परमेश्वर प्रभु त्रिनेत्र धारण करते हैं, नीलकण्ठ बनते हैं और अत्यन्त शान्त सात्विक रूप धारण करते हैं। इस प्रकार मन्त्रद्रष्टा महर्षि समस्त प्राणियों के बीजस्वरूप सर्वसाक्षी निराकार-साकार परमशिव का ध्यान कर अन्धकार पर परमप्रकाश को प्राप्त करते है। इस प्रकार **'उमासहायं परमेश्वरं प्रभुम्'** इत्यादि मन्त्रभाग में भगवान् शिव का दिव्य ध्यान निरूपित हैं।]

भक्त जब पाशबन्धन से मुक्त होता है, तब उस मुक्त का परमशिव में विलय करने के लिये **'तमादिमध्यान्तविहीनमेकम्'** इत्यादि मन्त्रभाग में सर्वसाक्षी सर्वकारण अमूर्त परशिव नामक परब्रह्म का निर्देश किया गया है। जीव भी स्वयं निराकार ही है अपनी साकार लिङ्गप्रतिमा की अर्चना के लिये परमशिव ने उसे देह, इन्द्रियादि आकार देकर उस पर

CC0. In Public Domain. Jangamwadi Math Collection, Varanasi

Digitization by eGangotri and Sarayu Trust. Funding by MoE-IKS

भूत्वा स्वांशानां जीवानामुद्धाराय पञ्चतत्त्वात्मकप्रपञ्चाकारेणापि परिणमते। अत एवात्र तस्य त्रिलिङ्गेष्वपि निर्देशो युज्यत एव॥२॥

एवं तच्छब्देन निर्दिष्टस्यैव परमशिवस्य अभिमुखतयाऽपि निर्देशः—

त्वं स्त्री त्वं पुमानसि त्वं कुमार उत वा कुमारी।
त्वं जीर्णो दण्डेन वञ्चसि त्वं जातो भवसि विश्वतोमुखः॥३॥

'त्वं स्त्री' इति। अमूर्तः परमशिव एव स्त्रीपुरुषादिकं सर्वमपि जीवजातं समपद्यत। अयमेवांशोऽत्र विव्रियते प्रार्थनाद्वारा — हे देव! विश्वतोमुखः विश्वव्यापकस्**त्वमेव स्त्री**रूपेण **असि** वर्तसे। **त्वमेव पुमान**सि। **त्वमेव कुमार उत वा** अथवा **कुमारी। त्वमेव जीर्णः** वृद्धः सन् **दण्डेन वञ्चसि** गच्छसि। त्वमेव युवा वृद्धश्च वर्तसे। एवं **विश्वरूपस्**त्वमेव सर्वत्र जगति **जातो**ऽसि। परं ब्रह्मैव

अनुग्रह किया है। अतः वह जीव अपने आकार की सहायता से ही साकार शिव का अनुग्रह प्राप्त कर अनन्तर निराकार परमशिव के साथ सामरस्यरूप एकता के सुख का अनुभव करता है। इस प्रकार परमात्मा निराकार होते हुए भी (इष्टलिङ्ग के रूप में) साकार बनकर अपने अंशस्वरूप जीवों का उद्धार करने के लिये पञ्चतत्त्वात्मक प्रपञ्च आदि के आकार में भी स्वरूपपरिवर्तन करता है। अत एव परमशिव का पुल्लिग-स्त्रीलिंग और नपुंसकलिंग तीनों लिंगों में निर्देश युक्तिसंगत ही है।

[**महानारायणोपनिषद्** में यह मंत्र इस प्रकार उपलब्ध है—

"तदेवाऽग्निस्तद् वायुस्तद् सूर्यस्तदु चन्द्रमाः।
तदेव शुक्रममृतं तद् ब्रह्म तदापः स प्रजापतिः॥७॥"]

मन्त्रार्थ— वही (परमशिव) अग्नि है, वही सूर्य है, वही वायु है, वही चन्द्रमा है, वही शुक्र है, वही हिरण्यगर्भ है, वही जल है और वही प्रजापति है॥२॥

अवतरण— 'तत्' सर्वनाम से संकेतित परमशिव का पुनश्च ('युष्मत्'सर्वनाम से) संमुख स्वरूप से संकेत इस प्रकार किया जा रहा है—

'त्वं स्त्री पुमानसि' इत्यादि। इस प्रार्थना के द्वारा यह आशय प्रकट किया जा रहा है कि परमशिव, जो वस्तुतः अमूर्त अशरीरी निराकार है, वही स्त्री-पुरुष आदि समस्त प्राणिमात्र के रूप में अवतीर्ण हुआ है।

हे महादेव! तुम **'विश्वतोमुख'** हो— तुम्हारा मुख सभी दिशाओं में है, तुम विश्व- व्यापक हो। तुम्ही स्त्री का अवतार लेते हो और तुम्हीं पुरुष का भी। तुम

CC0. In Public Domain. Jangamwadi Math Collection, Varanasi

Digitization by eGangotri and Sarayu Trust. Funding by MoE-IKS

विचित्रशक्तियोगात् विचित्रानाकारान् स्वीकृत्याऽवतिष्ठत इति प्रार्थनाद्वारा निवेद्यते। एवं परशिवस्य सर्वात्मकत्वं वर्धिष्णुभिर्ज्ञेयमित्याशयः।।३।।

न केवलं स्त्रीपुरुषरूपपरिग्रह एव किन्तु जगद्रूपस्वीकारोऽपि अमूर्तपरमशिवस्य भक्तानुग्रहलीलाविनोद एवेत्यमुमाशयं विवृणोति—

नीलः पतङ्गो हरितो लोहिताक्ष-
स्तडिद्गर्भ ऋतवः समुद्राः।
अनादिमत्त्वं विभुत्वेन वर्तसे
यतो जातानि भुवनानि विश्वा।।४।।

'नील' इत्यादि। अयि सर्वव्यापक अमूर्तपरमशिव! त्वमेव **नीलः पतङ्गः** भ्रमरः। **हरितो लोहिताक्षः** शुकस्त्वमेव। **तडिद्गर्भो** मेघः, **ऋतवः** समुद्राः, एवं सर्वं त्वमेव। एवं सर्वरूपतया वर्तमानोऽपि **त्वं अनादिमत्** न आदिमत्। जगति वर्तमानस्य सर्वस्य वस्तुजातस्य त्वत्त एव समुत्पत्तेः, केनाऽप्यनुत्पन्नस्य तव स्वयमवस्थानात् अनादिमत्त्वं स्वतः सिद्ध्यति। अत एव **त्वं विभुत्वेन**

बालक भी बनते हो और बालिका भी। तुम्ही जब जराजर्जर, वृद्ध हो जाते हो, तब दण्ड लेकर चलते हो। तुम युवा और वृद्ध दोनों हो। इस प्रकार तुम 'विश्वरूप' हो अर्थात् तुम समस्त जगत् के नानाविध रूप धारण करते हो। इस प्रकार समस्त जगत् का रूप धारण करते हुए सर्वत्र विश्व में अवतीर्ण हुए हो। परब्रह्म ही चित्र-विचित्र इच्छा-ज्ञान क्रियारूप त्रिविध शक्तियों के सम्बन्ध से चित्र-विचित्र आकारों में सर्वत्र प्रतिष्ठित है। प्रार्थनापूर्वक यह निवेदन परमेश्वर से किया जा रहा है। इस प्रकार सर्वस्वरूप परमशिव सभी की आत्मा है। यह तथ्य अपनी वृद्धि की कामना करनेवालों को समझना चाहिये यह इसका इसका आशय है।

मन्त्रार्थ— हे परमेश्वर! तुम्हीं स्त्री हो और तुम्हीं पुरुष। तुम बालक भी और बालिका भी। वृद्धावस्था में तुम दण्ड के सहारे चलते फिरते हो। इस प्रकार समस्त दिशाओं में 'समस्त मुख सम्पन्न तुम उत्पन्न हुए हो।।३।।

अवतरण— अमूर्त अशरीरी परमशिव केवल स्त्री-पुरुष आदि रूप ही स्वीकार नहीं करता, अपितु स्थावर जङ्गमात्मक जगत् का रूप भी धारण करता है, जो भक्तों पर अनुग्रह करने के लिये उसकी लीलामात्र है इस आशय को अग्रिम मन्त्र स्पष्ट कर रहा है—

'नीलः पतङ्गः' इत्यादि। हे सर्वव्यापक अमूर्त-निराकार परमशिव! तुम्हीं काले रङ्ग के भौंरे हो [**'पतनाद् गच्छतीति पतङ्गः'** इस निर्वचन के अनुसार नीचे गिरकर चलने (उडने) के कारण तुम्हारा 'पतङ्ग' नाम सार्थक है।] तुम्हीं हरे रंग के और

CC0. In Public Domain. Jangamwadi Math Collection, Varanasi

Digitization by eGangotri and Sarayu Trust. Funding by MoE-IKS

वर्तसे। नहि विभोराकाशस्य आदिरवसानं वा वर्तते। तद्वत् त्वमपि आद्यन्तहीनो विराजस एव। **यतो** यस्मात् त्वत्त एव **विश्वा भुवनानि** समस्तानि जगन्ति जातान्युत्पन्नानि। समस्तजगतामपि कारणभूतस्य तवाऽन्यत् कारणं वा नाशकं वा कथं सम्भवेदित्याशयः। एवं परमशिवस्य सर्वकारणत्वं व्यवस्थितमेव॥४॥

सर्वस्याऽपि परमशिवोपादनकत्वेन तदात्मकत्वे सिद्धे अत्रत्यानां पदार्थानां तारतम्यं बन्धमोक्षादिव्यवस्था वा कथं सम्भवेत्? इति शङ्कायाम् अजारूपेण वर्तमानां प्रकृतिमेव तयोः कारणमित्याह—

लाल आँखों वाले (शुक) पक्षी हो। (**'तडिद् गर्भे यस्य सः तडिद्गर्भः'** — जिसके भीतर आकाशीय बिजली रहती है, वह) मेघ तुम्हीं हो। **'ऋतवः'**-वसन्त, ग्रीष्म, वर्षा, शरद्, हेमन्त और शिशिर ये छः ऋतु तुम्ही हो। **'समुद्राः'**-तुम्ही सात समुद्र हो। **'त्वम् अनादिमत्'** — इस प्रकार जगत् के विविध रूपों में रहकर भी तुम्हारा किसी के भी आदि में जन्म नहीं हुआ। [अथवा सभी के आत्मस्वरूप होने के कारण तुम अनादि-अनन्त आदि—अन्तशून्य हो। **'यस्मात् त्वमेव सर्वस्याऽऽत्मभूतस्तस्मादनादिस्त्वमेवाऽऽद्यन्तशून्यः।'**— शांकरभाष्य। अथवा तुम उस अनादि प्रकृति के स्वामी हो, जिसे गीता में परा-अपरा कहा गया है।]

क्योंकि तुम से ही जगत् में वर्तमान सभी वस्तुओं की उत्पत्ति हुई है, तुम्हारी उत्पत्ति किसी के द्वारा भी नहीं हुई है, तुम स्वयम्भू हो, स्वतः तुम्हारी प्रतिष्ठा है इस प्रकार तुम्हारा 'अनादिभाव' स्वतः सिद्ध है। अतएव तुम **'विभु'** सर्वव्यापक रूप से रहते हो। सर्वव्यापक (विभु) आकाश का न तो आदि रहता है, और न अन्त। उसी प्रकार तुम भी आदिअन्तरहित सुशोभित हो। यतः तुमसे समस्त चतुर्दश भुवनों की उत्पत्ति हुई है। तुम समस्त जगत् के उत्पत्तिकारण हो, तुम्हारा भला कोई दूसरा जनक अथवा संहारक कारण कैसे हो सकता है? इस प्रकार परमशिव की सर्वकारणता प्रमाणित होती है।

मन्त्रार्थ— हे परमशिव! तुम्ही नीले भौरे, लाल आँखोंवाले हरे शुक, मेघ, षड् ऋतु और सप्त समुद्र हो। तुम अनादि-अनन्त हो। तुम्हीं सर्वव्यापक 'विभु' रूप से रहते हो। यतः तुम्हारे द्वारा ही चतुर्दश भुवनों की उत्पत्ति हुई है।।४।।

अवतरण— समस्त पदार्थ परमशिव का उपादान होने के कारण शिवस्वरूप सिद्ध होते हैं। अत; यह प्रश्न स्वाभाविक है कि इन पदार्थों का सरलतम भाव अथवा बन्ध-मोक्ष आदि की व्यवस्था किस प्रकार हो सकती है? इस प्रश्न का समाधान यह है कि अजा (बकरी) के रूप में वर्तमान प्रकृति ही उनके बन्ध और मोक्ष में कारण है। इसी तथ्य को वेदमाता इस प्रकार प्रकट कर रही है—

CC0. In Public Domain. Jangamwadi Math Collection, Varanasi

Digitization by eGangotri and Sarayu Trust. Funding by MoE-IKS

अजामेकां लोहितशुक्लकृष्णां
बह्वीः प्रजाः सृजमानां सरूपाः।
अजो ह्येको जुषमाणोऽनुशेते
जहात्येनां भुक्तभोगामजोऽन्यः।।५।।

जगदुत्पत्तिप्रकारं जगत्स्वरूपं च विशदयति **'अजामि'**त्यादि। **लोहितशुक्लकृष्णां** सत्त्वरजस्तमोगुणविशिष्टाम्। लोहितपदेन रजोगुणस्य, शुक्लपदेन सत्त्वगुणस्य, कृष्णपदेन तमोगुणस्य च सङ्ग्रहः। **बह्वीः सरूपाः प्रजाः** सत्त्वरजस्तमोमयान्येव नानाविधानि कार्यवर्गाणि **सृजमानाम् एकाम् अजां** विकारसत्त्वेऽपि सनातनीं सहजतया विराजमानां प्रकृतिम्। **एको हि अजः** संसारी चेतनो जीवः **जुषमाणः** सेवमान एव प्रकृतिमाश्रित्य वर्तमानः **अनुशेते** अनुभवतीति भावः। **अन्यस्तु** अजः मुमुक्षुत्वेन **भुक्तभोगां** प्रकृतिभोगात् भुक्त्वा विरक्तत्वात् पुनर्भोगेच्छाया अभावाद् अनुभूतविषयाम् **एनां** अजां प्रकृतिं **जहाति**।

एवं च जगति लौकिकविषयासक्ताश्चेतनाः तत्रैव मोहात् परिभ्रमन्तः संसारिणो भवन्ति। ये तु विवेकिनः प्रकृतिसम्बद्धानां भोगानां सर्वेषां नश्वरत्वाल्पत्वादिकं जानन्ति ते प्रकृतिभोगानासक्तास्तं भोगं परमशिवप्रसादरूपेण उपयुञ्जन्तः भोगव्यामोहं परित्यजन्ति त एव मुमुक्षवः। अतश्च लोके भोगसामग्रीरूपा

'अजामेकाम्' इत्यादि। इस मन्त्र में जगत् की उत्पत्ति और उसके स्वरूप का विशद वर्णन है। प्रकृति **'अजा'** (बकरी) है। वह लाल-सफेद और काले रंग की है, क्योंकि सत्त्व-रज और तम तीन गुणों से वह सम्पन्न है। यहाँ 'लोहित', 'शुक्ल' और 'कृष्ण' पद से यथाक्रम रजोगुण, सत्त्वगुण और तमोगुण का संग्रह हो रहा है। अतएव वह अपने गुणानुरूप नानाविध प्रजा (कार्यवर्ग) को जन्म देती है। जिस प्रकार जीव और शिव **'अज'** (जन्मरहित बकरे) हैं, उसी प्रकार एकाकिनी प्रकृति भी 'अजा' ((१) जन्मरहित, (२) बकरी) है। उस 'अजा' का एक **'अज'** संसारी चेतन जीव बारंबार उपभोग करता है। (भोगी जीव विषयासक्त रहता है।) दूसरा मुमुक्षु जीव विषयोपभोग के पश्चात् विरक्त होने के कारण, पुनः भोगेच्छा के अभाव में उपभुक्त 'प्रकृति' (अजा) का परित्याग करता है।

इसप्रकार संसारचक्र में लौकिक विषयों में आसक्त चेतन जीव वहीं मोह से चक्कर लगाने के कारण 'संसारी' (संसरणशील) होते हैं। जो विवेकशील (प्रकृति-पुरुषविवेक करते हुए) प्रकृति से सम्बद्ध सभी भोग्य पदार्थों की नश्वरता-स्वल्पता

CC0. In Public Domain. Jangamwadi Math Collection, Varanasi

Digitization by eGangotri and Sarayu Trust. Funding by MoE-IKS

प्रकृतिः, भोगासक्ताः **पशुजीवाः**, भोगव्यामोहरहिता **मुमुक्षव** इति पदार्थत्रयं सन्दृश्यते। **प्रकृतिः** सर्वेषामाकर्षकतया सर्वांश्च जीवान् तदीयैर्गुणैर्बध्नन्ती स्ववशांश्च रूपरसगन्धस्पर्शशब्दैर्मोहयन्ती वर्तते। तद्वशंगताश्च **बद्धजीवाः** प्रकृतिदत्तान् भोगानुभवन्तः कालयापनां कुर्वन्ति। प्रकृतिभोगमनुभूय समधिगतवैराग्यास्तत्त्वज्ञाननिष्णाता बुद्धजीवास्तु **आत्मारामा** वर्तन्ते। एवं जगत् प्रकृत्या उभयविधेन जीववर्गेण च समावृतं सद् भोगत्यागयोरप्याश्रयभूतं कार्यक्षेत्रं सम्पद्यते। अस्मिंश्च जगति जीववर्गेषु विद्यमानस्य तारतम्यस्य प्रकृतिरेव कारणत्वेन व्यवस्थाप्यते। अत्र विद्यमानं सर्वमपि वैविध्यं प्रकृतिकृतमेव। यैश्च जीवैः प्रकृतिर्विश्रान्तिनिदानत्वेनाऽऽश्रीयते ते सर्वेऽपि दुःखभागिन एव भवन्ति। प्रकृतिभोगः सद्यः सुखमयोऽप्यन्ते दुःखकार्येव।

> **''ये हि संस्पर्शजा भोगा दुःखयोनय एव ते।**
> **आद्यन्तवन्तः कौन्तेय! न तेषु रमते बुधः।।''** (५.२२)

आदि वास्तविक तथ्य जानते हैं, वे प्रकृति के भोग्य पदार्थों के प्रति अनासक्त रहते हुए उस उपभोग्य पदार्थ को परमशिव के प्रसाद के रूप में ग्रहण करते हुए भोग व्यामोह को छोड़ देते हैं और वास्तविक 'मुमुक्षु' होते हैं। अतएव समस्त लोक में तीन पदार्थ देखे जाते हैं— भोगसामग्री के स्वरूप में प्रकृति, भोगासक्त अज्ञानी 'पशु' जीव और भोग के व्यामोह से रहित 'मुमुक्षु'। इनमें (भोग्य सामग्री के रूप में अवतीर्ण) प्रकृति सभी जीवों को अपने आकर्षक स्वरूप के कारण अपने गुणों के पाशों से बान्धती हुई और अपने अधीन वश में रहने वाले जीवों को रूप-रस-गन्ध-स्पर्श-शब्द इन विषयों से मोहित करती है। उसके वश में होने वाले बद्ध जीव प्रकृतिप्रदत्त भोगों को भोगते हुए व्यर्थ काल का अपव्यय करते हैं। जो प्रकृति का उपभोग करके वैराग्य प्राप्त करते हैं, तत्त्वज्ञानी वे प्रबुद्ध जीव 'आत्माराम' होते हैं। इस प्रकार भोग्यपदार्थस्वरूपा प्रकृति और द्विविध जीवसमुदाय से घिरा हुआ समस्त जगत् भोग और त्याग का आश्रयभूत कार्यक्षेत्र बन जाता है और इस जगत् में जीववर्गों में जो तारतम्य अथवा विषमता दृष्टिगोचर होती है, उसका कारण प्रकृति ही मानी जाती है। इस जगत् में विद्यमान समस्त विविधता प्रकृति-निर्मित ही है और जो जीव प्रकृति को निदान के रूप में अपनी विश्रामस्थली बनाते हैं, वे सभी दुखी होते हैं प्रकृति का उपभोग तात्कालिक क्षणिक सुखावह होने पर भी अन्त में दुखदायी होता है। **''ये हि संस्पर्शजा भोगाः''** इत्यादि पद्य (५.२२) में **श्रीमद्भगवद्गीता** प्रकृति के उपभोगों को दुःखयोनि, दुःख का जनक स्वीकार करती है। जैसा कि इसका हिन्दी पद्यानुवाद है—

CC0. In Public Domain. Jangamwadi Math Collection, Varanasi

Digitization by eGangotri and Sarayu Trust. Funding by MoE-IKS

इति **गीता** प्रकृतिभोगानां दुःखयोनित्वं सम्यक् प्रतिपादयति। अतश्च जगतः सर्वस्य परशिवब्रह्मात्मकत्वेऽपि तत्र विद्यमानं तारतम्यादिकं वैचित्र्यं

''जो बाहरी संयोग से हैं भोग दुखकारण सभी।
है आदि उनका अन्त, उनमें विज्ञ नहिं रमते कभी।।'' *(श्रीकृष्णगीता ५.२२)*

अतः समस्त जगत् के परशिवब्रह्मरूप होने पर भी वहाँ विद्यमान तारतम्य-विषमता आदि, विचित्रता और विविधता प्रकृतिप्रदत्त ही होती है, यह समझना चाहिये। इस प्रकार परम शिव की निर्विकारता व्यवस्थित की गयी है।

[**शांकरभाष्य** के अनुसार इस मन्त्र में उस प्रकृति का चित्रण किया गया है, जो **'छान्दोग्योपनिषद्'** में प्रसिद्ध है। वहाँ तेज-जल और अन्न को प्रकृति का लक्षण कहा गया है। इस मन्त्र में श्लिष्ट-रूपक द्वारा प्रकृति का चित्रण है; क्योंकि **'अजा'** प्रकृति पर 'अजा' बकरी का आरोप है, दो 'अज' (बकरे) उसे देखते हैं, एक 'अज' भोगी (जीव) उसका उपभोग करता है, और दूसरा 'अज' (मुमुक्षु जीव) उसे छोड़ देता है।

यह मन्त्र **'महानारायणोपनिषद्'** (१.५) में भी उपलब्ध है। **'श्रीशैवभाष्य'** कार **श्रीवृषभेन्द्र पण्डित शिवाचार्य** की दृष्टि में यह मन्त्र पाश-पशु और पशुपतिस्वरूप तीन तत्त्वों का बोधक है— **''पाश-पशु-पशुपतिरूपतत्त्वत्रय-लक्षणबोधको मन्त्रोऽयम्''** यतः उसका जन्म नहीं होता, अतः प्रकृति 'अजा' है। जो जन्म लेता है, वह अनित्य होता है, यह व्याप्ति है, उससे भिन्न नित्य और सत्य है, यह इससे व्यञ्जित होता है— **''न जायते इत्यजा, ताम् अजाम्। 'यज्जन्यं तदनित्यमिति व्याप्तिसत्वात् तद्भिन्नबोधनार्थ 'मजे'त्युक्तम्। एतेन प्रकृतेरपि सत्यत्वमुक्तम्।''**

वह प्रकृति अकेली, मुख्य तथा शुद्धसत्त्वप्रधान है— **'एकां मुख्यां शुद्धसत्त्वप्रधानाम्।'** वह तीन रंगों वाली अर्थात् त्रिगुणात्मिका अथवा ब्रह्मदेव, विष्णु और कालरुद्र त्रिदेवमयी है— **''लोहितशुक्लकृष्णां सत्त्वरजस्तमोरूपां ब्रह्मविष्णुकालरुद्ररूपां वा।''**

वहाँ **'बह्वीं' प्रजां जनयन्तीं सरूपाम्'** पाठ स्वीकृत है। तदनुसार उसका अर्थ है— 'वह अपने अनुरूप प्रजा की सृष्टि करती है।' वहाँ एकवचन जातिबोधक है। साथ ही इसका अर्थ यह है कि पुरुष साक्षात् सृष्टि नहीं कर सकता, अपितु अपनी अधिष्ठानभूता शक्ति की सहायता से सृष्टि करता है। इससे सत्यत्व जडत्व आदि प्रकृति का लक्षण निश्चित होता है— **''एतेन सत्यत्वजडत्वादिकं प्रधानस्य लक्षणमित्युक्तं भवति।''**

CC0. In Public Domain. Jangamwadi Math Collection, Varanasi

Digitization by eGangotri and Sarayu Trust. Funding by MoE-IKS

वैविध्यं च प्रकृतिकृतमेवेति भाव्यम्। तथा च परमशिवस्य निर्विकारत्वं व्यवस्थाप्यते।।५।।

एवं सामान्यतो जगद्वैविध्यकारणमुक्त्वा जीवेश्वरयोः तारतम्यस्य कारणं, तन्निवृत्त्युपायं च तौ पक्षित्वेन निरूपयन्नाह—

द्वा सुपर्णा सयुजा सखाया
समानं वृक्षं परिषस्वजाते।
तयोरन्यः पिप्पलं स्वाद्वत्त्य-
नश्नन्नन्यो अभिचाकशीति।।६।।

द्वा सुपर्णा इति। **सयुजा** सयुजौ सर्वदा सहैव विद्यमानौ। **सखाया** सखायौ परस्परमित्रभूतौ समानजातीयतया सम्बद्धौ। **द्वा** द्वौ **सुपर्णा** सुपर्णौ पक्षिणौ जीवपरमात्मानौ **समानमेकं वृक्षं** शरीराख्यं फलभोगाश्रयं वृक्षं **परिषस्वजाते**

श्रीशैवभाष्य में **'अजो ह्येकः'** और **'अजोऽन्याः'** का अर्थ 'भोगी' और 'मुमुक्षु जीव' न करते हुए यथाक्रम जीव और उससे भिन्न परमेश्वर (शिव) किया गया है— **'एकोऽजः जीवः.....अन्यः जीवाद् भिन्नः परमेश्वरः।''**

इस प्रकार यह मन्त्र पाश, पशु और पशुपतिस्वरूप तत्त्वत्रय का प्रतिपादक है।

श्री वाचस्पति मिश्र ने अपनी **'सांख्यतत्त्वकौमुदी'** का श्रीगणेश इस मन्त्र के मङ्गलाचरण से किया है।]

मन्त्रार्थः— यह जगत् प्रकृति और उभयविध जीव वर्ग से घिरा हुआ है। त्रिगुणात्मिका प्रकृति नानाविध भोग्य पदार्थों की सृष्टि करती है। विषयासक्त जीव उनका उपभोग करते हुए संसारचक्र में भ्रमण करता है। मुमुक्षु जीव उनकी नश्वरता समझकर भोग्य पदार्थों को शिवप्रसाद के रूप में ग्रहण करता है।।५।।

अवतरण— इस प्रकार वेदमाता सामान्य रूप से जगत् की विविधता का कारण निरूपित करते हुए जीव एवं ईश्वर के तरतमभाव अथवा विलक्षणता का कारण और उसकी निवृत्ति के उपाय का निरूपण जीव और ईश्वर का दो पक्षियों के रूप में प्रतिपादन करती हुई कहती है—

'द्वा सुपर्णा' इत्यादि। [यह मन्त्र 'मुण्डकोपनिषद्' (३.१.१) में उपलब्ध है। इस उपनिषद् के **वीरशैवभाष्यकार उमचिगि शंकरशास्त्रीजी** और 'शांकरभाष्य' के विवरणकार **आनन्दगिरि** लिखते हैं— **'द्वा सुपर्णे'त्यादौ द्विवचनास्याऽऽकारश्छान्दसः।''**

CC0. In Public Domain. Jangamwadi Math Collection, Varanasi

Digitization by eGangotri and Sarayu Trust. Funding by MoE-IKS

परिष्वक्तवन्तौ समाश्रितन्तौ। **तयोः** जीवपरमयोर**न्यः** अन्यतरो जीवः **पिप्पलं** कर्मफलं **स्वादु** यथा तथा **अत्ति** भुङ्क्ते; शरीरसंसर्गाधीनं फलमेव भोग्यं मन्वानस्तदेवानुभवन् वर्तते। **अन्यः** परमात्मा परमशिवस्तु **अनश्नन्** कर्मफलमभुञ्जान एव निर्लिप्ततया जीवकर्मसाक्षी सन् **अभिचाकशीति** सर्वमपि पश्यन्नेव सदैकरूपो निर्विकारतया प्रकाशते।

''गुहां प्रविष्टावात्मानौ हि तद्दर्शनात्'' इति **ब्रह्मसूत्रे** (१.२.११) एकस्मिन्नेव शरीरे हृदयगुहायां भोक्ता जीवः, तदन्तर्यामी तत्कर्मप्रेरयिता परमात्मा च वर्तते इत्यादि सम्यक् विचारतिमेव॥६॥

इस मन्त्र में द्विवचन के अन्तर्गत आकार का प्रयोग वैदिक है। लौकिक संस्कृत में इसका प्रयोग होगा— **''द्वा सुपर्णौ सयुजौ सखायौ''**] **'सयुजा' 'सखाया'** = परस्पर मित्र के रूप में सर्वदा साथ में रहने वाले, समान जाति के होने के कारण परस्पर सम्बद्ध, **'द्वा'** = दो, **'सुपर्णा'** = सुन्दर पंखवाले दो पक्षी जीव और परमेश्वर, **'समानम्'** = एक **'वृक्षम्'** = शरीर नामक कर्मफलभोग के आश्रयस्वरूप वृक्ष का, **'परिषस्वजाते'** =आलिङ्गन करते हैं, उनसे सम्बद्ध होते हैं। **'तयो अन्यः'** = उन दोनों— जीव और शिव में से एक जीव, **'पिप्पलम्'** = कर्मफल का **'स्वादु अत्ति'** = आसक्त होकर उपभोग करता है। शरीरसम्पर्क के अधीन फल को ही भोग्य मानकर उसका रसास्वाद लेता है। **'अन्यः'** = दूसरा परशिवस्वरूप परब्रह्म परमात्मा तो, **'अनश्नन्'** = कर्मफल का बिना भोग किये ही निर्लिप्त भाव से जीवात्माओं के कर्मों का साक्षी होकर, **'अभिचाकशीति'** = सदा निरीक्षण करते हुए निर्लिप्त रूप से प्रकाशित होता है।

''गुहां प्रविष्टावात्मानौ हि तद्दर्शनात्'' (१.२.११) इस प्रकार ब्रह्मसूत्र में एक ही शरीर के अन्तर्गत उसकी हृदयगुफा में भोक्ता जीव और उसका अन्तर्यामी उसके कर्मों का प्रेरक परमेश्वर दोनों रहते हैं इत्यादि सम्यक् रूप से विचार किया गया है।

['शांकरी व्याख्या'कार **'उमचिगि शंकरशास्त्री** जी के अनुसार इस सूत्र का अर्थ इस प्रकार है— जीवात्मा और परमात्मा (शिव) दोनों शरीर की हृदयगुफा में एक साथ प्रविष्ट है। जैसा कि **'यो वेद निहितं गुहायां परमं व्योमन्' 'आत्मानमन्विच्छ गुहां प्रविष्टम्'** इत्यादि श्रुतिवचनों में जीव के साथ परमेश्वर के भी हृदयरूपी गुफा में प्रवेश का प्रतिपादन दृष्टिगोचर होता है।

उमचिगि शंकरशास्त्री जी 'मुण्डकोपनिषद्' के **वीरशैवभाष्य** में **'द्वा सुपर्णा सयुजा सखाया'** इत्यादि मन्त्र व्याख्या करते हुए कहते हैं कि— 'शिव

CC0. In Public Domain. Jangamwadi Math Collection, Varanasi

Digitization by eGangotri and Sarayu Trust. Funding by MoE-IKS

ननु यदि उभावपि एकशरीराश्रितौ तर्हि एकस्यैव कर्मफलानुभवः अन्यस्य नेति भावयितुं किं प्रमाणम्? कश्चात्र हेतुरित्याशङ्कायामाह—

समाने वृक्षे पुरुषो निमग्नोऽ-
नीशया शोचति मुह्यमानः।
जुष्टं यदा पश्यत्यन्यमीश-
मस्यमहिमानमिति वीतशोकः।।७।।

'समाने वृक्ष' इति। **समाने** एकस्मिन्नेव **वृक्षे** शरीराख्ये **पुरुषः** कर्मफलभोक्ता जीवः **निमग्नः** नितरां मग्नः कर्मफलभूतशरीराख्यप्रकृत्यधीनः सन् भोगासक्तः

और जीव वे दोनों मित्र इसलिये हैं कि यद्यपि दोनों में विलक्षणता है— जीव अल्प है और शिव सर्वज्ञ, जीव का कर्तृत्व सीमित है, शिव सब कुछ कर सकता है। जीव प्रेरित है, शिव उसका प्रेरक है। जीव पूजक है और शिव पूजनीय। इतनी विलक्षणता होने पर भी ज्ञानक्रियात्मक चेतनधर्म में दोनों की समानता है अतः वे दोनों सखा हैं— **"सखाया = सखायौ सदृशौ, किञ्चिज्ज्ञत्व-किञ्चित्कर्तृत्व-सर्वज्ञत्व-सर्वकर्तृत्व-प्रेर्यत्व-प्रेरकत्व-पूजकत्वपूज्यत्वादिना परस्परभेदेऽपि ज्ञानक्रियात्मक-चैतन्येन सामान्यधर्मेण तयोर्भेदाभावात् सदृशरूपावित्यर्थः।"**

'सूतसंहिता' में इस मन्त्र का उपबृंहण इस प्रकार है—

"द्वौ सुपर्णौ शरीरेऽस्मिन् जीवेशाख्यौ व्यवस्थितौ।
तयोर्जीवः फलं भुङ्क्ते कर्मणो न महेश्वरः।।"

इस मन्त्र में रूपकातिशयोक्ति अलंकार है।]

मन्त्रार्थः— समानजाति के सुन्दर पंखवाले दो पक्षी जीव और शिव एक ही शरीररूपी वृक्ष का आश्रय लेकर रहते हैं, जिनमें एक जीव कर्मफल का आस्वाद लेता है। दूसरा शिव उसका उपभोग नहीं करता। वह मात्र उसका साक्षी बनकर प्रकाशित होता है।।६।।

अवतरण— अब यह प्रश्न उपस्थित होता है कि जीव और शिव दोनों ही यदि एक ही शरीर का आश्रय लेते हैं, तब केवल एक जीव को कर्मफल का अनुभव होता है और दूसरे शिव को नहीं, इस प्रकार की कल्पना करने के लिये क्या प्रमाण है और उसमें क्या हेतु है? इसका उत्तर श्रुतिमाता इसप्रकार दे रही है—

'समाने वृक्षे' इत्यादि। **'समाने वृक्षे'** = एक ही शरीर नामक वृक्ष पर (रहने वाला) **'पुरुषः'** = कर्मफलों का भोक्ता जीव, **'निमग्नः'** = अत्यन्त मग्न होते हुए,

CC0. In Public Domain. Jangamwadi Math Collection, Varanasi

Digitization by eGangotri and Sarayu Trust. Funding by MoE-IKS

कालं यापयति। अत **एवाऽनीशया** कर्मपरवशत्वादशक्ततया एतादृशदौर्बल्येन **मुह्यमानः** भोगायतने शरीरेऽत्यभिमानेन स्वरूपज्ञानं विनैव कृत्याकृत्यविवेकहीनो मूढः सः **शोचति** दुःखमनुभवति ; सुखानुभवसमयेऽपि तत्संवलितस्य दुःखस्य निरीक्षणेन तदानीमपि दुःख्येव वर्तते।

ये हि संस्पर्शजा भोगा दुःखयोनय एव ते। (गीता ५/२२)

इति परमात्मनैव सुखस्य दुःखयोनित्वं सम्यगभिहितम्। अत एव **"जीवत्वं दुःखसर्वस्वम्"** (१८.१७) इति **सिद्धान्तशिखामणौ** दुःखसागरमग्नत्वं जीवस्य यल्लक्षणमभिहितं तद् युज्यते। तथा च जीवपरमेश्वरयोरुभयोरपि शरीरस्थत्वेऽपि जीवस्य कर्मपरवशत्वमेव दुःखहेतुः; परमात्मनस्तु तदभावात् न शरीरसम्बन्ध-प्रयुक्तदुःखाद्यनुभव इत्युक्तं भवति।

ननु तर्हि कथमस्मात् शोकाद् अयं जीवो वियुक्तो भवतीत्याह— **'जुष्टमि'**त्यादि। अयं जीवः **अन्यमीशं** परमात्मानं सर्वप्रेरकं **जुष्टं** स्वीयकर्मणा

कर्मफलों के परिणामस्वरूप प्राप्त शरीर नामक प्रकृति के वश में होते हुए विषयासक्त होकर व्यर्थ कालयापन करता है। अत एव **'अनीशया'** = कर्माधीनता के कारण असमर्थ भाव से, एक प्रकार की दुर्बलता से, **'मुह्यमानः'** = भोगायत शरीर में अत्यन्त अभिमान के कारण आत्मस्वरूप को जाने बिना ही, क्या कर्तव्य है अथवा क्या नहीं इस विवेक से शून्य मूढ़ होकर, **'शोचति'** = शोक करता है। सुख का उपभोग करते समय उससे मिश्रित दुःख को देखने से वह दुःख का ही अनुभव करता है।

"ये हि संस्पर्शजा भोगा दुःखयोनय एव ते" (गीता ५.२२)

इस प्रकार परमात्मा ने ही समीचीन रीति से सुख को दुःख का कारण निरूपित किया है। अत एव **"जीवत्वं दुःखसर्वस्वम्"** इत्यादि पद्य द्वारा **सिद्धान्तशिखामणि** ग्रन्थ में जीव का जो लक्षण दुःखसागर में मग्न होना लक्षित किया है, वह उपयुक्त है।

[यह अर्द्धपद्य और उसका आशय इस प्रकार है—

"जीवत्वं दुःखसर्वस्वं तदिदं मलकल्पितम्।"

(सि.शि.म. १८.१७)

जीव को प्राप्त होने वाला दुःखसर्वस्व जीव का धर्म माना जाता है और वह आणव, मायीय और कार्मिक अज्ञानमलों से कल्पित होता है।]

इस प्रकार जीव और परमेश्वर दोनों के द्वारा एक शरीर का आश्रय लेने पर भी कर्मों की अधीनता ही जीव का दुःखहेतु है। कर्मफलों से परमात्मा का सम्बन्ध न होने

CC0. In Public Domain. Jangamwadi Math Collection, Varanasi

Digitization by eGangotri and Sarayu Trust. Funding by MoE-IKS

सम्यक् प्रीतं, अनेकजन्मसुकृतफलवशात् परमकारुणिकेन केनचित् तत्त्वदर्शिना गुरुणा दर्शितयोगमार्गेण ईश्वरानुग्रहलब्धया भक्त्या च प्रसादितं तमेव परमेश्वरमिति भावः। एतादृशं महामहिमातिशयं कृपासमुद्रं परमेश्वरं यदा **पश्यति** साक्षात्करोति, एवं **चास्य परमेश्वरस्य महिमानम् इति** उक्तप्रकारेण, कर्मानधीनत्वसर्वसाक्षित्व-भूतयोनित्वसर्वानुग्राहकत्वादिमहिमानं च **यदा पश्यति** विश्वासपूर्वकं मनसि दृढं भावयति तदा सः दुःखान्तं गच्छति।

एतेन सविशेषपरमात्मनो ज्ञानमेव मुक्तिहेतुरिति स्पष्टमुक्तं भवति। जगद्व्यापारनिर्वाहः, निर्विकारत्वम्, सर्वयोनित्वम्, आत्माभिरामत्वम् इत्यादयः सर्वे धर्मा सविशेषब्रह्मण्येव सम्भवन्ति। एते च धर्माः परमात्मनि प्राणरूपस्य शक्तिविशेषस्य सान्निध्यादेव कार्यकारिणः सम्पद्यन्ते। एवं च यदा जीवः तादृशं शक्तिविशिष्टं परशिवब्रह्म योगेन भक्त्या च पश्यति तदा सः **वीतशोकः** विगतदुःखो मुक्तो भवति। तथा च परमकारुणिकगुरूपदिष्टयोगप्रसन्नपरमात्म-साक्षात्कार एव मुक्तिहेतुरित्युक्तं भवति। इदमेवोत्तरत्राऽपि विशदीक्रियते **"तमेव विदित्वाऽतिमृत्युमेति नान्यः पन्था विद्यन्तेऽयनाय।"** (श्वे.उ. ६.१५) इति। एवं च पिण्डाण्डे ब्रह्माण्डे च लोके जीवपरमात्मनोरुभयोरप्यवस्थानं तावतीत्य

के कारण शरीरसम्बन्ध से होने वाले दुःख का अनुभव उसे नहीं होता। [क्योंकि शरीर ही भोग का घर है— **'भोगायतनं शरीरम्'** (योगसूत्र)। कर्मफलों से जीव शरीर प्राप्त करता है। परमेश्वर स्वेच्छा से वह दिव्य शरीर ग्रहण करता है।]

फिर वह जीव उस शोक से किस प्रकार मुक्त होता है? इस प्रश्न का समाधान उत्तरार्द्ध में इस प्रकार है— **'जुष्टं यदा पश्यति'** इत्यादि। यह जीव, **'अन्यम् ईशम्'** = सर्वप्रेरक दूसरे पक्षी परमेश्वर, परमशिव को, **'जुष्टम्'** = अपने कर्मों से अच्छी तरह प्रसन्न होते हुए **'यदा पश्यति** = जब देखता है। जन्मजन्मान्तर के सुकृत पुण्यों के फल से किसी अत्यन्त दयालु कोई तत्त्वज्ञानी महात्मा सद्गुरु जब योगसाधनामार्ग का उपदेश करता है अथवा ईश्वर के कृपाप्रसाद से प्राप्त भक्ति जब जीव में जागृत होती है, तब परमेश्वर प्रसन्न होते हैं, यह इसका आशय है। इस प्रकार प्रसन्न अत्यन्त महिमाशाली परमशिव का जब जीव साक्षात्कार करता है; **'अस्य (च) महिमानं (यदा पश्यति)'** = और उसकी कर्म के अधीन न होना, सर्वसाक्षी बनना, सर्वप्राणियों की जनकहेतुता, सभी पर अनुग्रहशालिता आदि महिमा का जब साक्षात्कार करता है, श्रद्धा-विश्वासपूर्वक मन में परमेश्वर की दृढ़ भावना करता है, **"इति वीतशोकः (भवति)"** = तब उस जीव के सर्वविध दुःखों का अन्त होता है।

CC0. In Public Domain. Jangamwadi Math Collection, Varanasi

Digitization by eGangotri and Sarayu Trust. Funding by MoE-IKS

अमूर्तपरमात्मनः स्थितिं च भगवद्गीता सम्यगाविष्करोति—

"द्वाविमौ पुरुषौ लोके क्षरश्चाऽक्षर एव च।
क्षरः सर्वाणि भूतानि कूटस्थोऽक्षर उच्यते।।
उत्तमः पुरुषस्त्वन्यः परमात्मेत्युदाहृतः।
यो लोकत्रयमाविश्य बिभर्त्यव्यय ईश्वरः।।
यस्मात् क्षरमतीतोऽहमक्षरादपि चोत्तमः।
अतोऽस्मि लोके वेदे च प्रथितः पुरुषोत्तमः।।" इति।

(गीता, १५.१६-१८)

इससे यह स्पष्ट प्रतिपादित किया गया है कि सोपाधिक (शक्तिविशिष्ट) परमात्मा का ज्ञान ही मुक्ति का हेतु है। जगत् के व्यवहार का निर्वाह, निर्विकार रहना, सभी की जनकहेतुता, स्वस्वरूप में रमण करना इत्यादि सभी धर्म सविशेष (सोपाधिक) परशिव परब्रह्म में ही सम्भव है। ये सभी विशेषताएँ परमात्मा में विशिष्ट प्राणशक्ति के सान्निध्य से ही कार्यक्षम होती हैं। एवं च जब जीव अपनी योगसाधना और भक्ति के द्वारा उन विशेषताओं से सुशोभित प्राणशक्तिविशिष्ट परशिव ब्रह्म का साक्षात्कार करता है, तब वह त्रिविध दुःखमुक्त होता है। इस प्रकार यह सिद्ध होता है कि परम दयालु सद्गुरु द्वारा उपदिष्ट समाधियोग से प्रसन्न परमशिव का साक्षात्कार ही मुक्ति का कारण है।

इसी को आगे चलकर (षष्ठाध्याय के अन्तर्गत **'एको हंसो भुवनस्यास्य मध्ये'** इत्यादि मन्त्र के) **'तमेव विदित्वाऽतिमृत्युमेति नाऽन्यः पन्था विद्यतेऽयनाय'** (६.१५) इस उत्तरार्ध में स्पष्ट किया गया है। इस प्रकार विश्व के पिण्डाण्ड और ब्रह्माण्ड दोनों में जीव और शिव दोनों की प्रतिष्ठा और उनसे परे अमूर्त अशरीरी परमात्मा की सत्ता **"द्वाविमौ पुरुषौ लोके"** इत्यादि श्रीमद्भगवद्गीता स्थित तीन पद्यों (१५.१६-१८) में वर्णित है।

इसका पद्यानुवाद इस प्रकार है—

"इस लोक में क्षर और अक्षर दो पुरुष हैं सर्वदा।
क्षर सर्वभूतों की कहा, कूटस्थ है अक्षर सदा।।
कहते जिसे परमातमा उत्तम पुरुष इनसे परे।
त्रैलोक्य में रह ईश अव्यय सर्व जग पोषण करे।।
क्षर और अक्षर से परे मैं श्रेष्ठ हूँ संसार में।
इस हेतु पुरुषोत्तम कहा था वेद लोकाचार में"।।

(श्रीकृष्णगीता १५.१६-१८)

CC0. In Public Domain. Jangamwadi Math Collection, Varanasi

Digitization by eGangotri and Sarayu Trust. Funding by MoE-IKS

अत्र निर्दिष्टौ पुरुषौ अङ्गलिङ्गाभिधौ जीवपरमात्मानौ। तयोः जीवः व्यवहारमग्नत्वात् संसारचक्रभ्रमणाच्च **'क्षर'** इत्यभिधीयते। अन्यस्तु तदभावाद् वशीकृतमायाशक्तित्वाज्जीवकर्मसाक्षितया देहस्थितोऽपि निर्विकारः **'अक्षर'** उच्यते। अपरस्तु परमात्मा एतद्रूपी सन्नपि एतदतीतः लोकमावृत्यापि अतिक्रान्त-लोकधर्मा **''सत्यात्म प्राणारामं मन आनन्दम्''** इत्यादिश्रुतिप्रतिपादितया दिशा सर्वमुक्ताश्रयभूतः, **'प्रपञ्चोपशमं शान्तं शिवमद्वैतं चतुर्थं मन्यन्ते'** इति श्रुतिनिर्दिष्टत्रिमूर्त्यतीतपरमशिवाख्यया अमूर्तस्थित्या परिशोभमानः **अखण्डलिङ्गं स्थलमित्यादिव्यवहारयोग्यः** सम्पद्यते। एवं च पिण्डाण्डे देहे, ब्रह्माण्डे विश्वे च परमात्मसान्निध्यात् तत्परिचयेन जीवः दुःखान्मुक्तो भवितुमर्हत्येव। अत एव **सिद्धान्तशिखामणिः** (जीवदुःखं) **''निरस्यते गुरोर्बोधात्''** (१८.१७) इति सम्यगुपदिशति। **''तदिदं मलकल्पितम्''** इत्युक्त्वा जीवदुःखस्य मूलभूतं

इन पद्यों में वर्णित दो पुरुषों में एक जीव और दूसरा परमात्मा है, जिनके नाम क्रमशः अङ्ग और लिङ्ग हैं। उन दोनों में जीव सांसारिक व्यवहारों में मग्न (लिप्त) रहने के कारण **'क्षर'** (ह्रासोन्मुख) कहा जाता है। दूसरा शिव तो उनसे अलिप्त रहने के कारण समस्त मायाशक्ति को अपने वश में करता है, जीव के कर्मफलों का साक्षी होता है, देह में रहते हुए भी निर्विकार रहता है, अतः 'अक्षर' (क्षरणरहित या अविनाशी) कहा जाता है। इनसे भिन्न परमात्मा इस रूप में अवस्थित रहने पर भी इन दोनों से विलक्षण समस्त लोकों को आवृत करने पर भी लौकिक धर्मों का अतिक्रमण करते हुए **''सत्यात्मप्राणारामं मन आनन्दम्''** (परमशिव सत्यस्वरूप है, प्राणशक्ति में रमण करता है और मनोमय आनन्दमय है) इत्यादि मन्त्र में वर्णित रीति से सभी मुक्त जीवों का आश्रयस्थान है।

''प्रपञ्चोपमं शान्तं शिवमद्वैतं चतुर्थं मन्यन्ते'' [प्रपञ्च का शमन जिनमें होता है, वह शान्त द्वैतभावरहित तुरीय ब्रह्म शिव कहा जाता है।]

इस वेदमन्त्र में सङ्केतित त्रिमूर्ति (ब्रह्मा, विष्णु और कालरुद्र) से भी विलक्षण परमात्मा परमशिव अमूर्त (शरीररहित) स्थिति में विलास करते हुए **अखण्ड लिङ्गस्थल** इत्यादि नामों से व्यवहृत होता है। पिण्डाण्ड शरीर में और ब्रह्माण्ड विश्व में परमात्मा की निकटता के कारण उसके परिचय से जीव दुःखमुक्त होही सकता है। अत एव **'सिद्धान्तशिखामणि'** **'जीवत्वं दुःखसर्वस्वम्'** (१८.१७) इत्यादि पद्य में **'निरस्यते गुरोर्बोधात्'** इत्यादि उत्तरार्द्ध द्वारा यह उपदेश देती है कि सद्गुरु द्वारा प्रदर्शित ज्ञानदीप के आलोक से जीवों के दुःखों का निरसन होता है। वह ग्रन्थ यह

CC0. In Public Domain. Jangamwadi Math Collection, Varanasi

Digitization by eGangotri and Sarayu Trust. Funding by MoE-IKS

आणवादिमलत्रयसम्बन्धं च स एव निर्दिशति। एवं च मलपरिकल्पितं दुःखं गुरुबोधाद् विनश्यति। अयमेवाशयः **महात्मना बसवार्येणापि—**

''किमर्थमेतद् भवबन्धनं मे विनिन्दनादेव तु जङ्गमस्य।
तथैव लिङ्गस्य हि विस्मृतेश्च प्रागेव जन्मन्यभवद्भवाङ्कुरः।।
मया तु जन्मान्तर एव देवो ज्ञायेत चेदद्य कुतः पुनर्भवः।।''

इति सम्यगभिहितम्। एवं परमेश्वरानुभवेन जीवदुःखपरिहारमुक्त्वा तस्य बुद्धजीवस्य ज्ञानरूपतया प्रकाशनं **'ज्ञानशक्तिः प्रकाशते'** इत्युक्त्या **सिद्धान्तशिखामणिरेव** स्पष्टं प्रतिपादयति।।७।।

भी निर्देश करता है कि जीवों के दुःखों का मूल कारण आणव-मायीय और कार्मिक तीन अज्ञान-मलों का सम्बन्ध है— **'तदिदं मलकल्पितम्'**। इस प्रकार मलकल्पित दुःख का अन्धकार सद्गुरु द्वारा प्रकाशित ज्ञानदीप के प्रकाश से नष्ट होता है। इसी प्रकार का आशय **महात्मा बसवार्य** ने भी **''किमर्थमेतद् भवबन्धनं मे''** से लेकर **''ज्ञायेत चेदद्य कुतः पुनर्भवः''** तक **षट्पदी** में प्रकट किया है।

[इसका भाव इस प्रकार है— "आज मैं इस संसार के बन्धन में क्यों पड़ा हूँ? पूर्वजन्म में ही जङ्गमयोगी की निन्दा और इष्टलिङ्ग का विस्मरण करने के कारण ही मैं भवबन्धन में पड़ा। यदि मुझे पूर्वजन्म में परमशिव का साक्षात्कार होता, तो आज मेरा पुनर्जन्म कैसे होता?]

इस प्रकार, परमशिवस्वरूप परब्रह्म के तत्त्वज्ञानानुभव से जीव के दुःखों का परिहार करते हुए **'ज्ञानशक्तिः प्रकाशते'** इस चतुर्थ चरण के द्वारा उस प्रबुद्ध जीव का ज्ञानस्वरूप से प्रकाशन स्वयं 'सिद्धान्तशिखामणि' स्पष्ट कर रही है।

[यह मन्त्र **'मुण्डकोपनिषद्'** (३.१.२) में भी है। इस उपनिषद् के **वीरशैवभाष्यकार ब्रह्मश्री उपचिगि शंकरशास्त्री जी** मन्त्रावतरण में ही कहते हैं कि पुनश्च वह जीव **''चिद्वत्तच्छक्तिसङ्कोचान्मलावृतः संसारी''** इस शक्तिसूत्र की रीति से जब जीव त्रिविध मलों से आवृत होकर संसारचक्र में संसरण करता है, तब त्रिविध दुःखों की अग्नि से उसका शरीर जलता है। फिर परशिव के साक्षात्कार के पश्चात् वह सुखी होता है—

''पुनश्च स जीवः 'चिद्वत्तच्छक्तिसङ्कोचान्मलावृतः संसारी' **इति शक्तिसूत्रोक्तरीत्या घोरापारनिस्सारसंसारतापत्रयानलदन्दह्यमानो भूत्वा परशिवसाक्षात्कारानन्तरं परमसुखी भवतीत्याह।''**]

CC0. In Public Domain. Jangamwadi Math Collection, Varanasi

Digitization by eGangotri and Sarayu Trust. Funding by MoE-IKS

एवं परमेश्वरज्ञानमेव मुक्तिहेतुरित्युक्त्वा तादृशज्ञानिनं प्रस्तौति—

ऋचो अक्षरे परमे व्योमन्
यस्मिन् देवा अधि विश्वे निषेदुः।
यस्तं न वेद किमृचा करिष्यति
य इत् तद् विदुस्त इमे समासते।।८।।

'ऋचो अक्षर' इति। **'ऋच'** इति त्रय्या उपलक्षणम्। एवं वेदत्रयवेद्ये **अक्षरे** नाशरहिते सनातने **परमे व्योमन्** चिद्रूपे परमाकाशे। कीदृशे परमाकाशे

मन्त्रार्थ— (एक पक्षी शिव के साथ) एक ही शरीररूपी वृक्ष का आश्रय लेने वाला दूसरा पक्षी जीव संसारचक्र में मग्न होकर कर्मफलों के अधीन होने के कारण अशक्ति से मोहग्रस्त होकर शोक करता है। जब वह सद्गुरु के उपदेशमार्ग से चलने से उस पर प्रसन्न परमशिव और उसकी महिमा का साक्षात्कार करता है, शोकमुक्त होता है।।७।।

अवतरण— इस प्रकार परमेश्वर का साक्षात्कार ही मुक्ति का कारण होता है, यह कहकर अब वेदमाता उस प्रकार के ब्रह्मज्ञानी की स्तुति इस प्रकार कर रही है—

'ऋचो अक्षरे'' इत्यादि। **'अक्षर'** (क्षरणरहित) चिद्रूप परम **'व्योम'** आकाश परशिव ब्रह्म परमात्मा ही है, जो ऋचाओं अर्थात् वेदत्रयी द्वारा बोधगम्य है। **'ऋचः'** यह वेदत्रयी का उपलक्षण है। [आकाश के साथ परमात्मा की तुलना की जाती है— **'आकाशवत् सर्वगतश्च नित्यः'** जिस प्रकार आकाश सर्वव्यापक और नित्य है, उसी प्रकार परमात्मा भी सर्वव्यापक और नित्य है। जैसा कि इसी उपनिषद् में आगे चलकर **'यदा चर्मवदाकाशम्'** (श्वे.उ. ६.२७) इत्यादि मन्त्र में आकाश के साथ परमात्मा की तुलना की गयी है। किन्तु यह स्थूल दृष्टान्त है। क्योंकि आकाश भी परमात्मा से उत्पन्न है, उन दोनों में जन्यजनकभाव है। अंशस्वरूप होने के कारण आकाश भी परमात्मस्वरूप है। वस्तुतः सच्चिदानन्दस्वरूप परमशिव आकाश को भी व्याप्त करता है। अतः उन दोनों में व्याप्यव्यापकभाव भी है, परमात्मा व्यापक है और आकाश व्याप्य।

ॐकारस्वरूप परब्रह्म परमात्मा से समस्त वेदों और आगमों का उद्भव हुआ है। **'मुण्डकोपनिषद्'** में अपरा विद्या के अन्तर्गत समस्त वेदविद्या का इस प्रकार परिगणन किया गया है— **''तत्राऽपरा—ऋग्वेदो यजुर्वेदः सामवेदोऽथर्ववेदः शिक्षा कल्पो व्याकरणं निरुक्तं छन्दो ज्योतिषमिति''** (मु.उ.१.१.५)। सप्तमी एक वचन में **'व्योमन्'** इस प्रकार 'व्योमन्' शब्द का प्रयोग वैदिक है, लौकिक संस्कृत में उसका रूप होगा— **'व्योम्नि'**।]

CC0. In Public Domain. Jangamwadi Math Collection, Varanasi

Digitization by eGangotri and Sarayu Trust. Funding by MoE-IKS

इत्यत्र विवरणं **'यस्मिन्नि'**त्यादि। **यस्मिन्** परमाकाशे **विश्वे देवाः** सर्वे अपि देवाः **अधिनिषेदुः** आश्रितास्तिष्ठन्ति। सर्वं परमाकाशादिपदवाच्ये परमात्मन्येव तिष्ठति। अत एव सः प्रपञ्चविश्रान्तिभूतं सर्वाधारं **'स्थलमि'**त्यभिधीयते। सर्वेषां वस्तूनां लयगमनयोराश्रयः स एव **'लिङ्गमि'**त्यपि कथ्यते। एवं (तं) लिङ्गस्थलाभिधं परमात्मानं **यः न वेद** स्वहिताय स्वस्मिन्नेव सन्निहितं परमात्मानं यो न जानाति सः ऋचा वेदत्रयेणापि **किं करिष्यति**— परमात्मज्ञानविहीनस्य वेदाध्ययनं वृथेत्यर्थः।

''श्रुत्वापि किं स्यात् पठनाच्च किं स्यात् तथैव किं वा गणनाच्च भूयः।।
तथैव संख्यानवशाद्धि किन्नु सम्प्राप्यते दिक्षु विधावनाच्च।
त्यक्त्वा तु दोलायनमेव चित्तं समाश्रय त्वं गुरुसङ्गमार्थम्।।''

इत्यादिना **बसवार्यः** परमात्मशून्यस्य जीवनमेव निरर्थकमिति सम्यगावेदयति।

''यस्मिन् विश्वे देवा अधिनिषेदुः''— जिस परमाकाशस्वरूप सच्चिदानन्दात्मक परशिवब्रह्म परमात्मा का समस्त देवता आश्रय लेते हैं। समस्त जगत् 'परमाकाश' आदि नामों से सङ्केतित परब्रह्म परमात्मा में ही वास करता है। अत एव समस्त प्रपञ्च का विश्रामस्थान और सर्वाधार होने के कारण परशिवस्वरूप परमात्मा को **'स्थल'** भी कहा जाता है।

सभी का विलय और गमन का आश्रयस्वरूप होने के कारण परमात्मा को 'लिङ्ग' भी कहते हैं। [जैसा कि 'सिद्धान्तशिखामणि' का वचन है—

''ब्रह्मविष्ण्वादयो देवाः सर्वे वेदादयस्तथा।
लीयन्ते यत्र गम्यन्ते तल्लिङ्गं ब्रह्म केवलम्।।''

सि.शि.म. १२.३३]

''यस्तं न वेद किमृचा करिष्यति?''—इस प्रकार जो अपने हित के लिये और अपनी ही हृदयगुफा में प्रकाशमान 'लिङ्ग' और 'स्थल' नाम से सम्बोधित परमशिवस्वरूप अमूर्त परब्रह्म परमात्मा का साक्षात्कार नहीं करता, वह वेदत्रयी द्वारा अपना प्रयोजन किस प्रकार सिद्ध करेगा? परमात्मतत्त्वज्ञानशून्य जीव के लिये वेदाध्ययन करना व्यर्थ है।

'श्रुत्वाऽपि किं स्यात्' इत्यादि द्वारा **बसवार्य** यह निवेदित कर रहे हैं कि परमात्मतत्त्वज्ञान से शून्य जीव का जीवन ही निरर्थक-बेकार होता है।

[इसका आशय इस प्रकार है— "जीव! वेदश्रवण से तुम्हारा क्या लाभ होगा? वेदपाठ से भी तुम्हारा क्या लाभ होगा? अथवा मात्र वेदसाहित्य में कितने

CC0. In Public Domain. Jangamwadi Math Collection, Varanasi

Digitization by eGangotri and Sarayu Trust. Funding by MoE-IKS

"कण्ठसूत्रं विना नारी सर्वाभरणभूषिता।
आत्मज्ञानविहीनस्य विद्याजालं निरर्थकम्।।"

इत्यभियुक्ता अपि वदन्ति।

"स्थाणुरयं भारहरः किलाभूदधीत्य वेदं न च वेत्ति योऽर्थम्।"

इत्याद्यभियुक्तोर्विश्रुतैव।

उक्तमेवाशयं विशदयति— **य** इत्यादिना। **य इत्** ये तु तत् परमात्मतत्त्वं **विदुः त इमे** त एत एव **समासते** सम्यगासते कृतकृत्यास्तिष्ठन्ति। तेषामेव जीवनं सार्थकं सम्पद्यते। त एव मरणभयविनिर्मुक्ताः नित्यसुखिनो भवितुमर्हन्ति। तेभ्य एव मरणं महो नवमिव तृप्तिं शान्तिमात्मविश्वासं च साधयति। परमात्मज्ञानिन एव मरणं सन्तोषसमारम्भः सम्पद्यते। अन्ये तु सर्वदा मरणभीत्यैव भोगमनुभवन्तः तस्करा इव निवसेयुः। ये तु जीवनयात्रां परमात्मप्रसादरूपेण निर्वहन्ति त एव

मन्त्र हैं इत्यादि गणना से भी क्या लाभ होगा? या व्यर्थ इधर-उधर समस्त दिशाओं में भटकने से क्या लाभ होगा? हे जीव! तुम अपने दोलायमान चञ्चल चित्त को छोड़कर सद्गुरु की प्राप्ति का प्रयत्न करो।]

'कण्ठसूत्रं विना नारी' इत्यादि पद्य द्वारा अभियुक्त यह कहते हैं कि जिस प्रकार नारी सभी अलङ्कारों से अलङ्कृत होने पर भी बिना मङ्गलसूत्र के अच्छी नहीं लगती, उसी प्रकार जो आत्मज्ञानशून्य होता है, उसके लिये समस्त विद्याएँ व्यर्थ हैं।

"स्थाणुरयं भारहरः" इत्यादि अभियुक्तोक्ति भी विश्वविश्रुत हैं, जिसमें यह कहा गया है कि वह जीव उस भारवाही के समान है, जो वेदाध्ययन करने पर भी वेदैकवेद्य परमात्मतत्त्व का साक्षात्कार नहीं करता। [पूर्ण पद्य इस प्रकार है—

"स्थाणुरयं भारहरः किलाऽभूदधीत्य वेदं न विजानाति योऽर्थम्।
योऽर्थज्ञ इत् सकलं भद्रमश्नुते नाकमेति ज्ञानविधूतपाप्मा।।"]

"य इत् तद् विदुस्त इमे समासते"— इसी आशय को मन्त्र के चतुर्थ चरण में प्रकट किया गया है। जो लोग परमात्मतत्त्व का सम्यक् ज्ञान प्राप्त करते हैं, वे कृतकृत्य होते हैं, उनका जीवन सार्थक होता है। वे मरणभय से मुक्त और शाश्वत सुखभाजन होते हैं। उन जीवों को भी मरण उसी प्रकार तृप्ति, शान्ति और आत्मविश्वास देता है, मानों वह नवीन उत्सव हो। परमात्मज्ञानी के लिये मरण आनन्दोत्सव होता है। अन्य लोग सर्वदा मृत्यु के भय से वैषयिक सुखों का उपभोग करते हुए उसी प्रकार जीवित रहते हैं, जिसप्रकार चोर डाकू। जो लोग

CC0. In Public Domain. Jangamwadi Math Collection, Varanasi

Digitization by eGangotri and Sarayu Trust. Funding by MoE-IKS

कृतकृत्याः सन्तः सुकाले समागतं मृत्युं प्रियातिथिमिव सन्मानयन्तो नित्यानन्दद्वारस्याऽनावरणात् तमानन्दमयपरमात्मदृष्ट्यैव प्रीणयन्ति। एतादृशनिर्मलजीवननिर्वाहायैव अयं देहः परमात्मनाऽस्माकमनुगृहीतः। तत्राऽऽत्मकल्याणसाधनाय तिष्ठन्तं परमात्मानं योऽद्य न जानाति सः जीवश्रव एव सम्पद्यते॥८॥

एवं जीवः स्वान्तस्स्थितशिवज्ञानादेव बन्धमुक्तो भूत्वा नित्यसुखी भवेदित्याशयं श्वेताश्वतरो महर्षिरत्राऽविष्करोत्यव्याजप्रेम्णा—

छन्दांसि यज्ञाः क्रतवो व्रतानि
भूतं भव्यं यच्च वेदा वदन्ति।
अस्मान्मायी सृजते विश्वमेतत्
तस्मिंश्चान्यो मायया सन्निरुद्धः॥९॥

'छन्दांसि' इति। उक्तस्यैवाऽर्थस्य विवरणमेतत्। **छन्दांसि** गायत्र्यादिच्छन्दांसि, **यज्ञाः** देवयज्ञादयः, **क्रतवः** ज्योतिष्टोमादयः, **व्रतानि** चान्द्रायणादीनि, **भूत**मतीतम्,

---

परमात्मा का प्रसाद समझकर जीवनयात्रा पर निकलते हैं, वे कृतकृत्य होकर समय पर निश्चित मृत्यु की उसी प्रकार प्रतीक्षा करते हैं, मानो कोई प्रिय अतिथि आने वाला हो। वे उसे नित्य आनन्द का द्वार समझते हैं और उसका उद्घाटन होने पर आनन्दमय परमात्मा का दर्शन कर ही प्रसन्न होते हैं। उस प्रकार निर्मल जीवन निर्वाह करने के लिये ही परमेश्वर ने हमारे ऊपर इस मानव देह का अनुग्रह किया है। वहाँ पर आत्मकल्याण के लिये विराजमान परमात्मा को जो नहीं जानता, वह **'जीवश्रव'** ही होता है।

मन्त्रार्थ— चिद्रूप परमाकाशस्वरूप परमात्मा वेदैकवेद्य हैं, जिसमें समस्त देवता रहते हैं। जो परमात्मतत्त्व नहीं जानता, उसके लिये वेदाध्ययन व्यर्थ है। जो आत्मतत्त्व जानते हैं, वे कृतकृत्य होते हैं॥८॥

अवतरण— इस प्रकार जीव को अपनी हृदयगुफा मे प्रकाशमान परमशिव के साक्षात्कार से ही अज्ञानमलपाशबन्धनों से मुक्त होकर नित्य सुखी होना चाहिये, इसी आशय को निर्व्याज प्रेम से महर्षि श्वेताश्वतर प्रकट कर रहे हैं—

'छन्दासि यज्ञाः' इत्यादि। **'छन्दांसि'** = गायत्री आदि छन्द। **शाङ्करभाष्य** के अनुसार ऋग्वेद, यजुर्वेद, सामवेद और अथर्ववेद नामक चार वेद— **'ऋग्यजुः सामाथर्वाङ्गिरसाख्या वेदाः'**, **'यज्ञाः'** = पशुबन्धस्तम्भरहित देवयज्ञ आदि अनुष्ठान,

CC0. In Public Domain. Jangamwadi Math Collection, Varanasi

Digitization by eGangotri and Sarayu Trust. Funding by MoE-IKS

भव्यं भविष्यच्च, किं बहुना **यच्च** यत्किञ्चिद् **वेदा वदन्ति** प्रतिपादयन्ति **एतद् विश्वम्** एतत्सर्वं **मायी** मायाया ईश्वरोऽधिपतिर्मायाकोलाहल इति प्रसिद्धः परमात्मा **अस्मात्** मायापदवाच्यायाः प्रकृत्यपरनामधेयायास्त्रिगुणात्मिकायाः जडशक्तेः सकाशात् **सृजते। तस्मिन्नेवं** मायावशात् सृष्टे जगति **अन्यः** परमात्मनो भिन्नः जीवः **मायया** उक्तमायया चिच्छक्तिसङ्कोचरूपया चित्तशक्त्या **सन्निरुद्धः** सम्यग् बद्धो वर्तते। रज्ज्वा बद्धः पशुरिव त्रिगुणात्मकेन पाशेन बद्धः पशुरयं जीव इति भावः॥९॥

'क्रतवः' = ज्योतिष्टोम आदि पशुयाग, **'व्रतानि'** = चान्द्रायण आदि कृत्स्न व्रत, **'भूतम्'** = बीती हुई घटनायें, **'भव्यम्'** = होने वाली घटनायें, **'यच्च वेदा वदन्ति'** = और इनके अतिरिक्त जो कुछ वेद प्रतिपादित करते हैं, **'मायी'** = मायाकोलाहल नाम से प्रसिद्ध माया का अधिपति परमात्मा, **'अस्मात्'** = 'माया' अथवा प्रकृति नामक त्रिगुणात्मिका जड (अचेतन) शक्ति के सान्निध्य से, **'एतद् विश्वम्'** समस्त दृश्यमान चर-अचर विश्व अथवा वस्तुजात की, **'सृजते'** = रचना करता है। **'तस्मिन्'** = माया के प्रभाव से निर्मित उस संसारचक्र में, **'अन्य'** = परमात्मा से भिन्न (उसका अंशस्वरूप) जीव, **'मायया'** = चिच्छक्ति के सङ्कोच को 'चित्त' और उसके विकास को 'चिति' कहते हैं। माया चिच्छक्ति की सङ्कुचित चित्तशक्ति है, उसके द्वारा, **'सन्निरुद्धः'** = अच्छी तरह बाँधा जाता है। जिस प्रकार रस्सी के फँदे से पशु को बाँधा जाता है, उसी प्रकार प्रकृति के त्रिगुणात्मक पाश (फंदे) से यह जीव बांधा जाता है।

['शाङ्करभाष्य' भी इसका इस प्रकार समर्थन करता है— **'अविकारिब्रह्मणः कथं प्रपञ्चोपादानत्वम्? इत्यत आह–** 'मायी'**ति। कूटस्थस्याऽपि स्वशक्तिवशात् सर्वस्रष्टृत्वमुपपन्नमिति।''** विकाररहित परब्रह्म समस्त प्रपञ्च का उपादान कैसे हो सकता है?— इसका समाधान चतुर्थ चरण में है। जब परमेश्वर माया (अविद्या) से सम्पन्न होता है, तभी वह अपनी शक्ति के प्रभाव से समस्त सृष्टि कर सकता है।]

मन्त्रार्थ— सभी गायत्री आदि छन्द (अथवा सभी वेद), देवयज्ञ, ज्योतिष्टोमादि पशुयाग (क्रतु), चान्द्रायणादि नक्तव्रत, अतीत, अनागत और जिसका वेद वर्णन करते हैं, परशिवस्वरूप परमात्मा अपनी 'चितिशक्ति' से सम्पन्न होकर माया (प्रकृति) की सहायता से समस्त चराचर विश्व की सृष्टि करता है। दूसरा जीव सङ्कुचित चित्तशक्ति द्वारा त्रिगुणात्मक पाश से उसी प्रकार बन्धन में डाल दिया जाता है, जिस प्रकार पशु को रज्जुपाश से बन्धन में कसा जाता है।।९।।

CC0. In Public Domain. Jangamwadi Math Collection, Varanasi

Digitization by eGangotri and Sarayu Trust. Funding by MoE-IKS

मायापदार्थं मायिपदार्थं च स्वयमेव विवृणोति—

मायां तु प्रकृतिं विद्यान्मायिनं तु महेश्वरम्।
तस्याऽवयवभूतैस्तु व्याप्तं सर्वमिदं जगत्।।१०।।

'मायां त्वि'ति। **मायां तु** चित्रविचित्ररूपिणीं व्यामोहिनीं परमात्मनः सकाशात् तद्विनोदाय बहिरागत्याऽन्ते तस्मिन्नेव विलयनशीलां परमात्मनिष्ठां शक्तिम्—

"मं शिवं परमं ब्रह्म अयतीति स्वभावतः।
मायेति प्रोच्यते लोके ब्रह्मनिष्ठा सनातनी।।"

इत्यभियुक्तोक्त्या सहजतया परमात्मप्रीत्यर्थं जगद्रूपेण परिणम्य सर्वत्र व्यापृतां मायाशक्तिम् अद्भुतरचनानैपुण्यवतीं त्रिगुणद्रव्यवतीं **प्रकृतिं विद्यात्** जानीयात्। एवमेव **मायिनं तु** मायास्वामिनं च **महेश्वरं** परमेश्वरं विद्यादित्युत्कर्षः। एतस्य मायापतेरीश्वरस्य भक्तास्तु **'माहेश्वरा'** इति कथ्यन्ते। ईश्वरो यस्मिन् प्रसीदति

अवतरण— महर्षि इस वेदमन्त्र में 'माया' और 'मायिन्' पद के अर्थ स्वयं ही स्पष्ट कर रहे हैं—

'मायां तु प्रकृतिं विद्यात्' — 'माया' पद का अर्थ प्रकृति समझना चाहिये, जो चित्र-विचित्र रूप धारण करती हुई दूसरों को भ्रम में डालती है। वह परमात्मा की ही शक्ति है, जो परमात्मा के निकट से उसके विनोद के लिये बाहर आकर अन्त में उसी में विलीन होती है। अभियुक्तों की सूक्ति है—

"मं शिवं परमं ब्रह्म अयतीति स्वभावतः।
मायेति प्रोच्यते लोके ब्रह्मनिष्ठा सनातनी।।"

[**'मम् अयतीति माया'** इस निर्वचन के अनुसार 'माया' परशिवब्रह्मनिष्ठ सनातन शक्ति है, क्योंकि 'म' का अर्थ है परशिव ब्रह्म और 'अम्' धातु का अर्थ है जाना। अतः ब्रह्मनिष्ठ सनातन शक्ति का लोक में 'माया' नाम सार्थक है।]

इस प्रकार स्वाभाविक रूप से परमात्मा को प्रसन्न करने के लिये जगत् के रूप में सर्वत्र व्याप्त 'माया' शक्ति को अद्भुत रचना में निपुण त्रिगुणद्रव्यसम्पन्न समझना चाहिये।

(विद्यात्) 'मायिनं तु महेश्वरम्'— ['मध्यमणि'न्याय से 'विद्यात्' क्रियापद का सम्बन्ध इस द्वितीय चरण से भी है।] इसी प्रकार महेश्वर को 'मायी' अर्थात् माया

CC0. In Public Domain. Jangamwadi Math Collection, Varanasi

Digitization by eGangotri and Sarayu Trust. Funding by MoE-IKS

तस्मिन् माया स्वीयां वक्रदृष्टिं न प्रसारयति; किन्तु सा दासीव अनुकूलतया तदीयं लोककल्याणं साधयति। माया यद्यपि दुरवगाहा दुरतिक्रमा च वर्तते, तथापि यस्य गुरौ देवे च परा भक्तिः तस्य तु माया अनुकूला सम्पद्यते।

"मामेव ये प्रपद्यन्ते मायामेतां तरन्ति ते।" (७.१४)

इति भगवानेवोपदशति **गीतायाम्।** एतादृशीं मायां हेयां श्ववद् द्रुहेत् परित्यजेद् य एव सद्भक्तः सः माहेश्वर उच्यते। एवं मायातिरस्कार एव मानवे देवत्वं स्थिरीकरोति; तस्मिन् विद्यमानामासुरीं सम्पदं दूरीकृत्य दैवीं सम्पदमभिवर्धयति। एतस्या एव मायायाः सकाशात् परमात्मा जगत्कार्यमनायासेन कारयति।

अत एवेदं सर्वं जगत् तस्य मायास्वामिनः परमेश्वरस्य अवयवभूतैरेकदेशभूतैः त्रिमूर्तिभिः सृष्टिस्थितिसंहाराधिकारिभिः व्याप्तं वर्तते। जगति एतदेव खलु कार्यं करणीयम्। प्रथमतः सृष्टिस्तत्तत्प्रारब्धकर्मानुरोधेन, अनन्तरं तत्तत्प्राप्त्यविरोधेन सर्वस्याऽपि वृत्तिकल्पनाद् रक्षणम्, अन्ते तत्कर्मानुसारेण शान्त्या दुःखेन वा देहवियोगरूपः संहारः। एतत्त्रितयकार्यनिर्वाहाय परमशिवोऽमूर्तः त्रिमूर्त्याकारेण

का अधिपति समझना चाहिये। इस माया के पति महेश्वर शिव के भक्त **'माहेश्वर'** कहे जाते हैं। परमशिव जिस प्रकार प्रसन्न होते हैं, उस पर माया अपनी वक्रदृष्टि नहीं डालती, किन्तु वह एक दासी के समान उसका लोकहित सिद्ध करती है। यद्यपि माया को समझना और उसे पार पाना कठिन है, तथापि जिसकी देवता एवं गुरुविषयिणी भक्ति दृढ होती है, माया उसके अनुकूल होती है।

"मामेव ये प्रपद्यन्ते मायामेतां तरन्ति ते।" (७.१४)

इस प्रकार गीता में भगवान् भी उपदेश देते हैं। इसका आशय यह है कि जो मेरा (भगवान् का) आश्रय लेते हैं, इस माया को पार कर जाते हैं। इस प्रकार व्यामोह में डालने वाली त्यागयोग्य माया से जो कुत्ते के समान द्रोह करता है और उसका परित्याग करता है, वह सद्भक्त **माहेश्वर** कहलाता है। इस प्रकार माया का तिरस्कार ही मनुष्य में देवत्व की प्रतिष्ठा करता है। वह मनुष्य में स्थित आसुरी भावना को दूर कर उसकी दैवी सम्पत्ति को बढ़ाता है। इस माया के नैकट्य से परमशिव अनायास ही जागतिक कार्यों का निर्वाह करता है।

"तस्याऽवयवभूतैस्तु व्याप्तं सर्वमिदं जगत्"— इसीलिये यह समस्त स्थावर जंगमात्मक जगत् परमशिव के अंशावतार ब्रह्मा, विष्णु और कालरुद्र, जो क्रमशः सृष्टि, स्थिति और संहार के अधिकृत देवता हैं, उनसे व्याप्त है। जंगत् में

CC0. In Public Domain. Jangamwadi Math Collection, Varanasi

Digitization by eGangotri and Sarayu Trust. Funding by MoE-IKS

परिणमते। एते त्रयोऽधिकारिणोऽदृश्या एव जगति सर्वत्र व्याप्ताः सन्तः स्वीयं कार्यममूर्तपरमशिवसङ्कल्पानुसारेण निर्वहन्तो वर्तन्ते। अयमेवाशयो मन्त्रेऽस्मिन्नाविष्कृतः।

"विष्टभ्याऽहमिदं कृत्स्नमेकांशेन स्थितो जगत्।" (१०.४२)

इति गीतायामपि परमात्मा स्वांशैकदेशेन त्रिमूर्त्याकारेण परिणतो भूत्वा जगद्व्यापारं निर्वहन् सर्वमिदं जगद् व्याप्य तिष्ठतीति स्पष्टमेवोक्तम्। **"यस्यैकशक्तिशकले सकलः समाप्तः"** इत्यभियुक्तो त्रिमूर्त्यादिकं सकलं विश्वं परमात्मशक्तेरेकांश एव पर्यवस्यति।

"यद् यद् विभूतिमत् सत्वं श्रीमदूर्जितमेव वा।
तत् तदेवाऽवगच्छ त्वं मम तेजोंऽशसम्भवम्।।" (१०.४१)

यही कार्य करना चाहिये। सर्वप्रथम उस-उस जीव के कर्मफल के अनुरोध से सृष्टि, अनन्तर उस-उस देवता को मिलने वाली प्राप्ति के अविरोध से सभी प्राणियों की वृत्ति (जीविका) की व्यवस्था करना, और अन्त में मनुष्यकृत कर्मों के अनुरोध से शान्ति अथवा कष्टपूर्वक देह से प्राणशक्ति को पृथक् करना अर्थात् 'संहार' करना। सृष्टि-स्थिति और संहार इन तीन कार्यों के लिये अमूर्त परमशिव त्रिमूर्ति के रूप में प्रकट होता है। सृष्टि, स्थिति और संहार तीनों के ही ये अधिकारी ब्रह्मा-विष्णु और कालरुद्र अदृश्य रूप में ही समस्त जगत् में व्याप्त होकर अमूर्त परशिव के संकल्प के अनुसार अपना कार्यसम्पादन करते हैं। यही आशय इस मन्त्र में प्रकट किया गया है।

"विष्टभ्याऽहमिदं कृत्स्नमेकांशेन स्थितो जगत्।"[1] (१०.४२)

इस प्रकार गीता में भी यह स्पष्ट प्रतिपादित किया है कि परमात्मा अपने अंश से त्रिमूर्ति के आकार में रूपान्तरित होकर जगत् के व्यापार का निर्वाह करते हुए इस समस्त जगत् को व्याप्त कर रहता है। **"यस्यैकशेषशकले सकलः समाप्तः"** इस अभियुक्त की उक्ति के अनुसार परमात्मा की एक मात्र शक्ति के एक अंशमात्र में संपूर्ण विश्व का पर्यवसान होता है।

"यद् यद् विभूतिमत् सत्त्वम्" (१०.४१) इस प्रकार गीता में संकेतित तेज ही परमेश्वर में रहने वाली उसकी अभिन्न शक्ति है। इस पद्य का हिन्दी पद्यानुवाद इस प्रकार है—

"जो जगत में वस्तु, शक्ति विभूति श्रीसम्पन्न हैं।
वे जान मेरे तेज के ही अंश से उत्पन्न हैं।।"

(श्रीकृष्णगीता १०.४२)

---

१. "इस एक मेरे अंश से व्याप्त हुआ संसार है" *(श्रीकृष्णगीता १०.४२)*

CC0. In Public Domain. Jangamwadi Math Collection, Varanasi

Digitization by eGangotri and Sarayu Trust. Funding by MoE-IKS

इति गीतायां निर्दिष्टं तेज एव परमात्मनिष्ठा शक्तिः। त्रिमूर्तयस्तस्याः शक्तेरंशा एव। तत्कार्यैरेव जगदिदं व्याप्य तिष्ठति॥१०॥

लोके उपदानत्वेन प्रतीयमानेषु सर्वत्रापि तदधिष्ठितत्वेन परमात्मैव सर्वेषामुपादानमिति तस्य जगद्व्यापारलीलावैभवमाह—

यो योनिं योनिमधितिष्ठत्येको
यस्मिन्निदं सं च वि चैति सर्वम्।
तमीशानं वरदं देवमीड्यं
निचाय्येमां शान्तिमत्यन्तमेति।।११।।

'यो योनिं योनि'मिति। **य** एको मायापतिर्महेश्वरः **योनिं योनिं** तत्तद्वस्तुन उपादानभूतं सर्वम्। वीप्सया सर्वस्यापि क्रोडीकारः। **अधितिष्ठति** अधिष्ठाय

ये तीन मूर्तियाँ ब्रह्मदेव, विष्णु और कालरुद्र उस परमात्मशक्ति के ही अंश हैं। उन कार्यों से ही यह समस्त जगत् व्याप्त है॥१०॥

मन्त्रार्थ— माया को प्रकृति समझना चाहिये और मायी (माया के अधिपति) को महेश्वर। उस महेश्वर अमूर्त परशिव के अंशावतार तीन मूर्तियों– ब्रह्मदेव, विष्णु और कालरुद्र शिव इनसे दृश्यमान समस्त स्थावर-जङ्गमात्मक जगत् व्याप्त है।।१०।।

अवतरण— यतः लोक में उपादान के रूप में प्रतीत होने वाली सभी वस्तुओं में सर्वत्र प्रतिष्ठित होने के कारण परमात्मा ही सबका उपादानकारण है। अतः श्रुति परमात्मा की जगद् व्यवहार लीला के वैभव का प्रतिपादन इस प्रकार कर रही है—

'यो योनिं योनिम्' इत्यादि।[1] **'यः एकः'** = जो अद्वितीय माया के अधिपति महेश्वर, **'योनिं योनिम्'** = उस उस वस्तु की समस्त उपादानसामग्री में, **'अधितिष्ठति'** = सबका अन्तर्यामी बनकर प्रतिष्ठित है। **'योनिं यानिम्'** इस प्रकार पुनरुक्ति द्वारा समस्त

---

१. 'कल्याण' (उपनिषद् अंक) जनवरी १९४९ में प्रारम्भ में ही श्वेताश्वतर उपनिषद् के कतिपय मन्त्रों का पद्यानुवाद मन्त्रसहित प्रस्तुत करते हुए औपनिषद् ब्रह्म का सर्वातीत और सर्वकारणस्वरूप तथा उसके जानने का फल दिया गया है। इस मन्त्र का पद्यानुवाद इस प्रकार है—

योनि योनि कारण कारण के जो है एक अधिष्ठाता।
जिनमें सब विलीन होता जग, जिनसे यह उद्भव पाता॥
वे आराध्य वरद ईश्वर हैं, वे ही देव अलौकिक कान्ति।
उन्हें तत्त्व से जान यहाँ मानव पाता है शाश्वत शान्ति॥

CC0. In Public Domain. Jangamwadi Math Collection, Varanasi

Digitization by eGangotri and Sarayu Trust. Funding by MoE-IKS

सर्वान्तर्यामितया वर्तते। **इदं च** सर्वं **यस्मिन्** महेश्वर एव **सं वि चैति** प्रलयकाले एकीभूय लयं प्राप्नोति। एतेन सृष्टिप्रलयाधारत्वरूपं सर्वोपादानत्वं परमात्मन्येव समन्वेतीत्युक्तं भवति। **तम्** एतादृशम् **ईशानं** शम्भुम् ईश्वरम् **ईड्यं** सर्वैरपि स्तुत्यं **वरदम**भीप्सितसकलसिद्धिदायकं **देवं निचाय्य** साक्षात्कृत्य **इमामत्यन्तं शान्तिं** स्वेनानुभूयमानत्वादिमामिति निर्देशः। तादृशीं स्थिरशान्तिम् **एति** प्राप्नोति। सर्वजगत्कारणवस्तुसाक्षात्कारादेव शाश्वतशान्तिरूपा मुक्तिरित्यर्थः॥११॥

एवं परमेश्वरस्य वैभवं प्रतिपादयन् स्वस्य तत्प्राप्त्यनुगुणां शुभां बुद्धिं स एव ददात्विति एतदध्यायारम्भ इवात्रापि प्रार्थयते—

उपादान सामग्री का समावेश है। **'इदं च'** = यह समस्त विश्व, **'यस्मिन् सं वि चैति'** = जिस महेश्वर में प्रलयकाल में एकत्र होकर विलय प्राप्त करता है। वैदिक संस्कृत में उपसर्ग पृथक्-पृथक् होते हैं। लौकिक संस्कृत में इसका अन्वय होगा— **'यस्मिन् च सर्वमिदं समेति व्येति च'**। **'तम् ईशानम्'** = इस प्रकार के परमशिव ईशान को, **'वरदम्'** =जो अभीष्ट समस्त सिद्धि प्रदाता हैं, **'ईड्यम्'** = सभी के द्वारा अभिनन्दन योग्य हैं, **'देवम्'** = जो द्योतनशील चित्प्रकाशस्वरूप हैं, उस परमशिव का, **'निचाय्य'** = साक्षात्कार कर, **'इमां शान्तिम्'** = इस शान्ति को जिसका अनुभव स्वयं श्वेताश्वतर महर्षि ने किया है, अत एव 'इमाम्' सर्वनाम से जिसका निर्देश है। उस प्रकार स्थिरशान्ति को, **''आयन्तमेति''** अत्यन्त प्राप्त करता है। सर्वजगत्कारणस्वरूप वस्तु का साक्षात्कार करने से जो शाश्वत शान्ति मिलती है, वही मुक्ति है, यह इसका आशय है।

['टीका'कार विज्ञानभगवान् **'योऽयोनिं योनिमधितिष्ठत्येकः'** यह पाठ स्वीकार कर यह व्याख्या करते हैं— **''अथवाऽयोनिं योनिः कारणमस्यां, न विद्यते इत्ययोनिम्। अनादिसिद्धां प्रकृतिमिति यावत्। यो मूलप्रकृतिमधितिष्ठति।''** जिसका कोई कारण नहीं होता, किन्तु जो सबका कारण होती है, उस अनादिसिद्ध मूल प्रकृति का आश्रय लेकर जो परमशिव रहता है।' यह इसका अर्थ होगा।]

मन्त्रार्थ— जो परमशिव समस्त जगत् की प्रत्येक वस्तु के प्रत्येक उपादानकारण में एकाकी ही रहते हैं, जिसमें समस्त जगत् प्रलयकाल में विलीन होता है, उस वरप्रद स्तुत्य चित्प्रकाशस्वरूप ईश का साक्षात्कार कर जीव अत्यन्त स्थिरशान्ति (मुक्ति) प्राप्त करता है।।११।।

अवतरण— इस प्रकार परमेश्वर के वैभव का प्रतिपादन करते हुए, जिस प्रकार अध्याय के प्रारम्भ में प्रार्थना की गयी है, उसी प्रकार इस मन्त्र द्वारा भी यह प्रार्थना की जा रही है कि वही परमशिव हमें अपनी प्राप्ति (साक्षात्कार) के अनुरूप सद्बुद्धि प्रदान करे—

CC0. In Public Domain. Jangamwadi Math Collection, Varanasi

Digitization by eGangotri and Sarayu Trust. Funding by MoE-IKS

यो देवानां प्रभवश्चोद्भवश्च
विश्वाधिको रुद्रो महर्षिः।
हिरण्यगर्भं पश्यत जायमानं
स नो बुद्ध्या शुभया संयुनक्तु।।१२।।

अयं मन्त्रः पूर्वमेव (३/४) व्याकृतः। **''हिरण्यगर्भं जनयामास पूर्वम्''** इति स्थाने **''हिरण्यगर्भं पश्यत जायमानम्''** इत्येवात्र पूर्वापेक्षया विशेषः। **''पूर्वं जनयामासे''**ति उत्पत्तिः प्रतिपादिता। अत्र तु **'पश्यत'** इति कथनाद् उत्पत्ति-कालीनानुग्रहविषयत्वं तस्य प्रतिपाद्यते।।१२।।

पुनरपि परमेश्वरस्य ब्रह्मविष्ण्वादिदेवाधिपतित्वं सर्वलोकाधारत्वं सर्वाश्रयत्वं च वदन् तत्सेवामपि स्वस्याऽऽशंसते—

यो देवानामधिपो यस्मिन् लोका अधिश्रिताः।
य ईशे द्विपदश्चतुष्पदः कस्मै देवाय हविषा विधेम।।१३।।

'यो देवानाम्' इत्यादि— इस मन्त्र की व्याख्या पहले ही (३.४ में) की जा चुकी है। जो वहीं द्रष्टव्य है। **'हिरण्यगर्भं जनयामास पूर्वम्'** इस तृतीय चरण के स्थान पर **'हिरण्यगर्भं पश्यत जायमानम्'** यह पाठभेद पूर्व की अपेक्षा विशेषता रखता है। प्रथम बार उस मन्त्र में **'जनयामास'** क्रियापद के द्वारा रुद्रकर्तृक हिरण्यगर्भ की उत्पत्ति का प्रतिपादन किया गया है। इस मन्त्र में **'पश्यत जायमानम्'** इस कथन से यह प्रतिपादन किया गया है कि उत्पत्ति के समय परमशिव जो अनुग्रह करते हैं, उसका साक्षात् अनुभव करें।

मन्त्रार्थ— जो इन्द्रादि देवों की उत्पत्ति और वैभव के कारण हैं, जो विश्व में सर्वोत्कृष्ट हैं, जो महाज्ञानी हैं, उन संसारदुःखनाशक 'रुद्र'शिव ने सृष्टि के पूर्व 'हिरण्यगर्भ' (चतुर्मुख ब्रह्मदेव) की उत्पत्ति को स्वयं होते हुए देखा, वे रुद्र-शिव हमें मंगलमयी सद्बुद्धि से संयुक्त करें।।१२।।

अवतरण— पुनश्च परमशिव का ब्रह्मदेव, विष्णु आदि देवताओं के अधिपति, सभी लोकों के आधार और समस्त विश्व के आश्रय के रूप में वर्णन करते हुए स्वयं द्वारा उस परमशिव की परिचर्या अग्रिम मन्त्र में वर्णित की गयी है—

'यो देवानाम्' इत्यादि। **''यः देवानाम् अधिपः''** = जो परमशिव चतुर्मुख ब्रह्मदेव आदि सभी देवों के स्वामी हैं।

''यस्मिन् लोका अधिश्रिताः'' = जिस परमशिव में चतुर्दश भुवन भी प्रतिष्ठित है।

CC0. In Public Domain. Jangamwadi Math Collection, Varanasi

Digitization by eGangotri and Sarayu Trust. Funding by MoE-IKS

'यो देवानामि'ति। **यः** प्रकृतः परमेश्वरः **देवानां** चतुर्मुखादीनां सर्वेषां देवानाम् **अधिपः** स्वामी। **यस्मिन्** उक्तपरमेश्वरे **लोकाः** चतुर्दश भुवनान्यपि अधिश्रिताः। **यः** परमेश्वरः अस्य **द्विपदः चतुष्पदश्च** पशोः **ईशे** ईष्टे नियामको भवति। अत्र चतुष्पात्पशवः गवादयः ; द्विपात्पशवो मनुष्याः। एवं च गवाद्यपेक्षया मनुष्यस्याऽत्यन्तं श्रेष्ठत्वेऽपि संसारित्वसामान्याकारेण उभयोर्नात्यन्तं भेदः। अनया दृष्ट्याऽपि न महान् भेद इति सूचनाय द्विपाच्चतुष्पात्पशुत्वेन निर्देशः। एतेन परमेश्वरस्य पशुपतित्वं व्याख्यातं भवति। य एतादृशः तादृशाय **कस्मै** आनन्दरूपाय, कमिति सुखस्य नाम, **देवाय** परमेश्वरस्य **हविषा** पूजासाधनद्रव्येण हविरादिना **विधेम** परिचरेम। देहे विराजमानाय इष्टप्राणभावलिङ्गरूपाय महादेवाय

''यः द्विपदः चतुष्पदः ईशे (ईष्टे)'' = जो परमशिव दो पैर वाले और चार पैरवाले पशु का नियामक है। ['ईष्टे' के स्थान पर 'ईशे' का प्रयोग वैदिक है, जिसमें तकार का लोप दृष्टिगोचर हो रहा है।] दो पैर वाले मनुष्य भी पशु हैं और चार पैर वाले गाय आदि भी पशु हैं। यद्यपि गाय इत्यादि पशुओं की अपेक्षा दो पैर वाले मनुष्य अत्यन्त श्रेष्ठ हैं, तथापि संसरणशीलता दोनों में समान रूप में दृष्टिगोचर होती है। अतः दोनों में अत्यन्त भेद नहीं है। इस दृष्टि से भी दोनों में कोई बड़ा भेद न होने के कारण दोनों का निर्देश द्विपाद और चतुष्पाद पशु के रूप में किया गया है। इससे परमशिव के **'पशुपतित्व'** का भी प्रतिपादन होता है।

'कस्मै देवाय हविषा विधेम' = अकारान्त **'क'** शब्द का चतुर्थी एकवचन में **'काय'** यह रूप लौकिक संस्कृत में होगा, **'कस्मै'** प्रयोग वैदिक है— ''कस्मैभावोऽपि च्छान्दसः''— शांकरभाष्य। इसका अर्थ है **'आनन्दस्वरूपाय काय'** यह सुख का पर्यायवाची है। इसका सायणभाष्य इस प्रकार है— **''अत्र किंशब्दोऽनिर्ज्ञातस्वरूपत्वात् प्रजापतौ वर्तते। यद्वा सृष्ट्यर्थं कामयत इति कः''** (१०:१२१.१)।] पूजासामग्री द्वारा आनन्दस्वरूप उस परमशिव की हम भक्तगण परिचर्या करते हैं।

हम जीव देह में विराजमान इष्टलिङ्ग, प्राणलिङ्ग और भावलिङ्ग इन त्रिविध लिङ्ग-मूर्तियों में अवतीर्ण महादेव को यथाक्रम रूप, रुचि और तृप्ति नाम तीन पदार्थ भक्तिपूर्वक समर्पित करते हुए उस परमशिव के साथ ही सुखपूर्वक निवास करेंगे और परमशिव द्वारा उपभुक्त अवशिष्ट द्रव्य को प्रसादरूप में स्वीकार करते हुए तृप्त और शान्त रहेंगे।

[इसमें अनुभवसूत्र (७-२२,२३) का वचन प्रमाण है—

''इष्टलिङ्गार्पितं शुद्धं प्राणलिङ्गमुखार्पितम्।
सिद्धं ततः प्रसिद्धं हि भावलिङ्गार्पितं विदुः।।
तत्तदर्पणतो लब्धं प्रसादं तत्तदादरात्।
भुङ्क्ते यत्नात् स्वयं विश्वतैजसप्राज्ञरूपतः।।''

CC0. In Public Domain. Jangamwadi Math Collection, Varanasi

Digitization by eGangotri and Sarayu Trust. Funding by MoE-IKS

रूपरुचितृप्त्याख्यं पदार्थत्रयं भक्त्या समर्पयन्तः तेन सहैव सुखं वसेम। तद्भुक्तशेषं प्रसादरूपेण भुञ्जानाः तृप्ताः शान्ताश्च भवेम॥१३॥

पुनः पुनरादरात् परमात्मज्ञानस्यैव मुक्तिहेतुत्वमाह—

सूक्ष्मातिसूक्ष्मं कलिलस्य मध्ये
विश्वस्य स्रष्टारमनेकरूपम्।
विश्वस्यैकं परिवेष्टितारं
ज्ञात्वा शिवं शान्तिमत्यन्तमेति॥१४॥

'सूक्ष्मातिसूक्ष्मम'ति। सूक्ष्मेभ्योऽत्यन्तसूक्ष्मम्, 'अणोरणीयान्' इति परमात्मा श्रूयते खलु। **कलिलस्य** कारणभूतस्य, कारणकार्ययोर्मध्यावस्था

इसका आशय इस प्रकार है— तीन प्रकार के जीव होते हैं— विश्व, तैजस और प्राज्ञ। वे यथाक्रम इष्टलिङ्ग, प्राणलिङ्ग और भावलिङ्ग की अर्चना करते हैं और उन्हें क्रमशः रूप (स्थूल), रुचि (प्रविविक्त) और तृप्ति (आनन्द) पदार्थ भक्तिपूर्वक समर्पित करते हैं। उक्त त्रिविध लिङ्गमूर्ति महादेव द्वारा भुक्तशेष उक्त तीन पदार्थ यथाक्रम शुद्ध, सिद्ध और प्रसिद्ध प्रसाद हो जाते हैं। जिन्हें त्रिविध जीव सादर ग्रहण करता है। श्रुति भी जीव को यह आदेश देती है—**'तेन त्यक्तेन भुञ्जीथाः''**— हे जीव! अधिकारिभेद के अनुसार अपनी लिङ्गमूर्ति (महादेव) को उस उस प्रसाद का भोग लगाकर अवशिष्ट प्रसाद ग्रहण करो।]

मन्त्रार्थ— जो परमशिव सभी देवों के अधिपति हैं, जिसमें समस्त भुवन प्रतिष्ठित हैं, जो द्विपद और चतुष्पद पशुओं का नियामक पशुपति हैं, हम जीव अधिकारिभेद के अनुसार उस आनन्दमूर्ति महादेव की त्रिविध हविद्रव्य (रूप, रुचि और तृप्ति) द्वारा सादर परिचर्या करते हैं॥१३॥

अवतरण— अत्यन्त आदर के कारण बारबार परमात्मज्ञान की मुक्तिहेतुता का प्रतिपादन किया जा रहा है—

'सूक्ष्मातिसूक्ष्मम्'[१] इत्यादि। **'सूक्ष्मातिसूक्ष्मम्'** = सूक्ष्म वस्तुओं से भी अत्यन्त सूक्ष्म, जैसा कि इसी उपनिषद् में अन्यत्र **'अणोरणीयान्'** (३.२०) इत्यादि

---

१. इस मन्त्र का हिन्दी पद्यानुवाद इस प्रकार है—
''परम सूक्ष्म से सूक्ष्म हृदय की गहन गुफा में छिप जाते।
अति महान् वे, घेर विश्व को एक मात्र हैं छवि पाते॥
वे ही एक जगत्स्रष्टा हैं, विविध रूप में वे आते।
जान उन्हीं मंगलमय प्रभु को शान्ति सनातन नर पाते॥''
—''कल्याण'' उपनिषद् अंक, १९४९।

CC0. In Public Domain. Jangamwadi Math Collection, Varanasi

Digitization by eGangotri and Sarayu Trust. Funding by MoE-IKS

'कलिलमि'त्युच्यते। तस्य **मध्ये** अन्तर्विद्यमानं तत् **विश्वस्य** जगतः **स्रष्टारम्** अत एव अनेकरूपं कारणकार्यकलिलाद्यनेकरूपं **एकमद्वितीयम्**, **विश्वस्य** जगतः **परिवेष्टितारं** व्याप्तारं सर्वव्यापकमित्यर्थः। एतादृशं **शिवं** सर्वमङ्गलकरं मूर्तामूर्तरूपिणं परमशिवं **ज्ञात्वा** साक्षात्कृत्य। **अत्यन्तं** पुनर्विवृत्तिरहितां **शान्तिं** मोक्षरूपाम् आत्यन्तिकदुःखनिवृत्त्यात्मिकां परां शान्तिम् **एति** प्राप्नोति।।१४।।

(और **'बालाग्रशतभागस्य'** (५-९) इत्यादि) मन्त्र में परमात्मा के सूक्ष्मतम चैतन्यस्वरूप का वर्णन किया गया है।

'कलिलस्य मध्ये (स्थितम्)' = कारण और कार्य इन दोनों की मध्य अवस्था को **'कलिल'** कहा जाता है, उसके कारणस्वरूप (सूक्ष्मातिसूक्ष्मतम स्वरूप में परमशिव विराजमान हैं। [**आचार्य शंकर** 'कलिल' का अर्थ इस प्रकार कर रहे हैं— **'कलिलस्य अविद्यातत्कार्यात्मकदुर्गस्य गहनस्य।''** 'कलिल' वह गहन दुर्ग है, जो अविद्या और कार्य से निर्मित है। **शंकरानन्द** के अनुसार 'कलिल' का अर्थ अज्ञानान्धकार है— **'कलिलस्य तमसो मध्ये।'** शंकरानन्द के अनुसार समस्त सृष्टि जलमयी है। स्त्री का रज एवं पुरुष का वीर्य मिल कर जब कुछ काल तक रहता है, उसे 'कलिल' कहते हैं। अथवा जल के बुलबुलों की प्रथम स्थिति 'कलिल' कहलाती है। **''नारीवीर्येण सङ्गतं पौरुषं वीर्यमल्पकालस्थं 'कलिलमि'त्युच्यते। अथवा जगदारम्भकाणामपां बुद्बुदस्य पूर्वावस्था कलिलमित्युच्यते। फेनिलानीत्यु-दकानीत्यर्थः।''** फेनिल जल कलिल कहलाता है। सूक्ष्मातिसूक्ष्म चैतन्यस्वरूप परमशिव वास करते हैं उस 'कलिल' के बीच, **'विश्वस्य स्रष्टारम्'** = स्थावर-जंगमात्मक जगत् के रचयिता, **'अनेकरूपम्'** = कारण, कार्य, कलिल आदि विविध रूपों में अवतीर्ण, **'एकम्'** = एकमात्र, अद्वितीय, **'विश्वस्य परिवेष्टितारम्'** = चारों ओर से समस्त विश्व को वेष्टित करने वाले सर्वव्यापक, **'शिवम्'** = सर्वमङ्गलकारी मूर्त-अमूर्त परमशिव का, **'ज्ञात्वा'** = साक्षात्कार कर, **'अत्यन्तं शान्तिम्'** = जन्ममरणचक्र की बारबार आवृत्ति से मुक्त आत्यन्तिक दुःखरहित मोक्षस्वरूप परम शान्ति को, **'एति'** = प्राप्त करता है।

मन्त्रार्थ— जीव 'कलिल' - कारण, कार्य और उन दोनों की अवस्था के बीच जलबुद्बुदवत् स्थिति में सूक्ष्मातिसूक्ष्मस्वरूप से अन्तर्यामी बनकर विराजमान, जगत्स्रष्टा, विविध रूपधारी, विश्व को वेष्टित करने वाले, अद्वितीय सर्वव्यापक परमशिव का साक्षात्कार कर अत्यन्त शान्ति प्राप्त करता है।।१४।।

CC0. In Public Domain. Jangamwadi Math Collection, Varanasi

Digitization by eGangotri and Sarayu Trust. Funding by MoE-IKS

एवं शिवस्य कारणकार्यावस्थारूपत्वमुक्त्वा मध्यकाले चेतनाचेतनात्मकस्य जगतोऽस्य रक्षकोऽपि स एवेत्याह—

स एव काले भुवनस्य गोप्ता
विश्वाधिपः सर्वभूतेषु गूढः।
यस्मिन् युक्ता ब्रह्मर्षयो देवताश्च
तमेवं ज्ञात्वा मृत्युपाशांश्छिनत्ति।।१५।।

'स एवे'ति। **काले** तत्तत्काले **भुवनस्य** जगतः **स एव** परमशिवः **गोप्ता** रक्षकः। एवं **विश्वाधिपः** विश्वस्य समस्तस्य जगतोऽधिपः। **''पतिं विश्वस्याऽऽत्मेश्वरं शाश्वतं शिवमच्युतम्''** इति हि श्रूयते। एतादृशोऽपि सन् **सर्वभूतेषु गूढः** प्राणिनां देहे अज्ञाततया वर्तमानोऽपि सः सर्वैन गृह्यते। **यस्मिन्ने**तादृशे शिवे परमात्मनि **ब्रह्मर्षयः** सनकादयः **देवताश्च** चतुर्मुखादयश्च **युक्ताः** समायुक्ता

अवतरण— इस प्रकार परमशिव की कारणस्वरूप और कार्यस्वरूप स्थिति को चित्रित कर वेदमाता अब अग्रिम मन्त्र में यह प्रतिपादित कर रही है कि सृष्टि और संहार के मध्य वह चेतन-अचेतनस्वरूप जगत् का रक्षक भी होता है—

'स एव काले भुवनस्य गोप्ता'[1] वही परमशिव उस-उस समय समस्त चतुर्दश भुवनों का रक्षक होता है।

'विश्वाधिपः' = उसी प्रकार वह समस्त विश्व का अधिपति भी है। जैसा कि श्रुतिवचन है— **''पतिं विश्वस्यात्मेश्वरं शाश्वतं शिवमच्युतम्।''** परमशिव विश्वाधिपति, विश्व की आत्मा, ऐश्वर्यसम्पन्न और कभी भी च्युत न होने वाले शाश्वत सत्यस्वरूप हैं, यह इस वेदमन्त्र का आशय है।

'सर्वभूतेषु गूढः' = इस प्रकार का होते हुए भी सभी प्राणियों की हृदयगुफा में अन्तर्यामी बनकर गुप्त रूप से वास करते हैं। किन्तु अज्ञात होने के कारण सब जीव उनको प्राप्त नहीं कर सकते।

---

१. इस वेदमन्त्र का पद्यानुवाद इस प्रकार है—
"वे ही स्थिति के समय भुवन के संरक्षक जग के स्वामी।
सब भूतों में छिपे हुए हैं, वे ही बन अन्तर्यामी।।
उनका ही ब्रह्मर्षि देवगण एक चित्त हो करते ध्यान।
जान उन्हें यों मनुज मृत्यु के तोड डालता पाश महान्।।"
—"कल्याण", उपनिषद् अंक, जनवरी १९४९।

CC0. In Public Domain. Jangamwadi Math Collection, Varanasi

Digitization by eGangotri and Sarayu Trust. Funding by MoE-IKS

आश्रिता वर्तन्ते। **तमेतादृशं** शिवम् **एवं** एतादृशमहामहिमविशिष्टं **ज्ञात्वा** साक्षात्कृत्य **मृत्युपाशान्** मृत्योरविद्यातमोरूपादयो बहुविधाः पाशा बन्धाः, तान् छिनति साधकः। एवं चात्र महामहिमत्वादिविशेषविशिष्टब्रह्मज्ञानस्यैव अविद्यानाशकत्वकथनात् सविशेषज्ञानमेव मुक्तिहेतुः ; न तु निर्विशेषज्ञानमिति स्पष्टीकृतम्। तेन निर्विशेषब्रह्मवादो निरस्तो भवति॥१५॥

'यस्मिन् युक्ता ब्रह्मर्षयो देवताश्च' = इस प्रकार के परमशिव पर सनक-सनन्दन सनत्कुमार आदि ब्रह्मर्षि और चतुर्मुख ब्रह्मदेव-विष्णु आदि देवता भी आश्रित रहते हैं।

'तमेवं ज्ञात्वा मृत्यु पाशांश्छिनत्ति' = साधक इस प्रकार के 'महिमासम्पन्न' परमशिव का साक्षात्कार कर मृत्यु-तुल्य अविद्यातम (अज्ञानान्धकार) आदि नाना प्रकार के रज्जुतुल्य पाशबन्धनों को छिन्न-विच्छिन्न करता है। इस प्रकार यहाँ पर यह स्पष्ट किया गया है कि यतः महामहिमादिसम्पन्नता आदि विशेषताओं से विशिष्ट ब्रह्म (परमशिव) का साक्षात्कार करने से अविद्या का नाश होता है, अतः सविशेष ज्ञान ही मुक्ति का कारण है, निर्विशेष ज्ञान नहीं। इससे निर्विशेष ब्रह्मवाद का निरसन होता है।

[**'मृत्युपाशांश्छिन्नत्ति'** का **शाङ्करभाष्य** इस प्रकार है— **'मृत्युपाशान्–मृत्युरविद्या तमोरूपादयश्च पाशाः** 'पाश्यन्त इति पाशाः', **तान्, 'मृत्युर्वै तमः'** (बृ.उ. १.३.२८) **इति श्रुतिः। तत्कार्यकामकर्म च्छिनत्ति नाशयति।''** जीव परमात्मा का साक्षात्कार कर मृत्युपाशों को छिन्न-विच्छिन्न करता है। यहाँ **'मृत्युर्वै तमः'** (बृ.उ.१.३.२८) इस वेदमन्त्रानुसार मृत्यु का अर्थ है अविद्या, अज्ञानान्धकार-तमस्। उसके पाश हैं— शब्द, रूप, रस, गन्ध और स्पर्श। **'पाश्यन्ते इति पाशाः'** — जिस प्रकार रज्जु पशु को फँसाती है, बन्धन में डालती है, उसी प्रकार अज्ञानी जीव को रूपादि विषय फँसाते हैं, अपने बन्धन में डालते हैं, अतः वे 'पाश' कहलाते हैं। मृत्युतुल्य अविद्या के कारण पशुतुल्य अज्ञानी जीव इन रज्जुतुल्य वैषयिक पाशबन्धनों में पड़ता है, ब्रह्मसाक्षात्कार से वे मृत्युपाश छिन्न-विच्छिन्न होते हैं।

मतान्तर— उपनिषद्ब्रह्मयोगी 'काले' के स्थान पर 'कालः' पाठ स्वीकार करते हुए उसकी व्याख्या इस प्रकार करते हैं— **''स्वातिरिक्तं कलयति स्वात्मसात्करोति इति कालः।''** जो अपने अतिरिक्त सबको आत्मसात् करता है, वह परमशिव महाकालस्वरूप हैं।

''मृत्युपाशांश्छिन्नत्ति'' की व्याख्या करते हुए **विज्ञानभगवान्** कहते हैं— **''मृत्युर्वै तमः'' (बृ.उ. १.३.२८) इति श्रुतेर्मूलप्रकृतिभूतं तमआख्यं मृत्युं**

CC0. In Public Domain. Jangamwadi Math Collection, Varanasi

Digitization by eGangotri and Sarayu Trust. Funding by MoE-IKS

पुनः पुनः परमात्मनो दुर्ज्ञेयत्वस्य तथापि तद्ज्ञानस्यैव मुक्तिहेतुत्वस्य च कथनेन मुमुक्षोर्ब्रह्मज्ञानार्थप्रवृत्तौ जागरूकतयाऽवस्थातव्यमित्यभिप्रायेण परमात्मज्ञानावाप्तये स्फूर्तिमुत्पादयति—

घृतात् परं मण्डमिवातिसूक्ष्मं
ज्ञात्वा शिवं सर्वभूतेषु गूढम्।
विश्वस्यैकं परिवेष्टितारं
ज्ञात्वा देवं मुच्यते सर्वपाशैः।।१६।।

'घृतात् परमि'ति। घृतात् परं घृतोपरि विद्यमानं मण्डमिव सारमिव अतिसूक्ष्ममत्यन्तदुर्ज्ञेयम् अथापि सर्वभूतेषु सर्वप्राणिषु गूढं गोप्यतया वर्तमानम्।

तद्विवर्त-रूपाविद्याकामकर्माख्यान् पाशांश्छिन्नत्ति नाशयति एकत्वज्ञानाग्निना दहतीत्यर्थः।''

मन्त्रार्थ— वही परमशिव समय समय पर चतुर्दश भुवनों के रक्षक हैं, वही विश्व के अधिपति हैं और वही सभी प्राणियों में गुप्तरूप से वास करते हैं। सनकादि ब्रह्मर्षि और ब्रह्मदेव आदि देवगण योगसाधना द्वारा जिसमें अपना चित्त एकाग्र करते हैं, उस निर्विशेष परमशिवस्वरूप परब्रह्म का साक्षात्कार कर साधक अज्ञानान्धकाररूपी मृत्यु के रज्जुतुल्य रूपादि वैषयिक पाशों को छिन्न-विच्छिन्न कर देता है।।१५।।

अवतरण— परशिवस्वरूप परब्रह्म परमात्मा कठिनता से ज्ञेय है, तथापि उसका साक्षात्कार ही मोक्ष का कारण है' इस प्रकार बारबार कहकर 'मुक्तिकाम जीव की ब्रह्मसाक्षात्कार के लिये प्रवृति हो, इसलिये उसे सदा जागरूक रहना चाहिये' इस अभिप्राय से परमात्मसाक्षात्कार करने के लिये जीव में इस मन्त्र द्वारा ऊर्जा अथवा स्फूर्ति उत्पन्न की जा रही है—

'घृतात् परम्'[१] परमशिव इत्यादि। घी (मक्खन) के ऊपर विराजमान मांड (सारतत्त्व) के समान अत्यन्त सूक्ष्म, अत्यन्त दुर्ज्ञेय और सभी जीवों में गुप्तरूप से

---

१. इस वेद मंत्र का पद्यानुवाद इस प्रकार है—
''माखन में स्थित सारभाग से परम सूक्ष्म जो अतिशय सार।
एकमात्र सब ओर व्याप्त जो घेरे हुए सकल संसार।।
सब भूतों में छिपे हुए हैं, शिव कल्याण गुणों में एक।
जान उन्हीं प्रभु को होता नर सब भव के बन्धन से मुक्त।।''
—''कल्याण'', उपनिषद् अंक, जनवरी १९४९

CC0. In Public Domain. Jangamwadi Math Collection, Varanasi

Digitization by eGangotri and Sarayu Trust. Funding by MoE-IKS

सर्वत्र वर्तमानोऽपि दुर्ज्ञेय इति वैचित्र्यमुच्यते। **एकं विश्वस्य परिवेष्टितारं** सर्वव्यापकं शिवं महादेवं **ज्ञात्वा** साक्षात्कृत्य **सर्वपाशैः** शक्तिसङ्कोचरूपेभ्य आणवमायीयकार्मिकेभ्यो मलपाशेभ्यो **मुच्यते** विमुक्तो भवति साधकः॥१६॥

'सर्वभूतेषु गूढः' इत्युक्तमेवाशयं पुनः स्पष्टयति—

एष देवो विश्वकर्मा महात्मा
सदा जनानां हृदये सन्निविष्टः।

वर्तमान हैं। सर्वत्र विद्यमान होने पर भी दुर्ज्ञेयता ही उनकी विचित्रता कही जाती है। वे समस्त विश्व को एकाकी, अद्वितीय ही घेरे रहते हैं। इस प्रकार चित्प्रकाशस्वरूप परमशिव महादेव का साक्षात्कार कर साधक सभी प्रकार के— आणव-मायीय-कार्मिक त्रिविध अज्ञानमलपाशों से छुटकारा पाता है।

[**मतान्तर**— शाङ्कर भाष्य के अनुसार जिस प्रकार घृत (मक्खन) के ऊपर रहने वाला माण्ड (सारतत्त्व) अत्यन्त आनन्ददायक होता है, उसी प्रकार परमेश्वर भी मुमुक्षुओं के लिए शाश्वत सुख प्रदायक होता है— **''घृतोपरि विद्यमानं मण्डं सारः अतिप्रीतिविषयो यथा, तद्वत् तथा मुमुक्षूणामतिसाररूपानन्दप्रदत्वेन निरतिशयप्रीतिविषयपरमात्मा।''**

'मण्ड' एक प्रकार की झिल्ली है। घी अत्यन्त पौष्टिक पदार्थ है, जिसके ऊपर अत्यन्त सूक्ष्म झिल्ली जमती है। जो आनन्दायिनी होती है, उसी प्रकार परमात्मा अत्यन्त साररूप आनन्द प्रदान करता है। विज्ञानभगवान् का कथन है कि व्यष्टिजगत् में स्थूल 'विराट्' पुरुष से तैजसस्वरूप 'हिरण्यगर्भ' सूक्ष्म है, प्रकृति उस तैजस स्वरूप से सूक्ष्म है, अन्तर्यामी परमात्मा प्रकृति से भी सूक्ष्म है, क्षणिक सुखों को तिरस्कृत करने वाला शाश्वत आनन्दस्वरूप सत्य चिन्मात्र परमात्मा उस हृदयगुफास्थित परमात्मा से भी सूक्ष्म है, जो अन्तर्बाह्य सर्वत्र व्याप्त है। साधक उस परमशिव का साक्षात्कार कर 'अहं ब्रह्मास्मि' इस प्रकार की अनुभूति करते हुए सर्वविध पाश बन्धनों से मुक्त होता है।]

मन्त्रार्थ— जिस प्रकार जीव घी के ऊपर जमे हुए सूक्ष्मतम सारतत्त्व का आस्वाद लेकर परमानन्द प्राप्त करता है, उसी प्रकार साधक अन्तर्बाह्य सर्वत्र व्याप्त सत्यस्वरूप चिन्मात्र अत्यन्त आनन्दमय जो विश्व को एकमात्र घेरे हुए रहता है, उस सूक्ष्मतम परमशिव का साक्षात्कार कर सर्वविध पाशबन्धनों से मुक्ति प्राप्त करता है।।१६।।

अवतरण— पूर्वमन्त्र में **'सर्वभूतेषु गूढः'** इस प्रकार परमशिव की विशेषता प्रकट की गयी है। उसी आशय को पुनः स्पष्ट किया जा रहा है—

CC0. In Public Domain. Jangamwadi Math Collection, Varanasi

Digitization by eGangotri and Sarayu Trust. Funding by MoE-IKS

हृदा मनीषा मनसाऽभिक्लृप्तो
य एतद् विदुरमृतास्ते भवन्ति।।१७।।

'एष' इति। **विश्वकर्मा** विश्वं समस्तमपि कार्यं सृष्टिस्थितिलयादिरूपं कर्म यस्य सः विश्वकर्मा सर्वस्यापि जगतः परमकारणभूत इत्यर्थः। अत एव **महात्मा** अनिर्वचनीयमहामहिमविशिष्टस्वरूपः **एष देवः** शिवः परमात्मा **जनानाम्** अस्मदादीनां सर्वेषामपि **हृदये** हृदयगुहायां **सदा** सर्वस्मिन्नपि काले **सन्निविष्टः** सम्यक् एकक्षणवियोगमन्तरा निविष्टः सन्निहितो वर्तते। तमेतादृशं **हृदा मनसा,**

'एष देवः'[१] इत्यादि। [इसी प्रकार का मन्त्र पूर्व (३.१३) आया है। वहाँ पर प्रथम चरण इस प्रकार है— **'अङ्गुष्ठमात्रः पुरुषोऽन्तरात्मा।'** शेष तीनों चरण समान हैं। **शांकरभाष्य** में तृतीय चरण स्थित **'मनीषा'** पद के स्थान पर **'मन्वीशः'** पाठ है, जिसकी व्याख्या वहाँ **'ज्ञानेशः'** की गयी है।]

'विश्वकर्मा'— ('विश्वं कर्म यस्य सः विश्वकर्मा') चराचर जगत् की सृष्टि, स्थिति और प्रलय जिसका कर्म है। यतः **'क्रियते इति कर्म'** इस निर्वचन के अनुसार जो किया जाता है, वही कर्म होता है। परमशिव समस्त जगत् का कारण है यह इसका आशय है।

'महात्मा'— 'महांश्चासौ आत्मा च महात्मा'। (**शांकरभाष्य** के अनुसार परमशिव सर्वव्यापी होने के कारण महात्मा हैं। **वीरशैवभाष्य** के अनुसार वे अनिर्वचनीय महामहिमविशिष्टस्वरूप होने के कारण महात्मा हैं।

'एषः देवः' — अनुभवैकगम्य चित्तप्रकाशस्वरूप, परमशिव, **'सदा जनानां हृदये सन्निविष्टः'** हमारी, आपकी, सभी प्राणियों की हृदयगुफा में सभी समय एक क्षण के वियोग के बिना निकट बने रहते हैं।

'हृदा मनीषा मनसाऽभिक्लृप्तः' 'हरतीति हृत्, तेन मनसा' जो मन संसारपाशों से छिन्न-विच्छिन्न होता है, उस विषयविमुख मन और उसी प्रकार की 'मनीषा' बुद्धि द्वारा परमशिव प्रकाशित होते हैं। [**विज्ञानभगवान्** की व्याख्या इस प्रकार है— **"हृदा हृदयस्थबुद्ध्या मनसा सङ्कल्पात्मकेनाऽभिक्लृप्तोऽभिप्रकाशितः।**

---

१. इस वेद मंत्र का पद्यानुवाद इस प्रकार है—
"ये ही देव विश्वकर्मा हैं परमात्मा सब के स्वामी।
सब मनुष्यों के सदा हृदय में बसे हुए अन्तर्यामी।।
हृदय बुद्धि मन से चिन्तन हो, तब इनका हो साक्षात्कार।
इस हृदय को जान गये तो जन्म-मृत्यु से होते पार।।"
—"कल्याण", उपनिषद् अंक, जनवरी १९४९।

CC0. In Public Domain. Jangamwadi Math Collection, Varanasi

Digitization by eGangotri and Sarayu Trust. Funding by MoE-IKS

हरतीति हृत् संसारपाशच्छेदनसमर्थम्, तेन। मनसा विषयविमुखेन मनसा, तादृश्या **मनीषा** मनीषया बुद्ध्या च।

"मन एव मनुष्याणां कारणं बन्धमोक्षयोः।
बन्धाय विषयासङ्गि मुक्त्यै निर्विषयं मनः।।"

इति ह्युच्यते। एतादृशविषयविमुखा बुद्धिः मनश्च यस्य स्तः तस्यैव साधकस्य सः सुलभः सम्पद्यते। एतादृशेन मनसा **अभिक्लृप्तः** प्रकाशितः सोऽनुभूयते। **य एतत्** एतत् तत्त्वम् एतद् रहस्यं **विदुस्ते**ऽपि क्रमशस्तदुपासनादिषूपायेषु प्रवृत्ता **अमृता भवन्ति** मुक्ता भवन्ति ; तत्साक्षात्कारेण मृत्युपाशाद् विमुच्यन्ते।

एवं च एतादृशमार्गपरिचयः सर्वेषां च साधकानां निर्मलान्तःकरणानां प्रवृत्त्यर्थं तत्र तत्रोपदिश्यते। तदवगम्य साधकाः स्वीयहृदय एव सहजतया प्रकाशमानं महालिङ्गं विज्ञाय तेन सह मिलित्वा तृप्त्या निर्लिप्ततया च लोके व्यवहरन्तः सुखेन वसेयुरिति महर्षिर्निरीक्षते।।१७।।

मनसा सङ्कल्पितो बुद्ध्या निश्चित इति मनसा बुद्ध्याऽभिप्रकाशितः।" इसका अभिप्राय यह है कि परमशिव हृदयस्थ बुद्धि और सङ्कल्पात्मक मन से प्रकाशित होते हैं। अर्थात् मन जब सङ्कल्प करता है और बुद्धि जब निर्धारित-निश्चित करती है, तब परशिव ब्रह्म प्रकट होते हैं।]

जैसा कि "मन एव मनुष्याणाम्" इत्यादि पद्य में यह कहा गया है कि मन ही मनुष्यों के बन्धन और मोक्ष का कारण होता है। विषयासक्त मन बन्धन का कारण होता है और विषयविमुख मन मोक्ष का। इस प्रकार जिसकी बुद्धि और मन विषयों से विमुख रहते हैं, इस प्रकार के साधक को परमात्मसाक्षात्कार सुलभ होता है। साधक विषयविमुख मन से प्रकाशित परमशिव का साक्षात्कार करता है।

"य एतद् विदुरमृतास्ते भवन्ति"— जो इस रहस्य को जानते हैं, वे क्रमशः उसकी उपासना आदि में प्रवृत्त होकर अमरत्व प्राप्त करते हैं अर्थात् उन्हें मुक्ति मिलती है। परशिव-ब्रह्मसाक्षात्कार से उन्हें मृत्युपाशबन्धन से छुटकारा मिलता है। इस प्रकार निर्मल अन्तःकरण के सभी साधकों को समय-समय पर सन्मार्ग का परिचय दिया जाता है। साधक उसे प्राप्त कर अपने ही हृदय में सहजरूप से प्रकाशमान चिन्मय महालिङ्ग का तत्त्वबोध कर और उसके साथ नदीसमुद्रन्याय से सामरस्यात्मक विलय प्राप्त कर निर्लिप्तभाव से लोकव्यवहार करते हुए सुखपूर्वक निवास करें, इस प्रकार महर्षि श्वेताश्वतर समीक्षा कर रहे हैं।

CC0. In Public Domain. Jangamwadi Math Collection, Varanasi

Digitization by eGangotri and Sarayu Trust. Funding by MoE-IKS

एवं सर्वजगत्कारणस्य परमेश्वरस्य सर्वजगदादिकालेऽप्यवस्थानकथनेन सनातनत्वं सदा निर्विकारतया वर्तमानत्वं चाह—

यदातमस्तन्न दिवा न रात्रि-
र्न सन्न चासन् शिव एव केवलः।
तदक्षरं तत् सवितुर्वरेण्यं
प्रज्ञा च तस्मात् प्रसृता पुराणी।।१८।।

'यदे'ति। **यदा** यस्मिन् काले **तत्** तादृशमनिर्वचनीयं **तमः** अन्धकार एवाऽऽसीत् सूर्यादीनामपि तत्रैव सूक्ष्मरूपतया विलीनानामनन्तर एव सृष्टिः।

मन्त्रार्थ— चराचर विश्व के कारणस्वरूप और उसकी सृष्टि, स्थिति और संहार करने वाले अनिर्वचनीय महामहिम चित्प्रकाशस्वरूप परमेश्वर प्राणिमात्र के हृदयाकाश में प्रविष्ट हैं। जो सांसारिक पाशबन्धन को काटने में समर्थ विषय-विमुख बुद्धि से उसके साक्षात्कार का निश्चय और संकल्पात्मक विषयविमुख मन से उसका ध्यान करते हैं, उन साधकों को परमात्मसाक्षात्कार होता है। जो इस रहस्य को जानते हैं, वे अमर हो जाते हैं।।१७।।

अवतरण— इस प्रकार अग्रिम मन्त्र में समस्त जगत् की आदिकाल में सत्ता के प्रतिपादन से समस्त जगत् के कारणस्वरूप परमेश्वर की सनातन शाश्वत निर्विकार सत्ता का प्रतिपादन किया जा रहा है—

'यदा तमस्तन्न दिवा न रात्रिः' = जिस समय उस प्रकार का अवर्णनीय **'तम'** अन्धकार ही फैला हुआ था, सूर्य, चन्द्र, ग्रह, नक्षत्र, तारकाएँ सभी उसी परमशिव में सूक्ष्मरूप से विलीन हो गये थे, उसके पश्चात् ही उनकी सृष्टि हुई थी। अत: उस समय सर्वत्र 'तम' (अन्धकार) ही सर्वत्र फैला हुआ था। यही महाप्रलय की अवस्था होती है। उस समय सर्वत्र अन्धकार व्याप्त होने के कारण न दिन था और न रात थी, दिनरात का विभाग करना भी असम्भव था।

[शंकरभगवत्पाद अपने भाष्य में **'यदाऽतमः'** इस प्रकार अवग्रह युक्त पाठ स्वीकार करते हुए इस प्रकार प्रतिपादन करते हैं— 'यदा यस्यामवस्थायामतम:-'न तमोऽस्येत्यतम:' 'तत्त्वमस्या'दिवाक्यजन्यज्ञानेन दीपस्थानीयेन दग्धाऽविद्यातत्काल-रूपतमस्कत्वात् न दिवा दिवारोपोऽपि नास्ति, न रात्रिर्नास्तीति सर्वत्राऽनुषङ्गः।''

इसका आशय यह है कि गुरु द्वारा प्रदत्त **'तत्त्वमसि'** इस दीपकतुल्य ज्ञानोपदेश से जब अज्ञानान्धकार मिट जाता है, शुद्ध ज्ञानप्रकाश चारों ओर बिखरता

CC0. In Public Domain. Jangamwadi Math Collection, Varanasi

Digitization by eGangotri and Sarayu Trust. Funding by MoE-IKS

अतस्तदानीं तम एव सर्वत्र व्यापृतमासीत्। इयमेव महाप्रलयस्याऽवस्था। तदानीं तमोव्याप्ता **न दिवा नाऽपि रात्रि**रिति दिवारात्रिविभागोऽपि नाऽसीत्। तस्मादेव कारणात् तदानीं **सद**पि **ना**ऽसीत्, **असद**पि **ना**ऽऽसीत्। सदसद्व्यवहारोऽपि हि सृष्ट्यनन्तरकालिक एव। अतस्तदपि नाऽऽसीदेव। किन्तु सच्चिदानन्दरूपः शिव एव आसीत् तदानीम्। सदसद्द्वयस्याऽपि मूलभूते शिव एव अव्यक्त-दशायामवस्थितत्वात् प्रलये **केवलः शिव एव** अद्वितीयो विराजते। इमं शिवं **सिद्धान्तशिखामणि**रेवं निर्दिशति—

> **"अस्ति सच्चित्सुखाकारमलक्षणपदास्पदम्।**
> **निर्विकल्पं निराकारं निरस्ताशेषविप्लवम्।।**
> **शिवरुद्रमहादेवभवादिपदसंज्ञितम् ।।**
> **अद्वितीयमनिर्देश्यं परं ब्रह्म सनातनम्।।"** इति। (परि.२-३,६)

है, उस समय न तो दिन का आरोप करना सम्भव है और न रात्रि का आरोप हो सकता है। इसी प्रकार आगे भी संगति लगानी चाहिये।]

'न सन्न चासत्' = उसी हेतु से न तो वह 'सत्' है और न 'असत्'। क्योंकि सृष्टि के अनन्तरवर्ती क्षण से ही 'सत्'-'असत्' का व्यवहार किया जा सकता है, उसके पूर्ववर्ती क्षण में नहीं। अतः वह भी नहीं था।

'शिव एव केवलः' = उस समय केवल एकमात्र सच्चिदानन्दस्वरूप परमशिव ही था। 'सत्'-'असत्' दोनों की ही मूलभूत स्थिति अव्यक्त अवस्था में मूलकारणस्वरूप शिव में ही होने के कारण प्रलयावस्था में 'केवल' अद्वितीय शिव ही विराजित प्रकाशमान रहते हैं।

[**आचार्य शंकर** इसकी भिन्न व्याख्या करते हैं— **"तर्हि तत्त्वं सर्वत्र शून्यमेव जातमिति बौद्धमतविशेषमाशङ्क्याऽऽह– 'शिव एवे'ति। शिव एव शुद्धस्वभावो न शून्यमिति निपातार्थः। केवलोऽविद्याविकल्पशून्यः।"**

क्या ऐसी स्थिति में सर्वत्र शून्य व्याप्त था? यह तो बौद्ध मत है, फिर इसका विशेष अर्थ क्या है? इस प्रश्न का समाधान है— **'शिव एव केवलः'**। यहाँ उस समय केवल परमशिव की सत्ता थी, शून्य की नहीं। 'केवल' का अर्थ है अविद्या के विकल्प से शून्य।

'सिद्धान्तशिखामणि' सनातन परब्रह्म परमशिव का इस प्रकार निर्देश करता है— **'अस्ति सच्चित्सुखाकारम्'** इत्यादि। उस परमशिव का लक्षण सम्भव नहीं है, वह विकल्परहित, आकारशून्य, सभी उपद्रवों से रहित, सत्, चित् और आनन्दस्वरूप है (२.३)।

CC0. In Public Domain. Jangamwadi Math Collection, Varanasi

Digitization by eGangotri and Sarayu Trust. Funding by MoE-IKS

अयमेव शिवोऽत्र परब्रह्म इति निर्दिश्यते। **तत्** एतादृशस्वरूपमेव **अक्षरम्** अक्षरपदवाच्यम्। **तच्च सवितु**रादित्यादेरपि प्रकाशकत्वाद् (वरेण्यं) वरणीयम्।

"यदादित्यगतं तेजो जगद् भासयतेऽखिलम्।
यच्चन्द्रमसि यच्चाऽग्नौ तत् तेजो विद्धि मामकम्।।" (१५.१२)

इति गीतायामादित्यतेजसः परमात्मसम्बन्धित्वमुक्तम्। **'कोटिसूर्यप्रतीकाशं चन्द्रकोटिसमप्रभम्'** (२.११) इत्यादिना **सिद्धान्तशिखामणिः** परमात्मप्रकाशं प्रशंसते। अत्राऽपि वक्ष्यति—

"न तत्र सूर्यो भाति न चन्द्रतारकं नेमा विद्युतो भान्ति कुतोऽयमग्निः।
तमेव भान्तमनुभाति सर्वं तस्य भासा सर्वमिदं विभाति।।"
(६.१४) इति।

एतादृशमहाप्रकाशरूपात् शिवात् **पुराणी** प्राक्तनी **प्रज्ञा** आदिमवाक्यजा बुद्धिः **प्रसृता** उत्पन्ना। सर्वव्यवस्थापिनी विमर्शाख्या प्रज्ञाशक्तिः जगत्सृष्टेः प्राक् शिवादेवाविरासीत्।

'शिवरुद्रमहादेव' इत्यादि। वह शिव, रुद्र, महादेव आदि नामों से विख्यात है, वह द्वितीयादिभेदशून्य है, सजातीय-विजातीय भेदरहित होने के कारण उसका निर्देश सम्भव नहीं है। वह सनातन परब्रह्मस्वरूप है (२.६)।

"तदक्षरं तत् सवितुर्वरेण्यम्"— **तत्** = वह परशिवस्वरूप परब्रह्म, **'अक्षरम्'** ('न क्षरतीत्यक्षरम्')— क्षरणरहित होने के कारण, 'अक्षर' पद से संकेतित है। वह **'सविता'** सूर्य आदि द्वारा भी **'वरेण्य'** वरणीय है, क्योंकि वह सबका प्रकाशक है। जैसा कि गीता के **'यदादित्यगतं तेजः'** (१५.१२) इत्यादि पद्य में सूर्य के तेज को परमात्मा से सम्बद्ध कहा गया है। इसका पद्यानुवाद इस प्रकार है—

"जिससे प्रकाशित है जगत् जो तेज दिव्य दिनेश में।
वह तेज मेरा तेज है जो अग्नि में राकेश में।।"
(श्रीकृष्णगीता १५.१२)

'कोटिसूर्यप्रतीकाशम्' (२.११) इत्यादि पद्यार्ध से 'सिद्धान्तशिखामणि' भी परमात्मप्रकाश की प्रशंसा कर रहा है, जिसमें उसे सूर्यकोटि और चन्द्रकोटि के समकक्ष तेजस्वी कहा गया है। इस उपनिषद् में **'न तत्र सूर्यो भाति'** (६.१४) इत्यादि मन्त्र द्वारा परब्रह्म के तेज से सूर्य-चन्द्राग्नि के प्रकाशित होने का रहस्य उद्घाटित किया गया है।

CC0. In Public Domain. Jangamwadi Math Collection, Varanasi

Digitization by eGangotri and Sarayu Trust. Funding by MoE-IKS

"यथा चन्द्रे स्थिरा ज्योत्स्ना विश्ववस्तुप्रकाशिनी।
तथा शक्तिर्विमर्शाख्या प्रकाशे ब्रह्मणि स्थिरा।।" (२०.३८)

इति परमात्मनिष्ठायाः शक्तेः स्थैर्यं नित्यत्वं च प्रकटयति **सिद्धान्तशिखामणिः।** इयमेव प्राणरूपा शक्तिः जगन्निर्माणनिरताय शिवाय सहकर्तुं तदानीं प्रज्ञारूपेण प्रकटयति। अत एव शिवः सर्वेषां मार्गदर्शकः प्रथमोपदेष्टेति परिकीर्त्यते। **"अध्यवोचदधिवक्ता प्रथमो दैव्यो भिषक्"** इति **रुद्राध्याये** च परमात्मनः प्रथमोपदेशकत्वं श्रूयते। **"यो ब्रह्माणं विदधाति पूर्वं यो वै वेदांश्च प्रहिणोति तस्मै"** (६.१०) इति ह्युक्तमेवास्यामेवोपनिषदि।।१८।।

"प्रज्ञा च तस्मात् प्रसृता पुराणी" — उस महाप्रकाशस्वरूप परमशिव से प्राचीन प्रज्ञा उत्पन्न हुई है। सभी प्रकार की व्यवस्था स्थापित करने वाली 'विमर्श'नामक प्रज्ञाशक्ति जगत् की सृष्टि के पूर्व शिव से आविर्भूत हुई।

"यथा चन्द्रे स्थिरा ज्योत्स्ना" (२०.३८) इत्यादि पद्य द्वारा **'सिद्धान्त-शिखामणि'** परमात्मा में स्थित उसकी शक्ति की स्थिरता और नित्यता को प्रकट कर रहा है। पद्य का भावार्थ इस प्रकार है— 'जिस प्रकार चन्द्र में समस्त वस्तुप्रकाशिका चन्द्रिका स्थिर रहती है, उसी प्रकार प्रकाशस्वरूप परशिवब्रह्म में विमर्शशक्ति स्थिर रहती है। यही प्राणरूपिणी शक्ति उस समय जगत् के निर्माण में निरत परमशिव की सहायता करने के लिये प्राक्तन प्रज्ञा के रूप में प्रकट होती है। इसीलिये श्रुति सभी के मार्गदर्शक और प्रथम उपदेशक के रूप में परमशिव का प्रतिपादन करती है— **"अध्यवोचदधिवक्ता प्रथमो दैव्यो भिषक्"** इस प्रकार रुद्राध्याय में परब्रह्म परमात्मा का प्रथम उपदेशक होना वर्णित है। इसका आशय इस प्रकार है— 'परमशिव ने प्रथम उपदेशक के रूप में दिव्य पथ्यकारी उपदेश दिया।" इसीप्रकार इसी उपनिषद् में **"यो ब्रह्माणं विदधाति पूर्वं यो वेदांश्च प्रहिणोति तस्मै"** (६.१८) इस प्रकार परमशिव का निरूपण किया गया है। जिसका हिन्दी पद्यानुवाद इस प्रकार है—

"जिन परमेश्वर ने ब्रह्मा को सर्वप्रथम उत्पन्न किया।
जिनने उनको अमित ज्ञान का आकर अपना वेद दिया।।"[१]

मन्त्रार्थ— जिस समय अनिर्वचनीय अज्ञानान्धकार फैला हुआ था, उस समय सत्-असत् का व्यवहार असम्भव था। प्रलयकाल में 'केवल' अद्वितीय परमशिव ही प्रकाशित रहते हैं। वही अक्षर परशिव परब्रह्म है, जो सूर्यादि तेजस्वी ग्रहनक्षत्रादि द्वारा भी वरणीय हैं। उसी परमशिव से पुरातनी प्रज्ञा विमर्शशक्ति का आविर्भाव हुआ है।।१८।।

---

१. 'कल्याण' उपनिषद् अंक, जनवरी १९४९

CC0. In Public Domain. Jangamwadi Math Collection, Varanasi

Digitization by eGangotri and Sarayu Trust. Funding by MoE-IKS

किमधिकोक्त्या? तादृशमहाप्रकाशरूपमन्यद्वस्तु नास्त्येवेत्याह—

नैनमूर्ध्वं न तिर्यञ्चं न मध्यं परिजग्रभत्।
न तस्य प्रतिमा अस्ति यस्य नाम महद्यशः।।१९।।

'नैनमि'ति। **एनम्** उक्तपरमात्मानम् **ऊर्ध्वं न** कश्चित् **परिजग्रभत्** परिग्रहीतुं समर्थोऽभवत्। **तिर्यञ्चं न** कश्चित् **परिजग्रभत्** कदापि। **मध्यं च** न कश्चिदपि इयता कालेन **परिजग्रभत्**। एवं सर्वव्यापकस्याऽनन्तस्य तस्य ऊर्ध्वाधोमध्यभागानामभावात् तद्ग्रहणं न केनापि कर्तुं शक्यम्। आद्यन्तरहितं परशिवं ज्ञातुं न कोऽपि प्रभवेत्।

"पुरुष एवेदं सर्वं यद् भूतं यच्च भव्यम्।"(२)

"एतावानस्य महिमाऽतो जायांश्च पूरुषः।
पादोऽस्य विश्वा भूतानि त्रिपादस्याऽमृतं दिवि।।" (३)

अवतरण— इससे अधिक और क्या कहा जा सकता है कि परमशिव के समान महाप्रकाशस्वरूप अन्य कोई वस्तु नहीं है—

'नैनमूर्ध्वम्' इत्यादि। कोई भी जीव उस परशिवस्वरूप परमात्मा को ऊपर की ओर ग्रहण करने में समर्थ नहीं हुआ। [**'परिजग्रभत्'** क्रियापद का यही अर्थ है।] उसी प्रकार अगल-बगल तिरछी दिशा में भी कोई कभी भी उसे नहीं पकड़ सका। उसी प्रकार कोई भी बीच में भी उसे आज तक प्राप्त नहीं कर सका। इस प्रकार सर्वव्यापक अन्तरहित उस परमशिव का ऊपर-नीचे-अगल-बगल-मध्यभाग कहीं भी अस्तित्व न होने से उसे प्राप्त नहीं किया जा सकता। आदि-अन्तरहित परशिव को कोई जान नहीं सकता।

"पुरुष एवेदं सर्वं यद् भूतं यच्च भव्यम्"[१] (पु.सू. २)

"एतावानस्य महिमाऽतो जायांश्च पूरुषः।
"पादोऽस्य विश्वा भूतानि त्रिपादस्याऽमृतं दिवि।।"[२] (पु.सू. ३)

---

१. वर्तमान-भूत-भविष्य जो कुछ है, वह सब परमपुरुष परमशिव ही है।

२. उस परमपुरुष की इतनी महिमा है, अतः वह श्रेष्ठ पुरुष है। उसका एक चरण समस्त प्राणिमात्र के रूप में विद्यमान है और उसके अमृतस्वरूप तीन चरण द्युलोक में प्रकाशमान हैं।

"महामहिम वह एक पाद में सकल चराचर है रखता।
शेष तीन में पुरुष अमृतवपु स्वप्रकाश से नभ भरता।।"

—मंगलेश्वर दुंढिराज बादल

CC0. In Public Domain. Jangamwadi Math Collection, Varanasi

Digitization by eGangotri and Sarayu Trust. Funding by MoE-IKS

इत्यादिना परमपुरुषरूपस्य परमशिवस्य महिमातिशयप्रशंसा **पुरुषसूक्ते** श्रूयते।

यस्य एतादृशमहामहिमातिशयस्य महता वैभवेन विराजमानस्य परमेश्वरस्य **नाम** अभिधानं **महत्** सर्वत्र पूरिपूर्णं **यशः** कीर्तिर्न केनापि ग्रहीतुं शक्यते, अथापि तन्नाम तु सर्वेऽपि साधकाः सर्वत्र गृह्णन्ति **तस्यै**तादृशस्य परमात्मनः **प्रतिमा** सादृश्यं **नास्त्येव**। यो ग्रहीतुमशक्योऽपि स्वकीर्त्या सर्वप्रसिद्धो विराजते तादृशस्य सादृश्यं लोके नास्त्येवेत्यर्थः॥१९॥

एतादृशस्य नित्यसुन्दरस्य महामहिमशालिनः सर्वकारणस्य योगिश्रेष्ठस्य सर्वाधिष्ठानस्य च परमेश्वरस्य अवगमः कथं स्यादित्यत आह—

न सन्दृशे तिष्ठति रूपमस्य
न चक्षुषा पश्यति कश्चनैनम्।
हृदा हृदिस्थं मनसा य एनमेवं
विदुरमृतास्ते भवन्ति॥२०॥

'न सन्दृश' इति। अस्य अमूर्तपरमेश्वरस्य रूपं स्वरूपं सन्दृशे चक्षुरादिभिर्ग्रहणयोग्यतायां **न तिष्ठति**। रूपादिशून्यत्वात् चक्षुरादिग्राह्यो न भवत्येव सः।

इत्यादि मन्त्रों द्वारा वेदमाता पुरुषसूक्त में परमपुरुषस्वरूप परशिव की महिमातिशय की अत्यन्त प्रशंसा करती है।

इस प्रकार महिमामण्डित अत्यन्त वैभवसम्पन्न जिसका नाम और कीर्ति कोई प्राप्त नहीं कर सकता, उस परमेश्वर का नामसंकीर्तन तो सभी साधक करते हैं। उस परमपुरुष परमात्मा की तुलना या समानता कहीं भी नहीं है। जिसे कोई प्राप्त नहीं कर सकता, तथापि अपनी कीर्ति से वह सर्वत्र विख्यात है। उस परमात्मा का सादृश्य विश्व में कहीं नहीं है।

मन्त्रार्थ— वह परब्रह्म परमात्मा ऊपर-नीचे, अगल-बगल, पूर्व-पश्चिम, उत्तर-दक्षिण और उपदिशाएँ कहीं भी प्राप्त नहीं किया जा सकता। उसकी तुलना नहीं हो सकती, जिसका नाम और विपुल यश सर्वत्र फैला है॥१९॥

अवतरण— इस प्रकार नित्य सुन्दर महामहिमामण्डित समस्त जगत् के कारणस्वरूप समस्त विश्व के अधिष्ठानभूत योगिराज परमेश्वर का साक्षात्कार हो इसके विषय में अग्रिम मन्त्र में इस प्रकार प्रतिपादन किया जा रहा है—

'न सन्दृशे' इत्यादि। यतः परमैश्वर्यसम्पन्न परमशिव अमूर्त अशरीरी है, अतः उसका स्वरूप चक्षु इत्यादि इन्द्रियों द्वारा ग्रहण नहीं किया जा सकता। अर्थात् वह

CC0. In Public Domain. Jangamwadi Math Collection, Varanasi

Digitization by eGangotri and Sarayu Trust. Funding by MoE-IKS

अत एव **कश्चन** यः कोऽपि **एनं** परमात्मानं **चक्षुषा** चक्षुरादीन्द्रियेण **न पश्यत्येव**। तर्हि कथं तत्साक्षात्कारो लभ्येत साधकैरिति चेदाह— '**हृदे**'ति। **हृदिस्थं** स्वहृदयगतम् **एनं** परमात्मानं **ये हृदा** सर्वपापहरणसमर्थेन परिशुद्धेनेति यावत्। **मनसा एवं विदुः** उक्तप्रकारेण जानन्ति **ते अमृताः** पाशमुक्ता नित्यतृप्ता नित्यसुखिनो **भवन्ति** सम्पद्यन्ते॥२०॥

अथ शिवस्य प्रसादादेवास्माकं इष्टप्राप्तिरनिष्टनिवृत्तिरिति तमेव स्तौति—

अजात इत्येव कश्चिद् भीरुः प्रपद्यते।
रुद्र यत् ते दक्षिणं मुखं तेन मां पाहि नित्यम्॥२१॥

'अजात' इति। **'इति'**शब्दो हेतुवाचकः। **अजात इति** अजातत्वहेतोः, लोके दृश्यमानं सर्वमन्यद्धि जातम्। **'जातस्य हि ध्रुवो मृत्युः'** (२.२७) इति

अरूप-अशब्द-अरस-अगन्ध और अस्पर्श होने के कारण नेत्र-श्रोत्र-रसना-नासिका और त्वचा ये ज्ञानेन्द्रिय उस परमेश्वर को ग्रहण नहीं कर सकते। (क्योंकि ज्ञानेन्द्रिय रूपादि विषयों को ही ग्रहण करते हैं, रूपादिहीन को नहीं।) अत एव चाहे जो कोई भी उस परमशिव को चक्षु इत्यादि इन्द्रिय से प्रत्यक्ष नहीं कर सकता।

फिर साधक उसका साक्षात्कार किस प्रकार कर सकते हैं? उसका उत्तर है— "**'हृदा हृदिस्थम्**" इत्यादि। जो अपनी हृदयगुफा में अन्तर्यामी बनकर वास करने वाले सभी पापों का प्रक्षालन करने में समर्थ अत्यन्त शुद्ध, अत्यन्त निर्मल एकाग्र अन्तःकरण से परमात्मा को जानते हैं, वे अमर, पाशमुक्त, नित्य तृप्त और नित्य सुखी होते हैं।

मन्त्रार्थ— परमेश्वर का स्वरूप नेत्र के सम्मुख स्थिर हो नहीं सकता। कोई उसे खुली आँखों से नहीं देख सकता। जो हृदयगुफास्थित परमशिव को हृदय और अन्तःकरण से जानते हैं, वे अमर मुक्त होते हैं॥२०॥

अवतरण— यतः शिव के कृपप्रसाद से ही अभीष्ट की प्राप्ति और अनिष्ट की निवृत्ति होती है, अतः पुनश्च उसी परमेश्वर की स्तुति की जा रही है—

'अजात' इत्यादि। प्रस्तुत मन्त्र में 'इति' यह अव्यय हेतुवाचक है। **'अजातः'** = यतः परमेश्वर का जन्म ही नहीं हुआ है। संसार में दृष्टिगोचर सभी अन्य वस्तुएँ उत्पन्न हुई हैं। गीता का कथन है कि **"जातस्य हि ध्रुवो मृत्युः"** (२.२७) — जिसका जन्म होता है, उसकी मृत्यु निश्चित होती है। यतः परमशिव का जन्म नहीं हुआ है, अतः वह अमर है, उसकी मृत्यु का प्रश्न ही नहीं है। इसी कारण से कोई

CC0. In Public Domain. Jangamwadi Math Collection, Varanasi

Digitization by eGangotri and Sarayu Trust. Funding by MoE-IKS

गीता वदति शिवस्तु अजातः, अत एवामृतश्च इति हेतोः **कश्चिद् भीरुः** संसारदुःखाद् भीतः। कश्चिदेव **तं प्रपद्यते** ; न तु सर्वे मानवाः।

हे रुद्र! यत् ते दक्षिणं मुखं दक्षिणस्यां दिशि वर्तमानं मुखमस्ति **तेन मां पाहि नित्यं** सर्वदा रक्ष। तदेव अघोरं पावनं सर्वहितावहं मुखमिति यजुर्वेदे श्रूयते। भीकरां दृष्टिं परिहाय सौम्यतया दृष्ट्या भक्ताननुग्रहीतुं प्रार्थयतेऽस्मिन् मन्त्रे श्वेताश्वतरो महर्षिः॥२१॥

मा नस्तोके तनये मा न आयुषि
मा नो गोषु मा नो अश्वेषु रीरिषः।
वीरान् मा नो रुद्र! भामितो वधी-
र्हविष्मन्तः सदमित् त्वा हवामहे॥२२॥

'मा नस्तोक' इति। **मा रीरिष** इत्येतत् सर्वत्रान्वेति। रेषणं मरणं मा कार्षीरित्यर्थः। **नः** अस्माकं **तोके** पुत्रे **तनये** प्रपौत्रे **आयुषि** नः गोषु अश्वेषु गवादिधनेषु **मा रीरिषः** विनाशं मा कार्षीरित्यर्थः।

बिरला ही व्यक्ति सांसारिक त्रिविध (आध्यात्मिक, आधिदैविक और आधिभौतिक) दुःखों से भयभीत होता है, सभी मानव नहीं।

हे रुद्र! जो तुम्हारा दक्षिणाभिमुख मुख है, उससे तुम सदा-सर्वदा मेरी रक्षा करो। यजुर्वेदान्तर्गत रुद्रश्रुति में "वही अघोर सर्वहितावह मुख है।" ऐसा वर्णन किया गया है।

[इसी उपनिषद् में पीछे रुद्रशिव का वर्णन किया गया है— **"या ते रुद्र! शिवा तनूरघोराऽपापकाशिनी"** (३.५)] इस मन्त्र में महर्षि श्वेताश्वतर भयंकर दृष्टि का परित्याग कर सौम्यदृष्टि से भक्तों पर अनुग्रह करने के लिये प्रार्थना कर रहे हैं।

मन्त्रार्थ— कोई-कोई जीव संसार से इसलिये भयभीत होता है कि एकमात्र परमशिव जन्म-जरा-क्षुधा-पिपासा इत्यादि शरीरधर्मों से मुक्त होता है, क्योंकि उसका जन्म ही नहीं है, तो मृत्यु कैसी? बाकी सारा संसार नश्वर विनाशशील है। हे रुद्र! तुम दक्षिणाभिमुख मुख द्वारा सदा सर्वदा मेरी रक्षा करो॥२१॥

'मा नस्तोके' इत्यादि। **'मा रीरिषः'**इसका अन्वय सर्वत्र करना चाहिये। **'रेषण'** का अर्थ है मरण या विनाश। [यहाँ **'स्तोक'** शब्द का अर्थ है पुत्र और **'तनय'** शब्द का अर्थ है प्रपौत्र] भक्त प्रार्थना कर रहा है कि हे परमशिव! तुम हमारे पुत्र (हमारे पौत्र) हमारे प्रपौत्र हमारे आयुष्य, हमारे गोधन, हमारे अश्वधन इत्यादि का विनाश मत करना

CC0. In Public Domain. Jangamwadi Math Collection, Varanasi

Digitization by eGangotri and Sarayu Trust. Funding by MoE-IKS

ये च नो वीरा: समर्था भृत्या: तान् **हे रुद्र!** भवरोगपरिहारक, प्रथमभिषक्, **भामितः** कुपित: सन् **मा वधीः** मा विनाशय। **हविष्मन्तः** हविषा युक्ता: यष्टार इति यावत्। वयं **सदमित्** सदैव **त्वा** त्वां **हवामहे** पूजयाम:। अतस्त्वमस्मान् अस्मदादींश्च सर्वान् (मा वधी:) मा हिंस सदा रक्षेत्यर्थ:।।२२।।

।। इति चतुर्थोऽध्याय: ।।४।।

हे रुद्र! तुम भवरोगों का परिहार करने वाले संसार के प्रथम वैद्य हो। जो हमारे वीर पराक्रम करने वाले समर्थ सेवक हैं, उन पर कुपित होकर तुम उनका वध मत करना। पूजासामग्री द्वारा हम सदा तुम्हारी पूजा-अर्चना करेंगे। अत: तुम हमें और हमारे पारिवारिक सभी सदस्यों की हिंसा मत करो, उनकी सदा रक्षा करो।

मन्त्रार्थ— रुद्र! तुम हमें और हमारे पारिवारिक सदस्यों की हत्या मत करो। गोधन, अश्वधन इत्यादि चलसम्पत्ति का विनाश मत करो। हमारे वीर सेवकों पर क्रुद्ध होकर उनका वध मत करो। हम सदा ही हविर्द्रव्यसम्पन्न होकर तुम्हारा यजन (पूजा-अर्चन) करते हैं।।२२।।

।। चतुर्थ अध्याय सम्पूर्ण।।४।।

***

CC0. In Public Domain. Jangamwadi Math Collection, Varanasi

Digitization by eGangotri and Sarayu Trust. Funding by MoE-IKS

अथ पञ्चमोऽध्यायः

चतुर्थाध्यायोक्तार्थस्यैव विशदीकरणाय पञ्चमाध्याय आरभ्यते—

द्वे अक्षरे ब्रह्मपरे त्वनन्ते
विद्याऽविद्ये निहिते यत्र गूढे।
क्षरं त्वविद्या ह्यमृतं तु विद्या
विद्याविद्ये ईशते यस्तु सोऽन्यः।।१।।

'द्वे अक्षरे' इति। **द्वे विद्याऽविद्ये यत्र** यस्मिन् **अक्षरे** निर्विकारे **अनन्ते** देशतः कालतो वस्तुतश्च परिच्छेदरहिते **ब्रह्मपरे** परब्रह्मणि **गूढे**ऽतिरहस्ये यथा तथा **निहिते** स्थापिते परशिवब्रह्मैव आश्रित्य विराजमान इत्यर्थः।

विद्याविद्याशब्दार्थं श्रुतिरेव स्वयं प्रदर्शयति— **'क्षरमि'**त्यादिना। **क्षरं** क्षरणहेतुरविद्या। **अमृतम्** अमृतत्वहेतु**र्विद्या**। तथा च संसारबन्धहेतुरविद्या ; संसारविमोचनहेतुर्विद्येत्यर्थः। शिवयोगबोधकानि आत्मपोषकानि शास्त्राणि विद्याशब्देन प्रोच्यन्ते ; यतस्तेनैव पाशो विमुच्येत। देहाभिमानवर्धकानि भोगैक-प्रेरकाणि शास्त्राणि त्वविद्याशब्देन निर्दिश्यन्ते। भगवदाराधने मनइन्द्रिया-

---

अवतरण— चतुर्थ अध्याय के विषय का स्पष्टीकरण करने के लिये पञ्चम अध्याय का प्रारम्भ किया जा रहा है—

'द्वे अक्षरे' इत्यादि। **द्वे** = विद्या और अविद्या दोनों, **अक्षरे** = क्षरणरहित निर्विकार, **अनन्ते** = वस्तुतः देश और काल दोनों की सीमा (परिच्छेद) से मुक्त, अन्तरहित, **यत्र ब्रह्मपरे** = जिस परशिवब्रह्मस्वरूप परब्रह्म में, **गूढे** = अत्यन्त रहस्य के रूप में, **निहिते** = प्रतिष्ठित हैं। परशिवब्रह्म का आश्रय लेकर ही विद्या और अविद्या दोनों विराजती हैं, यह इसका आशय है।

विद्या और अविद्या शब्दों के अर्थों का प्रदर्शन भगवती वेदमाता स्वयं इस प्रकार कर रही है : **'क्षरं त्वविद्या'** = जो क्षरण अर्थात् विनाश का कारण है, वह अविद्या है। **'अमृतं तु विद्या'** = जो अमृतत्व अथवा मोक्ष का कारण है, वह विद्या है। इस प्रकार जो सांसारिक पाशबन्धन का कारण होती है वह अविद्या और जो संसार की मुक्ति का कारण होती है, वह विद्या है यह इसका तात्पर्य हे। परमशिव के साथ सम्बन्ध स्थापित करने वाले 'शिवयोग' के ज्ञापक परमात्मा का पोषण करने वाले शास्त्र 'विद्या' शब्द से संकेतित हैं, यतः उसी विद्या के अध्ययन से सांसारिक पाशबन्धन से जीव मुक्त होता है। देहाभिमान को बढ़ाने वाले और

CC0. In Public Domain. Jangamwadi Math Collection, Varanasi

Digitization by eGangotri and Sarayu Trust. Funding by MoE-IKS

देर्जीवस्य च भगवद्रूपतया परिणमनं बोधयन्ति यानि अध्यात्मशास्त्राणि तान्येव विद्यायां सङ्गृह्यन्ते। तत्परिचयेनैव मानवः शिवो भवति।

एतादृशं सामर्थ्यं **शरणवचने** सम्यग् विराजते। तदीयं वचनं वर्धिष्णूनां सर्वेषामपि श्रेयोवहं खलु—

''स्वदेहमेवोपवनं विधाय मनःखनित्रेण च तं खनित्वा।
भ्रान्तिं समूलां परिहाय चित्ते संसारलोष्ठं विनिभिद्य युक्त्या।।
स्वान्ते निखन्यां परमात्मबीजं वाप्याः सहस्रारसमाह्वयायाः।
प्राणाख्ययन्त्रादुदकं सुषुम्नया निषिच्य सम्यक् परिपोषितं मया।।
पञ्चैव गावो नहि कुर्युरत्र विनाशमित्येव विचिन्त्य भक्त्या।
क्षमासमत्वाख्यवृतिं विधाय तत्राऽवधानेन तदेव सस्यम्।।
गुहेश्वर! त्वत्कृपया व्यवर्धयं ततो हि सर्वो भवतो विलासः।।''

इत्य**ल्लमप्रभुः** स्वेनाऽऽचरितां ब्रह्मबोधिकां विद्यामुपदिशति। तथैव **सिद्धराम**नामा शिवयोगीश्वरः स्वदृष्टान्तेनाऽध्यात्मविद्यायाः स्वरूपमेवं निर्दिशति—

एक मात्र उपभोग को बढ़ावा देने वाले शास्त्रों का निर्देश 'अविद्या' शब्द से किया जाता है। जो आध्यात्मिक शास्त्र भगवान् की आराधना और मन इन्द्रिय एवं जीव का भगवत्स्वरूप से रूपान्तरण करने के लिये ज्ञानसंवर्धन करते हैं, उन्हीं का संकलन विद्या में किया जाता है। उनके परिचय से ही मानव शिवस्वरूप होता है।

इस प्रकार का सामर्थ्य **शरणवचन** में सम्यक् प्रकार से है। उनका वचन सभी उत्कर्ष की कामना करने वाले कल्याणकारी सभी भक्तों के लिए 'श्रेयोवह' है। **''स्वदेहमेवोपवनं विधाय''** से लेकर **''ततो हि सर्वो भवतो विलासः''** तक **अल्लमप्रभु** स्वयं द्वारा व्यवहार में प्रयुक्त ब्रह्मविद्या का उपदेश देते हैं। इसका आशय इस प्रकार है— ''मैंने अपने देह को उपवन बनाकर उसे मन की खुरपी से खोदा। फिर भ्रान्ति को जड़ सहित हटाकर चित्त में युक्ति से सांसारिक गीली मिट्टी को हटाकर वहाँ परमात्मा का बीज बोया। 'प्राण' नामक अरहट द्वारा 'सहस्रार' नामक बावडी (वापी) से जल निकाल कर सुषुम्णा नाडी द्वारा अपने देह रूपी उपवन को अच्छी तरह सींचकर परिपुष्ट किया।''

[**अल्लमप्रभु** कार्तिकेय से कहते हैं—] हे गुहेश्वर! फिर 'कहीं पाँच गौ (पञ्च ज्ञानेन्द्रियों के रूपादि पाँच विषय) इस उपवन को नष्ट न कर दें'' यह भक्तिपूर्वक सोचकर क्षमा, समता आदि वृत्ति को धारण करते हुए सावधान होकर आपकी कृपा से उस परमात्मबीज से उत्पन्न भक्ति अंकुर को बढ़ाया। यह सब आपका ही विलास है।

CC0. In Public Domain. Jangamwadi Math Collection, Varanasi

Digitization by eGangotri and Sarayu Trust. Funding by MoE-IKS

"चित्तं मदीयं शृणुताद् वचोऽधुना शिवं समाहूय गुरो! शिवेति।
तथा सकृत् पूजनतः शिवस्य शिवो भव त्वं शिवभावनायाः।।
सकृत् समाहूय पते! हरेति भक्त्या समभ्यर्च्य हरो भव त्वम्।
लिङ्गं समाहूय तदीयनाम्ना चिद्रूपमेतं गुरुमल्लिकार्जुनम्।।
सकृत् समभ्यर्च्य भवं वितीर्य त्वमेव लिङ्गं भव चित्त नित्यम्।।" इति।

एतादृशानि अध्यात्मतत्त्वबोधकानि अक्षरामृतपदवाच्यानि शास्त्राणि 'विद्ये'ति परिगणितानि, इतरत् सर्वमविद्यैव। इतीयमत्र विवेचना कर्तव्या।।१।।

"कः विद्याविद्ये ईशते" इत्यत्र पञ्चभिर्मन्त्रैरुत्तरं विवृणोति—

उसी प्रकार सिद्धराम नामक शिवयोगिराज अपना उदाहरण देकर **"चित्तं मदीयं शृणुताद् वचोऽधुना"** से लेकर **"त्वमेव लिङ्गं भव चित्त! नित्यम्"** तक अध्यात्मविद्या के स्वरूप का निरूपण करते हैं, जिसका आशय इस प्रकार है—

"मेरा चित्त इस समय मेरी बात सुने। वह 'हे शिव हे गुरु' इस प्रकार शिव का भक्तिपूर्वक आवाहन कर एक बार शिव की पूजा करे। हे चित्त! फिर तुम शिव की भावना करते हुए और 'पार्वतीपते! हर-हर महादेव' इस प्रकार आवाहन कर भक्तिपूर्वक उसकी अर्चना करते हुए शिवाकार हो जाना। पुनश्च द्वादश ज्योतिर्लिङ्गों में अन्यतम चिद्रूप श्रीशैलस्थित गुरुस्वरूप श्री मल्लिकार्जुन नाम से विख्यात ज्योतिर्लिङ्ग का आवाहन और उसकी अर्चना कर संसार का परित्याग करते हुए उस लिङ्ग के साथ नित्य एकता स्थापित करना, लिङ्गाकार बन जाना।"

इस प्रकार आध्यात्मिक तत्त्वज्ञान के प्रतिपादक 'अक्षर'-'अमृत' पदों से संकेतित शास्त्रों का परिगणन विद्या के अन्तर्गत किया जाता है। परमात्मसाक्षात्कारप्रतिपादक वाक्यों से भिन्न अन्य सभी शास्त्र अविद्या हैं। यही विवेचना यहाँ करनी चाहिये।

"विद्याऽविद्ये ईशते यस्तु सोऽन्यः"— [जो विद्या और अविद्या दोनों पर शासन करता है, वह परब्रह्म परमात्मा साक्षिस्वरूप होने के कारण इन दोनों से भिन्न है।]

मन्त्रार्थ— जिस अक्षर अनन्त परशिव ब्रह्म में विद्या और अविद्या दोनों गुप्त रूप से रहती हैं। उनमें क्षरणशील अविद्या है और 'अमृत' विद्या है। जो विद्या और अविद्या दोनों का नियामक है, वह उन दोनों से भिन्न है।।१।।

अवतरण— 'विद्याविद्ये ईशते यस्तु सोऽन्याः' इस प्रकार पूर्व मंत्र में वर्णन किया गया है। अब यह प्रश्न है कि वह कौन है, जो विद्या और अविद्या का नियामक है? इसका उत्तर अग्रिम पाँच मन्त्रों में है—

CC0. In Public Domain. Jangamwadi Math Collection, Varanasi

Digitization by eGangotri and Sarayu Trust. Funding by MoE-IKS

यो योनिं योनिमधितिष्ठत्येको
विश्वानि रूपाणि योनीश्च सर्वाः।
ऋषिं प्रसूतं कपिलं यस्तमग्रे
ज्ञानैर्बिभर्ति जायमानं च पश्येत्।।२।।

'यो यानिं योनि'मिति। **यः एको**ऽद्वितीयः **योनिं योनिं** कारणभूतं सर्वं वस्तुजात**मधितिष्ठति** अधिष्ठाय वर्तते स एव सर्वत्र वर्तमानः कारणमित्यर्थः।

'यो योनिं योनिमधितिष्ठत्येकः'— [यह प्रथम चरण इसी प्रकार पूर्व मन्त्र (४.११) में भी प्रयुक्त है।] जो एक अद्वितीय सम्पूर्ण स्वरूप से प्रत्येक वस्तु का कारण बनकर रहता है, वही सर्वत्र वर्तमान रहता है और सबका कारण है।

'विश्वानि रूपाणि योनीश्च सर्वाः'— इसीलिए वही अकेले नानाविध आकार एवं रूपों वाले चित्र-विचित्र सर्वत्र दृश्यमान वस्तुओं और सभी योनियों (कारणों) पर आधिपत्य करता है।

[जैसा कि **बृहदारण्यक उपनिषद्** में **'यः पृथिव्यां तिष्ठन्'** से लेकर **'एष त आत्मान्तर्याम्यभूतः'** (बृ.उ.३.७.२ से ३.७.२३ तक मन्त्रों के अन्तर्गत) सप्तम ब्राह्मण में वर्णित है। इसका सारांश यह है कि पृथिवी, जल, अग्नि, अन्तरिक्ष, वायु, द्यौ, आदित्य, दिशा, चन्द्र-तारका, आकाश, तमस्, तेजस्, सभी भूत, प्राण, वाणी, चक्षु, श्रोत्र, मन, त्वचा, विज्ञान, रेतस् सभी का अधिष्ठान वह अन्तर्यामी परमात्मा है।]

'ऋषिं प्रसूतं कपिलं यस्तमग्रे' इत्यादि। जिस परमात्मा ने सुप्रसिद्ध कपिल महर्षि को स्वयं उत्पन्न होते हुए देखा था, उन्हें ज्ञानसम्पन्न किया था और भविष्य में भी उन्हें तत्त्वज्ञानी ही देखना चाहते थे। इससे यह सूचित होता है कि परमेश्वर ने जन्म देते समय ही जिस क्षण में महर्षि कपिल को अपने अनुग्रह से ज्ञान-सम्पन्न किया था, उस क्षण के अनुग्रह द्वारा सभी चेतन जीव तत्त्वज्ञानसम्पन्न हों और जो उस अनुग्रह से विमुख हों, वे तत्त्वज्ञान से पराङ्मुख होकर ऐहिक पुरुषार्थ (त्रिवर्ग) में पारंगत होकर वारंवार संसार को प्राप्त करें।

[वे महर्षि कपिल कौन है? इस प्रश्न का समाधान अनेक प्रकार से है। इसी उपनिषद् में पूर्व में कहा गया है— **'हिरण्यगर्भं जनयामास पूर्वम्'** (श्वे.उ. ३.४) **'हिरण्यगर्भं पश्यत जायमानम्'** (श्वे.उ. ४/१३) इसी मन्त्र में कहा गया है— **'ऋषिं प्रसूतं कपिलं यस्तमग्रे ज्ञानैर्बिभर्ति जायमानं च पश्येत्।'** आगे भी इसी प्रकार का मन्त्र है— **'यो ब्रह्माणं विदधाति पूर्वं यो वै वेदांश्च प्रहिणोति तस्मै'** (श्वे.उ. ६.१८)। इन सब मन्त्रों के आधार पर **शङ्करभगवत्पाद** इस मन्त्र में वर्णित

CC0. In Public Domain. Jangamwadi Math Collection, Varanasi

Digitization by eGangotri and Sarayu Trust. Funding by MoE-IKS

अत एव **विश्वानि रूपाणि** अनेकाकारवन्ति विलक्षणतया परिदृश्यमानानि, **सर्वाश्च योनीः** स एवाऽधितिष्ठति। **यः** परमेश्वरः **तं** सुप्रसिद्धं **कपिलम् ऋषिं जायमान**मुत्पद्यमानं **पश्येद**पश्यत्; तथैव तादृशजायमानदर्शनफलतया **प्रसूतं**

कपिल महर्षि को हिरण्यगर्भ से अभिन्न मानते हैं, जिन्हें उन्होंने जन्म दिया था, जन्म लेते हुए देखा था, ज्ञानसम्पन्न किया था और उन्हें वेदविद्या का उपदेश दिया था।

'हिरण्यगर्भं जनयामास पूर्वम्' (३/४) मन्त्रस्थित **'हिरण्यगर्भ'** पद की व्याख्या करते हुए **आचार्य शंकर** कहते हैं— **''हितं रमणीयमत्युज्ज्वलं ज्ञानं गर्भोऽन्तःस्तरो यस्य (सः) तम्।''** परमेश्वर ने सृष्टि के पूर्व उस 'हिरण्यगर्भ' की रचना की थी, जिनका 'गर्भ' अर्थात् अन्तःसारतत्त्व 'हिरण्य' कल्याणकारी उज्ज्वल ज्ञान था। उसी मन्त्र के व्याख्यान में **'वीरशैवभाष्य'**कार 'हिरण्यगर्भ' पद का अर्थ चतुर्मुख ब्रह्मा करते हैं— **''हिरण्यगर्भं चतुर्मुखब्रह्माणम्'। 'विष्णुसहस्रनामस्तोत्र'** में यह पद दो बार आया है। **'हिरण्यगर्भो भूगर्भः''** (२१) इत्यादि कारिका में स्थित ७०वें नाममन्त्र 'हिरण्यगर्भ' की व्याख्या **आचार्य शंकर** इस प्रकार करते हैं— **''हिरण्मयाण्डान्तर्वर्तित्वात् हिरण्यगर्भो ब्रह्मा विरिञ्चिः।''** ब्रह्मदेव को हिरण्यगर्भ इसलिये कहते हैं कि वे हिरण्मय (सुवर्णपिण्ड के) अण्ड के गर्भ में विराजते हैं। **'हिरण्यगर्भः शत्रुघ्नः** (५७) इत्यादि विष्णुसहस्रनामावली में ४११ वाँ नाम विष्णु का है। ब्रह्मदेव की उत्पत्ति का स्थान जो हिरण्मय अण्ड, जिसके वीर्य से उत्पन्न हुआ है, वही विष्णु का गर्भस्थान है। इस मन्त्र में आचार्य शंकर कपिल ऋषि को उस हिरण्यगर्भ से अभिन्न मानते हुए उसका अर्थ इस प्रकार करते हैं— **''कपिलं कनककपिलवर्णं प्रसूतं स्वेनैवोत्पादितं हिरण्यगर्भम्।''** जिस परमेश्वर ने सुवर्णसदृश कपिलवर्ण हिरण्यगर्भ को तत्त्वज्ञानी ऋषि के रूप में उत्पन्न होते हुए देखा था, जिसका पूर्व में वर्णन किया गया है और भविष्य में भी करने वाले हैं।

कतिपय लोग उन्हें सांख्यशास्त्रप्रवर्तक कपिल महर्षि मानते हैं, 'वीरशैवभाष्य'कार की भी यही सम्मति है। आचार्य शंकर भी **'सांख्यानां कपिलो देवः''** (गीता १०/२६) इत्यादि प्रमाणवचन उद्धृत करते हुए वैकल्पिक रीति से सांख्यशास्त्रप्रवक्ता मानते हैं, किन्तु टीकाकार **शंकरानन्द** इसका इस प्रकार खण्डन करते हैं— **''वासुदेवस्याऽवतारभूतं सगरपुत्राणां दग्धारम्, न तु सांख्यप्रणेता कपिलः''** परमेश्वर ने उस कपिल ऋषि को जन्म लेते हुए देखा, जो सगरपुत्रों को भस्मसात् करने वाले वासुदेव के अवतार थे, सांख्यप्रणेता कपिल महर्षि नहीं थे। **''कपिलः कपिरप्ययः''** (१९८) इत्यादि विष्णुसहस्रनामों में अन्यतम ८९८वें 'कपिल' नाम का निर्वचन करते हुए **आचार्य शंकर** कहते हैं— **''वडवानलस्य कपिलो वर्ण इति तद्रूपी''** जिस प्रकार समुद्री आग वडवानल का वर्ण सोने के समान कपिल होता है, उसी प्रकार परमात्मस्वरूप 'हिरण्यगर्भ' भी हैं। भगवान्

CC0. In Public Domain. Jangamwadi Math Collection, Varanasi

Digitization by eGangotri and Sarayu Trust. Funding by MoE-IKS

जातम् **अग्रे** अग्रेऽपि काले **ज्ञानैः** तत्त्वज्ञानैर्**बिभर्ति** बभार। जायमानकालिकपरमेश्वरानुग्रहादेव चेतनानां तत्त्वज्ञानमुत्पद्येतेत्यनेन सूच्यते। ये तु तादृशानुग्रहविदूरास्ते तावत् तत्त्वज्ञानविमुखा ऐहिकपुरुषार्थप्रवणाः पुनः पुनः संसारमेव प्राप्नुयुरित्यर्थः॥२॥

विष्णु के सहस्र नामों में ५३१वाँ नाम **'महर्षिः कपिलाचार्यः'** (७०) इसप्रकार है। इसका भाष्य करते हुए आचार्य **शंकर** लिखते हैं— **''महर्षिः कपिलाचार्यः' इति सविशेषणम् एकं नाम। महान् च असौ ऋषिः च इति, कृत्स्नस्य वेदस्य दर्शनात्। अन्ये तु वेदैकदेशदर्शनाद् ऋषयः। कपिलः च असौ साङ्ख्यस्य शुद्धतत्त्वविज्ञानस्य आचार्यः च इति कपिलाचार्यः।**

''शुद्धात्मतत्त्वविज्ञानं सांख्यमित्यभिधीयते।''

अर्थात् महर्षि कपिलाचार्य यह विशेषण सहित एक नाम है। वे महर्षि भी हैं और आचार्य भी हैं। वे महर्षि इसलिये हैं कि उन्होंने समस्त वेदों का एक साथ साक्षात्कार किया है। अन्य वेद के मात्र एक देश के मन्त्रद्रष्टा होने के कारण केवल ऋषि हैं। यतः वे शुद्ध आत्मतत्त्वविज्ञान के प्रणेता हैं, अतः आचार्य भी हैं। यहाँ शुद्ध आत्मविज्ञान से तात्पर्य सांख्यदर्शन से है, जैसा कि कहा गया है— **''शुद्धात्मतत्त्वविज्ञानं सांख्यमित्यभिधीयते।''**

श्रीमद्भगवद्गीता कपिलमुनि को सिद्धों में अग्रगण्य कहती है— **'सिद्धानां कपिलो मुनिः'** (१०/२६)। इसकी व्याख्या करते हुए आचार्य शंकर कहते हैं— **''सिद्धानां जन्मनैव धर्मज्ञानवैराग्यैश्वर्यातिशयं प्राप्तानां कपिलो मुनिः।''** कपिल मुनि जन्म से ही धर्म, ज्ञान, वैराग्य और ऐश्वर्य प्राप्त करने वाले सिद्धयोगियों में अग्रगण्य थे। इस मंत्र के **'यस्तमग्रे ज्ञानैर्बिभर्ति** की व्याख्या करते हुए आचार्य शंकर कहते हैं— **'स एव कपिलः प्रसिद्धोऽग्रे सृष्टिकाले, यो ज्ञानैर्धर्मज्ञानवैराग्यैश्वर्यैर्बिभर्ति बभार'**, वे ही सृष्टिकाल में कपिलमुनि के नाम से विख्यात थे, जिन्होंने धर्म-ज्ञान-वैराग्य तथा ऐश्वर्य को धारण किया था, अपने जीवन को चरितार्थ किया था। इस प्रकार आचार्य शंकर परमात्मस्वरूप हिरण्यगर्भ और सिद्धों में अग्रगण्य सांख्यदर्शन प्रणेता महर्षि कपिलाचार्य में कोई अन्तर नहीं करते, जबकि अन्य टीकाकारों में मतभेद है।]

मन्त्रार्थ— जो सभी वस्तुओं के कारणों को व्याप्त कर रहता है और सर्वकारणकारण है। अत एव वह विविध स्वरूपों और विविध योनियों का अधिष्ठाता भी है। उसने उस कपिल ऋषि को जन्म लेते हुए देखा था, जो जन्म से ही धर्म, ज्ञान, वैराग्य और ऐश्वर्य सम्पन्न थे। जो भविष्य में जन्म लेने वाले प्राणियों को भी ज्ञानसम्पन्न देखना चाहता है, (विद्या और अविद्या के नियामक परशिवस्वरूप परब्रह्म परमात्मा सबसे विलक्षण हैं।)॥२॥

CC0. In Public Domain. Jangamwadi Math Collection, Varanasi

Digitization by eGangotri and Sarayu Trust. Funding by MoE-IKS

एकैकं जालं बहुधा विकुर्व-
न्नस्मिन् क्षेत्रे संहरत्येष देवः।
भूयश्च सृष्ट्वा पतयस्तथेशः
सर्वाधिपत्यं कुरुते महात्मा।।३।।

'एकैकमि'ति। एष देवः परमेश्वरः **जालं** बन्ध**मेकैकं** प्रत्येकं प्रत्येकं **बहुधा** अनेकप्रकारेण विकुर्वन् तान् चेतनान् **अस्मिन् क्षेत्रे** अस्यामेव कर्मभूमौ **संहरति** कर्मभूमिमतीत्य गन्तुं यथा शक्तिर्न स्यात् तथा कुरुते। ये तु जायमानकालिकपरमेश्वरानुग्रहहीनास्ते हि बुद्धिव्यामोहकेषु जालरूपेषु विचित्रबन्धेषु पतिताः, तदतीत्य गन्तुमेवासमर्थाः सदा संसारिण एव भवन्तीत्यर्थः।

किं बहुना? लोकाधिपतित्वेन प्रसिद्धा अपि इन्द्रादयस्तेनैव सृष्टाः तद्वशङ्गता एव वर्तन्त इत्याह **भूयश्चे**ति। **भूयश्च** प्रत्युत **महात्मा** महामहिमविशिष्ट **ईशः** परमेश्वरः **पतयो** लोकपालानपि **सृष्ट्वा** सर्वाधिपत्यं कुरुते। इन्द्रादिस्थानान्यपि तदधीनान्यपि बन्धरूपाणि हेयान्येवेत्यर्थः।

अवतरण— तृतीयाध्याय के प्रारम्भ में परमात्मा का वर्णन **'य एको जालवानीशत ईशनीभिः** (३/१) इस प्रकार करते हुए वहाँ **'ऊर्णनाभि'** दृष्टान्त का परोक्ष रूप से स्मरण कराया गया है। वहाँ पर **वीरशैवभाष्य**कार 'जालवान्' शब्द का अर्थ **'जगदुपादानद्रव्यभूतत्रिगुणात्मकमायाजालवान्'** करते हैं। इस मंत्र में परमेश्वर अपने 'जाल' का प्रयोग किस प्रकार करते हैं, उसका वर्णन है— **''एकैकं जालम्''** इत्यादि।

''एष देवः'' — वह चित्प्रकाशस्वरूप परमेश्वर, **'एकैकं जालम्'** = एक एक मायाजाल, बन्धन को, **''बहुधा विकुर्वन्''** = अनेक प्रकार से विभक्त करते हुए, **'अस्मिन् क्षेत्रे संहरति'** = उन चेतन जीवों का इसी कर्मभूमि में संहार करता है अर्थात् कर्मभूमि छोड़कर उनमें जाने की शक्ति जिस प्रकार न रहे, इस प्रकार उन्हें शक्तिहीन कर देता है। जो जन्म से ही परमेश्वर को कृपाप्रसाद से शून्य होते हैं, वे बुद्धि में भ्रम (व्यामोह) उत्पन्न करने वाले मायाजाल के नाना प्रकार के बन्धनों में पड़कर आगे बढ़ने में असमर्थ होते हैं और सदा सर्वदा संसरणशील रहते हैं, संसारसागर में गोता खाते रहते हैं।

किं बहुना? लोकपाल के रूप में प्रसिद्ध इन्द्र आदि देवों की सृष्टि उसी परमेश्वर द्वारा हुई है और वे उसके ही वश में रहते हैं, इस आशय का प्रदर्शन उत्तरार्द्ध इस प्रकार कर रहा है— **'भूयश्च'** इत्यादि। **'भूयश्च'** = और पुनः उसी प्रकार **''महात्मा''** = (महाश्चांसौ

CC0. In Public Domain. Jangamwadi Math Collection, Varanasi

Digitization by eGangotri and Sarayu Trust. Funding by MoE-IKS

**''त्रैविद्या मां सोमपाः धूतपापाः यज्ञैरिष्ट्वा स्वर्गतिं प्रार्थयन्ते।
ते पुण्यमासाद्य सुरेन्द्रलोकमश्नन्ति दिव्यान् दिवि देवभोगान्।
ते तं भुक्त्वा स्वर्गलोकं विशालं क्षीणे पुण्ये मर्त्यलोकं विशन्ति।।''**
(गीता ९.२०-२१)

इति स्वर्गादेरपि नश्वरत्वं भगवता स्पष्टमुक्तम्।

महात्मा **बसवार्यः** मानवस्याऽभीप्सितं स्थानं जगदाकर्षकतया निर्दिशति—

**''नेवाभिकाङ्क्षे कमलोद्भवस्य स्थानं न विष्णोः पदवीमपीह।
तथैव शम्भोः पदवीमथान्यां न कामये सङ्गमदेव! नित्यम्।।
त्वद्भक्तपादार्चनसक्तभृत्यस्थानं तु काङ्क्षे नियमेन देहि।।''** इति।

आत्मा च) महामहिमाशाली, **''ईशः''** = परमेश्वर, **''पतयः सृष्ट्वा** = इन्द्रादि स्वर्गलोकाधिपतियों को जन्म देकर, **''सर्वाधिपत्यं कुरुते''** = सबका अधिपति बन जाता है। इन्द्र आदि के स्वर्गादि स्थान उन लोकाधिपतियों के अधीन रहने पर भी बन्धनस्वरूप होने के कारण त्याज्य हैं, यह इसका आशय है।

''त्रैविद्या मां'' से लेकर ''क्षीणे पुण्ये मर्त्यलोकं विशन्ति'' (गीता ९/२०-२१) इत्यादि पद्यों में भगवान् श्रीकृष्ण ने स्पष्ट रूप से स्वर्गलोकादि की नश्वरता प्रतिपादित की है। [इसका पद्यानुवाद इस प्रकार है—

**''जो सोमपा त्रैविद्य जन निष्पाप अपने को किये,
कर यज्ञ मुझ को पूजते हैं स्वर्ग इच्छा को लिये।
वे प्राप्त करके पुण्य लोक सुरेन्द्र का, सुरवर्ग में,
फिर दिव्य देवों के अनेकों भोग भोगें स्वर्ग में।।
वे भोग कर सुख-भोग को, उस स्वर्गलोक विशाल में,
फिर पुण्य बीते ही फँसे इस लोक के दुखजाल में।।''**
—श्रीकृष्णगीता ९/२०-२१]

महात्मा **बसवार्य** मानव के अभीष्ट स्थान का निर्देश जगत् में आकर्षित करते हुए (**''नैवाभिकाङ्क्षे''** से लेकर **''नियमेन देहि''** तक इन्द्रवज्रा-उपेन्द्रवज्रामिश्रित उपजाति छन्द में) करते हैं। इसका आशय इस प्रकार है— 'हे संगमदेव! मैं न तो विष्णु की नाभिकमल से उत्पन्न ब्रह्मदेव के ब्रह्मलोक की कामना करता हूँ, न विष्णु के स्थान वैकुण्ठलोक की कामना करता हूँ और न भगवान् शंकर के कैलासधाम की। मैं केवल तुम्हारे चरणकमलों की अर्चना में आसक्त भक्त सेवकों में स्थान पाना

CC0. In Public Domain. Jangamwadi Math Collection, Varanasi

Digitization by eGangotri and Sarayu Trust. Funding by MoE-IKS

एवमिहैव अमृतानुभवाय यद् विहितं तदेव वर्धिष्णुभिर्विचिन्त्यानुष्ठेय-मित्याशयः।।३।।

परमशिवस्य सर्वव्याप्तिं पुनर्विविच्य निर्दिशति—

सर्वा दिश ऊर्ध्वमधश्च तिर्यक्
प्रकाशयन् भ्राजते यद्वनड्वान्।
एवं स देवो भगवान् वरेण्यो
योनिस्वभावानधितिष्ठत्येकः।।४।।

अनड्वान् आदित्यः **सर्वा दिशः** प्राच्याद्या दश दिशोऽपि **ऊर्ध्वम् अधश्च तिर्यक् च प्रकाशयन् यद्**-यद्वत् **भ्राजते** प्रकाशते **एवं स देवः** सर्वत्र द्योतमानो

चाहता हूँ। उसे तुम नियमपूर्वक प्रदान करो।'' इस प्रकार इस लोक में ही अमृतत्व प्राप्ति के लिये जिसका विधान किया गया है, श्रेयस्काम लोग विचारपूर्वक उसी का अनुष्ठान करें, यह इसका आशय है।

[**''एकैकं जालं बहुधा विकुर्वन्''** इस मंत्रभाग में स्थित **'जाल'** का अर्थ क्या है? इसके विषय में मतभेद है। श्री हरिकृष्ण दास जी गोयनका के मत में वह जाल बुद्धि आदि आकाशादि तत्त्व हैं। (द्रष्टव्य 'कल्याण' उपनिषद् अंक, पृ. ३९२)। टीकाकार **शंकरानन्द** के अनुसार वह संसार रूपी महान् इन्द्रजाल है, जो प्रत्येक प्राणी में व्यवस्थित है— **''जालं महेन्द्रजालं संसाररूपं प्रतिप्राणि व्यवस्थितमित्यर्थः।''** विज्ञानभगवान् कहते हैं— **''समष्टिरूपकारणलक्षणानि जातानि पुरुषमत्स्यानां बन्धनत्वाज्जालवज्जालम्।''** वह सारे जीव संसारसागर की मछलियाँ हैं, जिनको बन्धन में डालने वाले मायापाश जाल के समान होने से 'जाल' कहलाते हैं। **नारायणतीर्थ** के अनुसार कर्मफलरूप बन्धन ही जाल है।]

मन्त्रार्थः— वह चित्प्रकाशस्वरूप परमेश्वर कर्मफल, बन्धनस्वरूप एक-एक जाल को विभक्त करते हुए इसी कर्मभूमिं में चेतन जीवों का संहार करता है, जिससे वे इस बन्धन से छुटकारा न पा सकें, जिन पर परमेश्वर की कृपा नहीं होती है, वे संसारचक्र में फँसे रहते हैं। इतना ही नहीं, महामहिमाशाली परमेश्वर उन पर भी आधिपत्य करता है, जो स्वर्गादि के अधिपति होते हैं। अतः स्वर्गलोकादि भी हेय हैं और भगवच्चरणारविन्दों की अर्चना उपादेय है।।३।।

अवतरण— पुनश्च परमशिव की सर्वव्यापकता का विवेचन किया जा रहा है—

CC0. In Public Domain. Jangamwadi Math Collection, Varanasi

Digitization by eGangotri and Sarayu Trust. Funding by MoE-IKS

वरेण्यः सर्वश्रेष्ठो **भगवान्** परमेश्वर **एक** एव **योनिस्वभावान्** जगत्कारणभूतान् पृथिव्यादीन् पदार्थान् **अधितिष्ठति** नियमयंस्तिष्ठति।

इमामेव परमात्मनः सर्वव्याप्तिं **शरणगीता** एवं निर्दिशति। तत्र **बसवार्यः** स्वानुभवपूर्वकमेवं वदति—

''यत्र यत्र च दृशं प्रहिणोति तत्र तत्र परिपश्यति स त्वाम्।
यच्च यच्च नयनाभिमुखं सत् सर्वमेव भवतः खलु रूपम्।।'' इति

यदेवात्र परिदृश्यते तत् सर्वमपि परमात्मनो रूपमेव। स च अमूर्तो मूर्तश्च वर्तत इति श्रूयते। मूर्तरूपोऽपि सः दिव्यमूर्तोऽदिव्यमूर्तश्चेति द्विविधोऽस्ति। दिव्यमूर्तश्च

'सर्वा दिशः' इत्यादि। **'यदु'** = जिस प्रकार, **अनड्वान्** = सूर्यनारायण, **सर्वाः दिशः** = प्राची आदि दसों दिशाएँ, **ऊर्ध्वम् अधश्च** = ऊपर-नीचे, **तिर्यक् च** = और तिरछी कोण दिशाएँ, **प्रकाशयन् भ्राजते** = प्रकाशित करता हुआ स्वयं प्रकाशित होता है, **एवं च** = उसी प्रकार, **देवः** = चित्प्रकाशस्वरूप, **वरेण्यः** = सर्वश्रेष्ठ, **सः भगवान्** = वह परमात्मा, **एक एव** = अकेले ही, **योनिस्वभावान्** = जगत्कारणस्वरूप पृथिवी आदि पदार्थों को, **अधितिष्ठतिः** = नियन्त्रित करता रहता है।

[**भगवान् भगहाऽऽनन्दी''** (७३) इत्यादि नामों में अन्यतम श्रीविष्णुसहस्रनामस्तोत्र स्थित **'भगवान्'** इस ५५८वें नाम का निवर्चन करते हुए भाष्यकार **आचार्य शंकर** कहते हैं—

''ऐश्वर्यस्य समग्रस्य धर्मस्य यशसः श्रियः।
ज्ञानवैराग्ययोश्चैव षण्णां भग इतीरणा।।''
(विष्णु पु., ६-५-७४)

सोऽस्याऽस्तीति भगवान्।
''उत्पत्तिं प्रलयं चैव भूतानामागतिं गतिम्।
वेत्ति विद्यामविद्यां च स वाच्यो भगवानिति।।''
(विष्णु पु., ६-५-७८)

समग्र ऐश्वर्य, धर्म, यश, सम्पत्ति, ज्ञान और वैराग्य इन छः अर्थों का वाचक एक **'भग'** शब्द है। इस षड्विध 'भग' (ऐश्वर्यादि) सम्पन्न होने के कारण परमात्मा का 'भगवान्' नाम सार्थक है। सृष्टि और संहार भगवान् का स्वभाव ही है, जैसा कि **''एकैकं जालं बहुधा विकुर्वन्''** (५/३) इत्यादि मंत्र में वर्णित है। उसी प्रकार वह विद्या और अविद्या का नियामक भी है। जैसा कि **''विद्याऽविद्ये ईशते यस्तु सोऽन्यः''** (५/१) इत्यादि मंत्र में निरूपण किया गया है। इसी बात को **''उत्पत्तिं प्रलयं चैव''** इत्यादि

CC0. In Public Domain. Jangamwadi Math Collection, Varanasi

Digitization by eGangotri and Sarayu Trust. Funding by MoE-IKS

सः शिव इति त्रिमूर्तिश्चेति च प्रसिद्धः। इतरे अग्न्यादित्यादयः सर्वेऽपि तस्य दिव्यांशा एव मूर्तयः। पृथिव्याद्याः पञ्चापि जगति सर्वत्र पञ्चलिङ्गात्मकतया व्याप्य जना अर्चनादिकं स्वीकुर्वन्ति। काञ्चीपुरे पार्थिवलिङ्गं, जम्बूक्षेत्रे अप्लिङ्गं, तिरुवण्णामलक्षेत्रे तेजोलिङ्गं, कालहस्तिक्षेत्रे वायुलिङ्गं, चिदम्बरे आकाशलिङ्गम्, एवं रीत्या परमात्मानम् अदिव्या मूर्तयः प्राकृताः पञ्चलिङ्गात्मकतया प्रतिष्ठिताः लोककल्याणमद्भुतया रीत्या निर्वहन्तीति जगत्प्रसिद्धमेव। पार्थिवलिङ्गानि तु सर्वत्र दृश्यन्ते। तथापि जलमेव केवलं लिङ्गाकारेण यत् परिदृश्यते जम्बूक्षेत्रे तदेव परमात्मनो वैशिष्ट्यम्। तथैव इतरक्षेत्रेषु तेजो वायुराकाशश्च लिङ्गरूपेणैव

विष्णुपुराणोक्त वचन भी प्रमाणित करता है, जिसका आशय यह है कि जो देव उत्पत्ति (सृष्टि), प्रलय (संहार), प्राणियों का विविध योनियों में जन्म-मरण के रूप में आवागमन और विद्या तथा अविद्या को जानता है, उसे 'भगवान्' कहते हैं। वही भगवान् पृथिवी आदि समस्त भूतों पर अकेले ही आधिपत्य करता है।]

परमात्मा की इसी व्यापकता का निर्देश **'शरणगीता'** **''यत्र यत्र दृशं प्रहिणोति''** इत्यादि पद्य द्वारा करती है, जिसका आशय यह है कि ''जहाँ जहाँ भक्त दृष्टिपात करता है, वहाँ वहाँ वह तुम्हारा (परमात्मा का) ही साक्षात्कार करता है। जो जो वस्तु उसके नेत्रों के सम्मुख होती है, वह सब वस्तु आपका ही स्वरूप है।''

इहलोक में जो कुछ दृष्टिगोचर होता है, वह परमात्मा का स्वरूप ही है। वह परमात्मा दो प्रकार है— मूर्त (साकार, शरीरधारी) और अमूर्त (निराकार, अशरीरी)। मूर्त स्वरूप परमात्मा भी दो प्रकार है— दिव्य मूर्तिधारी और अदिव्य मूर्तिधारी। दिव्य मूर्तिधारी परमात्मा परमशिव है, जो ब्रह्मा, विष्णु और महेश इन तीन मूर्तियों के रूप में प्रसिद्ध है। अन्य अग्नि, सूर्य, चन्द्र, तारक आदि सभी उसी परमशिव की अंशस्वरूप दिव्य मूर्तियाँ हैं। पृथ्वी, जल, तेज, वायु और आकाश ये पंचमहाभूत भी जगत् में पाँच लिङ्गों के रूप में अवतीर्ण होकर भक्तजनों द्वारा की गयी पूजा-अर्चा को स्वीकार करते हैं। उसके अन्तर्गत काञ्चीपुर में पार्थिवलिङ्ग, जम्बूक्षेत्र में जललिङ्ग, तिरुवण्णामल क्षेत्र में तेजोलिङ्ग, कालहस्ती क्षेत्र में वायुलिङ्ग और चिदम्बरम् क्षेत्र में आकाशलिङ्ग— इस प्रकार परमेश्वर की अदिव्य प्राकृत स्वयम्भू मूर्ति पाँच लिङ्गों के रूप में प्रतिष्ठित होकर अद्भुत प्रकार से लोककल्याण का निर्वाह करतीं हैं, यह जगत् प्रसिद्ध ही है। पार्थिवलिङ्ग तो सभी स्थानों में दृष्टिगोचर होते हैं। तथापि केवल जल ही जम्बू क्षेत्र (जम्मू-काश्मीर स्थित अमरनाथ की गुफा) में जललिङ्ग (बर्फीले लिङ्ग) के रूप में प्रत्यक्ष होता है, यह परमात्मा की विशेषता है। उसी प्रकार इतर क्षेत्रो में तेजोलिङ्ग (तिरुवण्णामलक्षेत्र), वायुलिङ्ग (कालहस्तीश्वर) और आकाशलिङ्ग

CC0. In Public Domain. Jangamwadi Math Collection, Varanasi

Digitization by eGangotri and Sarayu Trust. Funding by MoE-IKS

सन्दृश्यन्ते, अयमपि तस्य भक्तानुग्रहलीलायां महान् विशेष इति परिगण्यते। अयमेवाशयः पुनर्विव्रियते **शरणगीतायाम्**—

''मर्त्यो हि लोकः परमेश्वरस्य लीलाविनोदाय विनिर्मितं गृहम्''

इति शरणाश्च विश्वं परमात्मन आवासभूमिं भावयन्ति।

''ईशावास्यमिदं सर्वं यत् किञ्च जगत्यां जगत्'' (ईश.उ.२)

इति श्रुतिरपि परमेश्वरस्य सर्वत्राऽवस्थितिं स्पष्टयति। अतो विवेकिभिः सर्वत्र शिवभावना कर्तव्या।।४।।

पुनः परमात्मनः सर्वत्रव्याप्तिमेव विवृणोति—

यच्च स्वभावं पचति विश्वयोनिः
पाच्यांश्च सर्वान् परिणामयेद् यः।
सर्वमेतद् विश्वमधिष्ठित्येको
गुणांश्च सर्वान् विनियोजयेद् यः।।५।।

(चिदम्बरम्) लिङ्गरूप से प्रकट होता है, यह भी भक्तों पर अनुग्रह करने के लिये भगवान् की लीला की विशेषता ही दिखलायी पड़ती है। इसी आशय को **शरणगीता** में **''मर्त्यो हि लोकः''** इत्यादि पद्य में विशद किया गया है, जिसका आशय इस प्रकार है— ''समस्त मृत्युलोक ही परमेश्वर की लीला और विनोद के लिये बनाया गया घर है।'' इस प्रकार **'शरण'** (शरणागत भक्त) समस्त विश्व की कल्पना परमात्मा की आवासभूमि के रूप में करते हैं। **'ईशावास्यमिदम्'** इत्यादि मंत्र द्वारा ईशावास्योपनिषद् भी परमेश्वर की सर्वत्र स्थिति प्रतिपादित करती है। [इसका वे.मू.मंगलेश्वर ढुंढिराज बादल विरचित पद्यानुवाद इस प्रकार है—

''परमेश्वर से व्याप्त जगत् में जिन पर निज का है अधिकार।
स्थावर जंगम आदिक वह सब वस्तुमात्र हो लघू अपार।।''

अतः विवेकी लोक सर्वत्र शिवभावना करें।

मन्त्रार्थ— जिस प्रकार सूर्य सर्वत्र प्रकाश फैलाते हुए स्वयं प्रकाशित होता है, उसी प्रकार चित्प्रकाशस्वरूप सर्वश्रेष्ठ भगवान् भी जगत् के प्रत्येक वस्तु में व्याप्त होकर उसका नियमन करता है।।४।।

अवतरण— पुनश्च परमात्मा की सर्वव्यापकता का विवरण प्रतिपादित कर रहे हैं—

'यच्च स्वभावं पचति विश्वयोनिः' **(विश्वस्य योनिः 'विश्वयोनिः')** स्थावर-जङ्गमस्वरूप जगत् उपादानकारणस्वरूप परमेश्वर, पञ्चमहाभूतों में **'यच्च स्वभावम् =**

CC0. In Public Domain. Jangamwadi Math Collection, Varanasi

Digitization by eGangotri and Sarayu Trust. Funding by MoE-IKS

'यच्चे'ति। **विश्वयोनिः** जगदुपादानभूतः परमेश्वरः **यच्च** यं च। अत्र नपुंसकलिङ्गप्रयोगश्छान्दसः। **स्वभावं** पृथिव्यादिषु भूतेषु सर्वेष्वपि **पचति** निष्पादयति। पृथिव्यादिषु जगत्कारणत्वाय यादृशयादृशशक्तिविशेषः आवश्यकस्तादृशमेव तत्र तत्र आदधाति। पृथिव्यां धारणशक्तिः, जले आप्यायनशक्तिः, तेजसि दाहकशक्तिः एवं रीत्या जगत्सृष्टेः तस्य रक्षणाय च यावान् शक्तिविशेष अपेक्ष्यते तावन्तं तत्र तत्र निक्षिपति स एक एव परमेश्वरः। सर्वेषां पदार्थानां धारणाय सामर्थ्यं पृथिव्यामावश्यकमिति सर्वानुभवसिद्धमेव। तथैव इतरभूतेष्वपि तत्तन्निर्वर्त्यकार्यानुकूला काचन शक्तिर्जगत्कल्याणाय तत्र तत्र परमात्मनैवाऽनुगृहीता विलसति।

एवं **पाच्यान्** जगन्निर्माणादिकार्यनिर्वाहाय कर्मभूतान् तान् **सर्वान् यः** परिणामयेत् तत्कार्यात्मना **परिणामयेत्**। पञ्चभूतेषु परस्परसंयोगेन अनेकविधपदार्थरूपतया परिणमनं च परमात्मैव सम्पादयति। एवं पञ्चभूतानि स्वयमेव

जिस स्वभाव का, **पचति** = निष्पादन करता है; यहाँ पर स्वभाव शब्द पुल्लिग होने के कारण 'यत्' का प्रयोग भी पुल्लिङ्ग में होना चाहिये, तथापि नपुंसक लिङ्ग में प्रयोग वैदिक है। पृथिवी आदि सभी पञ्च महाभूतों में जगत् की कारणता का निर्वाह करने के लिये जितनी जितनी विशिष्ट शक्ति आवश्यक होती है, परमेश्वर उतनी ही शक्ति का वहाँ वहाँ आधान करता है। पृथिवी में धारण करने की शक्ति, जल में आप्यायन (आर्द्रता) शक्ति, तेज में दाहकता शक्ति इत्यादि रीति से जगत् की सृष्टि और उसकी रक्षा करने के लिये (जहाँ जहाँ) जितनी विशिष्ट शक्ति अपेक्षित होती है, वहाँ वहाँ उतनी ही विशिष्ट शक्ति को एकाकी परमेश्वर ही स्थापित करता है। सभी पदार्थों को धारण करने का सामर्थ्य पृथिवी में आवश्यक है, यह सभी के द्वारा अनुभव-सिद्ध है। उसी प्रकार अन्य महाभूतों में भी उस उस कार्य निर्वाह के लिये अनुकूल कोई विशिष्ट शक्ति जगत् का कल्याण करने के लिये वहाँ वहाँ परमात्मा की कृपा से ही विराजती है।

"पाच्यांश्च सर्वान् परिणामयेद् यः" — **यः** = जो परमात्मा, **पाच्यांश्च सर्वान्** = जगत् का निर्माण आदि सभी कार्यों का निर्वाह करने के लिये कर्मस्वरूप पाकयोग्य पृथिवी आदि समस्त पदार्थों का, **परिणामयेत्** = उस उस कार्य के रूप में रूपान्तरण करता है। परमात्मा ही पञ्च महाभूतों में परस्पर संयोग द्वारा नानाप्रकार के पदार्थों का सम्पादन करता है। इस प्रकार परमात्मा स्वयं ही स्वयं से पञ्च महाभूतों का बाहर प्रकाशन और उनमें असाधारण विशेषता स्थापित कर उनके परस्पर संयोग से विलक्षण वस्तुओं का निर्माण और जगत् के नाटक की लीला का निर्वाह करते हुए सूत्रधार के रूप में विराजमान है।

CC0. In Public Domain. Jangamwadi Math Collection, Varanasi

Digitization by eGangotri and Sarayu Trust. Funding by MoE-IKS

स्वस्माद् बहि: प्रकाश्य, तेषु असाधारणं वैशिष्ट्यं निधाय तेषां मिथ: संयोगेन विलक्षणवस्तुजातान्युत्पादयन् परमात्मा जगन्नाटकलीलां निर्वहन् विराजते। एवं **स एक एव सर्वमेतत्** परिदृश्यमानं **विश्वं** जगत् **अधितिष्ठति** नियमयति। अतश्च **''शिव एव जगत् सर्वं शिवादन्यन्न विद्यते''** इति **श्रीरेणुकाचार्या** अगस्त्यमहर्षये यदुपदिष्टवन्त: प्राक्तन एव काले तत् समञ्जसमेव भाति। एवं ज्ञानिन: सर्वत्र शिवमेव पश्यन्त: समदृष्ट्या सर्वान् शिवभावनयैव प्रीणयन्ति।

शरणगीता परमात्मनो निष्पक्षपातदृष्ट्या सर्वत्राऽवस्थानमेवं वर्णयति—

''ग्रामस्य बाह्यान्तरभेदमात्रादाकाशभेद: किमु सत्य एष:।
जलेऽप्यभेद: परिदृष्ट एव शौचस्य चैवाऽऽचमनस्य लोके।।
आत्मस्वरूपावगमस्तु येषां तेषां कुले भेदविदेव नास्ति।
षड्दर्शनज्ञानजमुक्तिलभ्यं फलं द्वितीयं न च दृश्यते हि।।
येनैव दृष्टं परमेशरूपं तस्यैव निष्ठा न च सद्वितीया।।'' इति।

एवं च परमेश्वरस्तु पञ्चतत्त्वात्मके प्रपञ्चे एकैकस्मिन्नपि वस्तुनि स्वयमेव अवस्थित्य स्वीयैश्च सत्त्वरजस्तमोगुणैरेव सर्वमपि व्यवहारमनायासेनैव निर्वाहयन् स्वयं लीलानाटकसूत्रधारो विराजते। अयमेवाशयोऽत्राऽभिव्यज्यते।

''सर्वमेतद् विश्वमधितिष्ठत्येक:'' — **एक:** = वह अकेले ही, **सर्वम् एतद् विश्वम्** = इस समस्त दृष्टिगोचर स्थावर जङ्गमात्मक जगत् को, **अधितिष्ठति** = नियन्त्रण में रखता है। अत एव **श्री रेणुकाचार्य** अगस्त्य महर्षि को (**'सिद्धान्तशिखामणि'** के भावप्रकाशनस्थल में) **''शिव एव जगत् सर्वम्''** इत्यादि द्वारा प्राचीन काल में ही ''समस्त जगत् शिवस्वरूप है, शिव से भिन्न कुछ नहीं है'' यह जो उपदेश दिया है, वह समुचित ही प्रतीत होता है। इस प्रकार ज्ञानी लोग सर्वत्र परमशिव का साक्षात्कार करते हुए समान दृष्टि द्वारा सर्वसाधारण को शिवभावना से प्रसन्न करते हैं।

शरणगीता ''ग्रामस्य बाह्यान्तरभेदमात्रात्'' से लेकर **''न च सद्वितीया''** तक निष्पक्षदृष्टि से सर्वत्र परमेश्वर की सत्ता का वर्णन करती है— **''ग्रामस्य बाह्यान्तरभेदमात्रात्''** इस चरण में **'ग्राम'** शब्द का अर्थ गाँव न करते हुए केवल स्थान (अवकाश) करना चाहिये। इस प्रकार इसका अर्थ होगा— ''बाहर का ग्राम (स्थान-अवकाश) भिन्न है और आन्तरिक 'ग्राम' (अवकाश) भिन्न है इस प्रकार आकाश (अवकाश-स्पेस) का भेद किया जाता है। किन्तु क्या वह भेद वास्तविक है? इसी प्रकार परमार्थ दृष्टि से जल में भी अभेद दृष्टिगोचर होता है, चाहे वह शरीर की शुद्धि के लिए स्नानादि का जल हो अथवा पेय जल हो। जिन्हें आत्मसाक्षात्कार होता

CC0. In Public Domain. Jangamwadi Math Collection, Varanasi

Digitization by eGangotri and Sarayu Trust. Funding by MoE-IKS

परमात्मन एवं पञ्चभूतात्मना परिणमनमात्रमेव न केवलं लीलेति परिगणनीयम्, किन्तु सः सर्वान् गुणानपि तत्कार्यनिर्वाहाय नियोजयति। **यस्तु** परमेश्वरः **सर्वान् गुणांश्च** सत्त्वरजस्तमोरूपान् **विनियोजयेत्** विशेषेण नियोजयेत् कार्यनिर्वाहाय व्यवस्थापयेत्। एवं सत्त्वरजस्तमोगुणानामपि स एव नियामक इत्याशयोऽत्र स्पष्टीक्रियते। एवं च जगति सर्वत्र परमात्मनः समदृष्ट्या अवस्थानं **शरणगीता** हृदयङ्गमया रीत्या सोदाहरणं निरूपयति।

''एकैव भूमिः परिदृश्यते हि शिवालयस्य श्वपचालयस्य।
ग्रामस्य मध्ये द्विजवासभूमिः ग्रामाद् बहिश्च श्वपचस्य भूमिः।।
किमेवमस्ति प्रविभाग एषः त्वां सर्वतो दृष्टवतो जनस्य।
अन्तर्धिभेदात् खलु नामभेदः तन्नाशकालेऽन्तरबाह्ययोर्न।।
भेदः समस्तीति विभावयन्तः सर्वत्र पश्येम भवद्विभूतिम्।।'' इति।

है उनके कुल में कोई भेद करने वाला ही नहीं होता। षड्दर्शनों के ज्ञान से उत्पन्न मुक्ति से अन्य प्राप्तियोग्य कोई दूसरा फल दृष्टिगोचर नहीं होता। जिसने परमेश्वर के दिव्यरूप का साक्षात्कार किया है, वही मुक्ति की कामना करता है, अन्य की नहीं।''

गुणांश्च सर्वान् विनियोजयेद् यः''— इस प्रकार पञ्चतत्त्वस्वरूप प्रपञ्च के अन्तर्गत परमेश्वर प्रत्येक वस्तु में स्वयं प्रतिष्ठित होकर अपने सत्त्व, रज और तम तीन गुणों द्वारा ही अनायास समस्त व्यवहार का सम्पादन करते हुए स्वयं उस लीला-नाटक का सूत्रधार बन जाता है ; यही आशय इस चतुर्थ चरण में व्यंजित होता है। परब्रह्म-परमात्मा का इस प्रकार पञ्चभूतों के रूप में परिवर्तन का ही लीला के रूप में परिगणन नहीं है, अपितु वह समस्त गुणों को भी उस कार्य का निर्वहन करने के लिये नियुक्त करता है। **यस्तु** = जो परमेश्वर, **सर्वान् गुणांश्च** = सत्त्व-रज और तम सभी तीन गुणों को, **विनियोजयेद्** = विशेष रूप से नियुक्त करे अर्थात् कार्य का निर्वहन करने के लिये व्यवस्थापित करे। इस प्रकार वह सत्त्व-रज और तमोगुण का भी नियामक है, यह आशय इस चरण में स्पष्ट किया जा रहा है। इस प्रकार **शरणगीता** हृदयावर्जक रीति से उदाहरणपूर्वक समान दृष्टि से जगत् में **''एकैव भूमिः परिदृश्यते हि''** इत्यादि पद्यों द्वारा सर्वत्र परमेश्वर की सत्ता का निरूपण करती है। शिवालय हो अथवा चाण्डाल का घर, दोनों की भूमि एक ही दृष्टिगोचर होती है। ग्राम के मध्य में ब्राह्मणों की निवासभूमि और गाँव से बाहर चाण्डालों की निवासभूमि होती है। सर्वत्र तुम्हारा साक्षात्कार करने वाले व्यक्ति के लिये इस प्रकार का भेद किस लिये है? वस्तुतः आन्तरिक और बाह्य भेद के कारण यह नामभेद है। आन्तरिक और बाह्यभेद मिट जाने पर वह नामभेद भी नहीं रहता। इस प्रकार

CC0. In Public Domain. Jangamwadi Math Collection, Varanasi

Digitization by eGangotri and Sarayu Trust. Funding by MoE-IKS

एवं सर्वत्र परमात्मविभूत्यात्मकस्य प्रकाशस्याऽवस्थानं सम्यगवलोकयन्ति ज्ञानिनस्तत्त्वदर्शिनः। परमात्मैव सर्वत्र स्थित्वा स्वीयगुणैः सर्वं कारयतीति विदित्वा विवेकिनः सर्वत्र शिवमेव पश्येयुरिति महर्षिरत्र सूचयति॥५॥

तद् वेदगुह्योपनिषत्सु गूढं
तद् ब्रह्मा वेदते ब्रह्मयोनिम्।
ये पूर्वदेवा ऋषयश्च तद् विदु-
स्ते तन्मया अमृता वै बभूवुः।।६।।

'**तद् वेदे**'ति। य एव सर्वं विनियोजयेत् **तद्** वस्तु तादृशः परमशिवः **वेदगुह्योपनिषत्सु** वेदेषु या गुह्याः परमरहस्यभूता उपनिषदः तासु **गूढं** निगूढतया विराजत इत्यर्थः।

भावना करने वाले हम लोग सर्वत्र आपकी (परमेश्वर की) ही विभूति (ऐश्वर्य) का साक्षात्कार करते हैं।''

इस प्रकार परमार्थ दृष्टि रखने वाले तत्त्वज्ञानी सर्वत्र परम ऐश्वर्यस्वरूप चित्-प्रकाशमय परमात्मा की सत्ता का सम्यक् रीति से साक्षात्कार करते हैं। परमात्मा ही सर्वत्र विराजमान होकर अपने गुणों से सभी को कार्य करने के लिये प्रेरित करता है यह समझकर विवेकी लोग सर्वत्र परमेश्वर का ही साक्षात्कार करें, यह आशय महर्षि श्वेताश्वतर सूचित कर रहे हैं।

मन्त्रार्थ— जगत् का उपादानकारणस्वरूप जो परमेश्वर पृथ्वी, जल, तेज, वायु और आकाश इन पंचमहाभूतों में अपना अपना कार्य करने के लिये जो विशिष्ट शक्ति प्रदान करता है और सभी पञ्चतत्त्वों को विभिन्न पदार्थों के रूप में परिवर्तित करता है और समस्त विश्व का नियमन करते हुए अकेले ही उसका आधिपत्य करता है और सत्त्व, रज और तम सभी गुणों को अपने अपने कार्य में प्रवृत्त करता है, वह परमेश्वर सबसे विलक्षण है। (तत्त्वज्ञानियों को उसी परमशिव का सर्वत्र सभी रूपों में साक्षात्कार करना चाहिये, क्योंकि जगत् भी उसी का साकार स्वरूप है।)।।५।।

''तद् वेदगुह्योपनिषत्सु गूढम्'' — तत् = जो इस प्रकार सभी को अपना अपना कार्य करने के लिये प्रेरित करता है, वह परशिवस्वरूप अक्षर ब्रह्म, **वेदगुह्योपनिषत्सु** = वेदों में अत्यन्त रहस्यस्वरूप विराजमान उपनिषदों में, **गूढम् =** गुप्त रूप से अवस्थित है।

CC0. In Public Domain. Jangamwadi Math Collection, Varanasi

Digitization by eGangotri and Sarayu Trust. Funding by MoE-IKS

"जले यथा गूढतमोऽस्ति बह्नी रसश्च सस्येषु यथा निबद्धः।
गन्धश्च पुष्पेषु यथा निरूढस्तथैव जीवेषु परो निगूढः।।
बालासु सौहार्द्रमिवाऽस्ति गूढं महेश्वरः सर्वगतोऽपि गुप्तः।।"

इति **भगवान् बसवार्यः** परमात्मनो गूढतया सर्वत्राऽवस्थितिं सदृष्टान्तं विवृणोति।

एवं **ब्रह्मयोनिं** सर्वकारणभूतं **तत् ब्रह्मा** चतुर्मुखब्रह्मैव **वेदते** जानाति, नाऽल्पप्रज्ञोऽन्यः कश्चित् परब्रह्म ज्ञातुं शक्नुयात्। स्वीयज्ञानशक्तेः प्रभावात् स एव परमात्मानुग्रहेण तत् स्वरूपं वेत्तुं शक्नोति। अत एवाऽमूर्तस्य परमशिवस्य दिव्यमूर्तेन चतुर्मुखेन, तथैव क्रियाशक्तिपरिणामरूपेण नारायणेन, तथैव ज्ञानक्रियासमन्वयात्मकेन कालरुद्रेण च परस्परं भेदो नास्तीति विज्ञायतेऽनुभवविभिः। न केवलं चतुर्मुख एव किन्तु **ये** च **पूर्वदेवा** पूर्वं विद्यमाना इन्द्रादयो देवा, **ऋषयश्च** वामदेवादयोऽपि तत् परशिवब्रह्म जगव्द्यापकमखण्डलिङ्गरूपिणं **विदुस्ते**

'जले यथा गूढतमीऽस्ति वह्निः' इत्यादि इन्द्रवज्रा-उपेन्द्रवज्रामिश्रित उपजातिछन्द की षट्पदी में भगवान् बसवार्य गुप्तरूप से परब्रह्म-परमात्मा की सर्वत्र सत्ता इस प्रकार दृष्टान्तपूर्वक प्रतिपादित करते हैं— "जिस समुद्रजल में गुप्त वडवानल के रूप में अग्नि का निवास रहता है, जिस प्रकार धान्यादि में गुप्त रूप से रस रहता है, जिस प्रकार फूलों में अदृश्य गन्ध रहता है, उसी प्रकार सभी जीवात्माओं में गुप्त रूप से परमात्मा का वास रहता है। जिस प्रकार बालाओं में गुप्तरूप से सौहार्द्र विराजमान है, उसी प्रकार यद्यपि महेश्वर की सर्वत्र सत्ता है, तथापि वह अदृश्य, गुप्त है।"

"तद् ब्रह्मा वेदते ब्रह्मयोनिम्"— ब्रह्मा = चतुर्मुख ब्रह्मदेव ही, **ब्रह्मयोनिम्** = वेदैकवेद्य सर्वकारणस्वरूप, **तद्** = उस अक्षरब्रह्म परमशिव को, **वेदते** = जानता है। कोई दूसरा मन्दबुद्धि उस परब्रह्म को जान ही नहीं सकता। अपनी ज्ञानशक्ति के प्रभाव से केवल वही परमात्मा के अनुग्रह से उसके स्वरूप को जान सकता है। [आचार्य शंकर **ब्रह्मयोनिम्** का अर्थ **'वेदप्रमाणकमित्यर्थः'** यह अर्थ करते हैं।] इसीलिये अनुभवी ब्रह्मज्ञानी अमूर्त अशरीरी परमशिव का दिव्य मूर्तिधारी चतुर्मुख ब्रह्मदेव के साथ, क्रियाशक्ति के परिणाम के रूप में अवतीर्ण नारायण के साथ ज्ञान और क्रिया के समन्वितस्वरूप कालरुद्र के साथ परस्पर भेद नहीं करते।

ये पूर्वदेवा ऋषयश्च तद् विदुः— न केवल चतुर्मुख ब्रह्मदेव ही अपितु पहिले से विराजमान जो इन्द्र आदि देवता और वामदेव आदि वेदमन्त्रद्रष्टा ऋषि हैं, वे भी जगत् में व्यापक रूप से प्रकाशमान अखण्ड (सम्पूर्ण) ज्योतिर्लिङ्गस्वरूप उस परशिव ब्रह्म का मानस प्रत्यक्ष करते हैं, उसे जानते हैं।

CC0. In Public Domain. Jangamwadi Math Collection, Varanasi

Digitization by eGangotri and Sarayu Trust. Funding by MoE-IKS

वै तेऽपि **तन्मया** ब्रह्ममया **अमृता** अमरणधर्माणो बभूवुः। परशिवब्रह्ममया एव बभूवुरित्यर्थः। **''ब्रह्मविद् ब्रह्मैव भवति''** इति भगवती श्रुतिरेव उपदिशति।।६।।

एवं षड्भिर्मन्त्रैः परशिवब्रह्मतत्त्वं निरूप्याऽधुना षड्भिः जीवात्मस्वरूपं निरूपयति—

गुणान्वयो यः फलकर्मकर्ता
कृतस्य तस्यैव स चोपभोक्ता।
स विश्वरूपस्त्रिगुणस्त्रिवर्त्मा
प्राणाधिपः सञ्चरति स्वकर्मभिः।।७।।

''गुणान्वयः'' इत्यादि। **सः गुणान्वयः** त्रिगुणास्तदन्वयस्तत्सम्बन्धविशिष्ट इत्यर्थः। त्रिगुणपरवश इति यावत्। गुणो नाम पाशः। अनेन पाशेन बद्ध एव परमात्मचेतनांशोऽपि जीव इति कथ्यते। अयं च पाशस्त्रिगुणात्मक आणवादिमलरूप एव विलसति। एतैस्त्रिभिर्मलैरावृतो जीवः पशुरिव युक्तायुक्तविवेचनारहितो

ते तन्मया अमृता वै बभूवुः— वे भी अक्षरब्रह्मस्वरूप होकर अमृतत्व प्राप्त करते हैं, मृत्युधर्म से मुक्त होते हैं, जन्ममरणचक्र से छुटकारा पाते हैं। परशिवब्रह्म बन जाते हैं। भगवती वेदमाता स्वयं उपेदश देती है— **ब्रह्मवित् ब्रह्मैव भवति**— ब्रह्मज्ञानी स्वयं ब्रह्म बन जाता है।

मन्त्रार्थ- सभी को प्रेरित करने वाला वह परशिवस्वरूप परब्रह्म वेदों के रहस्यस्वरूप उपनिषदों में छिपा हुआ है। उसकी सर्वत्र सत्ता है। वेदैकवेद्य सर्वकारणस्वरूप उस परशिव ब्रह्म को चतुर्मुख ब्रह्मदेव जानते हैं। पहिले से विद्यमान जिन देवताओं और मन्त्रद्रष्टा ऋषियों में उस परशिव का ज्ञान प्राप्त किया, वे अमर हो गये।।६।।

अवतरण— इस प्रकार **द्वे अक्षरे ब्रह्मपरे** इत्यादि मंत्र से लेकर **''तद्वेदगुह्योपनिषत्सु गूढम्''** इत्यादि वेदमंत्र तक छः वेदमन्त्रों द्वारा अक्षर परशिव ब्रह्मतत्त्व का निरूपण कर **''गुणान्वयो यः फलकर्मकर्ता''** से लेकर **''स्थूलानि सूक्ष्मानि बहूनि चैव''** इत्यादि तक अग्रिम छः मन्त्रों द्वारा जीवात्मा का स्वरूप निरूपित किया जा रहा है—

'गुणान्वयो यः', इत्यादि। **'गुणान्वयः'**— यह परशिव ब्रह्म सत्त्व, रज और तम इन तीन गुणों से सम्बद्ध है। वह इन तीन गुणों के वश में है। गुण का अर्थ पाश होता है। वह परमशिव त्रिगुणात्मक पाश से आबद्ध होकर चेतनस्वरूप परमात्मा का अंश होकर भी 'जीव' कहलाता है और वह त्रिगुणात्मक आणव, मायीय तथा कार्म त्रिविध अज्ञानमलस्वरूप

CC0. In Public Domain. Jangamwadi Math Collection, Varanasi

Digitization by eGangotri and Sarayu Trust. Funding by MoE-IKS

लोके व्यवहरति। एवं त्रिगुणबद्धत्वादेव **य ईदृशः फलकर्मकर्ता** फलप्रदानि पुण्यपापफलकानि कर्माणि करोति कुर्वन् वर्तते स एव च जीवः स्वेनैव **कृतस्य तस्य** कर्मण **उपभोक्ता** फलानुभविता च वर्तते। त्रिगुणपरवशो जीवः तदधीनोऽविवेकेनाऽहङ्कारेण च स्वयमेव प्रवृत्तः पुण्यपापादिकं कर्म कृत्वा तदनुगुणं फलमप्यनुभवति।

स विश्वरूपः तत्तत्कर्मानुगुणतया बहुरूपधारी भवति। स एव माता, पिता, भ्राता, पत्नी, पुत्रः, श्वशुरः, श्वश्रूः, शत्रुः, इत्याद्यनेकानि रूपाणि परिधत्ते। एक एव जीवः अनेकानि रूपाणि, अनेका अवस्थाश्च स्वीकरोति प्राक्तनकर्मविपरिणामेन। अयं सर्वोऽपि परिणामस्तस्य गुणत्रययोगात्सञ्जायते। एवं **त्रिगुणो** गुणत्रयविशिष्टः सः **त्रिवर्त्मा** गुणत्रयानुगुणमार्गत्रयगन्ता च भवति। सात्त्विकजीवानां ऊर्ध्वलोकगमनम्, तामसानामधोलोकगमनम्, राजसानां मध्यमलोकगमनमिति जीवानां गतित्रयं प्रसिद्धमेव।

पाश ही होता है। इन तीन अज्ञानमलों से घिरा हुआ जीव योग्य क्या है और अयोग्य क्या है इसकी विवेचना छोड़कर संसार में उसी प्रकार व्यवहार करता है, जिस प्रकार पशु।

[गीता कहती है—

सत्त्वं रजस्तम इति गुणाः प्रकृतिसम्भवाः।
निबध्नन्ति महाबाहो ! देहे देहिनमव्ययम्।।
(१४/१५)]

'यः फलकर्मकर्ता'— इस प्रकार जीव त्रिगुणात्मक रज्जुपाश से बँधा होने के कारण ही सकाम कर्म करता है— जिनसे पुण्य और पाप फल मिलता है, वे सुकृत-दुष्कृत कर्म करता है। **'कृतस्य तस्यैव स चोपभोक्ता'**— और वह जीव स्वयं द्वारा किये गये सुकृत और दुष्कृत कर्मों के पुण्य और पाप दोनों फलों को भोगता है। गुणत्रय के वश में रहने वाला जीव उनके अधीन होकर अविवेक और **'अहंकार'** (देह-इन्द्रियादि-अभिमान) से स्वयं प्रवृत्त होकर पुण्य-पाप आदि कर्म करते हुए उसके अनुरूप फल का भी अनुभव करता है। **'स विश्वरूपः'**— वह जीव उन उन कर्मों के अनुरूप (अनेक योनियों में जन्म लेकर) विविध रूप धारण करता है। वही जीव माता, पिता, भाई, बहिन, पत्नी, पति, पुत्र, कन्या, श्वशुर, श्वश्रू, शत्रु, मित्र इत्यादि अनेक रूप धारण करता है। एक ही जीव पूर्वजन्म के परिणामस्वरूप विविध स्वरूप और विविध अवस्थाओं को स्वीकार करता है। **''त्रिगुणस्त्रिवर्त्मा''**— इस प्रकार सभी परिणाम सत्त्व, रज और तम तीन गुणों के सम्बन्ध से होते हैं। इस प्रकार त्रिगुणमय **'जीव'** तदनुकूल तीन मार्गों पर चलता है।

CC0. In Public Domain. Jangamwadi Math Collection, Varanasi

Digitization by eGangotri and Sarayu Trust. Funding by MoE-IKS

एतादृशः स जीवः **प्राणाधिपः** पञ्चवृत्तेः प्राणवायोरधिपो नियामकः सन् जीवः **स्वकर्मभिः** स्वकृतपुण्यपापफलानुभवाय प्राणवायुसहकारेण देहाद् देहान्तरं सञ्चरन् वर्तते। तेन निर्वर्त्यं सर्वमपि कर्म पुण्यपापादिकं तदीयशक्ति-रूपस्य चित्तस्य सङ्कल्पादेव सम्भवति। चित्तसङ्कल्पं निगृहीतुमशक्तो जीवात्मा अन्ध इव तमेवानुसरति। तदीयं व्यवहारविधानं **शरणगीता** एवं निर्दिशति।

''पुण्यं पापं यद्धि लोके प्रदृष्टं तत्तत्सर्वं चित्तसङ्कल्पजं हि।
उक्तादन्यं नास्ति लोके हि पुण्यं पापं वेति प्रायशः सिद्धमेतत्।।'' इति।

सात्त्विक जीव ऊर्ध्वलोक जाते हैं, तामस जीव अधोलोक जाते हैं और राजस जीव मध्यमलोक जाते हैं इस प्रकार जीवों की तीन मार्गों पर गति विश्वविख्यात ही है।

[**छान्दोग्य** (५/१०/२-८) और **बृहदारण्यक** (६/२/१५-१६) उपनिषद् के अनुसार देवयान से ब्रह्मलोक तक जाने वाले युक्त होते हैं। पितृयान से स्वर्गलोक जाने वाले पुण्यक्षय होने पर मृत्युलोक लौटते हैं और तृतीय मार्ग से जाने वाले कीटपतंगादि- जन्ममरणचक्र में भटकते रहते हैं।]

'प्राणाधिपः सञ्चरति स्वकर्मभिः'— इस प्रकार पञ्चवृत्ति प्राणवायु का अधिपति, उनका नियामक जीवात्मा अपने सुकृत-दुष्कृत कर्मों द्वारा अपने द्वारा किये गये पुण्य-पाप के फलों को भोगने के लिये एक शरीर से दूसरे शरीर में सञ्चरण करता रहता है।

[प्राण अपान-व्यान-उदान और समान ये प्राणवायु की पाँच वृत्तियाँ हैं। **अमरकोष** में उनका स्थान इस प्रकार वर्णित है—

''हृदि प्राणो गुदेऽपानः समानो नाभिमण्डले।
उदानः कण्ठदेशे स्याद् व्यानः सर्वशरीरगः।।'']

उसके द्वारा सम्पादित पुण्य-पाप आदि कर्म चित्त के संकल्प से होता है, जो परमशिव की चितिशक्ति का संकुचित स्वरूप है। अपने संकल्पात्मक चित्त पर नियन्त्रण करने में असमर्थ जीव अन्धे के समान उसी के पीछे भागता है, उसी का अनुसरण करता है।

शरणगीता उसके व्यवहार का विधान इस प्रकार करती है— **'पुण्यं पापम्'** इत्यादि। जो कुछ पुण्य-पाप संसार में देखा जाता है, वह सब चित्तसंकल्प से उत्पन्न होता है। उससे भिन्न न तो पुण्य है और न पाप, यह प्रायः सिद्ध है। इस प्रकार परमात्मा में विराजमान चिच्छक्ति (चितिशक्ति) की संकोचरूपिणी चित्तशक्ति के संकल्प के अनुरोध से प्रवृत्त जीव पुण्य-पाप करता हुआ उसका फलोपभोग करने के लिये संसार में संसरणशील रहता है।

CC0. In Public Domain. Jangamwadi Math Collection, Varanasi

Digitization by eGangotri and Sarayu Trust. Funding by MoE-IKS

एवं परमात्मनिष्ठाया: चिच्छक्ते: सङ्कोचरूपिण्याश्रित्तशक्ते: सङ्कल्पानुरोधेन प्रवर्तमानो जीव: पुण्यपापानि कुर्वन् तत्तत्फलानुभवाय संसरन् वर्तते।।७।।

अङ्गुष्ठमात्रो रवितुल्यरूप:
सङ्कल्पाहङ्कारसमन्वितो य:।
बुद्धेर्गुणेनाऽऽत्मगुणेन चैव
आराग्रमात्रो ह्यपरोऽपि दृष्ट:।।८।।

'अङ्गुष्ठमत्र' इति। य: जीव: **अङ्गुष्ठमात्र:** अङ्गुष्ठमात्रपरिमितस्तथापि **रवितुल्यरूप:** सूर्यवत् प्रकाशमान:, स: स्वयमणुरपि विभुत्वेन सर्वत्र प्रकाशत इत्यर्थ:। स: यद्यपि अङ्गुष्ठमात्रपरिमाण एकस्तथापि तस्य प्रकाशो देहे सर्वत्र व्याप्नोति। तादृशो जीव: **सङ्कल्पाहङ्कारसमन्वित:-** सङ्कल्पो मानसं कर्म। अहङ्कारोऽहन्त्वाभिमान:। ताभ्यां युक्तो**ऽपर:** परमात्मनोऽतिरिक्तो वर्तते। **बुद्धेर्गुणेन** अध्यवसायादिना, **आत्मगुणेन च**। आत्मशब्दोऽत्र शरीरपरस्तस्य गुणेन जरामरणादिना च समन्वित इत्याकर्ष:। एवं स: **आराग्रमात्र** अत्यन्ताल्पपरिमाणवानेव

मन्त्रार्थ— वह जीव वस्तुत: सत्त्व-रज और तमोगुणमय पाश से आबद्ध होता है, सकाम कर्म करता है और कर्मफल भोगता है। त्रिगुणात्मा जीव नानारूप धारण करता है और ऊर्ध्वलोक, अधोलोक और मध्यमलोक तीन मार्गों पर चलता है। वह पञ्चवृत्तिस्वरूप प्राणों पर नियंत्रण रखता हुआ अपने कर्मानुसार एक शरीर से दूसरे शरीर में संचरण करता है।।७।।

'अङ्गुष्ठगात्र:' इत्यादि। **य: अङ्गुष्ठमात्र:** = जो (जीव) अंगूठे के बराबर का है। [मनुष्य के जिस हृदय में जीवात्मा का निवास है, वह अंगूठे के बराबर होने के कारण जीवात्मा भी उसी परिमाण (माप) का है।] (तथापि) **रवितुल्यरूप:** = वह सूर्य के समान तेजस्वी है। वह स्वयं अणु (सूक्ष्मतम) होने पर भी विभु (सर्वव्यापक) होने के कारण सर्वत्र प्रकाशित होता है। वह यद्यपि अंगूठे के नाप का एक है; तथापि उसका प्रकाश सम्पूर्ण शरीर को सर्वत्र व्याप्त करता है। **य: सङ्कल्पाहङ्कारसमन्वित:** = संकल्प मानसिक प्रक्रिया है। शरीर इन्द्रिय आदि के प्रति ममता 'अहंकार' कहलाता है। जीव जो सङ्कल्प उस मानसिक प्रक्रिया और अहंकार से युक्त होने के कारण परमात्मा से भिन्न है। **बुद्धे: गुणेन आत्मगुणेन चैव (समन्वित:)** = ''आत्मगुणेन' पदस्थित 'आत्मन्' शब्द यहाँ शरीर का पर्यायवाची है। यहाँ ''सङ्कल्पाहङ्कारसमन्वित:'' पदस्थित समन्वित पद की अनुवृत्ति करनी चाहिये। बुद्धि का गुण है अध्यवसाय और 'आत्मगुण' अर्थात् शरीर का धर्म है जरा-मरण आदि। शरीरधारी जीव इनसे युक्त होता है।

CC0. In Public Domain. Jangamwadi Math Collection, Varanasi

Digitization by eGangotri and Sarayu Trust. Funding by MoE-IKS

दृष्टो निश्चित:। अतो जीवात्मा अत्यन्तं सूक्ष्म इत्यर्थ:। एवं च स: शरीरधर्मेण बुद्धिधर्मेण च व्याप्त: सन् स्वधर्ममेव विस्मृतवान्। अत एव भयावहात् परधर्मात् परितस्त्रस्त: सर्वदा चिन्ताव्यसनदौर्भाग्यमनुभवन् वर्तते। स्वधर्मं य: परित्यजति स सर्वोऽप्येवमेवाऽनीशया मुह्यमान: सर्वदा शोचन्नेव कालं यापयति। एवं च आत्मजातीयै: सर्वैरपि आत्मधर्मोऽवश्यं ज्ञेय आचरणीयश्चेत्ययमंशोऽत्र स्पष्टमभिव्यज्यते॥८॥

[**शंकरानन्द** के अनुसार जीवात्मा और परमात्मा दोनों में समानता है। सङ्कल्पाहङ्कारसमन्वितो य:, बुद्धेर्गुणेनात्मगुणेन चैव समन्वित:' ये दो विशेषण जीवात्मा को परमात्मा से पृथक् करते हैं— **''सङ्कल्पेत्यादिविशेषणमीश्वरव्यावृत्त्यर्थम्, तस्यापि क्वचिदङ्गुष्ठमात्रत्वाभिधानात्।''**]

''आराग्रमात्रो ह्यपरोऽपि दृष्ट:''— इसी प्रकार वह जीवात्मा **'आराग्र'** सुई की नोक के समान अत्यन्त सूक्ष्म भी दृष्टिगोचर होता है। अत: जीवात्मा सूक्ष्मतम 'अणु' स्वरूप है। इस प्रकार वह शरीरधर्म और बुद्धिधर्म से व्याप्त होकर आत्मधर्म को ही भूल गया है। अत एव भयावह परधर्म (शरीरधर्म) से चारों ओर घिरने से त्रस्त होकर सर्वदा चिन्ता और व्यसनों से दुर्भाग्य का अनुभव करता रहता है। जो स्वधर्म का परित्याग करते हैं, वे समस्त जीव अशक्ति (दुर्बलता) के कारण मोहग्रस्त होकर सर्वदा अपना शोकमय जीवन ही व्यतीत करते हैं। इसका तात्पर्य यह है कि जीवात्मा और परमात्मा सजातीय हैं। परमात्मा की जाति के सभी जीवात्मा आत्मधर्म समझें और उसको आचरण में लायें।

[गीता (१५/७) कहती है—

''ममैवांशो जीवलोके जीवभूत: सनातन:।
मन: षष्ठानीन्द्रियाणि प्रकृतिस्थानि कर्षति।।'']

मन्त्रार्थ— परमात्मा का अंश स्वरूप और उसके समान ही जो जीवात्मा मनुष्य हृदय में अंगूठे के नाप का और सूर्य के समान तेजस्वी है। वह चींटी आदि क्षुद्र प्राणियों में सुई के नोक के समान 'अणु'-अत्यन्त सूक्ष्म भी दृष्टिगोचर होता है। वह सूर्य के समान तेजस्वी और शरीर में सर्वत्र प्रकाशमान है। शरीरधारण करने के कारण वह मानसिक संकल्प, शरीर इन्द्रियादि के प्रति ममता, अध्यवसाय स्वरूप बुद्धिधर्म और जरा-मरण आदि शरीर धर्म से प्रभावित होकर आत्मधर्म विस्मृत कर देता है। (अत एव सदा दु:खी रहता है।)।।८।।

CC0. In Public Domain. Jangamwadi Math Collection, Varanasi

Digitization by eGangotri and Sarayu Trust. Funding by MoE-IKS

जीव: कियान् सूक्ष्म इत्यत्र सनिदर्शनमुत्तरमावेदयति—

बालाग्रशतभागस्य शतधा कल्पितस्य च।
भागो जीवः स विज्ञेयः स चाऽऽनन्त्याय कल्पते।।९।।

'बालाग्रे'ति। **बालाग्रशतभागस्य** शरीरैकदेशावयवशतभागस्य, तत्राऽपि **शतधा** अनेकश: **कल्पितस्य** खण्डितस्य यो **भागः** स्यात् स एव तादृशपरिणामवान् जीवो विज्ञेय:।

एवमतिसूक्ष्मपरिमाणवानपि जीव: कर्मक्षये सति **आनन्त्याय** अनन्तत्वाय विभुत्वाय **कल्पते** समर्थो भवति। एवं संसारदशायां तस्य इच्छाज्ञानक्रियारूपा शक्ति: सङ्कुचिता सती तत्परिणामभूतैराणवमायीयकार्मिकमलैरावृता भवति। एवं जीवस्य व्याप्ति: परिमिता वर्तते। अत एव स स्वयं परमात्मचेतनांशत्वाद् विभुरपि परमात्मशक्तेश्च परिणामरूपया मायाशक्त्या अपहृतात्मैश्वर्य: सन् सहजतया अणुर्भवति। अयं सर्वो मायाया: प्रभाव:। **शरणगीता** मायाप्रभावमेवं वर्णयति—

अवतरण— जीव कितना सूक्ष्म है? इसका उत्तर वेदमाता दृष्टान्तपूर्वक निर्देशित कर रही है—

'बालाग्रशतभागस्य' शरीर का एक हिस्सा जो केश, उसके अग्रभाग के, **शतधा कल्पितस्य च** = उसके भी यदि सौ टुकड़ों की कल्पना करें उसका, जो हिस्सा अर्थात् बाल की नोक के दस हजार भाग करने पर उसका जो हिस्सा होगा, **सः भागः** = उसके बराबर अत्यन्त स्वल्प सूक्ष्मतम भाग को, **जीवः विज्ञेयः** = जीवात्मा समझना चाहिये।

''स चाऽऽनन्त्याय कल्पते— इस प्रकार 'अणु' अत्यन्त सूक्ष्मस्वरूप वह जीवात्मा कर्मफलों का भोग करने पर अन्तरहित 'विभु' सर्वव्यापक होता है। परमात्मा के अंशस्वरूप चेतन जीवात्मा की इच्छा-ज्ञान-क्रियास्वरूप त्रिविध शक्ति संसार दशा में संकोच को प्राप्त करती है और वह उसके परिणामस्वरूप आणव, मायीय और कार्मिक अज्ञानमल के आवरणों से घिर जाती है। इस प्रकार जीव की व्यापकता सीमित बन जाती है। अत एव वह स्वयं परमात्मा का चेतन अंश होने के कारण 'विभु' सर्वव्यापक होने पर भी परमात्मशक्ति की परिणामस्वरूपा रूपान्तरित मायाशक्ति द्वारा उसके सर्वविध ऐश्वर्य का अपहरण किया जाता है और फलतः स्वाभाविक रूप से 'अणु' बन जाता है। यह सब माया का ही प्रभाव है।

CC0. In Public Domain. Jangamwadi Math Collection, Varanasi

Digitization by eGangotri and Sarayu Trust. Funding by MoE-IKS

"व्याघ्रास्यसंसक्तमृगो यथैव यथैव भेको भुजगास्यलग्नः।
तथैव मायामृगबन्धिनीसितान् समीक्ष्य भीतः शरणं प्रपद्ये।।
अतस्त्वमेवाऽर्हसि रक्षितुं मामखण्डदेवाऽद्य दयां निधेहि।।" इति।

एवं सर्वे जीवा मायापाशबद्धा विनष्टस्वातन्त्र्यास्तदीयदासा भूत्वा तदाकर्षणेषु रूपरसगन्धस्पर्शशब्देषु रममाणा वर्तन्ते। एवं दुःस्थितौ वर्तमानानां जीवानां परमात्मशरणागतिरेकैव मायाविजयहेतुरिति स्वदृष्टान्तेन **बसवार्यो** वदति। तदीया ह्यमरवाणी सर्वेषां मनोमन्दिरे तदीयश्रेयसे स्थेया। सा एवं वर्तते—

"यदाऽस्मि सद्भक्तसहासिकां गतस्तदैव युष्मत्परिचर्ययाऽहम्।
अवाप्य शुद्धिं तत उत्तराप्यं वित्तस्य कार्श्यं समुपैमि सत्यम्।।
वित्ते कृशे कायमिहाऽर्पयेयं काये कृशे चित्तमथाऽर्पयेयम्।
चित्ते कृशे भावमथाऽर्पयेयं भावेऽर्पिते केवलतां भजेयम्।।" इति।

शरणगीता 'व्याघ्रास्यसंसक्तमृगः' इत्यादि पद्यों से माया के प्रभाव का वर्णन इस प्रकार करती है— "जिस प्रकार बाघ के मुख में पड़ा हुआ पशु भयभीत होता है, जिस प्रकार सर्प के मुख में फँसा हुआ मेढ़क डर जाता है, उसी प्रकार मैं माया के रज्जुपाशों को देखकर भयभीत हूँ और तुम्हारी शरण में आ रहा हूँ। हे अखण्डदेव! तुम ही मेरी रक्षा कर सकंते हो। तुम आज मुझ पर दया करो।"

इस प्रकार सब जीव मायापाश से आबद्ध होते हैं, उनकी स्वतन्त्रता समाप्त हो जाती है और जब वे उस माया के दास बन जाते हैं, तब रूप, रस, गन्ध, स्पर्श और शब्द इन विषयों के आकर्षण में रम जाते हैं।

इस प्रकार दुर्दशाग्रस्त जीवों के लिये माया पर विजय प्राप्त करने के लिए एक ही निमित्त अवशिष्ट रहता है और वह है परमात्मा की शरण में जाना। इसी आशय को **बसवार्य** दृष्टान्तपूर्वक प्रकट करते हैं। उनकी अमरवाणी सभी जीवों को अपने मनमन्दिर में अपने कल्याण के लिये प्रतिष्ठित करनी चाहिये। वह इस प्रकार है— **"यदाऽस्मि'** इत्यादि। "जब मैं साधुजनों और भक्तों के साथ उठने-बैठने लगा, तभी आपकी सेवा (पूजा-अर्चना) से निर्मलता प्राप्त की। यह सच है कि तबसे मैं धन (संपत्ति) से कृश (दुर्बल) हो गया हूँ तथापि धन से दुर्बल होने पर मैं अपना शरीर, शरीर दुर्बल होने पर अपना चित्त (अन्तःकरण), चित्त के दुर्बल होने पर अपना भाव और भाव के समर्पण के पश्चात् "कैवल्यपद" (मोक्ष) को प्राप्त करूँगा।" इस प्रकार "कैवल्यपद" (मोक्ष) प्राप्त करना ही जीव की स्वतन्त्रता है, यह आशय जब अनुभवी ब्रह्मज्ञानी प्रकट करते हैं, उसी समय जीव अपने आणव मल के प्रभाव से छुटकारा पाता है और अपने पूर्ण वैभव को प्राप्त

CC0. In Public Domain. Jangamwadi Math Collection, Varanasi

Digitization by eGangotri and Sarayu Trust. Funding by MoE-IKS

एवं केवलताप्राप्तिरेव जीवस्य स्वातन्त्र्यमित्यनुभाविभिः कथ्यते। तदैव जीवः परित्यक्ताणवप्रभावः स्वीयं वैभवं प्राप्नोति। अयमेव शक्तिविकास इति परिगण्यते। अयं तु आणवमलापाये मुक्तिदशायामेव सम्भवति। एवं जीवः संसारदशायामणुः मुक्तिदशायामत्रैव देहे गुरुकृपया शिवप्रसादरूपेण परिणते विभुर्भवतीत्यर्थः॥९॥

तस्य स्त्रीपुंदेहान्तर्वर्तित्वात् लिङ्गभेदोऽस्ति वेत्याशङ्क्य परिहरति—

नैव स्त्री न पुमानेष न चैवाऽयं नपुंसकः।
यद् यच्छरीरमादत्ते तेन तेन स युज्यते॥१०॥

'नैवे'ति। **एष** जीवः **नैव स्त्री, नैव** च **पुमान्, नैवाऽयं नपुंसकश्च;** किन्तु **यद् यच्छरीरम् आदत्ते** कर्मवशात् स्वीकरोति **तेन तेन** स्त्रीत्वादिना रूपेण स युज्यते युक्तो भवति। स्त्रीत्वादिकं रूपमस्य न स्वाभाविकं किन्तु शरीरसम्बन्धाधीनमित्यर्थः। **स्त्रीपुंदेहान्तर्वर्तिनः** शुद्धजीवस्य स्वरूपं जानानाः **शरणा** एवमुद्बोधयन्ति सामान्यजनान्—

करता है। इसी की गणना शक्तिविकास के रूप में की जाती है। यह तभी सम्भव है, जब आणवमल का प्रभाव हटे और जीव मुक्ति की अवस्था प्राप्त करे।

इस प्रकार जीव संसारदशा में इतना संकुचित होता है कि वह 'अणु' बन जाता है और जब जीव सद्गुरु के कृपाप्रसाद से परमशिव का प्रसाद प्राप्त करता है, तब इसी शरीर में मुक्तिस्थिति प्राप्त करता है और 'विभु' सर्वव्यापक-बन जाता है।

मन्त्रार्थ— जब तक परमात्मा का चेतनांश अपनी संकुचित चित्तशक्ति के कारण आणव-मायीय और कार्मिक मलपाशों से घिरा रहता है, तब तक अत्यन्त संकुचित रहता है। वह बाल के अग्रभाग के हजार वें हिस्से के बराबर अत्यन्त सूक्ष्म होता है, जिसे 'जीव' कहते हैं। जब वह गुरुकृपा से शिवप्रसाद प्राप्त करता है, तब इसी शरीर में ''कैवल्य'' स्थिति को प्राप्त करता है और 'अनन्त' अन्तरहित 'विभु' सर्वव्यापक बन जाता है।।९।।

अवतरण— अग्रिम मंत्र में इस आशंका का परिहार किया जा रहा है कि जीवात्मा स्त्री-पुरुष आदि के शरीर में अन्तर्यामी रूप में वास करने के कारण लिङ्ग की दृष्टि से उसका भेद है अथवा नहीं?—

'नैव स्त्री' इत्यादि। **एषः** = यह जीवात्मा, **नैव स्त्री** = न तो स्त्री है, **न पुमान्** = न तो पुरुष है, **न चैवायं नपुसंकः** = और न तो यह नपुंसक है। **यद्**

CC0. In Public Domain. Jangamwadi Math Collection, Varanasi

Digitization by eGangotri and Sarayu Trust. Funding by MoE-IKS

''रजो विना बिन्दुसमागमो न जलस्य बिन्दोश्च समानपातः।
आसामिषाद्या विषयाः समानाः श्रुत्वा पठित्वा फलमेव किं स्यात्?।।
सप्तधातुसमं पिण्डं समयोनिसमुद्भवम्।
आत्मजीवसमुत्पन्नं वर्णानां किं प्रयोजनम्?।।
अयः प्रताप्य स्वयमेव जातोऽयस्कारनामा रजकश्च धावनात्।
तन्तुं वयित्वाऽथ कुविन्दनामा वेदं पठित्वा द्विज एक आसीत्।
कर्णेऽभिजातः क इहाऽस्ति लोके योनेर्हि जाता इति सिद्धमेतत्।।
य एव देहे सुविराजमानं लिङ्गं विजानाति स एव धन्यः।।''

इत्येवं शरणाः सर्वदेहेषु स्थितस्याऽऽत्मनः स्वकर्माननुषक्तं दिव्यस्वरूपं विवेचयन्ति।।१०।।

यत् शरीरम् आदत्ते = किन्तु जो जो शरीर वह कर्मपरवशता के कारण धारण करता है, **तेन तेन स युज्यते** = उस उस शरीर से सम्बद्ध होता है। [**'रक्ष्यते'** यह पाठ स्वीकार करने पर इसका अर्थ होगा— उस-उस शरीर के द्वारा उसकी रक्षा की जाती है।]

स्त्रीत्व, पुंस्त्व और नपुंसकत्व जीवात्मा के स्वाभाविक स्वरूप नहीं हैं, अपितु ये शरीरसम्बन्ध के अधीन हैं। स्त्री-पुरुष देह के अन्तर्वर्ती हृदयगुफा में वास करने वाले शुद्ध जीवात्मा के स्वरूप को जानने वाले **'शरण'** (शरणागत भक्त) इस प्रकार सामान्य जनों को उद्बोधन करते हैं— **'रजो विना'** इत्यादि। बिना रजोगुण के वीर्यबिन्दु का समागम संभव नहीं है। वहाँ रजकण और वीर्य बिन्दु का समान रूप से पतन होता है। सामिष आदि से लेकर सभी विषय समान हैं, जिन्हें सुनकर अथवा पढ़कर उसका क्या फल होगा?

'सप्तधातुसमं पिण्डम्' इत्यादि। सात धातुओं का समान अनुपात जिसमें होता है, ऐसा पिण्ड समान योनि से उत्पन्न होता है, उसमें जीवात्मा और परमात्मा दोनों प्रकट होते हैं। वहाँ ब्राह्मणादि वर्णों का क्या प्रयोजन है?

'अयः प्रसाध्य' इत्यादि। एक धोबी ने दौड़कर लोहे को गरम किया और स्वयं 'अयस्कार' (लोहार) के नाम से प्रसिद्ध हो गया। उसी प्रकार कुविन्द नाम का बुनकर जो सूतादि कपड़ा बनाता था, वह वेदपाठ करते हुए ब्राह्मण बन गया।

'कर्णेऽभिजातः' इत्यादि। कौन ऐसा है, जिसका जन्म कान से हो? यह सिद्ध है कि सबका जन्म योनि से हुआ है। जो इस शरीर में प्रकाशमान चित्स्वरूप ज्योतिर्मय परमशिव ब्रह्म के लिङ्ग को जानता है, वह धन्य होता है।

CC0. In Public Domain. Jangamwadi Math Collection, Varanasi

Digitization by eGangotri and Sarayu Trust. Funding by MoE-IKS

जीव: किमर्थं नानाविधानि शरीराणि गृह्णाति? किं वा तस्य शरीरग्रहण-कारणम्? इत्यस्योत्तरमिदानीं वक्ति—

सङ्कल्पनस्पर्शनदृष्टिमोहै-
र्ग्रासाम्बुवृष्ट्या चाऽऽत्मविवृद्धिजन्म।
कर्मानुगान्यनुक्रमेण देही
स्थानेषु रूपाण्यभिसम्प्रपद्यते।।११।।

'सङ्कल्पनस्पर्शनदृष्टिमोहै:' इति। प्रथमं सङ्कल्प: इच्छा, ततो विषयस्य स्पर्शनं सम्पर्क:, ततस्तस्य सन्दर्शनम्, ततश्च तेन मोह: एतादृशविषममोहै:, **ग्रासाम्बुवृष्ट्या** ग्रास: अन्नकवल:, अम्बु पानीयम् तयोर्वृष्ट्या वर्षणेन च **आत्मविवृद्धिजन्म** आत्मन: शरीरस्य विवृद्धिर्जायते। एवं रीत्या **देही** संसारिजीव:

इस प्रकार **शरण** सभी शरीरों में विराजमान अपने कर्मों से असंपृक्त परमात्मा के दिव्य स्वरूप का विवेचन करते हैं।

[जीवात्मा का सारा भेद शरीर को लेकर है। वह सारे भेदों से शून्य है। आचार्य शंकर कहते हैं— **''यद् यद् स्त्रीशरीरं पुरुषशरीरं नपुंसकशरीरं वाऽऽदत्ते, तेन तेन स च विज्ञानात्मा रक्ष्यते संरक्ष्यते तत्तद्धर्मानात्मनि अध्यस्य अभिमन्यते 'स्थूलोऽहम्, कृशोऽहम्, पुमानहम्, नपुंसकोऽऽहम्' इति।''**— विज्ञानस्वरूप वह जीवात्मा जो स्त्री, पुरुष अथवा नपुंसक शरीर धारण करता है; उस शरीर के जो धर्म रहते हैं, उनका वह स्वयं पर अध्यारोप करता है और यह अभिमान करता है— 'मैं मोटा-ताजा हूँ, दुबला-पतला हूँ, मर्द हूँ, औरत हूँ, नामर्द हूँ इत्यादि। वस्तुत: वह उपाधि-रहित होता है और शरीर की उपाधियों पर स्वयं को आरोपित करता है।]

मन्त्रार्थ— यह जीवात्मा न तो स्त्री है, न पुरुष है और न वह नपुंसक है। वह जिस-जिस शरीर को धारण करता है, उस-उस शरीर के स्त्रीपुरुषादिस्वरूप से सम्बद्ध होता है।।१०।।

अवतरण— जीवात्मा किसलिये विविध शरीर स्वीकार करता है? अथवा उसके शरीरधारण का कारण क्या है? इत्यादि प्रश्नों का उत्तर अग्रिम मंत्र दे रहा है—

'सङ्कल्पनस्पर्शनदृष्टिमोहै:' इत्यादि। संकल्प से जलवर्षा तक ये शरीर की वृद्धि के कारण है। इसका प्रथम अर्थ है— स्त्री पुरुष की सहवास की इच्छा (संकल्प), एक दूसरे का स्पर्श और दृष्टिक्षेपपूर्वक विषयमोह में पड़ना और सहवास इससे जीव स्त्री गर्भ में आकर शरीर धारण करता है, फिर भोजन और जलपान से उत्पन्न वर्षा से उस शरीर का विकास होता है।

CC0. In Public Domain. Jangamwadi Math Collection, Varanasi

Digitization by eGangotri and Sarayu Trust. Funding by MoE-IKS

स्थानेषु तत्तल्लोकेषु **अनुक्रमेण** क्रमशः परम्परया कर्मानुगानि कर्मानुगुणानि **रूपाणि** शरीराणि **अभिसम्प्रपद्यते** अभितः प्राप्नोति। एवं च कर्मैव शरीरसम्बन्धहेतुः, कर्म च विषयव्यामोहजन्यमित्यर्थः। ततश्च कर्म स्वसन्तोषायैव यदि क्रियते तदा मोहदृष्टिमुत्पाद्य तदेव मानवं हन्यात्। अत एव कायकदृष्ट्यैव

[इसका दूसरा अर्थ यह है भिन्न-भिन्न योनि में जीवों की उत्पत्ति और उसके शारीरिक विकास के भिन्न-भिन्न कारण हैं। कछुवे के अण्डों का पोषण संकल्पमात्र से, पक्षियों के अण्डों का पोषण मात्र स्पर्श से होता है। मछली आदि की वृद्धि मात्र दृष्टिक्षेप से होती है। पशु और मनुष्य का शारीरिक विकास अन्नादि ग्रास खाकर और जल पीकर होता है। पेड़-पौधे-लता-धान्य आदि वर्षाजल से बढ़ते हैं।]

'कर्मानुगान्यनुक्रमेण' इत्यादि। इस प्रकार देहधारी संसरणशील जीव भिन्न-भिन्न लोकों में अपने सुकृत दुष्कृत कर्मों के अनुसार विविध शरीर प्राप्त करता है (और जन्म-मरण चक्र में पड़ जाता है।) इस प्रकार कर्म ही शरीरधारण का कारण है और वह कर्म विषयों के मोह में पड़कर किया जाता है।

[**विज्ञानभगवान्** के अनुसार संकल्पादि ही पुण्यहेतु भी होते हैं और पापहेतु भी। अहिंसा का संकल्प पुण्य का कारण होता है और हिंसा का संकल्प पाप का। गंगाजल का स्पर्श पुण्य का कारण होता है और चाण्डालस्पर्श पाप का। सज्जनों को देखना पुण्यहेतु है और दुर्जनों को देखना पापहेतु। वे **'मोहैः'** के स्थान पर **'होमैः'** पाठ स्वीकार करते हैं। तदनुसार अग्निहोत्र हवन पुण्यहेतु है और मरणोच्चाटनादि के लिए किया गया हवन पापहेतु। इस प्रकार जीवात्मा विभिन्न शरीर धारण करता है।

आचार्य शंकर के अनुसार संकल्प, स्पर्श, दृष्टिपात और मोह (अज्ञान) यथाक्रम अन्तःकरण, त्वचा, नेत्र और माया के धर्म हैं। जीव जिस प्रकार सोचता है, स्पर्शसुख और दृष्टिसुख का अनुभव करता है और माया (अविद्या) के प्रभाव से अज्ञानान्धकार में पड़कर तदनुसार शुभ-अशुभ कर्म करता है। फलतः विभिन्नयोनियों में जन्म लेकर कर्मानुरूप शरीर धारण करता है।]

मानव द्वारा केवल आत्मसंतोष के लिये जो किया जाता है, वह कर्म मोहदृष्टि उत्पन्न कर मानव का विनाश करता है।

इसलिये 'कायक' दृष्टि से ही कर्म करना चाहिये। इस प्रकार 'शरण' (शरणस्थलापन्न) भक्त निर्बन्ध (आग्रह) पूर्वक आचरण करते हैं।

[शरणस्थलापन्न भक्त 'सतीपतिन्याय' के अनुसार इष्टलिङ्ग को अपना पति समझता है और स्वयं को उसकी पत्नी। वह इष्टलिंग को छोड़कर अन्य किसी देवता

CC0. In Public Domain. Jangamwadi Math Collection, Varanasi

Digitization by eGangotri and Sarayu Trust. Funding by MoE-IKS

कर्म कर्तव्यमिति निर्बन्धमाचरन्ति शरणाः। ते त्वेवं स्वाशयमाविष्कुर्वन्ति—

"उद्धृत्य सम्पीड्य परान् नरांस्तु सङ्क्लेशलब्धं यदि जङ्गमाय।
प्रदीयते यद्भवकातरेण न तत् समश्नाति य एष देवः।।
कायस्य चित्तस्य च दण्डनाद् यत् सम्पादितं तत् तदवेत्य तुष्ट्या।
यद् दीयते जङ्गमपुङ्गवाय तदेव तद्वश्यकरं ह्यवैमि।।
सत्येन शुद्धेन च कायकेन समर्जितं तत् तुच्छमपीह सस्यम्।
लिङ्गार्पितं चेत् सुसमर्पितं भवेत् तदा भवेत् तद् भवतः प्रसादः।।
दुराशया यत् समुपार्ज्य चाऽर्प्यति तथाऽपि तन्नाऽर्पितमेव जायते।
अतश्च सत्येन च शुद्धवृत्त्या सम्पादितं कायकवस्तु नित्यम्।।
चण्डेशलिङ्गाय समर्प्यते चेत् तदैव नैवेद्यनिवेदनं भवेत्।।" इति।

की उपासना नहीं करता। ऐसा भक्त प्रापञ्चिक सुखों से विरत रहकर केवल शिव के साथ रमण करता है। जैसा कि **शंकरसंहिता** का वचन है—

"सती चाहं पतिर्लिङ्गं हृदि युक्तः स्वयं प्रभुः।
प्रापञ्चिकसुखं नास्ति शरणस्थलमुत्तमम्"।।

अगस्त्य महर्षि को रेणुकाचार्य इस प्रकार उपदेश देते हैं—

"अङ्गलिङ्गी ज्ञानरूपः सती ज्ञेयः शिवः पतिः।
यत् सौख्यं तत् समावेशे तद्वान् शरणनामवान्।।"

(सि.शि.म., १३/२)

"सतीव रमते यस्तु शिवे शक्तिं विभावयन्।
तदन्यविमुखः सोऽयं ज्ञातः शरणनामवान्।।"

(सि.शि.म., १३/५)]

वे 'शरण' इस प्रकार अपना आशय प्रकट करते हैं— **'उद्धृत्य सम्पीड्य'** इत्यादि। "संसार से भयभीत जीव द्वारा दूसरे मनुष्यों को पीडा पहुँचाकर और उनसे छीनकर कष्टपूर्वक प्राप्त वस्तु जंगम को समर्पित की जाती है, तो उसे परमेश्वर स्वीकार नहीं करते। मैं यह समझता हूँ कि जो वस्तु अपनी काया और चित्त (अन्तःकरण) को दण्ड देकर सम्पादित कर उसे प्रसन्नतापूर्वक श्रेष्ठ जंगम को समर्पित की जाती है, तो वह वस्तु परमेश्वर को अपने वश में करने वाली होती है। सच्ची और निर्मल काया द्वारा अर्पित तुच्छ तिनका भी अपने इष्टलिङ्ग को समर्पित किया जाय, तो आपका (परमशिव का) कृपाप्रसाद होता है। दुष्टबुद्धि से अर्जित वस्तु का समर्पण करना उसे न समर्पण करने जैसा है। अतः शुद्ध वृत्ति द्वारा सम्पादित कायक वस्तु यदि नित्य चण्डेशदेव को समर्पित की जाय, वह वास्तव में नैवेद्यसमर्पण अथवा भोग लगाना होगा।"

CC0. In Public Domain. Jangamwadi Math Collection, Varanasi

Digitization by eGangotri and Sarayu Trust. Funding by MoE-IKS

एवं शिवार्पणदृष्ट्या यद् यत् कर्म क्रियते तदेव मानवं न बध्नातीत्यमुमंशं स्वदृष्टान्तेनैव अनुभविनः प्रतिपादयन्ति। एवं ज्ञात्वा मानवः कर्मबन्धं परिहृत्य स्वजन्मसार्थक्यं साधयेदिति महर्षिरपेक्षते। फलेऽभिसन्धिं विहाय कर्तव्यदृष्ट्या भगवदाराधनरूपेण च यः कर्माऽनुतिष्ठति तमेव तदीयं कर्म न बध्नाति। अतश्च विवेकेन जीवः कर्मयोगमनुसरेदिति सूच्यतेऽत्र॥११॥

स्थूलानि सूक्ष्माणि बहूनि चैव
रूपाणि देही स्वगुणैर्वृणोति।
क्रियागुणैरात्मगुणैश्च तेषां
संयोगहेतुरपरोऽपि दृष्टः॥१२॥

'स्थूलानि' इति। **देही** संसारी जीवः, **स्वगुणैः** स्वस्य गुणाः सत्त्वरजस्तमांसि तैः, तदनुसारेणेति यावत्। **स्थूलानि** गजादीनां, **सूक्ष्माणि** पिपीलिकादीनां चैतादृशानि, **बहूनि रूपाणि** शरीराणि **वृणोति** प्राप्नोति। एवं जीवगुणानामपि शरीरहेतुत्वात् **क्रियागुणैः** सात्त्विकराजसतामसक्रियाणां गुणैः तदनुगुणै**रात्मगुणैश्च**

इस प्रकार शिवार्पणदृष्टि से जो जो काम किया जाता है, वह काम मानव को बन्धन में नहीं डालता। इसी आशय को अपने दृष्टान्त द्वारा अनुभवी ब्रह्मज्ञानी प्रतिपादित करते हैं। महर्षि श्वेताश्वेतर की यह अपेक्षा है कि इस प्रकार की भावना करते हुए मानव को कर्मबन्धनों का त्याग कर अपने जन्म को सार्थक (सफल) बनाना चाहिये। फल की कामना छोड़कर कर्तव्यदृष्टि से भगवान् की आराधना के रूप में जो जिस कर्म का अनुष्ठान करता है, वह कर्म उसे बन्धन में नहीं डालता। अतः विवेक से जीव को कर्मयोग का अनुसरण करना चाहिये यही मंत्र में सूचित है।

मन्त्रार्थ— जिस प्रकार अन्नभक्षण और जलपान से मानवशरीर की वृद्धि होती है, उसी प्रकार संकल्प, स्पर्श, दृष्टि और मोह द्वारा विभिन्न जीव जन्म लेते हैं। देहधारी प्राणी विभिन्न लोकों में कर्मानुसार नाना रूप धारण करता है॥११॥

'स्थूलानि सूक्ष्माणि' इत्यादि। **देही** = देहधारी सांसारिक जीवात्मा, **स्वगुणैः** = अपने सत्त्व-रज और तम इन तीन गुणों द्वारा अर्थात् उनके अनुसार, **स्थूलानि** = हाथी इत्यादि के विशाल, **सूक्ष्माणि च** = और चींटी आदि के सूक्ष्मतम, **बहूनि रूपाणि** = जिन विचित्र विविध स्वरूपों को, **वृणोति** = प्राप्त करता है, इस प्रकार जीवात्मा के तीनों गुण शरीरधारण के हेतु होने के कारण, **क्रियागुणैः आत्मगुणैश्च** = उन जीवों की क्रियाएँ भी सात्त्विक, तामस और राजस होती हैं, उनके गुणों के

CC0. In Public Domain. Jangamwadi Math Collection, Varanasi

Digitization by eGangotri and Sarayu Trust. Funding by MoE-IKS

अपरोऽपि भिन्नोऽपि जीव**स्तेषां** शरीराणां **संयोगहेतुः** प्राप्तिकारणं **दृष्टो** निश्चितः। कर्मणां स्वातन्त्र्येण न कारणत्वं किन्तु तत्कर्ता जीव एव तत्तत्कारणं सम्पद्यते। एवं च जीवो यतः कर्मफलसंयोगेन कर्मणि निरतो भवत्यतश्च सुखदुःखरूप-फलमप्यनुभवत्येव। यदा मानवः स्वीयं कर्तव्यं कायकभावनया कुर्यात् तदैव स जन्मबन्धात् परिमुच्येत। अयमाशयः **शरणगीताया**मेवमाविष्क्रियते—

''यदाश्रयेत् कायकमेव मानवः स विस्मरेत् सद्गुरुमप्युपागतम्।
लिङ्गस्य पूजामपि विस्मरेत् तदा न लक्षयेच्चैव हि जङ्गमं तथा।।
तत् कायकं पावनमित्युदीर्यते यतश्च कैवल्यपदं प्रकीर्तितम्।
य एव लिङ्गं ह्यमलेश्वरो भवेत् जगद्धितार्थं स तु कायकं चरेत्।।'' इति।

एवं कायकमहत्त्वं विज्ञाय यदि मानवः कर्मणि निरतो भवेत तदा तस्य फलसम्बन्धो न विद्येत। परहितार्थं लोककल्याणाय च कर्मणि प्रवृत्तो जीवस्तु

कारण और विहित अथवा प्रतिषिद्ध कर्मों से शरीर पर पड़ने वाले संस्कारों के कारण, **अपरोऽपि तेषां सम्भोगहेतुः दृष्टः** = उनका कर्ता उनसे भिन्न जीव भी उन विभिन्न शरीरों की प्राप्ति का कारण दृष्टिगोचर होता है। कर्म स्वतन्त्र रूप से शरीर धारण का कारण नहीं होते, अपितु उनका कर्ता जीव ही उस-उस योनि में प्रवेश का कारण होता है। सकाम कर्म करने वाले जीव का कर्मफलों के साथ संयोग होता है, अतः वह उस-उस कर्म में लिप्त होता है; इसीलिये वह कर्मफल का उपभोग करता है, चाहे वह कर्मफल सुखस्वरूप हो अथवा दुःखस्वरूप। जब मानव अपना कर्तव्य **'कायक भावना'** (शिवार्पणबुद्धि) से करता है, तभी वह जन्ममरणचक्र के बन्ध से मुक्त होता है। **'शरणगीता'** में इसी आशय को **''यदाऽऽश्रयेत् कायकमेव मानवः''** इत्यादि पद्यों द्वारा इस प्रकार प्रकट किया गया है—

''जब मनुष्य 'कायकभावना'' (शिवभावना) करता है, उस समय निकटस्थ सद्गुरु को भी भूल जाता है। इष्टलिङ्ग की अर्चना का भी उसे विस्मरण होता है। वह निकटस्थ जंगमयोगी की ओर भी ध्यान नहीं देता। उसी को पवित्र 'कायक' कहते हैं, जिसे 'कैवल्य' पद कहा जाता है। जो जीवात्मा इष्टलिङ्गस्वरूप निर्मल परमशिव हो जाता है, वही जगत् का कल्याण करने के लिये 'कायकभावना' करता है।''

इस प्रकार कायक भावना के महत्त्व को समझकर जब मानव निष्काम कर्म करता है, तब उसका सम्बन्ध कर्मफल के साथ नहीं रहता। दूसरों का हित और लोककल्याण करने के लिये प्रवृत्त जीव का पुण्य और पाप से कोई स्पर्श तक नहीं होता, अतः वह

CC0. In Public Domain. Jangamwadi Math Collection, Varanasi

Digitization by eGangotri and Sarayu Trust. Funding by MoE-IKS

पुण्यपापासंस्पर्शेण संसारभ्रमणं न हि प्राप्नोति। एवं च फलसम्बन्ध एव जीवं दुःखमग्नं करोति। अत एव मानवैः कर्मणि ज्ञानावलम्बनेनैव प्रवर्तितव्यमित्यनुभविनो वदन्ति। एवं च ज्ञानक्रियासमन्वयमार्ग आश्रयणीय इति तैर्यदुच्यतेऽस्मिन् प्रकरणे तत् सर्वेषामपि श्रेयोवहं भाति। वर्धिष्णुभिः सर्वैरपि तदुक्तिर्ज्ञेया श्रद्धया अनुष्ठेया च।

"क्रियाविहीना मतिरत्र नेष्यते देहं विना प्राणधृतिर्न शक्यते।।
प्राणं विना नैव च देह आत्मा क्रियां विना नैव च ज्ञानमाप्यते।।
ज्ञानं विनैवाचरणं न शोभते ज्ञानक्रियादीप्तिमुपेक्ष्य लिङ्गम्।।
निराश्रितं स्यादत एव लोके ज्ञानक्रियाभ्यां सहितोऽस्तु मर्त्यः।।"

इत्येवं ज्ञानस्याश्रयेण परहितार्थमेव कार्यमिति विचिन्त्य क्रियां योऽनुतिष्ठेत् स एव संसारबन्धाद् विमुच्यते। एवं विवेकरहितस्तु जीवः स्वीयकर्मफलानुभवाय पुनःपुनरुदेत्येव।।१२।।

संसारचक्र में चक्कर नहीं लगाता। इस प्रकार कर्मफल का सम्बन्ध ही जीवात्मा को दुःखसागर में मग्न करता है। इसीलिये मनुष्यों को कर्म करते समय ज्ञान का आश्रय लेकर ही प्रवृत्त होना चाहिये, ऐसा अनुभवी शिवज्ञानी कहते हैं। इस प्रकार इस सन्दर्भ में वे लोग जो यह कहते हैं कि ज्ञान और क्रिया का समन्वय मार्ग अपनाना चाहिये, वह सभी के लिये कल्याणकारी प्रतीत होता है। अपने उत्कर्ष की कामना करने वाले सभी लोगों को वह उक्ति समझनी चाहिये और श्रद्धापूर्वक उसमें निहित उपदेश को आचरण में लाना चाहिये।

"क्रियाविहीना" इत्यादि। "कोई बुद्धि क्रिया के बिना व्यर्थ है। बिना शरीर के प्राणधारण नहीं हो सकता। प्राणों के बिना न तो देह रह सकता है और न वहाँ आत्मा का वास हो सकता है। क्रिया के बिना ज्ञान नहीं प्राप्त किया जा सकता, ज्ञान के बिना आचरण शोभा नहीं देता। ज्ञान और क्रिया दोनों के प्रकाश के बिना इष्टलिङ्ग निराश्रित होता है। अत एव मरणधर्मा मानव इस लोक में ज्ञान और क्रिया दोनों से युक्त होता है।"

इसप्रकार ज्ञान का आश्रय लेकर दूसरों का हितसम्पादन करने के लिये यह सोचकर जो निष्काम कर्म करता है, वह सांसारिक बन्धनों से छुटकारा पाता है। अविवेकी जीवात्मा अपने कर्मफलों को भोगने के लिये बार बार जन्म लेता है।

मन्त्रार्थ— देहधारण करने वाला संसारी जीव अपनी सात्त्विक, राजस और तामस प्रकृति के अनुरूप हाथी के समान विशाल और चींटी जैसे सूक्ष्म स्वरूप धारण करता है। जीवात्मा का एक शरीर से दूसरे शरीर में जो प्रवेश होता है, उसका कारण उसके कर्मगुण और आत्मगुण (शारीरिक धर्म) होते हैं।।१२।।

CC0. In Public Domain. Jangamwadi Math Collection, Varanasi

Digitization by eGangotri and Sarayu Trust. Funding by MoE-IKS

जीवस्य संसारचक्रभ्रमणकारणमुक्त्वा अद्य तस्य बन्धविमोक्षकारणं निर्दिशति—

अनाद्यनन्तं कलिलस्य मध्ये
विश्वस्य स्त्रष्टारमनेकरूपम्।
विश्वस्यैकं परिवेष्टितारं
ज्ञात्वा देवं मुच्यते सर्वपाशैः।।१३।।

'अनाद्यनन्तम्' इति। **कलिलस्य** कारणसमुदायरूपस्य **विश्वस्य** जगतो **मध्ये अनाद्यनन्तम्** आद्यन्तरहितम्, एतादृशो जगतः **स्त्रष्टारं** सृष्टिकर्तारम्, **अनेकरूपं** विश्वरूपत्वादनेकरूपविशिष्टम्। **विश्वस्य** जगतः **एकमद्वितीयं परिवेष्टितारं** परितो व्यापकं **देवं** परमात्मनं **ज्ञात्वा** साक्षात्कृत्य **सर्वपाशैः** सर्वकर्मभि**र्मुच्यते** मुक्तो भवति।

सर्वव्यापकस्य परशिवस्य ज्ञानं तदुपासनेनैव दृढीभवति। यो निर्मलेन मनसा गुर्वनुगृहीतं स्वेष्टलिङ्गं प्राणभावनया अर्चयति तस्यैव परमात्मा स्वीयस्वरूपानुभवमनुगृह्णाति।

अवतरण— पूर्व मन्त्र में जीवात्मा संसारचक्र में चक्कर क्यों लगाता है इसका हेतु प्रतिपादित है। अब इस मन्त्र में उसका बन्धन से छुटकारा किस प्रकार हो, यह निरूपित किया जा रहा है—

'अनाद्यनन्तम्' इत्यादि। (जीवात्मा) **कलिलस्य** = कारणसमुदायस्वरूप समस्त विश्व के, **मध्ये** = बीच में, **अनाद्यनन्तम्** = आदि-अन्तरहित, **विश्वस्य स्त्रष्टारम्** = स्थावर जंगमस्वरूप जगत् की रचना करने वाले, **अनेकरूपम्** = विश्वस्वरूप होने के कारण विविध स्वरूप अथवा विविध देह धारण करने वाले, **विश्वस्य एकं परिवेष्टितारम्** = विश्व को अकेले ही अखण्ड रूप से चारों ओर से वेष्टित करने वाले ब्रह्माण्डव्यापी, **देवम्** = चित्स्वरूप द्योतनशील परमात्मा का, **ज्ञात्वा** = साक्षात्कार कर, **सर्वपाशैः** = सर्वविध आणव, मायीय और कार्मिक अज्ञानमलपाशों से अथवा सभी प्रकार के कर्मबन्धनपाशों से, **मुच्यते** = मुक्त होता है। सर्वव्यापक परशिवब्रह्मस्वरूप परमात्मा का साक्षात्कार उसकी उपासना से ही दृढ़ होता है। जो निर्मल अन्तःकरण से सद्गुरु की कृपा से प्राप्त अपने इष्टलिङ्ग की अर्चना प्राणभावना से करता है, उसे ही परमात्मा अपने स्वरूप का दर्शन देकर अनुगृहीत करते हैं।

CC0. In Public Domain. Jangamwadi Math Collection, Varanasi

Digitization by eGangotri and Sarayu Trust. Funding by MoE-IKS

"यमेवैष वृणुते तेन लभ्यस्तस्यैष आत्मा विवृणुते तनूं स्वाम्"

इति **कठोपनिषत्सु** श्रूयते। यस्य हृत्पूर्वकमर्चनं परमात्मा हृदयस्थोऽनुमोदते तस्यैव सच्चिदानन्तानुभव उदेति। अयं चाशय एवं निर्दिश्यते **शरणगीतायाम्**—

"जलेन पत्रेण च पुष्पधूपनीराजनाद्यैर्भृशमर्चयित्वा।
ग्लानिं गता यद्यपि तथ्यमर्थं विदुर्जना नैव च तत्प्रकारम्।।
गतानुगन्यायमथोत्सवानुगन्यायं समालम्ब्य बतैष लोकः।
सम्पूज्य लिङ्गं हि किमप्यलब्ध्वा किमप्यदृष्ट्वा म्रियते गुहेश्वर!।।" इति।

जैसा कि कठोपनिषत् श्रुति कहती है—

("नायमात्मा प्रवचनेन लभ्यो न मेधया न बहुना श्रुतेन।)
यमेवैष वृणुते तेन लभ्यस्तस्यैष आत्मा विवृणुते तनूं स्वाम्।"
(१/२-२३)

[यह मन्त्र मुण्डकोपनिषद् (३/२/३) में भी है। **वीरशैवभाष्य**कार ब्रह्मश्री **उमचिगि शंकर शास्त्री** जी के अनुसार इस मन्त्र का भावार्थ इस प्रकार है—

"परशिवस्वरूप परब्रह्म परमात्मा का न तो वेदाध्ययनस्वरूप प्रवचन से साक्षात्कार सम्भव है, न केवल वेदार्थबोधयोग्य बुद्धि द्वारा वह बोधगम्य है, न केवल विविधप्रकार के बाह्य ज्ञान से प्राप्तियोग्य है। मुक्तिकाम जीव जिस प्राणतुल्य लिङ्ग को इष्टलिङ्ग के रूप में हृदयस्थल में और भावलिङ्ग के रूप में हृदयगुफा में अन्तर्बाह्यरूप से धारण करता है, वही मुमुक्षु वीरशैव उस लिङ्गस्वरूप परमशिव का साक्षात्कार करता है। परमशिव उसी भक्त को अपने स्वरूप का साक्षात्कार कराकर सालोक्य, सारूप्य अथवा सायुज्य मुक्ति प्रदान करते हैं।"]

हृदयस्थित परमेश्वर हृदयपूर्वक की गयी जिसकी पूजा स्वीकार करता है, उसी के हृदय में सच्चिदानन्दस्वरूप परमशिव का अभ्युदय होता है। इसी आशय को **शरणगीता "जलेन पत्रेण च"** इत्यादि इन्द्रवज्रा-उपेन्द्रवज्रामिश्रित उपजातिवृत्त की षट्पदी द्वारा इस प्रकार अभिव्यक्त करती है—

"जल, पत्र, पुष्प, धूप, दीप, नीराजन (आरती) आदि विविध उपचारों से अनेक प्रकार से परमेश्वर की अर्चना कर जो ग्लानि प्राप्त करते हैं, वे थक जाते हैं। ऐसे भक्त न तो उसके वास्तविक अर्थ को समझते हैं, न तो यथोचित पूजाविधि जानते हैं। हे गुहेश्वर (कार्तिकेय!) ऐसे समस्त लोग गतानुगतिकन्याय और उत्सवानुगन्याय का अनुसरण करते हुए लिङ्गार्चन करते हैं। उन्हें कुछ भी प्राप्त नहीं होता, उन्हें

CC0. In Public Domain. Jangamwadi Math Collection, Varanasi

Digitization by eGangotri and Sarayu Trust. Funding by MoE-IKS

एवं बहिरन्तरेकभावनया अर्चनादिक्रियां, शिवाराधनभावनया च यो व्यवहारं निर्वहेत् स एव जीवितकाले देह एवाऽस्मिन् अमृतो भवतीत्याशयः।।१३।।

भावग्राह्यमनीडाख्यं भावाभावकरं शिवम्।
कलासर्गकरं देवं ये विदुस्ते जहुस्तनुम्।।१४।।

भावग्राह्यम्- भावेन भक्तिभावेन ग्राह्यं ग्रहीतुं शक्यम्, **अनीडाख्यम्**— नीडं शरीरं तद्रहितत्वेन असंसारित्वेन प्रसिद्धम्, **भावाभावकरम्**—भावः सद्भावो मुक्तिः, अभावः संसारः तदुभयहेतुम्, **कलासर्गकरम्**—षोडशकलानां स्रष्टारं चन्द्रप्रकाशस्य निमित्तभूतमित्यर्थः। तदीयानां शक्तिरूपाणां शान्त्यादीनां षट्कलानां जगद्व्यापनहेतुभूतमिति वार्थः। जगति विद्यमानेषु सर्वेष्वपि पदार्थेषु परमात्मप्रकाशस्य सत्त्वात् तदीयाः कला अपि तत्तद्वस्तुयोग्यतानुरोधेन तत्र

परमात्मसाक्षात्कार नहीं होता और अन्त में प्राणत्याग करते हैं। (ऐसे लोगों का जीवन भारस्वरूप है।")

इसप्रकार जिस मुमुक्षु की बाह्य और आन्तरिक भावना एक होती है, जो अपनी अन्तर्बाह्य समान भावना से पूजन-अर्चन आदि अनुष्ठान करता है और शिवसमर्पण बुद्धि से समस्त जगत् का व्यवहार करता है, वही भक्त जीवितावस्था में इसी शरीर में 'अमरत्व' (मोक्ष) प्राप्त करता है, यह इसका आशय है।

मन्त्रार्थ— जो भक्त कारणसमुदायस्वरूप विश्व के मध्य प्रकाशमान आदि-अन्तरहित, विश्वस्रष्टा विविधरूपधारी और समस्त ब्रह्माण्ड को वेष्टित करने वाले चित्प्रकाशस्वरूप परमशिव का साक्षात्कार करता है, वह सर्वविध पाशबन्धनों से छुटकारा पाता है।।१३।।

'भावग्राह्यम्' इत्यादि। **भावग्राह्यम्** = (भावेन - भक्तिभावेन ग्राह्यम्) - भक्तिभाव द्वारा साक्षात्कार योग्य, **अनीडाख्यम्** (नीडं शरीरमिति आख्या यस्य सः, तम्) = शरीर वह घोसला है, जिसमें जीवरूपी पक्षी रहता है। किन्तु परमशिव परमात्मा किसी घोसले में नहीं रहता, वह संसारी नहीं है, अत एव 'अनीड' नाम से प्रसिद्ध है। **भावाभावकरम्** (भावश्च अभावश्च इति भावाभावौ तौ करोतीति भावाभावकरः, तम्) = 'भाव' का अर्थ सद्भाव अथवा मोक्ष है और 'अभाव' का अर्थ नश्वर संसरणशील संसार। दोनों का कारण परमशिव ही है। **कलासर्गकरम्** कलानां (षोडशसंख्याकानां स्वांशानां) सर्गं (सृष्टिं) करोतीति तम्) = परमशिव उन सोलह कलाओं की सृष्टि करते हैं, जो चन्द्र के प्रकाश का कारण होती है। अथवा परमशिव

CC0. In Public Domain. Jangamwadi Math Collection, Varanasi

Digitization by eGangotri and Sarayu Trust. Funding by MoE-IKS

वर्तन्त एव। एतद्वैचित्र्यनिर्मातारं **शिवं देवं** प्रकाशमानं सर्वमङ्गलकरं परमेश्वरं **ये विदुस्ते तनुं जहुः** परित्यज्य देहं तत्रत्येश्वरे समरसतया विलीना अमृता भवन्ति। एवं ये इहैव देहेन्द्रियसहकारेण यदि परमात्मानं जानीयुस्तदा ते नित्यबुद्धाः सन्त आनन्दमत्रैवाऽनुभवन्ति।

समस्त जगत् में अपनी निवृत्ति, प्रतिष्ठा, विद्या, शान्ति, शान्त्यतीता और शान्त्यतीतोत्तरा इन छः कलाओं को में व्याप्त करते हैं।

[**आचार्य शंकर** परब्रह्म परमात्मा को वह **'षोडशकल पुरुष'** मानते हैं, जिसका वर्णन **'प्रश्नोपनिषद्'** में है। भारद्वाज मुनि की जिज्ञासा का समाधान करते हुए महर्षि पिप्पलाद ने कहा था— **"इहैवान्तःशरीरे सौम्य ! स पुरुषो यस्मिन्नेतारः षोडशकलाः प्रभवन्तीति।.... स प्राणमसृजत। प्राणाच्छ्रद्धां खं वायुर्ज्योतिरापः पृथिवी इन्द्रियं मनः अन्नम् अन्नाद् वीर्यम् तपो मन्त्राः कर्म लोकाः लोकेषु च नाम च।। स यथेमा नद्यः स्यन्दमानाः समुद्रायणाः समुद्रं प्राप्यास्तं गच्छन्ति, भिद्येते तासां नामरूपे, समुद्र इत्येवं प्रोच्यते। एवमेवाऽस्य परिद्रष्टुरिमाः षोडश कलाः पुरुषायणाः पुरुषं प्राप्य अस्तं गच्छन्ति भिद्येते चासां नामरूपे। पुरुष इत्येवं प्रोच्यते। स एषोऽकलोऽमृतो भवति।"** (प्र.उ.६/२,४, ५)।

इसका सारांश यह है कि वह परमशिवस्वरूप षोडशकल पुरुष हमारी हृदयगुफा में ही रहता है, जिसने प्राण, श्रद्धा, आकाश, वायु, ज्योति, जल, पृथ्वी (ये पंचमहाभूत), मन, इन्द्रियसमुदाय, अन्न, वीर्य, तप, मन्त्र, कर्म, लोक और नाम-रूप इन सोलह कलाओं को जन्म दिया। जिस प्रकार नदियाँ समुद्र में मिलकर समुद्र बन जाती हैं, उसी प्रकार परमशिव का साक्षात्कार करने वाले जीव की समस्त कलाएँ उस परमशिव में ही मिल जाती हैं और परमशिवस्वरूप हो जाती हैं। 'षोडशकल पुरुष' और परमशिव पर्यायवाची हैं। वीरशैवभाष्यकार कहते हैं—]

"यतः जगत् में विद्यमान सभी पदार्थों में परमात्मा का प्रकाश रहता है, अतः उसकी कलाएँ भी उस-उस वस्तु की योग्यता के अनुसार वहाँ-वहाँ रहती हैं। इस प्रकार चित्र-विचित्र विविध सृष्टिकर्ता, **शिवं देवम्** = चित्प्रकाशस्वरूप परमशिव का, **ये विदुः** = जो लोग साक्षात्कार करते हैं, **ते तनुम् जहुः** = वे शरीर का परित्याग करते हैं। उस परशिवस्वरूप परब्रह्म परमेश्वर के साथ **'नदीसमुद्रन्याय'** से समरस हो कर विलय प्राप्त करते हुए अमर बन जाते हैं, उन्हें अमृतत्व (मोक्ष) प्राप्त होता है। जो इसी शरीर में रहते हुए देह-इन्द्रियों की सहायता से परमात्मसाक्षात्कार करते हैं, वे नित्य जागरूक स्थिति में यहीं ब्रह्मानन्द प्राप्त करते हैं।

CC0. In Public Domain. Jangamwadi Math Collection, Varanasi

Digitization by eGangotri and Sarayu Trust. Funding by MoE-IKS

एवमिह ये न जानन्ति ते भुवो भाराः सञ्जायन्ते। तादृशो भक्तम्मन्यान् **शरणगीता** एवं निर्दिशति—

"पाथेयबन्धादुदरोर्ध्वभागे क्षुधानिवृत्तिः किमु दृश्यतेऽत्र?।
तथैव लिङ्गस्य हृदूर्ध्वभागे सन्धारणादेव किमत्र लभ्यते?।।

वेण्वन्तरे केनचिदश्म दत्तं लिङ्गात्मतां गच्छति किं कदापि?।
तथैव वेणुर्न भवेद्धि भक्तः गुरुश्च किं क्षेपणतः शिलायाः?।।
एतादृशान् वीक्ष्य ममैव लज्जा सञ्जायते सत्यमहो गुहेश्वर!।।" इति।

एवं बाह्यलाञ्छनधारिणो दाम्भिकभक्तान् निर्दिश्य मानवैस्तादृशैर्न भवितव्यमित्याशयमाविष्करोति **शरणगीता**। बहिरर्चनादिना यद्यन्तरङ्गं न द्रवीभवेत्

['वातुलागम' के अनुसार जिसमें समस्त कलाएँ विलय प्राप्त करती हैं, वह केवल भक्तिभावद्वारा ग्राह्य निष्कल परात्पर भावलिङ्ग है—

"निष्कलं भावलिङ्गं स्याद् भावग्राह्यं परात्परम्।"

रेणुकाचार्य भावलिङ्ग की इस प्रकार प्रशंसा करते हैं—

"मृच्छिलाविहिताल्लिङ्गात् भावलिङ्गं विशिष्यते।
निरस्तसर्वदोषत्वात् ज्ञानमार्गप्रवेशनात्।।"

(सि.शि.म. १५/४०)]

जो इस प्रकार परमात्मा के वास्तविक स्वरूप को नहीं जानते, वे पृथ्वी के भार ही होते हैं। ऐसे 'भक्तम्मन्य' पाखण्डी जीवों का निरूपण **शरणगीता "पाथेय-बन्धादुदरोर्ध्वभागे"** इत्यादि पद्यों द्वारा इस प्रकार करती है—

"क्या केवल पेट के ऊपरी हिस्से में 'पाथेय' (टिफिन) बाँध लेने से भूख की शान्ति देखी जाती है? उसी प्रकार क्या हृदयस्थल के ऊपरी भाग में इष्टलिंग को धारण करने मात्र से परमशिव मिल जाता है? क्या कभी किसी के द्वारा 'वेणु' (बाँस की पिटारी) में स्थापित कोई भी पत्थर इष्टलिङ्ग बन जाता है? उसी प्रकार कोई भी 'वेणु' इष्टलिंग के धारणमात्र से भक्त नहीं बन जाता, उसी प्रकार क्या कोई केवल शिलास्थापना से गुरु बन जाता है? हे गुहेश्वर! कार्तिकेय! ऐसे लोगों को देखकर सचमुच मुझे लज्जा ही लगती है।"

इस प्रकार बाह्य चिह्न धारण करने वाले दाम्भिक भक्तों की ओर इंगित करते हुए **शरणगीता** यह उपदेश दे रही है कि "मनुष्यों को ऐसा नहीं बनना चाहिये। यदि बाह्य-पूजा-अर्चा द्वारा अन्तःकरण द्रवित न हो, तो उस प्रकार की पूजा अर्चा करना व्यर्थ

CC0. In Public Domain. Jangamwadi Math Collection, Varanasi

Digitization by eGangotri and Sarayu Trust. Funding by MoE-IKS

तदा तादृशमर्चनमपि व्यर्थमेव सम्पद्येत। हृदयशुद्धिं विना बाह्यं लिङ्गं योऽर्चयेत् स सर्वात्मकस्य सर्वव्यापकस्य तल्लिङ्गस्य नैजं तत्त्वं न जानात्येव। तस्य बाह्यं लिङ्गं वेण्वन्तरस्थाश्मैव भवेदिति तादृशो जनान् दृष्ट्वा शरणास्तु हार्दीं व्यथामाविष्कुर्वन्ति। एवं हृदिस्थं परमेश्वरं ज्ञात्वा तमेव बहिरर्चनद्वारा ये साक्षात्कुर्वन्ति त एवेह अमृता भवन्ति॥१४॥

।। इति पञ्चमोऽध्यायः।।५।।

होगा। जो अन्त:करण की निर्मलता के बिना बाह्यरूप से लिङ्ग की पूजा अर्चना करता है, वह सभी के स्वरूपों में विद्यमान सर्वात्मक सर्वव्यापक उस लिङ्ग के स्वीय तत्त्व से परिचित नहीं होता। उसके लिये बाह्य इष्टलिंग 'वैतस' मञ्जूषा बांस की पिटारी में स्थापित शिलामात्र होता है। ऐसे लोगों को देखकर **'शरण'** (शरणस्थलापन्न भक्त) हार्दिक व्यथा प्रकट करते हैं। इस प्रकार हृदयगुफा में प्रकाशमान परमात्मा का ज्ञान प्राप्त करते हुए उसी इष्टलिङ्ग के रूप में बाहर विद्यमान परमशिव की बाह्य अर्चना द्वारा उसका जो साक्षात्कार करते हैं, वे ही इस लोक में अमर बन जाते हैं।

मन्त्रार्थ— जो लोग भक्तिभाव द्वारा साक्षात्कार के योग्य 'अनीड' (अशरीरी निष्कल) तथापि मोक्ष 'भाव' और संसरणस्वरूप और 'अभाव' दोनों के हेतु समस्त कलाओं की सृष्टि करने वाले भावलिंगस्वरूप चित्प्रकाश परमशिव का साक्षात्कार करते हैं, उनका देह धारण करना अथवा न करना समान होता है। कुछ लोग मृत्यु के पश्चात् नदीसमुद्रन्याय से परमेश्वर के साथ सामरस्यमुक्ति प्राप्त करते हैं। अन्य इहलोक में ही जीवन्मुक्त हो ब्रह्मानन्द प्राप्त करते हैं।।१४।।

।। इस प्रकार पञ्चम अध्याय सम्पूर्ण।।५।।

❋❋❋

CC0. In Public Domain. Jangamwadi Math Collection, Varanasi

Digitization by eGangotri and Sarayu Trust. Funding by MoE-IKS

अथ षष्ठोऽध्यायः

ननु **'कलासर्गकरं देवम्'** इति कथनमयुक्तम्, सृष्टिप्रलयादीनां तत्तद्वस्तुस्वभावकृतत्वात्। परमात्मनस्तत्र सम्बन्ध एव नास्ति। अथवा कालो वा सर्वस्य कारणं भवतु। अतः परशिवब्रह्मण एव जगद्व्यापककलास्रष्टृत्वं कथमभ्युपगम्यमित्याशङ्कायां ब्रह्मव्यतिरिक्तस्याऽन्यस्य कारणत्वं न युज्यते; ब्रह्मण एव सर्वकारणत्वं सम्पद्यत इत्याह—

स्वभावमेके कवयो वदन्ति
कालं तथाऽन्ये परिमुह्यमानाः।
देवस्यैष महिमा तु लोके
येनेदं भ्राम्यते ब्रह्मचक्रम्।।१।।

'स्वभाव'मिति। **एके** केचन **कवयो** मेधाविनः **स्वभावमेव** जगत्सृष्ट्यादेः कारणं **वदन्ति। तथा परिमुह्यमाना** अविवेकिनो**ऽन्ये** केचन **कालं** जगत्कारणं

अवतरण— अब यह आशंका उपस्थित होती है कि पञ्चमाध्याय के **'भावग्राह्यमनीडाख्यम्'** इत्यादि मन्त्र में भावग्राह्य भावलिङ्ग को 'कलासर्गकर देव' कहा गया है, जो कि अयुक्त है। यतः सृष्टि, स्थिति और प्रलय आदि उस उस वस्तु के स्वभाव द्वारा निर्मित हैं, परमात्मा के साथ उन कलाओं का कोई सम्बन्ध नहीं है। [वातुलागम 'भावलिङ्ग' को 'निष्कल' कहता है— **'निष्कलं भावलिङ्गं स्याद् भावग्राह्यं परात् परम्'**] अथवा काल को ही समस्त जगत् का सृष्टि-स्थिति-प्रलय का हेतु कहना चाहिये। [जैसा कि इसी उपनिषद् के प्रथमाध्याय के अन्तर्गत—

कालः स्वभावो नियतिर्यदृच्छा भूतानि योनिः पुरुष इति चिन्त्यम्। (१/२)

इत्यादि मन्त्र में **'काल'** से लेकर **'पुरुष'** तक की जगत्कारणता का विचार किया गया है।]

फिर परशिव ब्रह्म को जगद् को व्याप्त करने वाली कलाओं का सृष्टिकर्ता कहना किस प्रकार युक्तिसंगत है? इस आशंका का खण्डन करती हुई वेदमाता कहती है कि ''परब्रह्म के व्यतिरिक्त अन्य किसी का जगत् के निर्माण का हेतु होना युक्तिसंगत नहीं है, परब्रह्म ही समस्त सृष्टि का कारण हैं''—

'स्वभावमेके' इत्यादि। **एके कवयः** = कुछ क्रान्तदर्शी मेधावी लोग, **स्वभावं वदन्ति** = स्वभाव को ही जगत् की सृष्टि-स्थिति और प्रलय का कारण कहते हैं। **तथा परिमुह्यमानाः अन्ये** = उसी प्रकार मोहग्रस्त अविवेकी दूसरे लोग **कालं वदन्ति** = काल (और नियति, यदृच्छा, पञ्चमहाभूत, प्रकृत और पुरुष) को

CC0. In Public Domain. Jangamwadi Math Collection, Varanasi

Digitization by eGangotri and Sarayu Trust. Funding by MoE-IKS

वदन्ति। तु किन्तु **एष** जगत्सृष्ट्यादि**र्देवस्यैव महिमा** प्रभावः। जगद्व्यापार-निर्वाह एव तस्याऽसाधारणो धर्मः। **येन** तादृशपरमात्मनः प्रभावेन **इदं ब्रह्मचक्रं** चतुर्मुखादिजगच्चक्रं **भ्राम्यते** परिवर्तते। अतः स एव सर्वकारणमित्येतदविरुद्धम्।

परमात्मनः सर्वव्याप्ति सर्वकारणत्वं च **शरणा** एवं मन्यन्ते—

''मर्त्यो हि लोकः परमेश्वरस्य लीलाविनोदाय विनिर्मितं गृहम्।
अत्रैव योग्या य इहाऽद्य दृष्टास्तेऽमुत्र योग्याः खलु सङ्गमार्य!।।
ये त्वत्र नार्हास्त्वभवन्मनुष्यास्ते तत्र नार्हा भवितुं समर्थाः।।'' इति।।

एवं जगत् सर्वमपि परमात्मनो विनोदस्थानमिति ते भावयन्ति। तत्सम्बन्धाभावे जडस्य पञ्चभूतात्मकस्य प्रपञ्चस्याऽस्तित्वमेव न स्यात्। न केवलं जगतस्तत्सम्पर्क एव, किन्तु सर्वेषामपि तत्तद्योग्यतानुरोधेन फलप्रदानमपि तस्यैव सम्बध्यते। अयमाशयोऽत्र विविच्य प्रदर्श्यते—

''महादेवनामा वणिजां वरिष्ठः प्रसार्य पण्यानि महन्ति भूमौ।
सन्तिष्ठते विक्रयणार्थमेव विश्वोऽयमस्यैव हि पण्यवीथी।।

जगत् का कारण कहते हैं। **देवस्यैष महिमा तु** = परन्तु यह सृष्टि-स्थिति और प्रलयकर्तृत्व, चित्प्रकाशस्वरूप परशिव परब्रह्म परमात्मा का ही प्रभाव है। जगत् के समस्त व्यवहार का निर्वाह करना ही उसका असाधारण धर्म है। **लोके येनेदं भ्राम्यते ब्रह्मचक्रम्** = संसार में, महिमासम्पन्न परमशिवस्वरूप परमात्मा के जिस प्रभाव से यह चतुर्मुख ब्रह्मदेव आदि संसारचक्र भमणशील रहता है। अत एव वह परमशिव समस्त जगत् का कारण है इसमें किसी प्रकार का विरोध नहीं है।

'शरण' भक्त जन परमेश्वर की सर्वव्यापकता और सर्वकारणता को **''मर्त्यो हि लोकः''** से लेकर **'ते तत्र नार्हा भवितुं समर्थाः'** तक पद्यों द्वारा इस प्रकार स्वीकार करते हैं— ''मृत्युलोक परमेश्वर की लीला और उसके विनोद के लिये कल्पित प्रासाद है। हे आर्य संगमदेव! वे मनुष्य यहीं निवासयोग्य हैं, जो यहाँ देखे जाते हैं। जो मनुष्य इहलोक में निवास योग्य नहीं होते, वे परलोक में नहीं रह सकते।''

इस प्रकार वे समस्त जगत् को भी परमात्मा की विनोदस्थली समझते हैं। बिना उसके सम्बन्ध के जड़ अचेतन पाञ्चभौतिक जगत् का अस्तित्व ही नहीं है। न केवल उसके साथ जगत् का सम्पर्क है, अपितु परमात्मा के साथ ही उसकी योग्यता के अनुरूप सभी लोगों को उसके कर्मफलों को प्रदान करने की योग्यता का सम्बन्ध भी है।

यही विवेचना **'महादेवनामा'** से लेकर **'तदीयलोके'** तक पद्यों में की गयी है, जिसका आशय इस प्रकार है— ''यह परमशिव महादेव नामक व्यापारियों में वरिष्ठ श्रेष्ठी

CC0. In Public Domain. Jangamwadi Math Collection, Varanasi

Digitization by eGangotri and Sarayu Trust. Funding by MoE-IKS

सर्वे वयं चेदृजुमार्गयायिनो लभ्यानि वस्तूनि लभामहे तदा।
यद्यैकमत्यं व्यवहर्तृभिश्चेत् तदैव श्रेष्ठी विवृणोति भावम्।।
नो चेदसौ तैर्न कदापि भाषते तदा जनैः शून्यहृदा निवर्त्यते।
अल्पोऽपि लाभो न हि दृश्यतेऽस्मिन् लाभस्य लेशोऽपि न विद्यते तथा।।
देवस्य नैपुण्यविशेष एषस्त्वादर्शभूतो हि तदीयलोके।।'' इति।

एवं परमात्मा स्वीयलोके सर्वत्र निर्लिप्ततया व्याप्य सर्वं कार्यं निर्वहन् स्वयमात्मारामो विराजते। एतत् सर्वं तस्य शक्तिवैभवमित्यनुभविनो वदन्ति।।१।।

(सेठ) है, जो अपनी विशाल विक्रेय वस्तुएँ समस्त विश्वभूमि में फैलाकर बेचने के लिये बैठा हुआ है। समस्त विश्व ही उसका बाजार है। हम सभी लोग यदि सरल मार्ग अपनाएँ, तभी प्राप्य वस्तुओं को प्राप्त करेंगे।

यदि व्यवहार करने वालों से एकमत हो तो व्यापारी तभी अपने भाव को प्रकट करता है। नहीं तो वह उनके साथ कदापि भाषण नहीं करता। उस समय वे सूने हृदय से लौट जाते हैं। उसमें उसे थोड़ा भी लाभ दृष्टिगोचर नहीं होता। उसी प्रकार वहाँ जरा भी लाभ नहीं रहता। यही महादेव परमशिव की विशेष दक्षता है। वह उनके लोक में आदर्शस्वरूप है।''

इस प्रकार परमात्मा अपने शिवलोक में सर्वत्र निर्लिप्त रूप से व्याप्त रह कर सभी कार्यों का निर्वाह करते हुए 'आत्माराम' अपने में ही रमण करता हुआ विराजता है। यह सब उसकी चितिशक्ति का वैभव है, ऐसा अनुभवी शिवज्ञानी कहते हैं।

[**'ब्रह्मचक्रम्'**— विभिन्न टीकाकारों के अनुसार इसके भिन्न-भिन्न अर्थ हैं। **'वीरशैवभाष्य'** में इसका अर्थ है— **'चतुर्मुखादिजगच्चक्रम्'' शंकरानन्द** इसका अर्थ करते हैं— **''ब्रह्मैव स्वाविद्यया विवर्तं गच्छत् चक्रं संसारचक्रम् एकनेम्यादिगुणकम् उक्तं ब्रह्मचक्रम्।''** ब्रह्म ही अपनी अविद्या या माया के प्रभाव से 'विवर्त' बन जाता है। 'एकनेमि' आदि विशेषताओं से युक्त होकर चक्राकार भ्रमण करता है। अत: संसारचक्र को 'ब्रह्मचक्र' कहते हैं। **नारायण** इसकी व्याख्या इस प्रकार करते हैं— **''ब्रह्मचक्रं ब्राह्मणानां ब्रह्मवादिनां समूहो जीवसमूहो वा।''** ब्रह्मवादी ब्राह्मणों अथवा जीवात्माओं का समुदाय ही ब्रह्मचक्र है। चित्प्रकाशस्वरूप परमेश्वर के प्रभाव से वह ब्रह्मचक्र चक्राकार चक्कर लगाता है।]

मन्त्रार्थ— कुछ मेधावी स्वभाव को जगत् की सृष्टि, स्थिति और संहार का कारण कहते हैं, तो कुछ लोग काल आदि को जगत्स्रष्टा मानते हैं। किन्तु सृष्टि, स्थिति और प्रलय चित्प्रकाशस्वरूप परमशिव के ही महिमा का प्रभाव है, जिसके प्रभाव से यह संसारचक्र समस्त विश्व में घूमता रहता है।।१।।

CC0. In Public Domain. Jangamwadi Math Collection, Varanasi

Digitization by eGangotri and Sarayu Trust. Funding by MoE-IKS

येनावृतं नित्यमिदं हि सर्वं
ज्ञः कालकारो गुणी सर्वविद् यः।
तेनेशितं कर्म विवर्तते ह
पृथिव्यप्तेजोऽनिलखानि चिन्त्यम्।।२।।

'येनावृतम्' इति। **इदं सर्वं** जगत् **नित्यं** त्रिकालेऽपि **येन** देवेन **आवृतं** व्याप्तम् **यो ज्ञो** ज्ञानवान् **कालकारः** कालस्याऽपि स्रष्टा, **(गुणी)** गुणाष्टकवान् **सर्ववित्** सर्वज्ञश्च वर्तते। **तेन** परमेश्वरेण**(पृथिव्यप्तजोऽनिलखानि)** पृथिव्यप्तेजो-

---

अवतरण— अग्रिम मन्त्र में परमशिव के वैभव का निरूपण है—

''येनामृतं नित्यमिदं हि सर्वम्'' — यह समस्त जगत् **'नित्य'** अर्थात् भूत, भविष्य और वर्तमान तीनों कालों में जिस परमेश्वर द्वारा व्याप्त है।

'ज्ञः कालकारः'' जो, **ज्ञ** ज्ञानवान् **कालकार** काल का भी सृष्टिकर्ता है। [**विष्णुसहस्रनामस्तोत्र** में परमेश्वर का ४१८ वाँ नाम **'काल'** है। उसका निर्वचन करते हुए **आचार्य शंकर** कहते हैं— **'कलयति सर्वम् इति कालः'**, यतः परमेश्वर सबका 'कलन' (संहार) करते हैं, अतः वे स्वयं 'काल' हैं।

''कालः सृजति भूतानि कालः संहरति प्रजाः।
सर्वे कालस्य वशगाः न कालः कस्यचिद् वशः।।''

यह काल की महिमा है। यमराज को भी 'काल' कहते हैं। **'कालकालः'** पाठ स्वीकार करने पर परमेश्वर उस कालपुरुष के भी काल हैं, यह अर्थ होगा।

''कालोऽस्मि लोकक्षयकृद् प्रवृद्धो लोकान् समाहर्तुमिह प्रवृत्तः'' (गीता, ११/३२)

इस पद्य में आनन्दगिरि **'कालः'** का अर्थ **'क्रियाशक्त्युपहितः परमेश्वरः'** यह करते हैं।]

''गुणी सर्वविद् यः''— जो परमशिव आठ आत्मगुणों से सम्पन्न और सर्वज्ञ हैं।

[आचार्य शंकर **'सर्वविद्'** का निर्वचन इस प्रकार करते हैं— **''सर्वं वेत्तीति सर्ववित्।'' सर्वविद्यः** इसको एक पद मानकर **विज्ञानभगवान्** इसका अर्थ करते हैं— **''योऽनन्तसुखानुभूतिः सर्वा विद्या यस्येति सर्वविद्य इति वा।''** अर्थात् जिसकी समस्त विद्या अनन्तसुखानुभूति ही है अथवा जो समस्त चतुर्दश अथवा अष्टादश विद्यासम्पन्न है।

CC0. In Public Domain. Jangamwadi Math Collection, Varanasi

Digitization by eGangotri and Sarayu Trust. Funding by MoE-IKS

वाय्वाकाशानि पञ्चभूतानि **कर्म च** सृष्ट्यादिव्यापारश्च **ईशितं** प्रेरितं सद् **विवर्तते** परिवर्तत **इति चिन्त्यं** विवेकिभिर्ज्ञेयम्। **''आत्मन आकाशः सम्भूतः, आकाशाद् वायुः, वायोरग्निः, अग्नेरापः, अद्भ्यः पृथिवी''** इत्येवं क्रमेण पञ्च भूतानि परमात्मन एव बहिरागतानि। तेषां युक्तरीत्या पञ्चीकरणप्रक्रियया संयोगोऽपि तदीय एव। तत्प्रेरणं विना नहि तृणमपि चलतीति भगवती श्रुतिरेवोपदिशति।

मुण्डकोपनिषद् में भी परमशिव को **'यः सर्वज्ञः सर्ववित्'** (१.१.९) कहा गया है। इस मन्त्र के **'सर्ववित्'** पद का निर्वचन करते हुए **ब्रह्मश्री उमचिगि शङ्कर शास्त्रीजी** कहते हैं— **''सर्वं विश्वं वेत्तीति सर्ववित्। सर्वत्वसामानाधिकरण्येन सर्वत्वावच्छेदेन सर्वज्ञानाद्यङ्गः। ......सर्ववित्पदं च तृप्त्याद्यङ्गपञ्चकोपलक्षणम्। उक्तं च पारमेश्वरागमे–**

''सर्वज्ञता तृप्तिरनादिबोधः स्वतन्त्रता नित्यमलुप्तशक्तिः।
अनन्तशक्तिश्च विभोर्विधिज्ञाः षडाहुरङ्गानि महेश्वरस्य।।'' (६/३३)

तदनुसार परमशिव समस्त विश्वस्थित सर्वज्ञानसम्पन्न और सर्वज्ञता, तृप्ति, अनादिबोध, स्वतन्त्रता, नित्य अलुप्त शक्ति और अनन्त शक्ति इस षड्विध ऐश्वर्य से सम्पन्न है।]

''तेनेशितं कर्म'' इत्यादि। उस परमेश्वर द्वारा पृथिवी, जल, तेज, वायु और आकाश ये पंचमहाभूत समस्त सृष्टि, पालन, पोषण और संहार का जागतिक व्यवहार प्रेरित है और वह परिवर्तनशील है अर्थात् विविध रूप ग्रहण करता है। इसका चिन्तन विवेकशील व्यक्तियों को करना चाहिये।

जैसा कि **तैत्तिरीय उपनिषद्** का वचन है— **''तस्माद् वा एतस्मादात्मन आकाशः सम्भूतः। आकाशाद् वायुः, वायोरग्निः, अग्नेरापः, अद्भ्य पृथिवी, पृथिव्या ओषधयः, ओषधीभ्योऽन्नम्, अन्नात् पुरुषः, स वा एष पुरुषोऽन्नमृतमयः''** (तै. २.१.१)।

तदनुसार परमेश्वर से आकाश की उत्पत्ति हुई। तदनन्तर आकाश से वायु की, वायु से अग्नि की, अग्नि से जल की और जल से पृथ्वी की इस क्रम से पंच महाभूत परमेश्वर से ही बाहर प्रकट हुए। उनका समुचित रीति से पञ्चीकरणप्रक्रिया द्वारा संयोग भी परमेश्वर से ही प्रेरित है। उसकी प्रेरणा के बिना एक तिनका भी नहीं हिलता, यह उपदेश स्वयं वेदमाता देती हैं।

[जैसा कि **''कालः स्वभावो नियतिर्यदृच्छा भूतानि योनिः पुरुष इति चिन्त्यम्''** (१.१.२) इस प्रकार परमेश्वर की जगत्कारणता का उपक्रम किया गया

CC0. In Public Domain. Jangamwadi Math Collection, Varanasi

Digitization by eGangotri and Sarayu Trust. Funding by MoE-IKS

एवं सारवत्तरं तमेवाऽव्यक्ततयाऽवस्थितं दृढं विश्वस्य तदीयसेवायां निरतैर्भवितव्यं मानवैरिति निरीक्ष्यते। तानेवमुपदिशन्ति शिवयोगिनः **शरणाः**—

''मृतेर्विलम्बो नरकश्च दूरे न विद्यतेऽथापि शरीरहेतोः।
किं क्लिश्यसे दुर्विषयोपभोगादन्ते विनाशो नियतस्तवैव।।
ममत्वमोहं त्यज शीघ्रमेव भजस्व नित्यं गुरुपादयुग्मम्।
एवं यदि स्यास्त्वमिहैव युक्तः सुखी खलु श्रीगुरुचन्नरामे।।'' इति।

एवं शरीररक्षणार्थं पापकर्मनिरतान्, मानवान् तस्मान्निवर्तयितुं तदीयहृदये विराजमानेन परमात्मना संयोजयितुं च **शरणास्तु** निरुपाधिकेन वात्सल्येन प्रयतन्ते। परमात्मनैव पूरिपूर्णे जगति मानवानां दुर्वर्तनानि निरीक्ष्यैवं प्रबोधयन्ति तेऽव्याजप्रेम्णा—

''देहस्य पुष्टिं हि विधातुकामा भुञ्जन्ति मांसं मधु चैव जीवाः।
लिङ्गस्य मार्गः परिहीयते यदा विनिन्द्यते जङ्गमपुङ्गवैस्तदा।।

है, उसका उपसंहार इस मन्त्र से है। **''तेनेशितं कर्म विवर्तते ह''** इस तृतीय चरणस्थित **''विवर्तते''** पद **अद्वैतवेदान्तदर्शन** के **'विवर्तवाद'** का प्रेरणास्रोत है।]

इस प्रकार चित्स्वरूप परमेश्वर अव्यक्त रूप से समस्त विश्व में अवस्थित है। उस प्रबल शक्तिसम्पन्न परमेश्वर पर दृढ़ विश्वास करते हुए मानवों को उसी की सेवा में तत्पर रहना चाहिये। शरणस्थलापन्न **शरण** शिवयोगी **''मृर्तेर्विलम्बो''** इत्यादि पद्य द्वारा यह उपदेश देते हैं कि ''अभी मृत्यु में विलम्ब है और नरक भी दूर है यह सोचकर मात्र शरीर के कारण कष्ट क्यों कर रहे हो? दुष्ट विषयों का उपभोग करने से अन्त में तुम्हारा ही विनाश निश्चित है। तुम नित्य ममता का मोह छोड़कर शीघ्र ही गुरुचरणयुगल की सेवा करो। इस प्रकार यदि रहोगे, तो श्रीगुरु चन्नराम की सेवा में तत्पर रह कर सुखी हो जाओगे।'' इस प्रकार पापकर्मों में लिप्त मनुष्यों को पापकर्म से परावृत्त करने के लिये और उसी मानव के हृदयकमल में विराजमान परमेश्वर के साथ उसका संयोग करने के लिये शरणभक्त निःस्वार्थपूर्ण वात्सल्यभाव से प्रयत्नशील रहते हैं। परमेश्वर से व्याप्त इस जगत् में मानवों के दुराचार को देखकर वे निःस्वार्थ प्रेमपूर्वक **''देहस्य पुष्टिं हि''** इत्यादि पद्यों द्वारा उन्हें इस प्रकार जगाते हैं— ''शरीर को हृष्ट-पुष्ट करने की कामना रखनेवाले जीव मद्य-मांस का सेवन करते हैं और अपना लिङ्गायत सम्प्रदाय छोड़ देते हैं, तब जङ्गम लोग उनकी निन्दा करते हैं।

CC0. In Public Domain. Jangamwadi Math Collection, Varanasi

Digitization by eGangotri and Sarayu Trust. Funding by MoE-IKS

दृगिच्छया चान्यवधूं स्मरेयुरेवं स्थितानां हृदि नैव देवः।
एतादृशां लाञ्छनधारणात् किं लिङ्गस्य वा धारणतश्च किं स्यात्।।
सम्पूज्य कालीं तदुपान्तदेशं व्रजामि नैवेति वचो मृषैव।
अतो विहीनः क्रियया जनोऽयं पश्चात् तदेनः परिहर्तुमिच्छति।।"

इति भगवत्परिपूर्णे जगति भगवन्तं विहाय देहतुष्ट्यै मधुमांसभक्षणेन दुर्मार्गप्रवृत्तान् आसुरीसम्पद्भरितान् जनानवलोक्य तदीयपापसङ्ग्रहाय ते शोचन्ति। तथा च महात्मनाममरवाण्यां विश्वस्य मानवा: परमात्मनो जगद्व्यापारलीलाया: दिव्यमादर्शमनुसरेयुरिति महर्षिरपेक्षते।।२।।

तत् कर्म कृत्वा विनिवर्त्य भूय-
स्तत्वस्य तत्त्वेन समेत्य योगम्।
एकेन द्वाभ्यां त्रिभिरष्टभिर्वा
कालेन चैवात्मगुणैश्च सूक्ष्मैः।।३।।

जो नयनसुख की इच्छा से परस्त्री का स्मरण करते हैं, उनकी हृदयगुफा में परमेश्वर का वास नहीं होता। इस प्रकार जीवों को केवल भस्म-रुद्राक्षादि चिह्न धारण करने से अथवा इष्टलिंग मात्र के धारण से क्या लाभ होगा? अत: क्रियाविहीन वह जीव अनन्तर अपने पाप का परिहार करना चाहता है।"

इस प्रकार परशिवस्वरूप परब्रह्म परमात्मा से परिपूर्ण इस जगत् में भगवान् को छोड़कर केवल शरीर को तृप्त करने के लिये मद्य-मांस भक्षणादि द्वारा कुमार्गगामी आसुरी सम्पत्ति से परिपूर्ण जीवों को देखकर वे उनकी पापसंचय की प्रवृत्ति के लिये शोकाकुल होते हैं। अत: महर्षि की यही कामना है कि मनुष्यमात्र सन्त-महात्माओं की अमरवाणी पर विश्वास रखते हुए परमेश्वर के जगद्-व्यवहार की दिव्य लीला के दिव्य आदर्श का अनुसरण करें।

मन्त्रार्थ— यह सारा प्रपञ्च जिस परमेश्वर से निरन्तर वेष्टित और व्याप्त है, जो ज्ञानसम्पन्न और कालत्रय का भी सृष्टिकर्ता अथवा कालपुरुष का भी काल है, जो अष्टगुणसम्पन्न तथा सर्वज्ञता आदि षड्विध ऐश्वर्यसम्पन्न है; उसी परमेश्वर द्वारा समस्त पञ्चमहाभूत जगत् के रूप में रूपान्तरित होते हैं। पञ्चीकरणप्रक्रिया से जगत् की सृष्टि, स्थिति और प्रलय का हेतु परमेश्वर निरन्तर विभिन्न रूप धारण करता है, विवेकशील उसका चिन्तन करें।।२।।

CC0. In Public Domain. Jangamwadi Math Collection, Varanasi

Digitization by eGangotri and Sarayu Trust. Funding by MoE-IKS

तत् कर्म सृष्टिरूपं कर्म **कृत्वा भूयो विनिवर्त्य** पर्यवेक्षणं च कृत्वा, एकेन प्रत्येकं पृथिव्यादिना, **द्वाभ्यां त्रिभिर्वा अष्टभिर्वा**—

"भूमिरापोऽनलो वायुः खं मनो बुद्धिरेव च।
अहङ्कार इतीयं मे भिन्ना प्रकृतिरष्टधा।।" (गीता ७.४)

इत्युच्यते किल। कालेन च न केवलमष्टप्रकृतिभिरेव किन्तु कालेनापीत्यर्थः। तथैव **सूक्ष्मैरात्मगुणैः** कामक्रोधाद्यैश्चेत्येवंक्रमेण **तत्त्वेनै**केन **तत्त्वस्य** तत्त्वान्तरस्य **योगं** मेलनं प्राप्य **कर्म** सृष्ट्यादिकं कर्म **विवर्तते** परिवर्तते।

एतत् सर्वं मिलित्वैव जगत्सृष्ट्यादिकं कर्म प्रचलति। तन्निरीक्षणादष्टप्रकृतिषु

अवतरण— इस मन्त्र में परमेश्वर की सृष्टि प्रक्रिया का क्रम वर्णित है—

'तत् कर्म कृत्वा' इत्यादि। **परमेश्वरः** = परमेश्वर, **तत् कर्म कृत्वा** = पूर्वमन्त्र में वर्णित रीति से आकाश से लेकर पृथिवी तक पञ्चभूतों की एवं औषधि, अन्न तथा पुरुष की सृष्टि कर, **भूयः विनिवर्त्य** = पुनश्च उसका निरीक्षण कर, **एकेन** = पृथिवी आदि पञ्चभूतों में प्रत्येक तत्त्व से, **द्वाभ्याम्** = दो तत्त्वों से, **त्रिभिः** = तीन तत्त्वों से, **अष्टभिर्वा** = अथवा आठ प्राकृतिक तत्त्वों से, जिसका परिगणन **भूमिरापोऽनलो वायुः** = इत्यादि द्वारा गीता (७.४) करती है।

[इसका पद्यनुवाद इस प्रकार है—

"पृथ्वी, पवन, जल, तेज, नभ, मन, अहंकार व बुद्धि भी।
इन आठ भागों में विभाजित है प्रकृति मेरी सभी।।"

(श्रीकृष्णगीता ७.४)

कालेन चैव = न केवल आठ प्राकृतिक तत्त्वों से अपितु काल से भी, यह इसका आशय है। **आत्मगुणैश्च सूक्ष्मैः** = उसी प्रकार काम, क्रोध, लोभ, मोह, मद, मत्सर, ईर्ष्या-असूया इन सूक्ष्म आत्मगुणों से (**इति** = इस प्रकार), **तत्त्वेन** = एक तत्त्व के साथ, **तत्त्वस्य** = दूसरे तत्त्व का, **योगम्** = सम्बन्ध, **समेत्य** = स्थापित कर, उनका मेलन कर, **विवर्तते** = विविधरूप धारण करता है। इन सबका मेलन करके ही जगत् की सृष्टिप्रक्रिया चलती है। उनके निरीक्षण से शरीरस्थ आठ प्रकृतियों में काल के संयोग और काम-क्रोधादि के परस्पर सहयोग से परस्पर संघटना होती है। इसी क्रम से परमात्मा जगत् के व्यापार का निर्वाह करता है।

[**श्री हरिकृष्ण गोयनका** के अनुसार परमेश्वर ने चेतनतत्त्व के साथ जडतत्त्व का संयोग कर विविध सृष्टि की है। वह योग इस प्रकार है— जीवात्मा **एक** अविद्या

CC0. In Public Domain. Jangamwadi Math Collection, Varanasi

Digitization by eGangotri and Sarayu Trust. Funding by MoE-IKS

तच्छरीरभूतेषु कालसंयोगेन कामक्रोधादिसहकारेण मिथ: सङ्घटना जायते। एवं क्रमेण जगव्द्यापारं निर्वहति परमात्मा।।३।।

के साथ, **दोनों** पाप और पुण्य के साथ, **तीन** सत्व, रज और तम इन गुणों के साथ, **आठ** गीता में वर्णित अष्टविध प्रकृति के साथ, **काल** के साथ और अहंता-ममता-आसक्ति आदि सूक्ष्म आत्मगुणों के साथ संभोग कर विविध जगत् की सृष्टि की। द्रष्टव्य— 'कल्याण' उपनिषद् अंक, पृ. ३९८।

शंकरानन्द का आशय यह है कि जीवात्मा ज्योतिष्टोम आदि यागानुष्ठान सम्पन्न करे उसे मानसिक रूप से लौटा दे। साथ ही **''अहं ब्रह्मास्मि''** यह भावना करते हुए परमात्मा के साथ संयोग स्थापित करे। उसके अनेक साधन हैं— **एक** अविद्या, **दो** धर्म और अधर्म, **तीन** त्रिगुण, **आठ** गीताप्रोक्त प्राकृतिक गुण। काल और सूक्ष्म आत्मगुण भी परमात्मा के साथ संयोग के साधन हैं।

विज्ञानभगवान् और **उपनिषद् ब्रह्मयोगी** के मत में जीव जो भी कर्म करे, परमात्मा को समर्पित करे। कर्मसंन्यास से वह परमात्मा से सम्बन्ध स्थापित करता है, जिसके **एक** सद्गुरु, **दो** सद्गुरु और ईश्वर, **तीन** श्रवण, मनन और निदिध्यासन, और **आठ** यम, नियम, आसन, प्राणायाम, प्रत्याहार, ध्यान, धारणा और समाधि ये समाधियोग के **पातञ्जलयोग** सम्मत आठ अंग हैं। काल, सृष्टि, स्थिति और संहार तथा कामादि सूक्ष्म आत्मगुण भी परमात्मसाक्षात्कार के साधन हैं।

नारायणतीर्थ कहते हैं कि जीवात्मा शुभ-अशुभ कर्म करके संसारचक्र में बार-बार भ्रमण करता है। फिर एक दो तीन अथवा आठ जन्मों में परमात्मसाक्षात्कार करता है। जैसा कि गीता कहती है—

''बहूनां जन्मनामन्ते ज्ञानवान् मां प्रपद्यते।'' (७.१९)

डॉ. सर्वपल्ली राधाकृष्णन् कहते हैं— **एक** पुरुष, **दो** प्रकृति और पुरुष, **तीन** त्रिगुण, **आठ** पंचभूत-मन-बुद्धि-अहंकार-काल और मनसा आसक्ति आदि सूक्ष्म आत्मगुण इस प्रकार परमात्मा इन द्रव्यों के साथ जीवात्मा का संयोजन करता है।]

मन्त्रार्थ— परमात्मा जगत् की रचना करता है। उसका निरीक्षण करता है। एक तत्त्व का दूसरे तत्त्व से संयोजन करता है और विविध रूप धारण करता है। वह संयोजनक्रम इस प्रकार है- पृथ्वी-जल-तेज-वायु और आकाश इन पञ्चमहाभूतों को प्रत्येक तत्त्व का पृथक् पृथक् एक दूसरे से संयोजन, फिर प्रत्येक का दो तत्त्वों से संयोग, फिर प्रत्येक तत्त्व का तीन तत्त्वों से और काल का गीतोक्त अष्टविध प्राकृतिक तत्त्वों से संयोजन और फिर कामक्रोधादि आत्मगुणों का चेतन जीवात्मा के साथ संयोग। इस क्रम से परमात्मा जगत् का व्यापार चलाता है।।३।।

CC0. In Public Domain. Jangamwadi Math Collection, Varanasi

Digitization by eGangotri and Sarayu Trust. Funding by MoE-IKS

एवं सृष्टौ कर्मणामेव मुख्यतया विनिगमकत्वमित्याह—

आरभ्य कर्माणि गुणान्वितानि
भावांश्च सर्वान् विनियोजयेद् यः।
तेषामभावे कृतकर्मनाशः
कर्मक्षये याति स तत्त्वतोऽन्यः।।४।।

'आरभ्ये'ति। **गुणान्वितानि** सत्त्वादिगुणमिश्राणि पुण्यपापानुभयरूपाणि **कर्माणि आरभ्य** उत्पादयित्वा **सर्वान् (भावान्)** पदार्थान् तदनुगुणतयैव **यो विनियोजयेत्।**

एवं च जगद्वैचित्र्यकारणं कर्मैव। अतो भगवतो न वैषम्यदोष:सम्भवतीति **''वैषम्यनैर्घृण्ये न, सापेक्षत्वात्''** इत्यत्र प्रतिपाद्यते। मानवसृष्ट्यनन्तरं तैरहङ्काराभिमानाभ्यां यत् क्रियते तदेव कर्मरूपेण तान् बध्नाति। देहस्थेनेश्वरेण तदीयेन्द्रियै: सह क्रियमाणो निर्लिप्तो व्यवहार एव तस्य षट्स्थललीलेत्यनुभविनो यद्यपि वदन्ति। अनया लीलया महान्तमुपकारं प्रसादरूपेण लब्ध्वा नित्यसुखी भवितुमर्हति विवेकी। तथापि सर्वे जीवास्तथा न वर्तन्ते। ते तु देहं मनो बुद्धिम्

अवतरण— इस प्रकार सृष्टिप्रक्रिया में मुख्य रूप से कर्म ही विनिगमक होते हैं, इसी आशय को अग्रिम मन्त्र प्रकट कर रहा है—

आरम्य कर्माणि इत्यादि। **यः** = जो जीवात्मा, **गुणान्वितानि** = त्रिगुणमिश्रित सात्त्विक-राजस और तामस, **कर्माणि** = पुण्य-पापानुभवफलप्रद कर्मों का, **आरभ्य** = सम्पादन कर, **सर्वांश्च भावान्** = सभी पदार्थों का, **विनियोजयेद्** = उन कर्मों के अनुरूप विनियोग करता है।

इस प्रकार जगत् की विचित्रता का कारण कर्म ही है। अत: भगवान् के ऊपर विषमता (पक्षपात) का आरोप करना संगत नहीं है। जैसा कि **ब्रह्मसूत्र** प्रतिपादित करता है— **''वैषम्यनैर्घृण्ये न, सापेक्षत्वात्''**— परमेश्वर में विषमता (पक्षपात) और निर्दयता नहीं रहती; क्योंकि ये भाव कर्मसापेक्ष हैं। मानवसृष्टि के पश्चात् जीव अहंकार और अभिमान के वशीभूत हो जो कार्य करते हैं, वे ही उन्हें कर्मफल के रूप में बन्धन में डालते हैं। शरीर में विराजमान परमेश्वर के द्वारा इन्द्रियों के साथ सम्पादित अलिप्तभाव से व्यवहार ही उसकी षट्स्थललीला है, यह अनुभवी शिवज्ञानी कहते हैं। विवेकशील जीव इस भगवल्लीला से प्रसाद रूप से परमेश्वर का अनुग्रह (उपकार) प्राप्त कर, नित्यसुखी हो सकता है। तथापि सभी जीव ऐसा आचरण नहीं करते। वे

CC0. In Public Domain. Jangamwadi Math Collection, Varanasi

Digitization by eGangotri and Sarayu Trust. Funding by MoE-IKS

इन्द्रियाणि च स्वीयान्येव भावयन्ति। अतस्ते आत्मन एव कर्तॄन् कल्पयन्ति। तैः क्रियमाणं सर्वमपि कर्म तानेव जन्मान्तरेष्वपि अनुसरति। इदं च कर्म परम्परया प्रवाहरूपेण प्रवहत् कर्तारमेव दुःखसागरे निमज्जयति।

एवं कर्मवशात् सृष्टौ प्रवृत्तायामपि ईश्वरार्पणधिया कर्मकरणे पुण्यपापादि-फलाप्रसक्त्या तादृशकर्मचक्रात् जीवस्य मुक्तिर्भवतीत्याह— **तेषा**मिति। **तेषां** तादृशकर्मणा**मभावे** ईश्वरार्पणबुद्ध्या कर्माचरणेन फलसम्बन्धाभावात् **कृतकर्मनाशः** प्राचीनकर्मणां स्वयं नाशः सम्भवेत्। एवं **कर्मक्षये** जाते **स** जीव**स्तत्त्वतो** वस्तुत एव **अन्यः,** जीवत्वं परित्यज्य परमात्मत्वमापन्नो **याति** भवति।

एवं च परहितेच्छया चित्तशुद्ध्या यदि कर्म क्रियते तदा स न केवलमिहैव अपि तु परत्रापि सुखं विन्दते। अयमाशय एवमाविष्क्रियते **शरणगीतायाम्**—

"चित्ते विशुर्द्धियदि नास्ति पुंसि तस्यैव सर्वांशदरिद्रता स्यात्।
तस्यैव चित्तं परिशुद्धिमेति चेत् तत्कायके सम्पदुपैति नित्यम्।।
यावच्च सेवाममलेश्वरस्य करोति तावत् समुपैति लक्ष्मीः।।" इति।

तो देह, अन्तःकरण बुद्धि और इन्द्रियों को ही अपनी समझते हैं। अतः वे स्वयं को ही सभी कर्मों का कर्ता समझते हैं। उनके द्वारा किया जाने वाला सभी कर्म परवर्ती जन्मों में भी उन्हीं का अनुसरण करता है। इस प्रकार की कर्मपरम्परा प्रवाहित होकर कर्ता को ही दुःखसागर में मग्न करती है।

इस प्रकार कर्मपरवश होने के कारण जीवों की सृष्टि होते रहने पर भी ईश्वरार्पणबुद्धि से कर्म का सम्पादन करने पर उस कर्म का पुण्य-पापफल उस जीव से सम्बद्ध न होने के कारण उस प्रकार के कर्मचक्र से जीव की मुक्ति होती है—इस आशय को उत्तरार्ध प्रकट कर रहा है— **'तेषामभावे'** इत्यादि। **तेषाम्** = उस प्रकार सकाम कर्मों का, **अभावे** = ईश्वरार्पण बुद्धि से कर्माचरण करने के कारण, यतः उसका सम्बन्ध कर्मफल से नहीं रहता, अतः **कृतकर्मनाशः** = सञ्चित पूर्वजन्मार्जित पुरातन कर्मों का नाश स्वयं होता है। **कर्मक्षये** = इस प्रकार कर्मों का नाश होने पर, **सः** = वह जीवात्मा, **तत्त्वतः** = वस्तुतः, **अन्यः याति** = जीवभाव छोड़कर अन्य परमात्मभाव को प्राप्त करते हुए प्रयाण करता है।

इस प्रकार दूसरों की हितकामना से अन्तःकरण की शुद्धिद्वारा जीव द्वारा यदि कर्म किया जाय, तो वह जीव न केवल इहलोक में अपितु परलोक में भी सुख प्राप्त करता है। इसी आशय को **"चित्ते विशुद्धिः"** इत्यादि द्वारा **शरणगीता** में इस प्रकार प्रकट किया गया है— "अगर देहधारी जीव में अन्तःकरण की निर्मलता

CC0. In Public Domain. Jangamwadi Math Collection, Varanasi

Digitization by eGangotri and Sarayu Trust. Funding by MoE-IKS

एवं चेश्वरसेवारूपतया यद् यदाचर्यते तदेव चित्तशुद्धिद्वारा हृदये प्रकाशमानस्य परमात्मनः सन्तोषाय भवेदिति **शरणा** अनुभवपूर्वकं वदन्ति—

"व्यवस्थितात् कायकजात् धनाच्च भिन्नं सुवर्णं यदि काङ्क्षतेऽज्ञः।
तदा विनश्येत् तु तदीयसेवा प्रत्याशया विन्दति पाशमेव।।
न कायकादभ्यधिकं त्वभीप्सेत् लभ्येत लभ्यं ननु कायकेन।।"

इत्येवं कर्मानुष्ठानविषये पवित्रभावना अनुसरणीयेति **शरणा** उपदिशन्ति। अनया भावनया यः कर्माऽनुतिष्ठति तस्य कर्मासंस्पर्शात् स इहैव दिव्यं जन्म लभते। तदेव ब्रह्मभावः शिवैक्यं लिङ्गाङ्गसामरस्यमित्यादि शब्दैर्व्यवह्रियते। एतादृशोऽनुभवः इहैव **प्रसादकाये**ऽधिगन्तव्यः।।४।।

(शुद्धि) नहीं है, तो वह जीव सर्वांश में दरिद्र है। उस जीव का अन्तःकरण यदि निर्मल हो, तो उसके सत् काय में नित्य सम्पदा प्राप्त होती है। जब तक जीव अमलेश्वर की उपासना करता है, तब तक उसे लक्ष्मी वरण करती है प्राप्त होती है।"

इसप्रकार 'शरण' भक्त अनुभवपूर्वक यह प्रतिपादित करते हैं कि ईश्वर की अर्चना के रूप में जो-जो कर्मानुष्ठान सम्पादित होता है, वही कर्म अन्तःकरण की निर्मलता के द्वारा परमेश्वर को सन्तोष प्रदान करने के लिए होता है। **"व्यवस्थितात् कायकजात्"** इत्यादि पद्य द्वारा **'शरण'** यह उपेदश देते हैं कि "अज्ञानी जीव यदि प्रसादकाय से प्राप्य धन से भिन्न सुवर्णादि की कामना करता है, तो उसकी पूजा-अर्चना नष्ट होगी, प्रत्युत फल की प्रत्याशा में वह जीव पाशबन्धन में ही पड़ेगा। प्रसादकाय से अधिक फल की आकांक्षा नहीं करनी चाहिये। वह प्रसादकाय द्वारा ही परमात्म- साक्षात्कार कर सकता है।"

इस प्रकार **'शरण' भक्त** यह उपदेश देते हैं कि कर्मानुष्ठान के विचार में पवित्र भावना का अनुसरण करना चाहिये। इस भावना से जो कर्मानुष्ठान करता है, वह दिव्य जन्म प्राप्त करता है। 'ब्रह्मभाव', 'शिवैक्य' 'लिङ्गाङ्गसामरस्य' इत्यादि शब्दों से उस दिव्यजन्म का ही व्यवहार किया जाता है। इस प्रकार का अनुभव इहलोक में ही प्रसादकाय के माध्यम से प्राप्त करना चाहिये।

[सात्त्विक, राजस और तामस सकाम कर्म जीवात्मा के लिये बन्धनकारक होते हैं। गीता कहती है—

"सत्त्वं रजस्तम इति गुणाः प्रकृतिसम्भवाः।
निबध्नन्ति मदाबाहो! देहे देहिनमव्ययम्।।" (१४.५)

सत्त्व, रज और तमोगुण यथाक्रम जीवात्मा को सुख, साध्य कर्म और प्रमाद

CC0. In Public Domain. Jangamwadi Math Collection, Varanasi

Digitization by eGangotri and Sarayu Trust. Funding by MoE-IKS

आदिः स संयोगनिमित्तहेतुः
परस्त्रिकालादकलोऽपि दृष्टः।
तं विश्वरूपं भवभूतमीड्यं
देवं स्वचित्तस्थमुपास्य पूर्वम्।।५।।

आदिरादिकारणभूतः सः परमात्मैव **संयोगनिमित्तहेतुः** शरीरसंयोगादे-स्तन्निमित्तस्य पुण्यपापादेश्च हेतुः। **"एष एव साधुकर्म कारयति, एष एवाऽसाधु कर्म कारयति"** इति श्रुतौ परमात्मैव जीवैस्तत्तत्कर्म तदिच्छानुरोधेन कारयतीति

की ओर प्रवृत्त करते हैं। जैसा कि गीता कहती है—

"ज्ञानमावृत्य तु तमः प्रमादे सञ्जयुत्यत।" (१४.९)

ईश्वरार्पण बुद्धि से किया जाने वाला कोई भी कर्म बन्धनकारक नहीं होता और वह कर्म जीव को परमात्मप्राप्ति कराता है। जैसा कि गीता कहती है—

"यत करोषि यदश्नासि यज्जुहोसि ददासि यत्।
यत् तपस्यसि कौन्तेय! तत् कुरुष्व मदर्पणम्।।

शुभाशुभफलैरेवं मोक्ष्यसे कर्मबन्धनैः।
संन्यासगुणयुक्तात्मा विमुक्तो मामुपैष्यसि।।" (९.२७-२८)]

मन्त्रार्थ— जो जीवात्मा सात्त्विक, राजस और तामस सकाम कर्मों का सम्पादन कर अपने भावों को भी उसी ओर प्रवृत्त करता है, वह जीवात्मा यदि निष्काम भावना से परमेश्वर के प्रति समर्पण का भाव रखते हुए निष्काम कर्म करे, तो उसके सञ्चित कर्मों का नाश होता है। फलतः वह जीव वस्तुतः परमात्मस्वरूप बन जाता है।।४।।

अवतरण— विषयान्ध जीव किस प्रकार परमात्मा का साक्षात्कार कर सकते हैं? इसका उत्तर वेदमाता दे रही है—

'आदिः सः' इत्यादि। **आदिः स संयोगनिमित्तहेतुः** = स्थावरजंगमात्मक समस्त जगत् का आदिकारणस्वरूप वह परमात्मा ही शरीरसंयोग आदि और उसके निमित्त पुण्य, पाप आदि का कारण है। **"एष एवैनं साधु कर्म कारयति।.... एष एवैनमसाधु कर्म कारयति"** (३.९) इस **कौषीतकी उपनिषद्** स्थित वेदमन्त्र में यह प्रतिपादित है कि परमात्मा ही उनकी इच्छा के अनुसार जीवों द्वारा वह वह कर्म कराता है। [इस वेदमन्त्र का अर्थ इस प्रकार है— "यह प्राण और प्रज्ञास्वरूप चेतन

CC0. In Public Domain. Jangamwadi Math Collection, Varanasi

Digitization by eGangotri and Sarayu Trust. Funding by MoE-IKS

प्रसिद्धमेव। **सः त्रिकालात्** भूतभविष्यद्वर्तमानरूपात् **परो**ऽतीतः, **अकलः** प्राणादिनामान्तकलारहितः वस्तुतो निष्कल इत्यर्थः। ताश्च कला जीवस्यैव संबद्धाः। एवमेव तादृशस्वरूपः परमात्मा **दृष्टो** निश्चितः।

तं किंस्वरूपमित्यत्र **विश्वरूपं** जगद्रूपमित्याह। **भवभूतं** भवत्यस्मादिति भवः कारणं तद्भवं विश्वकारणभूतम् **ईड्यं** स्तुत्यं **स्वचित्तस्थं** स्वहृदय एव विराजमानं **पूर्वं देवं** सर्वदेवानामपि पूर्वं महादेवं परमेश्वरम् **उपास्य** 'कर्मक्षये

परब्रह्म परमेश्वर ही देहाभिमानी जीव से उसका कल्याण करने वाले साधु सत्कर्म और अधःपतनकारी असाधु (दुष्कर्म) भी कराता है।'']

''परस्त्रिकालादकलोऽपि दृष्टः''— वह परमेश्वर भूत-भविष्य और वर्तमान तीनों कालों से परे, कालातीत, वस्तुतः **'अकल'** निष्कल है।

[जैसा कि **बृहदारण्यक उपनिषद्** कहती है— **''यस्मादर्वाक् संवत्सरोऽहोभिः प्रवर्तते, तद्देवाः ज्योतिषां ज्योतिरायुर्होपासतेऽमृतम्''** (४.४.१६)। जिसके नीचे संवत्सरचक्र अहोरात्र इत्यादि के साथ भ्रमण करता है, उस आदित्य (सूर्य) आदि तेजोमण्डलों से भी विलक्षण तेजस्वरूप अमृत परमेश्वर को आयुःस्वरूप मानते हुए देवगण उसकी उपासना करते हैं।

प्रश्नोपनिषद् (६.४) के अनुसार **'षोडशकल पुरुष'** उस निष्कल पुरुष से भिन्न है। षोडशकल पुरुष ने प्राण, श्रद्धा, आकाश, वायु, तेज, जल, पृथ्वी ये पंच महाभूत, इन्द्रियसमूह, मन, अन्न, वीर्य, नानाविध मन्त्र, विविधकर्म, लोक, नाम-रूप इन षोडश कलाओं को क्रमशः जन्म दिया।]

ये कलायें भी वस्तुतः जीव की ही हैं और जीव से ही सम्बद्ध हैं। ब्रह्मज्ञानियों ने परमात्मा का स्वरूप निष्कल ही निश्चित किया है।

'तं विश्वरूपम्' इत्यादि। उस परमात्मा का स्वरूप क्या है? इसका उत्तर है— वह **'विश्वरूप'** है। समस्त जगत् ही उसका स्वरूप है। **भवभूतम्** = 'भवति अस्मात् इति भवः' यतः समस्त प्रपञ्च परम शिव से उत्पन्न होता है, इसलिए समस्त विश्व **'भव'** कहलाता है। उस समस्त विश्व का कारण होने के कारण परमशिव **'भवभूत'** हैं।

ईड्यम् = वे सभी प्राणियों के द्वारा अभिनन्दन या स्तुति के पात्र हैं। **स्वचित्तस्थम्** = वे अपने अन्तःकरण में विराजमान हैं।

पूर्वं देवम् = सभी देवताओं के पूर्व विराजमान वे हैं। **उपास्य** = ऐसे देवाधिदेव महादेव की उपासना कर (**सः कर्मक्षये भाति** = वह जीवात्मा प्रारब्ध एवं

CC0. In Public Domain. Jangamwadi Math Collection, Varanasi

Digitization by eGangotri and Sarayu Trust. Funding by MoE-IKS

मुक्तो भवति' इति पूर्वमन्त्रेणान्वयः। एवं च परमेश्वरोपासनेनैव कर्मपाशविच्छेद-मनुभविनो वदन्ति। **बसवार्यः** स्वीयदृष्टान्तेनाऽमुं विषयमेवं ब्रवीति—

"पङ्के निमग्नस्य पशोर्हि दृष्टा पादस्य पाताद् गतिरत्र नान्या।
नष्टोऽस्मि शम्भो! गिरिशास्मि नष्ट उद्धृत्य मां त्वध्दृदये निधेहि।।
पशुस्त्वहं त्वं च पशोरधीशस्ततो दयस्वाऽऽत्मनि वत्सल! त्वम्।।
यावच्च मां हिंस्र इति प्रतीत्या सङ्गृह्य संहन्युरमी मनुष्याः।।
तावत् प्रभो! पश्य तथात्मलीनं यथा न निन्देयमहं भवन्तम्।।" इति।

एवं शरणाः संसारपङ्कमग्नस्य पशुजीवस्य भगवदुपासनरूपां क्रियामेव उद्धरणोपायतया निर्दिशन्ति। एवं यज्ञरूपक्रियैव केवलं पाशविमोचनमार्ग इति फलितम्। गीताप्येवमेवोपदिशति।।५।।

संचित कर्मों का क्षय होने पर परमात्मभाव को प्राप्त करता है, मुक्त होता है।) इस प्रकार अनुभवी शिवज्ञानी यह प्रतिपादित करते हैं कि परमेश्वर की उपासना से ही जीव के कर्मपाश कटते हैं।

आर्य बसवेश्वर अपने दृष्टान्तद्वारा **"पङ्के निमग्नस्य"** इत्यादि पद्यों से इस विषय का इस प्रकार उपक्रम करते हैं— "हे कैलासवासी शंकर! (मेरे जैसे) पशु का पैर पापपङ्क में धंस जाने के कारण कोई दूसरी गति दृष्टिगोचर नहीं हो रही है। मैं नष्ट हो चुका हूँ, नष्ट हो गया हूँ। तुम मेरा उद्धार करो और अपने हृदय में स्थापित करो। मैं पशु हूँ और तुम पशुपति हो। तुम स्वयं पर दया करो। वत्सल! तुम दयालु हो। जब तक मुझे हिंस्र पशु समझ कर ये मनुष्य पकड़कर न मारें, तब तक तुम मुझे अपने में विलीन होते हुए देखो, जिससे मैं आपकी निन्दा न कर सकूँ।"

इस प्रकार शरणस्थलापन्न शरणागत 'शरण' भक्त संसारपङ्कमग्न पशु जीव के उद्धार का उपाय भगवान् की उपासना बतलाते हैं। भगवान् की उपासना एक प्रकार का यज्ञानुष्ठान ही है। वही केवल पशुजीव के पाशविमोचन का मार्ग है। गीता (९/२५-२६) भी यही उपदेश देती है।

[भगवान् श्रीकृष्ण अर्जुन से कहते हैं—

"यान्ति देवव्रता देवान् पितॄन् यान्ति पितृव्रताः।
भूतानि यान्ति भूतेज्या यान्ति मद्याजिनोऽपि माम्।।
पत्रं पुष्पं फलं तोयं यो मे भक्त्या प्रयच्छति।
तदहं भक्त्युपहृतमश्नामि प्रयतात्मनः।।"

CC0. In Public Domain. Jangamwadi Math Collection, Varanasi

Digitization by eGangotri and Sarayu Trust. Funding by MoE-IKS

धर्मावहं पापनुदं भगेशं
ज्ञात्वात्मस्थममृतं विश्वधाम।
स वृक्षकालाकृतिभिः परोऽन्यो
यस्मात् प्रपञ्चः परिवर्ततेऽयम्।।६।।

इसका पद्यानुवाद इस प्रकार है—

"सुरभक्त सुर को पितृ को पाते जो पितर अनुरक्त हैं।
जो भूत पूजे भूत को पाते मुझे मम भक्त हैं।।
अर्पण करे जो फूल-फल-जल-पत्र मुझको भक्ति से।
लेता प्रयतचित भक्त की वह भेंट मैं अनुरक्ति से।।"

(श्रीकृष्णगीता, ९/२५-२६)

उपनिषद्ब्रह्मयोगी 'संयोगनिमित्तहेतुः' इस पद की इस प्रकार व्याख्या करते हैं— **"जीवस्य परमात्मन सम्यग् योगः संयोगः, तस्य निमित्तानाम् *'एकेन द्वाभ्याम्'* इत्यादिनोक्तानां हेतुः कारणभूतः। यद्वा शरीरसंयोगनिमित्तानां पुण्यपापानां *'सङ्कल्पनस्पर्शनदृष्टिहोमैरि'*त्यादिनोक्तानाम्।"**

इसका अर्थ इस प्रकार है— "इस समस्त पद में **'संयोग'** शब्द का अर्थ है जीवात्मा का परमात्मा के साथ सम्यक् योग (सम्बन्ध)। उसके निमित्त **'तत् कर्म कृत्वा'** (६/३) इत्यादि मन्त्र के उत्तरार्द्ध में **'एकेन द्वाभ्यां त्रिभिरष्टभिर्वा कालेन चैवात्मगुणैश्च सूक्ष्मैः'** इस प्रकार वर्णित है। उसका कारणस्वरूप परमशिव है। अथवा यहाँ 'संयोग' का अर्थ है शरीर के साथ संयोग। उनके निमित्त पुण्य-पाप होते हैं, जो इसी उपनिषद् के पञ्चमाध्याय के ग्यारहवें मन्त्र में इस प्रकार वर्णित हैं— **"सङ्कल्पनस्पर्शनदृष्टिहोमैर्ग्रासाम्बुदृष्ट्या"** **विज्ञानभगवान्** के अनुसार यह मंत्र सगुणोपासनापरक भी है और निर्गुणोपासनापरक भी— **"अयं मन्त्र एवं निर्गुणवस्तु-परतया व्याख्यातः, कैश्चिच्च सगुणवस्तुपरतया।"**]

मन्त्रार्थ— परमशिव समस्त जगत् के आदिकारण, शरीर से सम्पर्क और तज्जन्य पुण्यपापादि के हेतु कालातीत और निष्कल हैं। समस्त जगत् के स्वरूप में अवस्थित विश्वकारणस्वरूप स्तुतिपात्र अपनी हृदयगुफा में विद्यमान सभी देवों के पूर्व में विद्यमान देवाधिदेव महादेव की उपासना कर जीवात्मा कर्मक्षय होने पर मुक्त होता है।।५।।

अवतरण— अग्रिम मन्त्र में संसारवृक्ष आदि से परमेश्वर की विलक्षणता प्रतिपादित है— **'धर्मावहम्'** इत्यादि।

CC0. In Public Domain. Jangamwadi Math Collection, Varanasi

Digitization by eGangotri and Sarayu Trust. Funding by MoE-IKS

'धर्मावहमि'ति। **सः परः** परमात्मा **वृक्षकालाकृतिभिः** वृक्षः संसारवृक्षस्तस्मात् कालाकृतिभिश्चा**ऽन्यो** विलक्षणः। **यस्मात्** कारणादयं **प्रपञ्चो** लोकः **परिवर्तते** चरति। तादृशं **धर्मावहं** पुण्यप्रदं, **पापनुदं** पापनाशकं, **भगेशं** भगस्यैश्वर्यस्येशं नियन्तारम्, **आत्मस्थं** स्वस्मिन्नेव विद्यमानम**मृतम्** अमृतस्वरूपं सनातनं

"सः परः वृक्षकालादिभिः अन्यः"— वह परशिवस्वरूप परम पुरुष संसारवृक्ष, काल और आकृति तीनों से भिन्न विलक्षण है। यहाँ 'वृक्षशब्द का अर्थ संसारवृक्ष है।

[श्रीमद्भगवद्गीता (१५.१) कहती है—

"ऊर्ध्वमूलमधःशाखमश्वत्थं प्राहुरव्ययम्।
छन्दांसि यस्य पर्णानि यस्तं वेद स वेदवित्।।"

इसका पद्यानुवाद इस प्रकार है—

"है मूल ऊपर शाख नीचे पत्र जिसके वेद हैं।
वे वेदवित् जो जानते अश्वत्थ अव्यय भेद हैं।।"

(श्रीकृष्णगीता, १५.१)

आचार्य शंकर कहते हैं— **"स वृक्षाकारेभ्यः कालाकारेभ्यः परो वृक्षकालाकृतिभिः परः। वृक्षः संसारवृक्षः। उक्तं च-** ***"ऊर्ध्वमूलो ह्यवाक्शाख एषोऽश्वत्थः सनातनः।"*** कठोप.२.३.१. इति। **अन्यप्रपञ्चासृष्ट इत्यर्थः।"**

अर्थात् परब्रह्म परमात्मा संसारवृक्ष के आकार और काल के आकार से भी विलक्षण है। संसारवृक्ष स्वयं सामान्य वृक्ष से विलक्षण वह अश्वत्थ (पीपल) का सनातन वृक्ष है, जिसकी जड़ें कठोपनिषद् के अनुसार ऊपर और शाखाएँ नीचे हैं।

विज्ञानभगवान् कहते हैं— **"वृक्षशब्देन संसार उच्यते। तत्राऽनुस्यूतं कालतत्त्वं काल उच्यते, तस्मा'दा' समन्तात् 'क्रियते' इति कृतिः महदादि-समस्तकार्यरूपेण मायाख्या प्रकृतिर्निर्वत्यते प्रेर्यतेऽधिष्ठात्रा परमेश्वरेणे'त्याकृतिरि'ति मूलप्रकृतिरुच्यते। सर्वव्यापकत्वाद् वा सै'वाकृतिरि'त्युच्यते। तस्याश्च परो ज्यायांस्तेभ्यो विलक्षणस्वभावश्च तेभ्योऽन्यः परः स्वयमुत्कृष्टश्चेति।"**

इसका तात्पर्य यह है— **"वृक्षकलाकृतिभिः"**। इस पद्य में **'वृक्ष'** शब्द में संसारवृक्ष अर्थ अभीष्ट है। उस संसारवृक्ष में अनुस्यूत कालतत्त्व ही **'काल'** शब्द से संकेतित है। उस कालतत्त्व से विलक्षण माया अथवा मूलप्रकृति है, जिसे यहाँ **'आकृति'** कहा गया है। यतः परमेश्वर की ही प्रेरणा से प्रकृति, महत्तत्त्व आदि कार्य रूप में रूपान्तरित होती है, अतः उसे 'माया' कहते हैं। सर्वव्यापक होने के कारण उसे 'आकृति' भी कहते हैं। उस मूल प्रकृति से भी विलक्षण और उत्कृष्ट परमेश्वर है।]

CC0. In Public Domain. Jangamwadi Math Collection, Varanasi

Digitization by eGangotri and Sarayu Trust. Funding by MoE-IKS

सत्यशुद्धबुद्धस्वरूपमुत्पत्तिविनाशरहितं **विश्वधाम** जगदाधारभूतं परमात्मानं **ज्ञात्वा** कर्मक्षये मुक्तो भवति।

"बीजे यथाङ्कुरस्सिद्धस्तथात्मनि शिवः स्थितः"

इति **सिद्धान्तशिखामणौ** (५/३६) परमात्मनो जीवेऽन्तर्यामितयावस्थितिरुच्यते।

देहमेव देवालयं भावयित्वा जीवः स्वान्तर्गतं शिवं बहिरन्तरुपासीत। देहे शिव एव सारवत्तरं वस्त्वित्यनुभविभिर्भाव्यते। जीवस्याऽपि देहस्वामिनः शिव एव कारणं सम्पद्यते। शिवस्य देहात् प्रस्थाने शवभूतो देहो न केनाऽपि पुरस्क्रियते। शरणगीता अमुं विषयं स्पष्टयति—

"यस्मात् प्रपञ्चः परिवर्ततेऽयम्"— जिसके कारण यह विश्व प्रपञ्च भ्रमणशील है।

धर्मावहं पापनुदम् इत्यादि। **धर्मावहम्** = उस प्रकार के धर्मप्रद (पुण्यदायक), **पापनुदम्** = अधर्म-नाशक, **भगेशम्** = षड्विध ऐश्वर्य के नियामक, **आत्मस्थम्** = स्वयं के शरीर की हृदयगुफा में विद्यमान, **अमृतम्** = अमृततुल्य सनातन सत्य शुद्धबुद्धस्वरूप और उत्पत्ति-विनाश से मुक्त, **विश्वधाम** = जगत् के आधारस्वरूप परमशिव का, **ज्ञात्वा** = साक्षात्कार कर (**'कर्मक्षये मुक्तो भवति'** = सञ्चित पुण्यपापकर्मफलक्षीण होने पर जीवात्मा मुक्त होता है।)

'सिद्धान्तशिखामणि' (५.५६) में जीवात्मा के शरीरस्थित हृदयगुफा में परमात्मा अन्तर्यामी रूप में निवास का इस प्रकार वर्णन है—

"चन्द्रकान्ते यथा तोयं सूर्यकान्ते यथाऽनलः।
बीजे यथाङ्कुरः सिद्धस्तथाऽऽत्मनि शिवः स्थितः।।"

जिस प्रकार चन्द्रकान्तमणि में जल, सूर्यकान्तमणि में अग्नि और बीज में अंकुर अव्यक्तरूप से रहता है, उसी प्रकार जीवात्मा के शरीर में परमात्मा परमशिव का गुप्तरूप से वास होता है।

देह को ही देवालय समझकर जीव को अपने अन्तरंग में प्रकाशमान शिव की आन्तरिक और बाह्य उपासना करनी चाहिये। अनुभवी शिवज्ञानी 'देह में यदि कोई सार वस्तु है, तो वह शिव ही है' इस प्रकार का अनुभव करते हैं। देह के स्वामी जीवात्मा का भी उत्पत्तिकारण परमशिव ही है। परमशिव द्वारा शरीर से प्रस्थान करने पर शवस्वरूप देह का कोई सम्मान नहीं करता।

CC0. In Public Domain. Jangamwadi Math Collection, Varanasi

Digitization by eGangotri and Sarayu Trust. Funding by MoE-IKS

"शशं प्रहृत्याऽऽनयतीह लुब्धस्तस्यास्ति हर्ता पणदानतश्च।
राज्ञः शवः स्याद् यदि पण्यवीथ्यां क्रेतापि न स्यात् क्रमुकार्पणेन।।
शवान्निकृष्टं नरजन्म लोके भजस्व तस्माद् गुरुसङ्गमार्यम्।।"

इत्येवं परमात्मविरहितस्य मानवदेहस्व मृतशशादपि निकृष्टत्वमत्र प्रतिपाद्यते। अत एव देहेऽनामये सत्येव तत्रत्यं शिवं ज्ञातुं साधकः प्रयतेत। एवमेव देह एव शिवोपासनं **शरणाः** स्वानुभवपूर्वकं वीर्यवत्तरया वाण्या उपदिशन्ति—

"सम्पद्युतैरत्र शिवालयादिर्विरच्यते चेत् किमहं करोमि?।
अकिञ्चनोऽहं शृणु सङ्गमार्य! मदीयदेहोऽत्र शिवालयः स्यात्।।
स्तम्भौ भवेतां तु मदीयपादौ सुवर्णशृङ्गं तु शिरो मदीयम्।
प्रतिष्ठितं नश्यति कालयोगात् न चैव नाशश्चरजङ्गमस्य।।" इति।

"शशं प्रहृत्याऽऽनयतीह लुब्धस्तस्याऽस्ति" इत्यादि पद्यों से **शरणगीता** इसी विषय को इस प्रकार स्पष्ट कर रही है— "बहेलिया किसी खरगोश को मारकर बाजार में लाता है और फिर उस खरगोश का मूल्य चुकाकर कोई खरीददार उसे ले जाता है। किन्तु यदि राजा का शव बाजार में पड़ा हो, तो मूल्य चुकाकर उसका कोई खरीददार नहीं मिलेगा। मानव का जन्म शिवविहीन शव से भी निकृष्ट होता है। इसलिये परमगुरु संगमदेव की उपासना करो।"

इस प्रकार यहाँ परमात्मा से विरहित निष्प्राण मानवदेह को मृत खरगोश से भी निकृष्ट प्रतिपादित किया गया है। इसलिये साधक को चाहिये कि वह शरीर पर रोगों का आक्रमण होने के पूर्व ही उसमें विद्यमान परमशिव का साक्षात्कार करने के लिये प्रयत्नशील हो।

शरण भक्त अपने अनुभव के आधार पर अपनी ओजस्विनी वाणी से **"सम्पद्युतैरेव शिवालयादिः"** इत्यादि पद्यों द्वारा शरीर के शिवालय में ही इसी प्रकार की शिवोपासना का उपदेश देते हैं, जिसका आशय यह है— "यदि धनी लोग ही शिवालय आदि का निर्माण करें, तो भला मैं क्या कर सकता हूँ? हे आर्य संगमदेव! आप सुनें, यतः मैं अकिञ्चन हूँ, अतः मेरा देह ही देवालय (शिवालय) हो, उसके स्तम्भ मेरे दोनों चरण हों और उसका सुवर्णशिखर मेरा मस्तक हो। कालचक्र के प्रभाव से बाहर प्रतिष्ठित शिवालय नष्ट हो सकता है, किन्तु विचरणशील जङ्गम शिवयोगी का देहरूपी देवालय नष्ट नहीं हो सकता।"

CC0. In Public Domain. Jangamwadi Math Collection, Varanasi

Digitization by eGangotri and Sarayu Trust. Funding by MoE-IKS

एवं बहिः प्रतिष्ठापितादपि देहस्थस्य चरात्मकस्य प्राणलिङ्गस्य समर्चनमतीव फलकारीत्यनुभविभिर्भाव्यते। अतः साधकैर्हृदय एव अन्वेषणं कर्तव्यमित्यर्थः।।६।।

तमीश्वराणां परमं महेश्वरं
तं देवतानां परमं च दैवतम्।
पतिं पतीनां परमं परस्ताद्
विदाम देवं भुवनेशमीड्यम्।।७।।

'तमि'ति। **ईश्वराणाम्** ईश्वरत्वेन जगति प्रसिद्धानां सर्वेषामपि **परमम्** अनुत्तमं **महेश्वरम्, देवतानामि**न्द्रादीनामपि **परमम**ुत्कृष्टं **दैवतम्, पतीनां** प्रजापत्यादीनामपि **परमम**नुत्तमं **पतिं** रक्षकम्। अत्र सर्वत्र तस्याप्यन्य ईश्वरो

इस प्रकार बाहर प्रतिष्ठित शिवलिङ्ग से भी बढ़कर देहस्थित चेतन प्राणलिङ्ग की अर्चना अत्यन्त फलदायी है, यह भावना अनुभवी शिवज्ञानी करते हैं। इसलिये साधक लोग हृदयस्थित परमेश्वर का अन्वेषण करें, यही इसका आशय है।

मन्त्रार्थः— वह परमशिव संसारवृक्ष, काल और मूल प्रकृति से विलक्षण और श्रेष्ठ है, जिससे सारा प्रपञ्च संचालित होकर अपना कार्य करता है। ऐसे पुण्यदायी पापनाशक हृदयस्थित अमृतस्वरूप षड्विध ऐश्वर्यसम्पन्न जगदाधारस्वरूप परमात्मा का साक्षात्कार कर जीवात्मा कर्मक्षय होने पर मुक्ति प्राप्त करता है।।६।।

अवतरण— पूर्व में ध्यानयोग द्वारा जिन ब्रह्मवादियों ने देवात्मशक्ति का साक्षात्कार किया था, वे ब्रह्मवादी अपने ब्रह्मसाक्षात्कार का अनुभव इस प्रकार प्रतिपादित कर रहे हैं— **'तमीश्वराणाम्'**[१] इत्यादि।

ईश्वराणाम् = ईश्वर के रूप में जगत् प्रसिद्ध सभी देवताओं के, **परमम्** = सर्वोत्कृष्ट, **महेश्वरम्** = महान् ऐश्वर्य सम्पन्न, **देवतानां परमं च दैवतम्** = इन्द्रादि देवताओं के भी आराध्य परमोत्कृष्ट देवाधिदेव, **पतीनां पतिम्** = प्रजापति आदि के भी

---

१. इसका हिन्दी पद्यानुवाद इस प्रकार है—

''इन्द्र आदि लोकेश्वर जिनको परम महेश्वर जान रहे।
अन्य देवगण भी जिनको निज परम देव हैं मान रहे।।
पतियों के भी पूज्य परम पति जगदीश्वर जो स्तुत्य महान्।
उन प्रकाशमय परमदेव को समझा हमने सर्वप्रधान।।''

(कल्याण, उपनिषद् अंक, जनवरी १९४९, पृ. ३)

CC0. In Public Domain. Jangamwadi Math Collection, Varanasi

Digitization by eGangotri and Sarayu Trust. Funding by MoE-IKS

देवता पतिर्वा नाऽस्तीत्यर्थकं परमपदमिति ज्ञेयम्। एवं **परस्तात्** सर्वेभ्यः परतो विद्यमानं **भुवनेशं** जगतामधीशम् **ईड्यं** स्तुत्यं **तं देवं विदाम** जानीमः।

एवमसाधारणधर्मविशिष्टं परमेश्वरं ज्ञात्वैव तदंशो जीवात्मा तदीयमलावरणस्याऽऽत्यन्तिकवियोगेन नित्यसुखी भवेदित्याशयः। एतादृशमहामहिम्नः परशिवस्य प्रसादस्तदर्चनं विना न सिद्ध्यतीति मानवस्तदर्चनपरो भवेदिति महर्षिर्निरीक्षते।।७।।

उत्कृष्ट पालक। इस मन्त्र के तीनों चरणों में सर्वत्र प्रयुक्त 'परम' पद यह सूचित करता है कि उस देवता का कोई अन्य ईश्वर नहीं है, **परस्तात्** = विद्यमान, **भुवनेशम्** = स्वर्ग-मृत्यु-पाताल तीन भुवनों अथवा चतुर्दश भुवनों के स्वामी, **ईड्यम्** = सभी के स्तुतिभाजन, **तं देवम्** = उस देवाधिदेव महादेव को, **विदाम** = हम जानते हैं।

इस प्रकार असाधारण विशेषताओं से विशिष्ट परमेश्वर का साक्षात्कार कर उसका अंशस्वरूप जीवात्मा उसमें अवस्थित आणव, मायीय और कार्मिक त्रिविध अज्ञानमलों का आवरण अत्यन्त दूर होने के कारण नित्यसुखी होगा यही इसका आशय है। इस प्रकार महामहिमाशाली परमशिव का प्रसाद उसकी बिना अर्चना के प्राप्त नहीं हो सकता। अतः मानव को उसकी अर्चना में तत्पर होना चाहिये। यह महर्षि की कामना है।

[यहाँ **परस्तात्** का अर्थ **शंकराचार्य** के अनुसार अक्षरब्रह्म से विलक्षण और **शंकरानन्द** के अनुसार अविद्या से विलक्षण है।

ब्रह्मदेव, प्रजापति इन्द्रादि देवताओं का सर्वोत्कृष्ट और स्वाभाविक ईश्वरत्व यहीं विश्राम पाता है; क्योंकि वही ब्रह्मादि सभी देवों के कारणस्वरूप हैं। अतएव **'सिद्धान्तशिखामणि'**कार उस महेश्वर की इस प्रकार वन्दना कर रहे हैं—

''यत्र विश्राम्यतीशत्वं स्वाभाविकमनुत्तमम्।
नमस्तस्मै महेशाय महादेवाय शूलिने।।'' (१.७)

जैसा कि इसके व्याख्याकार **श्रीमरितोण्टदार्य** लिखते हैं— **''महेशाय महेश्वराय'' ''तमीश्वराणां परमं महेश्वरम्'' इति श्रुतेः (श्वे.उ.६/७) ब्रह्मादिकारणेश्वराय''**।]

मन्त्रार्थ— हम ब्रह्मज्ञानी ईश्वर के रूप में प्रसिद्ध सभी ब्रह्मदेव आदिदेवों के भी ईश्वर इन्द्रादि, देवताओं से भी सर्वोत्कृष्ट दैवत प्रजापति आदि देवों के भी रक्षक त्रिभुवनपालक स्तुतिभाजन देवाधिदेव महादेव को जानते हैं।।७।।

CC0. In Public Domain. Jangamwadi Math Collection, Varanasi

Digitization by eGangotri and Sarayu Trust. Funding by MoE-IKS

न तस्य कार्यं करणं च विद्यते
न तत्समश्चाऽभ्यधिकश्च दृश्यते।
पराऽस्य शक्तिर्विविधैव श्रूयते
स्वाभाविकी ज्ञानबलक्रिया च।।८।।

'न तस्ये'ति। **तस्य** देवस्य **कार्यं** कार्यसाधकं शरीरं वा **करणमि**न्द्रियादिकं वा **न विद्यते** नास्ति। सः न करणकलेवरादिकमपेक्षते जगद्व्यापारनिर्वाहाय।

अवतरण— इसके पूर्व **''सर्वेन्द्रियगुणाभासं सर्वेन्द्रियविवर्जितम्''** (३.१७), **''अपाणिपादो जवनो ग्रहीता''** (३.१९) इत्यादि मन्त्रों में परमात्मा से देह-इन्द्रिय आदि का अभेद प्रतिपादित है। उसी प्रकार **''देवात्मशक्तिं स्वगुणैर्निगूढाम्''** (१.३), **''य एको जालवानीशत ईशनीभिः''** (३.१), **''सर्वाल्लोकानीशत ईशनीभिः''** (३.२) इत्यादि मन्त्रों में परमात्मा की **'ईशनी'** (शासन-शक्ति) का संकेत है। इस मन्त्र में भी परमेश्वर के अशरीरित्व-इन्द्रियराहित्य और विविध पराशक्ति का परिचय दिया जा रहा है—

''न तस्य कार्यं करणं च विद्यते''[1] इत्यादि। **तस्य** = उस परशिवस्वरूप परमेश्वर का, **कार्यम्** = कार्यसाधक शरीर, **करणं च** = और पञ्च ज्ञानेन्द्रिय और पञ्च कर्मेन्द्रिय, **न विद्यते** = नहीं हैं। वह परमेश्वर जगत् का व्यापार चलाने के लिये करण (इन्द्रियसमूह), कलेवर इत्यादि की अपेक्षा नहीं करता।

[जैसा कि **'सिद्धान्तशिखामणि'**कार कहते हैं—

''अशरीरोऽपि सर्वत्र व्यापकोऽपि निरञ्जनः।
आत्मा मायाशरीरस्थं परिभ्रमति संसृतौ।।'' (१८.९)

अर्थात् परमशिव यद्यपि अशरीरी व्यापक दोषरहित है, तथापि वह मायाशरीर का आश्रय लेकर संसारचक्र में भ्रमण करता है।

---

१. इसका हिन्दी पद्यानुवाद इस प्रकार है—
''देह और इन्द्रिय से उनका है सम्बन्ध नहीं कोई।
अधिक कहाँ उनके सम भी तो दीख रहा न कहीं कोई।।
ज्ञानरूप, बलरूप, क्रियामय उनकी परा शक्ति भारी।
विविध रूप में सुनी गयी है, स्वाभाविक उनमें सारी।।''
('कल्याण', उपनिषद् अंक, जनवरी १९४९, पृ. ३)

CC0. In Public Domain. Jangamwadi Math Collection, Varanasi

Digitization by eGangotri and Sarayu Trust. Funding by MoE-IKS

तत्समः तेन समानवैभवः **अधिक**स्तत उत्कृष्टो वा **न विद्यते।**

अस्य देवस्य महाप्रकाशस्य **परा** सर्वोत्कृष्टा **शक्तिर्विविधैव** अनेकप्रकारैव **श्रूयते।** सा च **स्वाभाविकी** नित्यसहजसिद्धा पुष्पे गन्ध इव, चन्द्रे चन्द्रिकेव, क्षीरे माधुर्यमिव शक्तिः परशिवे अविनाभावतया प्राणरूपेण विलसति।

''अकारणमकार्यं यदशेषोपाधिवर्जितम्। तद् ब्रह्म''....... (सि.शि.म., १९.४९) इस पद्य की व्याख्या करते हुए **'तत्त्वप्रदीपिका'कार मरितोण्टदार्य** कहते हैं— **''न तस्य कार्यं करणं च विद्यते''** (६.८) श्वेताश्वतर उपनिषद् के इस मन्त्रानुसार परब्रह्म कार्यकारणशून्य हैं— **''यद् वस्तु *''न तस्य कार्यं करणं च विद्यते''* (६.८) इति श्वेताश्वतरश्रुतेः कार्यकारणशून्यं तद् ब्रह्म।''**]

''न तत्समश्चाप्यधिकश्च दृश्यते''— परमशिव के समान न तो कोई है और न कोई उससे उत्कृष्ट है।

[इसी बात को **'सिद्धान्तशिखामणि'**कार (१०.९) इस प्रकार कहते हैं—

''ब्रह्माद्यैर्मलिनप्रायैर्निर्मले परमेश्वरे।
साम्योक्तिं यो न सहते स वै माहेश्वराभिधः।।''

इस पद्य में वर्णित माहेश्वर का स्वरूप इसी श्रुति का अनुसरण कर रहा है। **''अनन्यदेवसादृश्यं श्रुतिराह सनातनी''** (सि.शि.म. ११.३४) यह वचन भी इसी मन्त्रार्थ का अनुसरण कर रहा है।]

'पराऽस्य शक्तिर्विविधैव श्रूयते स्वाभाविकी''— उस महाप्रकाश परमशिव की सर्वोत्कृष्ट नाना प्रकार की परा शक्ति श्रुतिगोचर होती है, जो स्वाभाविक सहजसिद्ध है। वह प्राणशक्ति के रूप में परशिव के साथ अविनाभावसम्बन्ध से उसी प्रकार विलास करती है, जिस प्रकार पुष्प में सुगन्धि, चन्द्र में चन्द्रिका और दूध में मधुरता अभिन्न रूप से रहती है।

['सिद्धान्तशिखामणि'कार कहते हैं—

''यथा चन्द्रे स्थिरा ज्योत्स्ना नित्यवस्तुप्रकाशिनी।
तथा शक्तिर्विमर्शाख्या प्रकाशे ब्रह्मणि स्थिरा।।'' (२०.३८)

अर्थात् जिस प्रकार जगत् को प्रकाशित करनेवाली चन्द्रिका चन्द्र में स्थिररूप से रहती है, उसी प्रकार समस्त-वस्तु-प्रकाशिका विमर्शशक्ति प्रकाशस्वरूप परशिव ब्रह्म में स्थिररूप से वास करती है।]

CC0. In Public Domain. Jangamwadi Math Collection, Varanasi

Digitization by eGangotri and Sarayu Trust. Funding by MoE-IKS

"न शिवेन विना शक्तिर्न शक्तिरहितः शिवः।
पुष्पगन्धवदन्योन्यं मारुताम्बरयोरिव।।"

इत्यभियुक्ताः शिवशक्त्योः परस्परसम्बन्धं साहजिकं वदन्ति।

"वागर्थाविव सम्पृक्तौ पार्वतीपरमेश्वरौ" (रघु. १.१)

इति महाकविः **कालिदासः** साकारयोः शिवशक्त्योः मिथः संयोगमभिधत्ते। तयोर्मूलभूते अमूर्ते परमशिवे तावत् **परा शक्तिः** प्राणरूपेण विलीनैव वर्तते।

"सैषा परमा शक्तिः सच्चिदानन्दरूपिणी।"

इति **सिद्धान्तशिखामणिस्तस्याः** स्वरूपमभिधत्ते। परमशिव इव परा शक्तिरपि सत्यज्ञानानन्दमयी वर्तते। अत एव तयोर्भेदो नास्ति। भक्तानुग्रहलीलानिर्वाहाय सैव शक्तिरमूर्तपरमशिवनिष्ठा पार्वती, उमा इत्यादिशब्दैर्व्यवह्रियमाणा तस्माद् भिन्ना तेन सहैव स्थित्वा जगत्कल्याणाय तस्मै सहकरोति। अतः शिवशक्त्योर्भेदाभेदसम्बन्ध एव युज्यते। पराशक्तेः स्वरूपं विविच्य प्रदर्शयति-'**ज्ञाने**'ति। सा

"न शिवेन विना शक्तिः" इत्यादि अभियुक्तोक्ति के अनुसार शिव और शक्ति का परस्पर सहज सम्बन्ध उसी प्रकार है, जिस प्रकार पुष्प और गन्ध का अथवा आकाश और वायु का। न तो शक्ति के बिना शिव रह सकते हैं और न शिव के बिना शक्ति।

"वागर्थाविव सम्पृक्तौ" इत्यादि रघुवंश महाकाव्य के प्रारंभिक मांगलिक पद्य में महाकवि कालिदास पार्वती और परमेश्वर दोनों की अर्धनारीश्वरमूर्ति के रूप में प्रतिष्ठित शिव और शक्ति के सहज साकार सम्बन्ध को प्रतिष्ठापित करते हैं। उन दोनों के मूलभूत अमूर्त परशिव में पराशक्ति प्राण रूप में विलीन होकर रहती है।

"सैषा परमा शक्तिः सच्चिदानन्दरूपिणी" यह पराशक्ति का स्वरूप सिद्धान्तशिखामणि निरूपित करती है। जिस प्रकार परमशिव सच्चिदानन्दस्वरूप हैं, उसी प्रकार पराशक्ति भी सच्चिदानन्दस्वरूपिणी है, अत एव उन दोनों में कोई भेद नहीं है। भक्तों पर अनुग्रह करने के लिये वह अपनी लीला का निर्वाह करती है। वह अमूर्त शक्ति अमूर्त परशिव से सम्बद्ध रहती है। जब परमशिव दिव्यविग्रह को धारण करते हैं, तब वह अमूर्त शक्ति भी पार्वती-उमा इत्यादि नामों से संबोधित होती हैं और अमूर्त शिव से पृथक् होकर दिव्यविग्रहधारी शिव के साथ मूर्त रूप लेकर जगत् का कल्याण करने के लिये उसे सहयोग देती है। अतः शिव एवं शक्ति का परस्पर भेद-अभेद सम्बन्ध ही युक्तिसंगत है।

CC0. In Public Domain. Jangamwadi Math Collection, Varanasi

Digitization by eGangotri and Sarayu Trust. Funding by MoE-IKS

तु **ज्ञानबलक्रिया** च स्वयं इच्छारूपिणी सा शक्तिरन्तरङ्गे ज्ञानमयी, बहिरङ्गे बलक्रियामयी बलयुक्ता क्रियामयी भवति। क्रिया सर्वदा बलप्रयुक्तैव वर्तते। दुर्बलो न कदापि क्रियायां निरतो भवेत्, तथापि अर्थवैशद्याय बलक्रियेति प्रयोगः। एवं च पराशक्तेर्बहिरङ्गभूता क्रियाशक्तिः सर्वथा वीर्यवत्तरा शीघ्रकार्यकारिणी

परा शक्ति के स्वरूपभेद इस प्रकार विवेचित हैं— **"ज्ञानबलक्रिया च"**; वह इच्छारूपिणी पराशक्ति अन्तरङ्ग में ज्ञानमयी और बहिरङ्ग में बलक्रियास्वरूपिणी है। क्रिया सर्वदा बल (शक्ति) से सम्पन्न ही होती है। दुर्बल (कमजोर) कोई काम नहीं कर सकता। तथापि अर्थ स्पष्ट करने के लिये 'बलक्रिया' इस प्रकार का प्रयोग किया गया है। इस प्रकार पराशक्ति की बहिरङ्गभूत(बाह्य)क्रियाशक्ति सदा अत्यन्त वीर्यसम्पन्न और क्रियाकारिणी होती है, यह इससे सूचित होता है। परमशिव लोककल्याण करने के लिये जो जो चाहता है, ज्ञानशक्ति यदि उसकी सम्यक् विवेचना करती है, तब क्रियाशक्ति वह सभी कार्यरूप में परिणत करती है। इस प्रकार शिव की इच्छा परा शक्ति की सहायता से विवेचन के साथ कार्य-निर्वाह करती है, यही शिव के साथ शक्ति के संयोग का विशिष्ट महत्त्व है।

[**पौष्करागम** का वचन भी इसका समर्थन करता है—

"ज्ञानक्रियात्मिका साऽपि सत्या नित्योदितप्रभा।
अनन्या स्याच्छिवात् सैव वस्तुतो मूर्तिरीश्वरी।।"

श्री रेणुकभगवत्पाद कहते हैं—

"निष्कलङ्कचिदानन्दगगनोपमरूपिणः ।
शिवस्य परिपूर्णस्य वृत्तिश्चैतन्यरूपिणी।।"

(सि.शि.म. १९.७७)

"गुणत्रयात्मिका शक्तिर्ब्रह्मनिष्ठा सनातनी।
तद्वैषम्यात् समुत्पन्ना तस्मिन् वस्तुत्रयाभिधा।।"

(सि.शि.म. ५.३९)

निष्कर्ष यह है कि वह चित्स्वरूप परमशिव की अमूर्त चैतन्यशक्ति है, जो त्रिगुणात्मिका इच्छा-ज्ञान-क्रियास्वरूपिणी सच्चिदानन्दमयी है और विषमता से दोनों पृथक्-पृथक् दिव्यशरीर धारण कर जगत्कल्याण का सारा कार्य करते हैं।

आचार्य शंकर **'ज्ञानबलक्रिया'** का अर्थ इस प्रकार करते हैं— **"ज्ञानबलक्रिया च–ज्ञानक्रिया बलक्रिया च। ज्ञानक्रिया सर्वविषयज्ञानप्रवृत्तिः, बलक्रिया स्वसन्निधिमात्रेण सर्वं वशीकृत्य नियमनम्।"**— परा शक्ति के दो रूप हैं—

CC0. In Public Domain. Jangamwadi Math Collection, Varanasi

Digitization by eGangotri and Sarayu Trust. Funding by MoE-IKS

च वर्तत इति सूच्यते। परमशिवो लोककल्याणाय यद् यदिच्छति तस्य समीचीनां विवेचनां ज्ञानशक्तिर्यदि करोति तदा क्रियाशक्तिस्तत् सर्वं तथैव कार्यरूपमानयति। एवं शिवस्येच्छा विवेचनपूर्वकं निरुह्यते शक्तिसहकारेण। अयमेव तच्छशक्तियोगस्य महिमातिशयः॥८॥

ज्ञानक्रिया और बलक्रिया। ज्ञानक्रिया का अर्थ है सम्पूर्ण विषयों को समझने की प्रवृत्ति और बलक्रिया का तात्पर्य है सबको वश में रखकर उन पर नियन्त्रण रखना।

विज्ञानभगवान् **"पराऽस्य शक्तिर्विविधैव श्रूयते स्वाभाविकी ज्ञानबलक्रिया च"** इस मन्त्रभाग की व्याख्या इस प्रकार करते हैं— **"अस्य देवस्य परा मूलप्रकृतित्वेन सर्वव्यापकत्वात् परा सर्वोत्कृष्टा शक्तिर्देवात्मशक्तिरित्येवोक्ता विविधाऽनन्तकार्यकरणप्रकृतित्वात् तत्तद्रूपेण विविधा श्रूयते श्रुतिस्मृत्यादिषु सर्वत्र।"**

ज्ञानबलक्रिया— सर्वज्ञेयविषयसर्वलक्षणानुभूतिर्ज्ञानक्रिया सा सर्वज्ञेयाकरसर्वसत्त्वगुणपरिणामरूपक्रिययाभिव्यक्तत्वात् क्रियावदवभासत इति क्रियेत्युच्यते। सेश्वरस्य स्वरूपत्वात् स्वाभाविकी नाऽन्यायत्तेति यावत्। बलक्रिया नाम स्वसन्निधिमात्रेण प्रकृतिप्राकृतं सर्वं वशीकृत्य नियमयति। सा च सर्वकल्पनाधिष्ठानभूतेश्वरस्य स्वाभाविकी अथवा बलक्रिया बलं नामाऽनन्तसत्ता तया सर्वस्य लब्धात्मकत्वात् सैव धातुवाच्यत्वात् क्रियेत्युच्यते।"

इस व्याख्याभाग का आशय इस प्रकार है— परमशिव की परा शक्ति मूलप्रकृति अथवा देवात्मशक्ति है, जो सर्वव्यापक होने के कारण सर्वोत्कृष्ट है, वह शक्ति सर्वत्र श्रुति-स्मृति-पुराण-आदि विविध वाङ्मय में नाना प्रकारों में वर्णित है, क्योंकि वहाँ अनन्तकार्य करने में उसकी प्रवृत्ति पायी जाती है।

उस परा शक्ति की विविध क्रियाएँ हैं— ज्ञानक्रिया और बलक्रिया। उसको ज्ञानयोग्य इसलिये कहा जाता है कि ज्ञानयोग्य सभी विषयों और सत्त्वगुण की अभिव्यक्ति उसी के द्वारा होती है, जो क्रिया के समान है। परमेश्वर की अनादि-अनन्त सत्ता ही बल है, जो धातु के रूप में समस्त प्राणियों में रहती है, जिसके केवल सान्निध्य से संसार के चेतन-अचेतन पदार्थों को वश में रखते हुए उस पर नियन्त्रण किया जाता है। परमेश्वर की इच्छाशक्ति अथवा संकल्पशक्ति के विविधरूप हैं, जिन्हें हम ज्ञानक्रिया, बलक्रिया आदि नाम देते हैं।]

मन्त्रार्थ— (परमशिव निर्गुण, निराकार, निष्कल हैं।) न तो उनका कोई कार्यस्वरूप शरीर है और न करणस्वरूप इन्द्रियसमूह। न तो कोई उससे अधिक बढ़-चढ़कर सर्वोत्कृष्ट है और न कोई उनके समान उनकी बराबरी का ही है। परमशिव की अमूर्त परा शक्ति भी विविध श्रुति-स्मृति-पुराण-इतिहास आदि वाङ्मय में ज्ञानक्रिया, बलक्रिया आदि विविध नामों से वर्णित है।।८।।

CC0. In Public Domain. Jangamwadi Math Collection, Varanasi

Digitization by eGangotri and Sarayu Trust. Funding by MoE-IKS

त तस्य कश्चित् पतिरस्ति लोके
न चेशिता नैव च तस्य लिङ्गम्।
स कारणं करणाधिपाधिपो
न चाऽस्य कश्चिज्जनिता न चाऽधिपः।।९।।

'न तस्ये'ति। एवं निस्समानधिकत्वान्न **तस्य** देवस्य **कश्चिदन्यः पती** रक्षको **लोकेऽस्ति। ईशिता** नियन्ता **च** कश्चिदन्यो **नास्ति। तस्य** तादृशस्यास्य **लिङ्गं** गमकमपि वह्नेर्धूम इव **नैव** किञ्चिदप्यस्ति। अनुमातुं स न शक्य इत्यर्थः। अनुमानप्रमाणेन परमशिवं स्थिरयितुं न शक्यते। **करणाधिपाधिपः** करणानामिन्द्रियाणामधिपस्य जीवस्य शरीरस्वामिनोऽपि स परमशिवः कारणं सम्पद्यते। सर्वस्यापि कारणं भवति परमशिव इत्यत्र शब्दरूपा श्रुतिरेव प्रमाणम्।

एवं सर्वकारणस्य अस्य तु **कश्चिज्ज**निता उत्पादको न चास्ति, **तदधिपश्च** नास्ति। एवं सोऽगम्योऽप्रमाणोऽगोचर एव सन् जगद्व्यापारं लीलयैव निर्वहन्

अवतरण— परशिवस्वरूप परब्रह्म परमात्मा की विलक्षणता बार बार निरूपित की जा रही है—

'न तस्य कश्चित्'[१] इत्यादि। इस प्रकार यतः न तो उसके कोई समान है और न कोई अधिक, अत; उस देवाधिदेव का कोई अन्य 'पति' रक्षक नहीं है। उसका कोई 'ईशिता' नियामक भी नहीं है। जिस प्रकार वह्नि का अनुपामक चिह्न धूम होता है, उस प्रकार का अनुमापक कोई विशिष्ट चिह्न भी नहीं। उसका अनुमान करना भी सम्भव नहीं है। अनुमानप्रमाण से परमशिव का स्वरूप निश्चित नहीं किया जा सकता। जीवात्मा 'करण' इन्द्रियस्वामियों का अधिपति होता है, परमात्मा उस जीवात्मा का भी अधिपति और उसका कारण है। परमशिव ही सबका कारण होता है, इसमें शब्दस्वरूप श्रुति ही प्रमाण है।

इसप्रकार सर्वकारणस्वरूप उस परमेश्वर का कोई जनक उत्पादक नहीं है और न उसका कोई स्वामी है। इस प्रकार वह अगम्य प्रमाणातीत इन्द्रियागोचर होकर ही लीलया अनायास ही जगत् के व्यवहार का सञ्चालन करते हुए प्रत्येक जीव को

---

१. इस मन्त्र का हिन्दी पद्यानुवाद इस प्रकार है—
"वे ही पति, इस जग में कोई उनका अधिपति शेष नहीं।
शासक भी न, कहीं पर उनका कोई चिह्नविशेष नहीं।।
वे ही एक परम कारण हैं, इन्द्रिय देवों के अधिनाथ।
जनक न उनका, अधिप न कोई, उनसे ही सब विश्व सनाथ।।"
(**'कल्याण'**, उपनिषद् अंक, जनवरी १९४९, पृ. ४)

CC0. In Public Domain. Jangamwadi Math Collection, Varanasi

Digitization by eGangotri and Sarayu Trust. Funding by MoE-IKS

एकैकस्यापि जीवस्य तत्तत्कर्मानुगुणं फलं प्रददाति। अत एव स सर्वत्र स्थितोऽप्यलोकधर्मा विराजते। एवं परमात्मनोऽसङ्गोदासीनतां निरञ्जनतां च जानन् तत्सम्बन्धी मानवस्तथैव वर्तेतेति महर्षिरपेक्षते॥९॥

एवं परमात्मानं स्तुत्वा तत्र स्वाभीष्टं प्रार्थयते महर्षिः—

यस्तन्तुनाभ इव तन्तुभिः प्रधानजैः
स्वभावतो देव एकः स्वमावृणोत् ।
स नो दधाद् ब्रह्माप्ययम्॥१०॥

'यस्तन्तुनाभ' इति। **य** ईदृश **एको देवस्तन्तुनाभ** ऊर्णनाभि**स्तन्तुभिरिव** स्वसृष्टतन्तुवेष्टित इव **प्रधानजै**स्त्रिगुणद्रव्यप्रभवैर्महदादिभिः **स्वभावत** एव सहजतयैव **स्व**मात्मान**मावृणोदा**च्छादितवान्। अतस्त्रिगुणाख्यमायावृतत्वात् स न सर्वेषां गोचरीभवति। **स** देवो **नो**ऽस्माकं **ब्रह्माप्ययं** ब्रह्मणा स्वेन परशिवेन अप्ययं लयं सामरस्यं **दधात्** कुर्यात्।

उसके कर्म के अनुरूप फल प्रदान करता है। इस प्रकार वह सर्वत्र प्रतिष्ठित होने पर भी लोकधर्म से विलक्षण आचरण करता है। इस प्रकार महर्षि की मानवमात्र के प्रति यह कामना है कि वह परमात्मा के संगराहित्य, उदासीनभाव और निरञ्जनता (निर्लिप्तता) से परिचित होकर उसी प्रकार आचरण करे।

मन्त्रार्थ— समस्त स्थावर-जङ्गमात्मक इस जगत् में उस परशिवस्वरूप परब्रह्म परमात्मा का न तो कोई रक्षक अधिपति है, न कोई उसको नियन्त्रित रखनेवाला है और न उसका कोई अनुमापक चिह्न है। वह सबका कारण है, उपादान कारण भी और निमित्तकारण भी। इन्द्रियसमूहों के अधिष्ठाता जीवात्मा का भी वह स्वामी है। न तो उसका कोई जनक है और न कोई अधिपति। परब्रह्म परमात्मा सबसे विलक्षण है॥९॥

अवतरण— महर्षि श्वेताश्वतर इस प्रकार परमात्मा की स्तुति कर अपनी वांछित वस्तु की प्रार्थना कर रहे हैं—

''यस्तन्तुनाभ इव'' इत्यादि। **''यः एको देवः** = एक अद्वितीय अखण्ड परिपूर्ण परमप्रकाशस्वरूप जिस परमेश्वर ने, **तन्तुनाभः तन्तुभिरिव** = जिस प्रकार मकड़ी अपने तन्तुओं से ही (अपने को ढ़क लेती है, उसी प्रकार) **प्रधानजैः तन्तुभिः** = प्रकृति ने सत्त्व-रज और तम इन तीन गुणों के द्रव्यों से उत्पन्न महत् तत्त्वादि के द्वारा, **स्वभावत एव** = सहजभाव से ही, **स्वम् आवृणोत्** = स्वयं को आच्छादित किया है। अतः त्रिगुणात्मिका

CC0. In Public Domain. Jangamwadi Math Collection, Varanasi

Digitization by eGangotri and Sarayu Trust. Funding by MoE-IKS

परमशिवो देहे पञ्चतत्त्वमये जीवेन सह वसन्नपि मायावृतः सन् न हि भोगिनामनुभववेद्यो भवति। यदि सोऽस्माभिर्ज्ञायते उपास्यते च, तदा सोऽस्माकं प्रसन्नो भूत्वा स्वीयमानन्दमनुगृह्णाति। यद्युपासको निष्कल्मषो निष्कामश्च भवेत्, तदा सोऽवश्यं शिवेन युक्तो भवति। एवं च परमात्मानुग्रहेणैव मानव आत्मकल्याणं साधयेदित्यर्थः। एवं हृदिस्थपरमात्मानुभवाय यतमानः पुरुषः प्रथमं महात्मवाणीं पुरस्कुर्यात्। तस्या अमरवाण्या महत्त्वं यदि स जानाति तदा तस्य आत्मविश्वास उत्पद्येत। अयमेवांशः **शरणगीतायामेवमभिधीयते—**

''साधोर्हि वाणी परुषैव दृष्टा विश्वास्यमेकं हि सदाशिवाख्यम्।
लिङ्गं हि विश्वस्य भवान् विजेता निम्बस्य चास्वादनकाल एव।।
तिक्तो रसो भासत एव बाह्ये हृदन्तराले मधुरस्वरूपः।
तथैव चाद्येरितवाग् विशेषो ह्यादौ तु तिक्तस्तत एव चेष्टः।।'' इति।

एवं महात्मनाममरवाण्यां दृढं यो विश्वसेत् स एव मायावृतं परमेश्वरं हृदयेऽनुभवितुं पारयति।

माया के आवरण से आच्छादित रहने के कारण वह सभी को दृष्टिगोचर नहीं होता। **सः** = वह परमेश्वर, **नः** = हमारा, **ब्रह्माप्ययम्** = (ब्रह्मणा अप्ययम्) स्वयं के साथ अर्थात् परशिवस्वरूप परब्रह्म के साथ विलय (सामरस्य), **दधात्** = स्थापित करे।

परमशिव पाञ्चभौतिक पञ्चतत्त्वों से निर्मित शरीररूपी नगर में जीव के साथ रहते हुए भी माया के आवरण से आच्छादित होते हुए विषयासक्त भोगी उसे जान नहीं सकते। यदि हम उसे जान लें और उसकी उपासना करें तो वह प्रसन्न होकर अपने परशिवस्वरूप ब्रह्मानन्द से हमपर अनुग्रह करेगा। अगर उपासक निर्मल-निष्पाप हो, तो वह अवश्य शिव के साथ संयुक्त होगा। एवं च मानव परमात्मा के अनुग्रह से ही अपना कल्याण कर सकता है। इस प्रकार हृदयकमल में प्रतिष्ठित परमात्मा का साक्षात्कार करने के लिये प्रयत्नशील पुरुष (जीव) को चाहिये कि वह सन्त-महात्माओं की वाणी का सम्मान (पुरस्कार) करे। यदि वह उस अमरवाणी का महत्त्व जानता है, तो उसका आत्मविश्वास जागृत होगा, यही आशय **शरणगीता**स्थित **''साधोर्हि वाणी''** इत्यादि पद्यों द्वारा इस प्रकार प्रकाशित किया गया है—

"साधु-सन्त की वाणी आपाततः कठोर प्रतीत होती है। केवल एक सदाशिव-लिङ्ग ही विश्वासयोग्य है। कड़वी नीम की पत्ती को चबाते समय उसका रस ऊपर से तीता-कसैला लगता है और भीतर हृदय के अन्तराल में उसका स्वरूप मीठा होता है। उसी प्रकार प्रकाशित साधुसन्त की आद्य वाणी की यही विशेषता है कि वह प्रथम तीखी-कड़वी लगती है और बाद में हितकर प्रतीत होती है।"

CC0. In Public Domain. Jangamwadi Math Collection, Varanasi

Digitization by eGangotri and Sarayu Trust. Funding by MoE-IKS

''करी यथा दर्पण एव लीयते तथा त्वमेवाद्य निलीयसे मयि।''

इत्यात्मविश्वासेन **शरणाः** स्वात्मस्थं परमशिवमभिज्ञयन्ति। तादृशोऽव्यक्तः परमशिवः केवलं भावनामयो वर्तते। अत एव भावजीविनां महानुभावानां दिव्यवाण्यां सजीवो विश्वासो निधेयो वर्धिष्णुभिः।

महात्मनामनुभववाण्यास्तु महत्त्वमेवं वर्णयति **शरणगीता**—

''क्षीरप्रवाहे गुडपङ्कपूर्णे सच्छर्करावालुकसन्निविष्टे।
तथैव खण्डात्मकफेनयुक्ते सुभाषिते सत्यपि दिव्यवाक्ये।।
कूपं खनित्वाऽन्यमपेयरूपं क्षारं जलं पीतवतो गतिः स्यात्।।''

इत्येवमनुभविनां दिव्यां वाणीं क्षीरसागरतुल्यां भावयन्ति शिवयोगिनः। तादृशेषु योगिषु यो विश्वसिति स एव स्वान्तर्गतं महेश्वरं ज्ञातुं शक्नोति।।१०।।

इस प्रकार जो सन्त-महात्माओं की अमरवाणी पर दृढ़ विश्वास करता है, वही अपने हृदयकमल में माया के आवरण से आच्छादित परमेश्वर का साक्षात्कार (अनुभव बोध) कर सकता है।

''करी यथा दर्पण एव लीयते'' इत्यादि सुभाषित द्वारा 'शरण' भक्त आत्मविश्वासपूर्वक हृदयस्थित परमशिव से परिचित कराते हैं। इस सूक्ति का आशय यह है— ''जिस प्रकार हाथी का प्रतिबिम्ब दर्पण में ही विलय प्राप्त करता है, उसी प्रकार तुम आज मुझमें विलय प्राप्त करोगे।'' इस प्रकार अव्यक्त परमशिव केवल भावनामय (भावलिङ्गस्वरूप) होता है। अत एव अपने उत्कर्ष की कामना करने वाले जीवों को चाहिये कि वे भावजीवी सन्त-महात्माओं की दिव्यवाणी पर अपने विश्वास को जीवित रखें।

शरणगीता महात्माओं की अनुभवमयी वाणी का महत्त्व इस प्रकार वर्णन करती है— **''क्षीरप्रवाहे''** इत्यादि। ''जिस प्रकार गुड और चीनी के मिश्रण से परिपूर्ण अत्यन्त मधुर दुग्धधारा के रहते हुए भी कूवां खोदकर उसका खारा अपेय जल पीने से मनुष्य की जो दुर्गति होती है, वही दुर्गति अमृतोपम सन्तवाणी का अनादर करने वाले की होती है।''

इस प्रकार शिवयोगी अनुभवी महात्माओं की वाणी की तुलना क्षीरसागर की दुग्धधारा से करते हैं। उस प्रकार के योगियों पर जो विश्वास करता है, वही अपने अन्तरङ्ग में प्रतिष्ठित महेश्वर को जान सकता है।

[इस मन्त्र में **''य एको जालवानीशत ईशनीभिः''** (३.१) इस पूर्व-प्रतिपादित **'जालवान्'** परमशिव के **'जाल'** का विस्तृत विवेचन है। जैसा कि

CC0. In Public Domain. Jangamwadi Math Collection, Varanasi

Digitization by eGangotri and Sarayu Trust. Funding by MoE-IKS

एतादृशपरमात्मज्ञानमेव मोक्षहेतुर्नान्यदिति वक्तुं पुनस्तं स्तौति—

एको देवः सर्वभूतेषु गूढः
सर्वव्यापी सर्वभूतान्तरात्मा।
कर्माध्यक्षः सर्वभूताधिवासः
साक्षी चेता केवलो निर्गुणश्च।।११।।

देवः उक्तः परमात्मा **एक** अद्वितीयः। **सर्वभूतेषु** सर्वप्राणिष्वपि **गूढो** गूढतया वर्तमानः। अतः **सर्वव्यापी** सन्नपि स **सर्वभूतान्तरात्मा** सर्वप्राणिनामन्तर्यामी च वर्तते। **कर्माध्यक्षः** सर्वप्राणिकृतपुण्यापुण्यसाक्षिभूतस्तत्फलप्रदश्च सम्पद्यते।

भाष्यकार उस मन्त्र की व्याख्या में लिखते हैं— **''अत्र 'जालवानि'त्यनेन ऊर्णनाभिदृष्टान्तः सूच्यते।''** महर्षि श्वेताश्वतर ने उपसंहारक्रम से लिङ्गाङ्गसामरस्य का उपदेश इस मन्त्र में दिया है। **'मुण्डकोपनिषद्'** में **'यथोर्णनाभिः सृजते गृह्यते च'** (१.१.७) इस मन्त्र ऊर्णनाभिदृष्टान्तद्वारा प्रधानरूप से अक्षरब्रह्म का सृष्टिक्रम सूचित किया है— **''तथाऽक्षरात् सम्भवतीह विश्वम्।''** यद्यपि उसमें गौणरूप से विलयक्रम का भी संकेत है। इसके भाष्यकार उमचिगि शंकरशास्त्री जी ने यह सिद्धान्त स्थिर किया है— **''कारणान्तरनैरपेक्ष्येण ईप्सितार्थप्रदचिन्तामण्यादिवद् योगिवच्च ऊर्णनाभिवच्च मयूराण्डरसगतपादपक्षादिवर्णवैचित्र्यन्यायेन जडाजडात्मकं विश्वं शिवादिधरण्यन्तं प्रकटीकृत्य तत्स्थितिसंहारबन्धमोक्षलक्षणकृत्यप्रवीणं परशिवलिङ्गमेव अक्षरमिति सिद्धान्तः।''**]

मन्त्रार्थः— जिस प्रकार मकड़ी तन्तुजाल फैलाकर अपने ही तन्तुओं से स्वयं को उसमें विलीन कर लेती है, उसी प्रकार परमशिव जिस प्रकार अपने मायाजाल से स्वयं को विलीन करते हैं, उसी प्रकार अंशस्वरूप मुझे भी स्वयं में विलीन करें''– यह महर्षि की कामना है।।१०।।

अवतरण— महर्षि को यह विवक्षित है कि इस प्रकार (लिङ्गाङ्गसामरस्यस्वरूप) परमात्मसाक्षात्कार ही मोक्ष का कारण है, इसलिये पुनः वे परमशिव की स्तुति कर रहे हैं—

''एको देवः''[१] इत्यादि। **देवः** = चित्प्रकाशस्वरूप पूर्ववर्णित परमशिव, **एकः** = अद्वितीय, अखण्ड एक हैं। **सर्वभूतेषु** = सभी प्राणियों में, **गूढः** = गुप्तरूप से रहते

---

१. सबभूतों में छिपे हुए वे एक देव हैं परमात्मा,
सब में व्यापक सब जीवों के वे अन्तर्यामी आत्मा।
कर्मों के अधिपति फलदाता, सब के ही आश्रय-आवास,
साक्षी हैं केवल, निर्गुण हैं, चेतन हैं चैतन्य-प्रकाश।।
('कल्याण', उपनिषद् अंक, जनवरी १९४९, पृ.४)

CC0. In Public Domain. Jangamwadi Math Collection, Varanasi

Digitization by eGangotri and Sarayu Trust. Funding by MoE-IKS

"साक्षी चेता केवलो निर्गुणश्च" इत्यत्र तस्य सर्वसाक्षित्वं स्पष्टं श्रूयते। निर्गुणत्वं तु प्रलयकालीनशक्तिसङ्कोचपरत्वम्। तदीया साहजिका ज्ञानक्रियारूपा शक्तिस्तस्मिन् सृष्ट्युन्मुखे सति विकासावस्थायां वर्तते। प्रलये शक्तेर्विकासस्याऽनवकाशात् परशिवः स्वीयानन्दानुभव एव लीनो वर्तते।

एवं च परमशिवः सर्वभूताधिवासः सर्वेषु भूतेषु अधिष्ठाय वसति च। अत एव सः सर्वत्रोदासीन इवाऽऽसीनः **साक्षी** सर्वद्रष्टा सम्पद्यते। तत एव **चेता** सर्वचेतयिता केवलः शुद्धः केवलानन्दानुभव एव लीनः। एवं च ज्ञानक्रियारूपायाः शक्तेः सङ्कुचितावस्थायामपि तस्मिन् सत्त्वादित्रिगुणानामुत्कर्षाय अवकाशो यद्यपि न वर्तते। एवं सः त्रिगुणातीतः सन् परञ्ज्योतिःस्वरूपतया सर्वेषामपि हृदयगुहायां स्वयं लीलयैव विराजते।

"परेण नाकं निहितं गुहायां विभ्राजते तद् यतयो विशन्ति"

हैं। अतः **सर्वव्यापी** = सर्वत्र व्याप्त होने पर भी, **सर्वभूतान्तरात्मा** = सभी प्राणियों में अन्तर्यामी के रूप में वास करता है। **कर्माध्यक्षः** = सभी प्राणियों के द्वारा किये गये पुण्य और पापों का साक्षी और उन कर्मफलों को देने वाला होता है।

"साक्षी चेता केवलो निर्गुणश्च" इस चतुर्थ चरण में श्रुति उसका सर्वसाक्षी होना स्पष्ट प्रतिपादित करती है। उसके निर्गुण होने का अर्थ है प्रलयकाल में उसकी शक्ति का संकुचित होना। जब वह शिव सृष्टि की ओर अग्रसर होता है, तब उसकी स्वाभाविक ज्ञानक्रियास्वरूपा शक्ति विकासोन्मुख रहती है। प्रलय की स्थिति में शक्ति के विकास को अवकाश (स्थान) न मिलने के कारण परमशिव अपने आनन्द की अनुभूति में ही मग्न रहता है।

"सर्वभूताधिवासः"— इस प्रकार परमशिव सभी प्राणियों को अपना अधिष्ठान बनाकर वहाँ वास करता है।

"साक्षी"— अत एव वह सर्वत्र उदासीन तटस्थ जैसा रहकर उनका सर्वद्रष्टा हो जाता है। [जैसा कि **पाणिनीयाष्टक** में स्मरण किया गया है— **"साक्षाद् द्रष्टरि संज्ञायाम्"** (पा.सू.४.२.९१)।] **चेताः** = सभी प्राणियों को चैतन्यशक्ति प्रदान करने वाला, उनको चेतानेवाला वही है।

केवलः = निर्मल, शुद्ध कैवल्य (मोक्ष) के आनन्दरसपान में ही लीन है।

'निर्गुणश्च" ज्ञानक्रियास्वरूपा शक्ति की संकुचित स्थिति में भी उस परमशिव में सत्त्व-रज और तम तीनों गुणों के उत्कर्ष के लिये यद्यपि कोई अवकाश नहीं रहता और इस प्रकार वह त्रिगुणातीत तीनों गुणों से परे हो परम ज्योतिपुञ्ज के रूप में सभी की हृदयगुफा में स्वयं अनायास विराजता है। **"परेण नाकं निहितं गुहायाम्"** इस श्रुति वचन के अनुसार **"नाक"** अर्थात् स्वर्ग स्वर्गप्राप्तिसाधक इन्दियसमुदाय और

CC0. In Public Domain. Jangamwadi Math Collection, Varanasi

Digitization by eGangotri and Sarayu Trust. Funding by MoE-IKS

इति श्रुतौ नाकस्वरूपात् तत्साधकादिन्द्रियग्रामाद् देहात् परेण हृदयगुहायां यत्परज्योतिर्गोप्यतया निवसद् विराजते तत्र प्रयत्नशीलाः अन्तःप्रवेशचतुरा मुनय एव विशन्ति न तु बाह्यालोडनासक्ता भोगिनः। एवं सर्वैरपि आत्मदर्शनाय श्रद्धया प्रयतितव्यमिति भावः॥११॥

एको वशी निष्क्रियाणां बहूना-
मेकं बीजं बहुधा यः करोति।
तमात्मस्थं येऽनुपश्यन्ति धीरा-
स्तेषां सुखं शाश्वतं नेतरेषाम्॥१२॥

'एको वशी'ति। एतादृशो **य एको** देवो **वशी** स्वतन्त्रो निष्क्रियाणां पराधीनत्वात् स्वतः क्रियारहितानां **बहूनां** जीवानाम् **एकं बीजं** बीजस्थानीयं भूतसूक्ष्मं **बहुधा** बहुप्रकारं **करोति।** विशुद्धानां जीवानां नहि परस्परं तारतम्यादिकमस्ति। तारतम्यं तु तत्तज्जीवगतभूतसूक्ष्मकृतमेवेत्यर्थः। तं

शरीर से भी परे हृदयगुफा में गुप्त रूप से जो ज्योतिःपुञ्ज प्रकाशमान है, वहाँ प्रयत्नशील हृदयगुफा में प्रवेश करने में, चतुर मन्त्रद्रष्टा मुनि योगी ही प्रवेश करते हैं, शरीर के बाह्य आलोडन करने वाले विषयोपभोगरत भोगी नहीं। इसलिये सभी आत्मसाक्षात्कार के लिये श्रद्धापूर्वक प्रयत्नशील हों, यही इसका आशय है।

मन्त्रार्थ— वही अद्वितीय-अखण्ड-पूर्ण चित्प्रकाश परशिवस्वरूप परमेश्वर है, जो सभी प्राणियों में गुप्तरूप से वास करते हैं और सर्वत्र (सभी दिशाओं में) व्याप्त रहने पर भी सभी प्राणियों में अन्तर्यामी बनकर रहते हैं। वही सभी प्राणियों के कर्मफलों के प्रदाता और उनके अधिष्ठाता-अधिपति, तटस्थ भाव से सर्वद्रष्टा सबके प्रेरक 'कैवल्य' मग्न शुद्ध-बुद्ध और त्रिगुणातीत हैं॥११॥

अवतरण— अपने हृदयकमल में परमात्मसाक्षात्कार करनेवाले को ही सुखशान्ति मिलती है, अन्य को नहीं—

'एको वशी'[१] इत्यादि। (इस प्रकार का) **यः एकः वशी** = जो एकाकी अद्वितीय अखण्ड चित्प्रकाशस्वरूप सबको वश में करने वाला स्वतन्त्र परमेश्वर है,

---

१. इस मन्त्र का हिन्दी पद्यानुवाद इस प्रकार है—
''जो असंख्य निष्क्रिय जीवों के शासक और नियन्ता एक,
एकमात्र इस प्रकृति बीज को देते हैं जो रूप अनेक।
उन प्रभुको निज हृदयस्थित जो सदा देखते धीर प्रवीन,
उन्हें सनातन सुख मिलता है, नहीं उन्हें जो साधनहीन॥''
('कल्याण', उपनिषद् अंक, जनवरी १९४९, पृ.४)

CC0. In Public Domain. Jangamwadi Math Collection, Varanasi

Digitization by eGangotri and Sarayu Trust. Funding by MoE-IKS

तादृश**मात्मस्थम्** आत्मन्येव विद्यमानं **ये धीराः** धीमन्तोऽ**नुपश्यन्ति** साक्षात्कुर्वन्ति **तेषामेव शाश्वतं** सुखं मोक्षरूपं **नेतरेषाम्।**

स्वात्मनि विराजमानं यो योगमार्गेण जानाति स एव धीरशब्दवाच्यो भवति। धीर एव शिवयोगं लभते, तदानन्दमनुभवति च। लौकिकमपि दुःखं तस्यैव सुखायते। यतो देह एव वसति शिवस्ततः सर्वमपि तदिच्छानुरोधेन समागतमिति धीरः समदृष्टया स्वीकरोति। स एव धीरः शिवेन सह सामरस्यमप्यनुभवन् लोकं शिवदृष्ट्या वीक्षते। एतादृशः शिवयोगनिष्ठो धीरः स्वानुभवमेवमभिव्यनक्ति। स देवमेवं प्रार्थयते—

"त्वमेव भक्तिं कुरुषे तदैव भक्तस्त्वमेवासि च सेव्यरूपः।
न दृष्टमेवेह भवत्पदं मया त्वया न दत्तं मम तत्पदं प्रभो!।।" इति।

एवं शिवैक्यसुखमिहैव देहेऽनुभवितुर्धीरस्य प्रदातव्यमन्यत् स्थानमपि नास्ति। स देवं यत् किञ्चित् स्थानमपि न पृच्छति। स्वयं शिवभूतस्य तस्य

निष्क्रियाणां = पराधीन होने के कारण स्वयं कर्म करने में असमर्थ, **बहूनाम्** = बहुत से जीवों का, **एकं बीजम्** = बीजस्थानीय एक सूक्ष्म भूत को, **बहुधा करोति** = अनेक प्रकार से विभाजित करता है; निरुपाधिक विशुद्ध जीवात्माओं में परस्पर तारतम्य नहीं होता। उनमें विद्यमान तारतम्य तो उस जीव के शरीर में विद्यमान पाञ्चभौतिक सूक्ष्मतत्त्व के कारण ही होता है। **तम् आत्मस्थम्** = उस प्रकार अपने में ही विद्यमान उस परमात्मा का, **ये धीराः** = जो धैर्यशाली बुद्धिमान् जीव, **अनुपश्यन्ति** = साक्षात्कार करते हैं, **तेषामेव** = उन्हें ही, **शाश्वतं सुखम्** = मोक्षस्वरूप शाश्वत सुख प्राप्त होता है, **न इतरेषाम्** = दूसरों को नहीं।

जो शिवयोगी योगसाधनामार्ग के द्वारा स्वंयं में प्रकाशमान चित्प्रकाशस्वरूप परमेश्वर का साक्षात्कार करता है, वही 'धीर' शब्द से सम्बोधित होता है। धीर ही 'शिवयोग' (लिङ्गाङ्गसामरस्य) प्राप्त करता है और उसका आनन्दानुभव करता है। उसका लौकिक दुःख भी सुख बन जाता है। यतः परमशिव देह में ही वास करते हैं, अतः सभी कुछ उसकी इच्छा के अनुरूप होता है। यह समझ कर समदृष्टि रखते हुए धीर उसे स्वीकार करता है। वही धैर्यशाली जीव शिव के साथ 'नदीसमुद्रन्याय' से सामरस्य का अनुभव करते हुए समस्त संसार को शिवदृष्टि से देखता है।

इस प्रकार की 'शिवयोगी धैर्यशाली जीव अपने अनुभव को इस प्रकार अभिव्यक्त करता है और परमात्मा से यह प्रार्थना करता है— **"त्वमेव भक्तिं"** इत्यादि। "तुम्हीं भक्ति करते हो, उस समय से तुम्ही भक्त (सेवक) हो और तुम्ही सेव्य (भक्तिपात्र) हो। मैंने इहलोक में आपका पद नहीं देखा है। प्रभो! आपने भी मुझे वह पद नहीं दिया है।"

CC0. In Public Domain. Jangamwadi Math Collection, Varanasi

Digitization by eGangotri and Sarayu Trust. Funding by MoE-IKS

प्रष्टव्यो विषय एव न विद्यते। पराकाशमये परशिवे एकीभावमुपेतस्य योगिनः न कोऽप्यभिलाष उदेति।

''यदा सर्वे प्रमुच्यन्ते कामा येऽस्य हृदि स्थिताः।
अथ मर्त्योऽमृतो भवत्यत्र ब्रह्म समश्नुते।।''

इति श्रुतौ अमृतस्थितिं प्राप्तस्य योगिनः निष्कामत्वं स्वाभाविकतया स्फुरतीत्युपदिश्यते। गङ्गाजलेन तृप्तस्य अन्यवापीजलं पातुमिच्छा कथमुदेति? महाविषये समरसभावमापन्नो योगी कथं क्षुद्रविषयमपेक्षेत? एवमत्रैव प्रसादकाये देहेन्द्रियसहकारेण यः स्वात्मस्थं शिवं ज्ञानचक्षुर्भूतेन निर्मलेन मनसा साक्षात्करोति, स एव धीरः क्लेशकार्पण्यमध्येऽपि शान्तस्तूष्णीमास्ते। मानवैः सर्वैरपि तथा भवितुं यथाशक्ति प्रयतितव्यमिति महर्षिर्निरीक्षते।।१२।।

इस प्रकार इसी शरीर में भावलिङ्गस्वरूप परमशिव के साथ सामरस्यसुख का अनुभव करने वाले धैर्यशाली व्यक्ति को कोई दूसरा स्थान भी दातव्य नहीं है और वह परमात्मा से ऐसे किसी स्थान के विषय में प्रश्न भी नहीं कर रहा है; क्योंकि शिवस्वरूप स्वयं के लिये कोई ऐसा विषय ही नहीं है, जो प्रश्नयोग्य हो। पराकाशस्वरूप परशिव के साथ एकाकार होने वाले शिवयोगी के अन्तःकरण में किसी प्रकार की अभिलाषा का उदय नहीं होता। **''यदा सर्वे प्रमुच्यन्ते''** इत्यादि श्रुतिवाक्य में यह उपदेश निहित है कि अमृतत्व अर्थात् मोक्ष की अवस्था प्राप्त करने वाले योगी में स्वाभाविक रूप से निष्काम भावना का उदय होता है। इस मन्त्र का आशय इस प्रकार है— ''मृत्युधर्मा मानव की सभी कामनाएँ जब छूट जाती हैं, जो उसके हृदय में रहती हैं। उसके बाद वह मृत्युधर्मा मानव अमर हो जाता है और ब्रह्मस्वरूप का अनुभव करता है।''

गंगा का अमृतजल पीकर जो तृप्त होता है, उसके मन में भला दूसरे वापीजल को पीने की प्यास कैसे उत्पन्न हो सकती है? लिङ्गाङ्गसामरस्य जैसे महाविषय में समरसता का अनुभव करनेवाला योगी क्षुद्र विषय की कामना कैसे कर सकता है? इसी प्रकार जो यहीं इसी प्रसादकाया में देह और इन्द्रियों की सहायता से ज्ञानचक्षुःस्वरूप निर्मल अन्तःकरण के द्वारा अपनी शरीरस्थित हृदयगुफा में प्रकाशमान परमशिव का साक्षात्कार करता है, वही धैर्यशाली योगी कष्टों के बीच में भी शान्त और मौन रह सकता है। सभी मानवों को अपनी शक्ति के अनुसार उसी प्रकार बनने का प्रयत्न करना चाहिये, यही महर्षि की कामना है।

[**'एको वशी निष्क्रियाणां बहूनाम्''** की व्याख्या आचार्य **शंकर** करते हैं— **''सर्वाः क्रिया नाऽऽत्मनि समवेताः, किन्तु देहेन्द्रियादिषु। आत्मा तु निष्क्रियो निर्गुणः सत्त्वादिगुणरहितः कूटस्थः सन् आत्मधर्मान् अनात्मनि अध्यस्य अभिमन्यते''**– **''कर्ता भोक्ता सुखी दुःखी कृशः स्थूलो मनुष्योऽमुष्य पुत्रोऽस्य नप्ते'ति।''** अर्थात्

CC0. In Public Domain. Jangamwadi Math Collection, Varanasi

Digitization by eGangotri and Sarayu Trust. Funding by MoE-IKS

नित्यो नित्यानां चेतनश्चेतनाना-
मेको बहूनां यो विदधाति कामान्।
तत् कारणं साङ्ख्ययोगाधिगम्यं
ज्ञात्वा देवं मुच्यते सर्वपाशैः।।१३।।

'नित्य' इति। **नित्यानां** नित्यत्वेन लोकप्रसिद्धानां जीवानां मध्ये **नित्यः**, चेतनानां मध्ये **चेतनः**, बहूनां मध्ये **एकः**। एतादृशो **यः कामान्**

परमात्मा के साथ एक ही शरीर में वास करने वाले जीवात्मा में कोई भी क्रिया सम्बद्ध नहीं होती। ये सभी क्रियाएँ देह-इन्द्रिय आदि के साथ सम्बन्ध रखती हैं। परमात्मा का अंशस्वरूप जीवात्मा वस्तुत: निरुपाधिक होने के कारण क्रियाशून्य, निर्गुण और कूटस्थ है। वह शरीर और इन्द्रियों के धर्मों को स्वयं पर आरोपित कर यह अभिमान करता है— 'मैं कर्ता हूँ, भोक्ता हूँ, सुखी हूँ, दु:खी हूँ, दुर्बल हूँ, शक्तिशाली हूँ, मनुष्य हूँ, अमुक का पुत्र हूँ, अमुक का नाती हूँ इत्यादि। जिन्हें परमात्मा के स्वरूप का ज्ञान होता है, वे सर्वकर्मसंन्यास से लेते हैं और शिवार्पणबुद्धि से निष्काम कर्म करते हैं। ऐसे जीवात्माओं का भी परमात्मा नियामक है, यह इसका आशय है।]

मन्त्रार्थ— जो एक सर्वतन्त्रस्वतन्त्र परमात्मा अपने अधीनस्थ स्वतन्त्र रूप से कार्य करने में असमर्थ सभी जीवों का नियामक है और वह उन विशुद्ध जीवों में विद्यमान पाञ्चभौतिक सूक्ष्म तत्त्व को विभाजित करता है, जिससे जीवों में तारतम्य उत्पन्न होता है। इस प्रकार अपनी शरीरस्थ हृदयगुफा में विद्यमान परमात्मा का जो धैर्यशाली जीव साक्षात्कार करते हैं, उन्हें शाश्वत सुख मिलता है, अन्यों को नहीं।।१२।।

''नित्यो नित्यानाम्''[१] इत्यादि। **नित्यानां नित्यः** = जो संसार में नित्य के रूप में प्रसिद्ध हैं, उन जीवों के बीच में जो नित्य हैं, **चेतनश्चेतनानाम्** = जो चेतन जीवों के बीच में चैतन्यशक्ति हैं, **बहूनाम् एकः** = अनेक चेतन जीवों के बीच में जो एक-अद्वितीय-अखण्ड परिपूर्ण हैं ; **यः कामान् विदधाति** = जो सभी के अभीष्ट मनोरथ की

---

१. इस मन्त्र का हिन्दी पद्यानुवाद इस प्रकार है—

''चेतन परमचेतनों में, नित्यों में भी जो नित्य महान्,
करते एक अनेक जीव के अनेक फलों का भोग विधान।
वे सबके कारण हैं, होता सांख्ययोग से उनका ज्ञान,
पाता मोक्ष सभी बन्धन से नर उन परम देव को जान।।''

('कल्याण' उपनिषद् अंक, जनवरी १९४९, पृ.४)

CC0. In Public Domain. Jangamwadi Math Collection, Varanasi

Digitization by eGangotri and Sarayu Trust. Funding by MoE-IKS

तत्तदभीष्टान् **विदधाति** प्रयच्छति। **तत्** प्रसिद्धं **कारणं** सर्वजगत्कारणं **साङ्ख्ययोगाधिगम्यं** ज्ञानयोगेन प्राप्यं **देवं ज्ञात्वा सर्वपाशैः** सर्वसंसारबन्धै**र्मुच्यते** मुक्तो भवति साधकः। एवं सर्वैरपि साधयितव्यमित्यर्थः॥१३॥

पूर्ति करता है, **तत् कारणम्** = उस प्रसिद्ध जगत्कारणस्वरूप, **सांख्ययोगाधिगम्यम्** = ज्ञानयोग से सुलभ, **देवं ज्ञात्वा** = चित्प्रकाशस्वरूप परमशिव का साक्षात्कार कर, **सर्वपाशैः** = (साधक) सांसारिक सभी बन्धनों से, **मुच्यते** = मुक्त होता है। इस प्रकार सभी को साधना करनी चाहिये, यह इसका तात्पर्य है।

[आचार्य **शंकर** के अनुसार पृथिवी आदि पंचभूत अचेतन नाम हैं, उनके बीच में परमात्मा नित्य हैं। 'प्रमाता' जीवात्मा परमात्मा के अंश चेतन हैं और उनके बीच में वर्तमान अंशी प्रमेय परमात्मा भी चेतन हैं। वह परब्रह्म परमात्मा **सांख्ययोगदर्शन** द्वारा साक्षात्कार योग्य है। उसको जानकर जीव अविद्या आदि पाशों से छुटकारा पाता है।

सांख्ययोगः शंकरानन्द के अनुसार सांख्ययोग शब्द की व्याख्या इस प्रकार है— **''सम्यक् ख्यायते प्रकाश्यते आत्मतत्त्वं येन विज्ञानेन तत्** 'सांख्यम्'। **'योगो' जीव-परमात्मनोस्तादात्म्यज्ञानफलोऽष्टाङ्गयोगरूपो वा वैदिककर्मानुष्ठानादि-रूपो वा।''**

अर्थात् जिस विज्ञान द्वारा समीचीन रूप से आत्मतत्त्व का प्रकाशन होता है, वह **'सांख्य'** है। **'योग'** के अनेक अर्थ हैं— जीवात्मा और परमात्मा का तादात्म्य ज्ञान 'योग' कहलाता है। यम-नियम-आसन-प्राणायाम-प्रत्याहार-ध्यान-धारणा-समाधिस्वरूप अष्टांगयोग 'योग' है। वैदिक कर्मों का अनुष्ठान भी योग कहलाता है। इस प्रकार के 'सांख्य' और 'योग' से परमात्मा का ज्ञान सम्भव है।

नारायण 'सांख्ययोगाधिगम्यम्' पद की व्याख्या इस प्रकार करते हैं— **''संख्यायते आत्माऽनेनेति सांख्यं ज्ञानम्, योगो निष्कामकर्मानुष्ठानमासन-प्राणायामादिसाध्यचित्तनिरोधो वा, ताभ्याम् अधिगम्यम्।''** परमात्मा का प्रकाशन जिस विज्ञान से होता है, वह **'सांख्य'** है। निष्काम कर्म करना अथवा आसन प्राणायाम आदि के द्वारा चित्तवृत्तियों पर नियंत्रण रखना **'योग'** है। परमेश्वर का साक्षात्कार करने के लिये दोनों आवश्यक हैं।

विज्ञानभगवान् कहते हैं— **''सांख्यं वेदान्तमहावाक्यतात्पर्यजन्यम् ''अहं ब्रह्मास्मि'' इति सम्यग् ज्ञानम्, योगः तत्साधनश्रवणमनननिदिध्यासनादिः, ताभ्याम् अधिगम्यम्।''**

CC0. In Public Domain. Jangamwadi Math Collection, Varanasi

Digitization by eGangotri and Sarayu Trust. Funding by MoE-IKS

न तत्र सूर्यो भाति न चन्द्रतारकं
नेमा विद्युतो भान्ति कुतोऽयमग्निः?।
तमेव भान्तमनुभाति सर्वं
तस्य भासा सर्वमिदं विभाति।।१४।।

'न तत्रे'ति। **तत्र** परमात्मनि भासमाने **सूर्यो न भाति।** सूर्यप्रभायां दीप इव परमात्मनः प्रकाशैकस्वरूपस्य पुरतः सूर्यादिप्रकाशोऽसत्कल्प एवेत्यर्थः। **चन्द्रतारकं** चन्द्रनक्षत्रादयोऽपि न भान्ति। **इमाः** प्रसिद्धा **विद्युतस्**तडितो **न भान्ति। अयं** भौतिको**ऽग्निः कुतः?** किमु वक्तव्यमस्य विषय इत्यर्थः। अतो **भान्तं** स्वतो भासमानं **तमनु** अनुसृत्यैव तदधीनतयैव **सर्व**मपि **भाति**

''तत्त्वमसि'' इस गुरूपदेश के द्वारा **''अहं ब्रह्मास्मि''** इस प्रकार शिष्य को जो ब्रह्माकार ज्ञान होता है, वह **'सांख्य'** ज्ञान है। **विज्ञानभगवान्** उपनिषदों के महावाक्यों द्वारा वेदान्तदर्शनसम्मत ज्ञान को ही 'सांख्य' कहते हैं। उनके मत में श्रवण-मनन-निदिध्यासन आदि उसके साधन हैं। उन दोनों से परमात्मा का साक्षात्कार सम्भव है।

'कल्याण' उपनिषद् अंक (पृ.४०१) की व्याख्या के अनुसार परमात्मा सांख्य (ज्ञानयोग) और योग (कर्मयोग) द्वारा प्राप्त करने योग्य हैं।]

मन्त्रार्थ— जो परमेश्वर लोकप्रसिद्ध नित्य जीवों के बीच में नित्य हैं, अनेकों के बीच में एक हैं और जो सबके मनोरथ पूर्ण करते हैं; ज्ञानयोग से प्राप्तियोग्य उस परमेश्वर का साक्षात्कार कर साधक सभी सांसारिक बन्धनों से मुक्त होता है।।१३।।

अवतरण— जगत् के प्रकाशक सूर्य-चन्द्रमादि भी उस ज्योतिःपुञ्जस्वरूप परमशिव से प्रकाशित होते हैं—

''न तत्र सूर्यो भाति'' इत्यादि[१]। **न तत्र सूर्यो भाति** = (चित्प्रकाशस्वरूप) परमेश्वर के प्रकाशित होने पर जगत्प्रकाशक सूर्य भी प्रकाशित नहीं होता। इसका अर्थ यह है कि जिस प्रकार सूर्य की प्रभा अथवा तेज के समान दीपशिखा का प्रकाश नहीं के बराबर होता है, उसी प्रकार एकमात्र परमप्रकाशस्वरूप परमात्मा के सामने सूर्य का प्रकाश नहीं के समान है। **न चन्द्रतारकम्** = उसी प्रकार चन्द्र और अश्विनी-भरणी इत्यादि सत्ताईस तारकाएँ भी प्रकाशित नहीं होती। **नेमा विद्युतो भान्ति** = आकाशीय

---

१. यह मन्त्र **कठोपनिषद्** (५.१५) और **मुण्डकोपनिषद्** (२.२.१०) में भी यथावत् उपलब्ध है।

CC0. In Public Domain. Jangamwadi Math Collection, Varanasi

Digitization by eGangotri and Sarayu Trust. Funding by MoE-IKS

प्रकाशते। अतस्तस्य भासा प्रभयैव **सर्वमिदं** सूर्यचन्द्रादिकमपि **विभाति**॥१४॥

(अथवा कृत्रिम) बिजली भी प्रकाशमान नहीं होती। **कुतोऽयमग्नि:?** = उसी प्रकार पञ्चमहाभूतों में अन्यतम अग्नि के विषय में क्या कहा जा सकता है? **तमेव भान्तमनुभाति सर्वम्** = अत: स्वत: प्रकाशमान उस परमशिव का अनुसरण कर उसके अधीन रहते हुए ही सभी प्रकाशित होते हैं। **तस्य भासा सर्वमिदं विभाति** = उस परमशिव की प्रभा से ही सूर्य-चन्द्र आदि सभी प्रकाशमान हैं।

[**कठवल्ली** के **शांकरभाष्य** में **'तमेव भान्तमनुभाति सर्वम्'** ((५.१५) इत्यादि की व्याख्या इस प्रकार है— **''यदिदमादिकं सर्वं भाति तत् तमेव परमेश्वरं भान्तं दीप्यमानमनुदीप्यते। यथा जलोन्मुक्तादि अग्निसंयोगादग्निं दहन्तमनुदहति न स्वतस्तद्वत्।''** **मुण्डकोपनिषद्** का शांकर भाष्य भी इसी प्रकार है। **श्वेताश्वतर उपनिषद्** के शांकरभाष्य का दृष्टान्त भिन्न है— **''यथा लोहादि वह्निं दहन्तमनुदहति, न स्वत:। तस्यैव भासा दीप्त्या सर्वमिदं सूर्यादि भाति। उक्तं च ''येन सूर्यस्तपति तेजसेद्ध:।''**

''न तद् भासयते सूर्यो न शशाङ्को न पावक:।'' (गीता १५.६)

सबका निष्कर्ष यह है कि जिस प्रकार जलोन्मुक्ता, लोहा आदि अग्नि के संयोग से तप कर प्रदीप्त होते हैं, स्वत: प्रदीप्त नहीं होते, उसी प्रकार सूर्य चन्द्र-नक्षत्रादि स्वत: प्रकाशित नहीं होते, प्रकाशमान परमेश्वर का अनुसरण कर वे उसके प्रकार से प्रकाशित होते हैं और समस्त जगत् को प्रकाशित करते हैं। इसमें श्रुतिप्रमाण है— **''येन सूर्यस्तपति तेजसेद्ध:''** जिस परमेश्वर के तेज (ऊर्जा) से सूर्य प्रज्वलित होता है, स्वत: नहीं **'न तद् भासयते'** इत्यादि गीता-वचन भी इसमें प्रमाण है, जिसका आशय इस प्रकार है—

''जिसमें न सूर्यप्रकाश चन्द्र न आग ही का काम है''

(श्रीकृष्णगीता १५.६)

मुण्डकोपनिषद् (२.२.१०) स्थित इस मन्त्र का **ब्रह्मश्री उमचिगि शंकरशास्त्री** जी द्वारा विरचित वीरशैवभाष्य महत्त्वपूर्ण है, जो इस प्रकार है— **''तत्र तस्मिन् सर्वान्तर्वर्तिनि कारणाङ्गावच्छिन्नात्मप्रतिष्ठिते भावलिङ्गे सूर्य: सर्वप्रकाशकोऽप्यादित्य: न भाति न तद्भावलिङ्गं प्रकाशयति।..... तस्मात् स्वप्रकाशशिवान्तर्गतत्वेन भासमानत्वात् सर्वं शिवमयमेव।** 'नाऽप्रकाश: प्रकाशते' **इति न्यायेन प्रकाशवाचि शिवाभिन्नत्वे तस्य तुच्छत्वात्। गगनपुष्पादिवत् तस्य सत्तैव न स्यात्। तदुक्तमभियुक्तोक्तै:-**

CC0. In Public Domain. Jangamwadi Math Collection, Varanasi

Digitization by eGangotri and Sarayu Trust. Funding by MoE-IKS

"प्रकाशमानं न पृथक् प्रकाशात् स च प्रकाशो न पृथग् विमर्शात्।
नान्यो विमर्शोऽहमिति स्वरूपात् अहं स्वरूपोऽस्मि चिदेकरूपः।।"

उक्तश्चैतन्मन्त्रार्थो रेणुकभगवत्पादाचार्यैः-

"न सूर्यो भाति तत्रेन्दुर्न विद्युन्न च पावकः।
न तारका महालिङ्गे द्योतमाने परात्मनि।।"

(सि.शि.म.१२.३८)

इसका आशय यह है कि भावलिङ्ग सर्वजगत् का कारण है, सभी के अन्त:स्थल में कारणाङ्गावच्छिन्न आत्मस्वरूप वह भावलिङ्ग प्रतिष्ठित है। उसके प्रकाशित रहने पर सबको प्रकाशित करने वाला सूर्य भी उस भावलिङ्ग को प्रकाशित नहीं करता, प्रत्युत उसकी दीप्ति से प्रकाशित होता है। प्रकाशस्वरूप परमशिव की विमर्शस्वरूपा परा शक्ति से यत: सभी प्रकाशित होते हैं, अत: सभी शिवमय है। शिव को छोडकर सभी तुच्छ हैं गगनपुष्प के समान किसी की सत्ता नहीं है। **"प्रकाशमानं न पृथक् प्रकाशात्"** इत्यादि आगमवचन इसमें प्रमाण हैं— **"न सूर्यो भाति"** इत्यादि **'सिद्धान्तशिखामणि'** की कारिका से **श्रीरेणुकभगवत्पादाचार्य** इसी मन्त्रार्थ का उपबृंहण करते हैं। प्रकाशस्वरूप परमशिव की 'भा' अथवा दीप्ति उसकी विमर्शस्वरूप परा शक्ति ही है, जो उससे अभिन्न है। जिस प्रकार समस्त पदार्थों को प्रकाशित करने वाली चन्द्रिका चन्द्र में स्थिर रहती है, उसी प्रकार प्रकाशपुञ्ज परशिवस्वरूप परब्रह्म में 'विमर्श' नाम की पराशक्ति स्थिर रहती है, जैसा कि रेणुकभगवत्पादाचार्य कहते हैं—

"यथा चन्द्रे स्थिरा ज्योत्स्ना विश्ववस्तुप्रकाशिनी।
तथा शक्तिर्विमर्शाख्या प्रकाशे ब्रह्मणि स्थिरा।।" (सि.शि.म. २०.३८)

भगवान् श्रीकृष्ण अर्जुन से कहते हैं—

"यदादित्यगतं तेजो जगद् भासयतेऽखिलम्।
यच्चन्द्रमसि यच्चाग्नौ तत् तेजो विद्धि मामकम्।।" (गीता १५.१२)

इसका पद्यानुवाद इस प्रकार है—

"जिससे प्रकाशित है जगत् जो तेज दिव्य दिनेश में।
वह तेज मेरा तेज है जो अग्नि में राकेश में।।" (श्रीकृष्णगीता १५.१२)]

मन्त्रार्थ— चित्प्रकाशमय भावलिङ्ग के रूप में विद्यमान परमशिव के रहते उसके सामने सूर्य-चन्द्र-नक्षत्र-वैद्युत-भौतिक-कृत्रिम अग्नि निस्तेज हैं। वे उसी परमशिव के महाप्रकाश का अनुसरण कर समस्त जगत् को प्रकाशित करते हैं और उसकी 'विमर्श' नाम की 'चिति'शक्ति से स्वयं प्रकाशित होते हैं। उनकी स्वतः सत्ता नहीं है।।१४।।

CC0. In Public Domain. Jangamwadi Math Collection, Varanasi

Digitization by eGangotri and Sarayu Trust. Funding by MoE-IKS

एको हंसो भुवनस्याऽस्य मध्ये
स एवाऽग्निः सलिले सन्निविष्टः।
तमेव विदित्वाऽतिमृत्युमेति
नान्यः पन्था विद्यतेऽयनाय।।१५।।

'एको हंस' इति। **अस्य भुवनस्य** जगतो **मध्ये हंसः** पूर्वमन्त्रप्रतिपाद्यो विलक्षणः सूर्यस्याऽपि सूर्यः प्रकाशकः परशिव **एकोऽ**द्वितीयो विराजते। **स एवाग्नि**रग्निरिव सर्वपापदाहकः सन् **सलिले** सलिलपरिणामरूपेऽस्मिन् शरीरे। **'इति तु पञ्चम्यामाहुतावापः पुरुषवचसो भवन्ति'** इत्यपामेव शरीररूपेण परिणाम उक्तः। **सन्निविष्टः** सम्यक् निविष्ट अन्तर्यामित्वेनाऽवस्थितः।

अवतरण— पूर्वमन्त्र (६.१३) में **'ज्ञानादेवं मुच्यते सर्वपाशैः'** इस प्रकार परमशिव के साक्षात्कार की फलश्रुति सर्वपाशमुक्ति कहा था। अग्रिम मन्त्र में यह कह रहे हैं कि **'नाऽन्यः पन्था विद्यतेऽयनाय'**। **'एको हंस'** इत्यादि।

अस्य भुवनस्य मध्ये एको हंसः = इस स्थावरजंगमात्मक जगत् (स्वर्ग-मृत्यु-पातालस्वरूप त्रिभुवन अथवा चतुर्दश भुवन) के बीच में, **न तत्र सूर्यो भाति** इत्यादि पूर्वमन्त्र में प्रतिपादित सूर्य का प्रकाशक होने के कारण उसका भी सूर्य एक अद्वितीय परमशिव विराजित है। [सूर्य के अन्यतम पर्यायों में **''भानुर्हंसःसहस्रांशुस्तपनः सविता रविः''** (१.३.१) इस प्रकार अमरकोष के अन्तर्गत 'हंस' नाम भी परिगणित है।]

''स एवाऽग्निः सलिले सन्निविष्टः''— जिस प्रकार अग्नि दाहक है, उसी प्रकार सर्वपापदाहक होने के कारण अग्निस्वरूप परमशिव सलिल-परिणामस्वरूप इस शरीर में अन्तर्यामी बनकर सम्यक् रूप से प्रविष्ट हैं। [जैसा कि प्रमाणवचन है— **व्योमातीतोऽग्निरीश्वरः''**— परमशिव आकाश से भी परे अग्निस्वरूप में विराजमान हैं।] जीवात्मा जिस शरीर को धारण करता है, वह **सलिल** का परिणाम है। इसमें **छान्दोग्य उपनिषद्** का वचन प्रमाण है— **''इति तु पञ्चम्यामाहुतावापः पुरुषवचसो भवन्ति''** (५.९.१.) [अग्निस्वरूप स्त्री में जब वीर्य का हवन होता है, तो गर्भधारण होता है। इस प्रकार अग्निस्वरूप स्त्री में पाँचवी (वीर्य की) आहुति दी जाने पर जल 'पुरुष' नाम से सम्बोधित होता है। इस प्रकार जहाँ जीवात्मा और परमात्मा दोनों एक साथ रहते हैं, वह शरीर जल का परिणाम है।]

''तमेव विदित्वाऽतिमृत्युमेति'' उस परमशिव का साक्षात्कार कर साधक मृत्युतुल्य संसार को पार कर जाता है। **''नाऽन्यः पन्था विद्यतेऽयनाय''**— उसके अतिरिक्त मुक्ति का अन्य कोई मार्ग नहीं है।

CC0. In Public Domain. Jangamwadi Math Collection, Varanasi

Digitization by eGangotri and Sarayu Trust. Funding by MoE-IKS

तमन्तर्यामिणं विदित्वैव मृत्युं संसार**मत्येति** अतीत्य गच्छति। **अन्यस्तदतिरिक्तः पन्था नास्त्येव**॥१५॥

[**'हंस'** शब्द के अनेक अर्थ हैं। **'मेदिनीकोष'** में इसका विवरण इस प्रकार है—

"............ .... हंसःस्यान्मानसौकसि।
र्निर्लोभनृपविष्ण्वर्कपरमात्मन्यमत्सरे ।
योगिभेदे मन्त्रभेदे शरीरमरुदन्तरे।।"

इन अर्थों में 'हंस' का मानसविहारी पक्षी अर्थ करने पर पूर्वार्द्ध का सामान्य अर्थ होगा— 'त्रिभुवन के मध्य विराजमान मानसरोवर की जलधारा में अग्निस्वरूप पक्षिराज हंस विराजमान है। **छान्दोग्य उपनिषद्** (५.९.९) के वचन को प्रमाण मानकर वीर्यस्वरूप तेजस्तत्त्व का जलतत्त्व के परिणाम शरीर में व्याप्त होना समुचित है।

आचार्य शंकर इसका तृतीय अर्थ इस प्रकार करते हैं— **सलिले सलिल इव स्वच्छे यज्ञदानादिने विमलीकृतेऽन्तःकरणे सन्निविष्टो वेदान्तवाक्यार्थसम्यग्-ज्ञानफलकारूढोऽविद्यातत्कार्यस्य दाहक इत्यर्थः।"**

अर्थात् उपनिषद्वाक्यों के अर्थ को समझकर जो परमशिव का चिन्तन करते हैं, उनके जल के समान निर्मल अन्तःकरण में परमशिव वास करते हैं। परमेश्वर अविद्या और उनके कार्यों का दाहक होने के कारण अग्निस्वरूप भी हैं।

इस मन्त्र में परमात्मा को **'हंस'** कहा गया है। विभिन्न टीकाकार इसका विभिन्न निर्वचन करते हैं। शंकरानन्द कहते हैं— **"आत्मज्ञानेन भेदं हन्तीति हंसः"**— यतः परमशिव आत्मज्ञान द्वारा समस्त भेदों का विनाश करते हैं, उन्हें मिटाते हैं, अतः हंस हैं। **नारायण** के अनुसार— **"हंसो हन्ति अज्ञानमिति भुवनस्य"**— यतः परमशिव चतुर्दश भुवनों का अज्ञान नष्ट करते हैं, अतः हंस हैं।

विज्ञानभगवान् की व्याख्या इस प्रकार है— **"हंसः स्थित्यवस्थां याति, तामपि हत्वा स्वप्नावस्थां याति, पुनस्तामपि हत्वा सुषुप्त्यवस्थां याति, तामपि हत्वा पुन'रहं ब्रह्मास्मी'ति सम्यग्ज्ञानफलकारूढः स्वव्यवधायकहेतुभ्रमहेत्वविद्यां हत्वा प्रत्यक्त्वं यातीति हंसः।"**

'हन् हिंसागत्योः'— हिंसा और गति दो अर्थों में **'हन्'** धातु का प्रयोग होता है। उसी धातु से **'हंस'** शब्द निष्पन्न है। दोनों अर्थों को ध्यान में रखकर विज्ञान भगवान् कहते हैं— "यतः जीवात्मा प्रथम स्थिति अवस्था को प्राप्त करता है, पुनश्च उसका नाश कर स्वप्न की अवस्था को प्राप्त करता है; फिर स्वप्नावस्था का विलय कर सुषुप्ति अवस्था

CC0. In Public Domain. Jangamwadi Math Collection, Varanasi

Digitization by eGangotri and Sarayu Trust. Funding by MoE-IKS

कुतस्तज्ज्ञानादेव मोक्ष उच्यत इत्यत्राह—

स विश्वकृद् विश्वविदात्मयोनि-
र्ज्ञः कालकारो गुणी सर्वविद् यः।
प्रधानक्षेत्रज्ञपतिर्गुणेशः
संसारमोक्षस्थितिबन्धहेतुः ।।१६।।

'स विश्वकृदि'ति। **सः** परमात्मैव **विश्वकृत्** जगत्स्रष्टा, **विश्ववित्** सर्वज्ञः, **आत्मयोनिरा**त्मा चाऽसौ योनिश्चेति विश्वव्यापकं सर्वोपादानं च सम्पद्यते।

को प्राप्त करता है। फिर उस स्थिति को भी समाप्त कर वह सद्गुरु के उपदेश से **'अहं ब्रह्मास्मि'** इस ब्रह्माकार स्थिति को प्राप्त करता है। उस समय आत्मस्वरूप में व्यवधान डालने वाली द्वैतभ्रम को उत्पन्न करने वाली अविद्या का विनाश कर वह परमात्मस्वरूप प्राप्त करता है। इसलिये जीवात्मा और परमात्मा दोनों ''हंस'' हैं।

उस 'हंस' स्वरूप परमशिव का साक्षात्कार कर जीवात्मा मृत्युभय को पार कर जाता है। उसकी सद्गति के लिये परमशिव ही एकमात्र उपाय है, अन्य नहीं।]

मन्त्रार्थ— समस्त भुवनों के मध्य परमशिव अद्वितीय 'हंस'स्वरूप हैं अर्थात् सूर्यादि के प्रकाश होने के कारण उनके भी 'हंस' 'सूर्य' हैं। सर्वपापों के दाहक होने के कारण वे अग्निस्वरूप भी हैं तथा जल के परिणामस्वरूप इस शरीर में जीवात्मा के साथ गुप्तरूप से वास करते हैं। भावलिङ्ग के रूप में अन्तस्तलवर्ती प्रकाशपुञ्जभूत उस परमशिव का साक्षात्कार कर साधक मृत्युतुल्य कष्टप्रद संसार को भी पार कर जाता है। उसे छोड़कर सद्गतिप्राप्ति का कोई अन्य उपाय नहीं है।।१५।।

अवतरण— परमात्मसाक्षात्कार मात्र से मोक्षसिद्धि किस प्रकार होती है? इस प्रश्न का समाधान अग्रिम मन्त्र में इस प्रकार है— **'स विश्वकृत्'** इत्यादि।

''स विश्वकृत्'' = वह परमात्मा ही विश्व का निर्माणकर्ता है। **विश्ववित्** = वह सर्वज्ञ है। **आत्मयोनिः** = 'आत्मा चासौ योनिश्च' वह विश्व व्यापक और सबका उपादान भी है।

[अथवा स्वयं ही अपने प्राकट्य का हेतु है। 'विष्णुसहस्रनामस्तोत्र' में परमेश्वर का ९८५ का नाम **'आत्मयोनि'** है, जिसकी व्याख्या **श्रीमत्शंकरभगवत्पाद** इस प्रकार करते हैं— **''आत्मैव योनिः उपादानकारणं नान्यत्''** परमेश्वर ही समस्त जगत् का उपादान कारण है, उसे छोड़कर कोई दूसरा जगत् का कारण नहीं है।]

CC0. In Public Domain. Jangamwadi Math Collection, Varanasi

Digitization by eGangotri and Sarayu Trust. Funding by MoE-IKS

एवमेव स **ज्ञो** ज्ञानस्वरूपः, तथैव **कालकारः** सर्वाधारस्य कालस्याऽपि स्रष्टा। **गुणी** अपहतपाप्मत्वादिगुणवान्। **सर्ववित्** सर्वज्ञः, यद्यपि 'विश्ववित्' इत्युक्तम्, अथाऽपि लोके सर्वशब्दस्याऽसङ्कुचितस्य कुत्राऽपि प्रयोगाऽदर्शनात् अत्राऽपि भगवतः सर्वज्ञत्वं न सङ्कुचितमिति सूचनायं पुनरुक्तं दार्ढ्याय। य ईदृशः **प्रधानक्षेत्रज्ञपतिः** प्रधानं प्रकृतिः, क्षेत्रज्ञो जीवस्तयोः पतिः।

"ज्ञः कालकारो गुणी सर्वविद् यः" उसी प्रकार वह **'ज्ञ'** अर्थात् ज्ञानस्वरूप, **'कालकार'** अर्थात् सर्वाधारस्वरूप काल का भी कर्ता, **'गुणी'** अर्थात् पाप-पुण्य आदि को नष्ट करने के गुण (सामर्थ्य) से सम्पन्न और **'सर्ववित्'** सर्वज्ञ हैं। यद्यपि **'विश्ववित्'** कहने पर **'सर्ववित्'** कहने की आवश्यकता नहीं है, तथापि संसार में सर्वशब्द, जो संकुचित नहीं है अपितु व्यापक है, उसका सर्वत्र प्रयोग देखा जाता है, अतः यहाँ भी उसका पुनः इसलिये प्रतिपादन किया गया है, जिससे यह सूचित हो कि परमात्मा की सर्वज्ञता भी संकुचित नहीं है अपितु वह व्यापक है।

[**येनावृतम्'** इत्यादि पूर्व मन्त्र (६.२) में भी यह द्वितीय चरण यथावत् वर्तमान है। आचार्य शंकर दोनों स्थलों पर 'गुणी' पद की व्याख्या **'अपहृत्य पाप्मादिमान्'** ही करते हैं और यहाँ वे इसे **'विश्वजित्'** विशेषण का विस्तार मानते हैं— **'विश्वजिदित्यस्य प्रपञ्चः।'** वीरशैवभाष्य की 'गुणी' पद की व्याख्या शांकरभाष्यसम्मत है। इस चरण की शेष विस्तृत व्याख्या पूर्व मन्त्र (२.६) में द्रष्टव्य है।]

प्रधानक्षेत्रज्ञपतिः— जो इस प्रकार का परमेश्वर 'प्रधान' प्रकृति और 'क्षेत्रज्ञ' जीवात्मा का 'पति' स्वामी है।

[**'विष्णुसहस्रनामस्तोत्र'** में परमेश्वर का बीसवाँ नाम **'प्रधानपुरुषेश्वरः'** है, जो 'प्रधानक्षेत्रज्ञपति' का पर्याय है। वहाँ का **शांकरभाष्य** इस प्रकार है— **"प्रधानं = प्रकृतिर्माया, पुरुषो जीवः तयोः ईश्वरः प्रधानपुरुषेश्वरः।"** **'अमरकोष'** के **'क्षेत्रज्ञ आत्मा पुरुषः प्रधानं प्रकृतिः स्त्रियाम्'** (१.४.२९) इस वचन के अनुसार क्षेत्रज्ञ आत्मा और पुरुष तीनों शरीर के अधिष्ठात्री देवता के पर्याय हैं। सत्त्व, रज और तम तीनों गुणों की साम्यावस्था को प्रधान और प्रकृति कहते हैं। महेश्वरकृत **'अमरविवेक'** में 'क्षेत्रज्ञ' शब्द का निर्वचन इस प्रकार है— **"क्षीयते इति क्षेत्रं शरीरम्, तज्जानाति इति 'क्षेत्रज्ञः"** अर्थात् नश्वर शरीर को जो जानता है, वह जीवात्मा 'क्षेत्रज्ञ' कहलाता है। शरीरार्थक 'क्षेत्र' शब्द से अवबोधनार्थक 'ज्ञा' धातु से **'आतोऽनुपसर्गे कः'** (अ.३.२.३) इस सूत्र से 'क' प्रत्यय करने पर 'क्षेत्रज्ञ' शब्द निष्पन्न होता है।

श्रीमद्भगवद्गीता में भगवान् श्रीकृष्ण अर्जुन से कहते हैं—

CC0. In Public Domain. Jangamwadi Math Collection, Varanasi

Digitization by eGangotri and Sarayu Trust. Funding by MoE-IKS

गुणेशः सत्वरजस्तमसां नियन्ता च सः। अत एव स **संसारमोक्षस्थितिबन्धहेतुः** संसारो जगत्, मोक्षो मुक्तिः, स्थितिर्जीवनं, बन्धः संसारपाशः, एतेषां सर्वेषामपि स एव हेतुः। अतस्तज्ज्ञानमेव मोक्षहेतुर्नान्यदित्यर्थः फलति॥१६॥

स तन्मयो ह्यमृत ईशसंस्थो
ज्ञः सर्वगो भुवनस्याऽस्य गोप्ता।
य ईशे अस्य जगतो नित्यमेव
नाऽन्यो हेतुर्विद्यत ईशनाय॥१७॥

"क्षेत्रज्ञं चापि मां विद्धि सर्वक्षेत्रेषु भारत!।
क्षेत्रक्षेत्रज्ञयोर्ज्ञानं यत् तज्ज्ञानं मतं मम॥" (१३.२.)

इस पद्य में आचार्य शंकर कहते हैं कि सभी क्षेत्रों (क्षीयमाण शरीरों) में ब्रह्मा से लेकर स्तम्बपर्यन्त अनेक उपाधियों में विभक्त जीवात्मा भी मैं ही हूँ।

महाभारत के शान्ति पर्व (३५.१.१७) में **'क्षेत्रज्ञ'** की परिभाषा इस प्रकार है—

"क्षेत्राणि हि शरीराणि बीजं चापि शुभाशुभम्।
तानि वेत्ति स योगात्मा ततः क्षेत्रज्ञ उच्यते॥"

नश्वर शरीर और शुभ-अशुभ कर्मबीज इन दोनों का वेत्ता जो जीवात्मा होता है, उसे **क्षेत्रज्ञ** कहते हैं। गीता के पूर्व मन्त्र (१३.२) के अनुसार क्षेत्र और क्षेत्रज्ञ दोनों का ज्ञान ईश्वरीय ज्ञान ही है।]

"गुणेशः" = वह सत्त्व, रज और तम तीनों गुणों का नियन्त्रणकर्ता है। **"संसारमोक्षस्थितिबन्धहेतुः"** = इसीलिये वे स्थावरजंगमात्मक जगत्, मुक्ति, जीवन और सांसारिक पाश इन सभी के कारणस्वरूप हैं। अतः परमेश्वर का सर्वतोभावेन ज्ञान ही मोक्ष का कारण है, दूसरा कोई उसका हेतु नहीं है, यह इसका फलितार्थ है।

मन्त्रार्थ— परमशिव ही विश्व के निर्माता, विश्ववेत्ता, विश्वव्यापक सबके उपादान, ज्ञानस्वरूप सर्वाधान काल के स्रष्टा, सर्वज्ञ, प्रकृति और पुरुष दोनों के नियामक सत्त्व-रज और तम तीनों गुणों के स्वामी, जगत्, मुक्ति, स्थिति और सांसारिक पाश सभी के कारण हैं। अतः परमशिव का साक्षात्कार ही मुक्ति का उपाय है, उसका कोई दूसरा उपाय नहीं है॥१६॥

CC0. In Public Domain. Jangamwadi Math Collection, Varanasi

Digitization by eGangotri and Sarayu Trust. Funding by MoE-IKS

'स'इति। **सः तन्मयः** पूर्वोक्तज्योतिर्मयोऽ**मृतो** मरणरहितः। **ईशसंस्थ** ईशत्वेन सर्वनियन्तृत्वेन सम्यक् व्यवस्थितः। **ज्ञः** सर्वज्ञः **सर्वगो** विभुरस्य भुवनस्य जगतो गोप्ता च सम्पद्यते। तस्यैव स्वरूपं विविच्य निर्दिशति- **'य'** इत्यादिना। **योऽस्य जगतो नित्यमेव** सदैव **ईशे** ईष्टे। त्रिकालेऽपि **ईशनाय** जगन्नियमनाय न अन्यः हेतुः कारणं भवितुमर्हति। 'य एतादृशोऽस्ति स' इति पूर्वेणान्वयः।।१७।।

'स तन्मय' इत्यादि। परमेश्वर 'तन्मय' ज्योतिर्मय चित्प्रकाशपुञ्जस्वरूप है। [आचार्य **शंकर** कहते हैं कि — **''तस्य भासा सर्वमिदं विभाति''** (६.१४) इस मन्त्र की दृष्टि से परमेश्वर 'तन्मय' (ज्योतिर्मय) हैं।] **अमृतः** = वे मरणरहित हैं।

[**'विष्णुसहस्रनामस्तोत्र'** में परमेश्वर का ११९ वाँ नाम 'अमृत' है, जिसका निर्वचन **आचार्य शंकर** इस प्रकार करते हैं— **'न विद्यते मृतं मरणम् अस्येति अमृतः'** यतः परमात्मा अशरीरी हैं, मरण शरीर का धर्म है, आत्मा का नहीं, अतः परमेश्वर 'अमृत' मरणधर्मरहित, अमर है। **बृहदारण्यक उपनिषद्** परमेश्वर को अमर कहता है— **'अजरोऽमरः'** (४.४.२५)।]

ईशसंस्थः = ईश अर्थात् सर्वनियामक के रूप में वे सम्यक् प्रतिष्ठित हैं। [आचार्य **शंकर** कहते हैं— **'ईशे स्वामिनि सम्यक् स्थितिर्यस्याऽसौ ईशसंस्थः'** परमशिव सदा ईश्वरभाव में प्रतिष्ठित हैं।]

ज्ञः 'जानातीति ज्ञः' वे सब कुछ जानते हैं, अतः सर्वज्ञ हैं। **सर्वगः** = **'सर्वत्र गच्छतीति सर्वगः'** वे सर्वत्र गतिशील अतएव 'विभु' सर्वव्यापी हैं। **भुवनस्याऽस्य गोप्ता** = परमशिव चतुर्दश भुवनों के पालनकर्ता हैं। **य ईशे अस्य जगतो नित्यमेव** = जो इस जगत् पर नियमपूर्वक शासन करते हैं। **नान्यो हेतुर्विद्यते ईशनाय** = कालत्रय में भी परमशिव को छोड़कर कोई अन्य जगत् के नियमन का कारण नहीं हो सकता। जो इस प्रकार के हैं, वे परमेश्वर हैं। इस प्रकार पूर्व से सम्बन्ध है।

मन्त्रार्थ— जो ज्योतिर्मय, अजर-अमर, ईश्वरभाव में प्रतिष्ठित, सर्वज्ञ, सर्वत्र गतिशील, समस्त भुवनों के पालक हैं और समस्त जगत् के कुशल प्रशासक हैं तथा जिनके अतिरिक्त और कोई जगत् के नियमन का कारण नहीं हो सकता, वे ही परमशिवस्वरूप परब्रह्म परमात्मा है।।१७।।

CC0. In Public Domain. Jangamwadi Math Collection, Varanasi

Digitization by eGangotri and Sarayu Trust. Funding by MoE-IKS

एवं परमेश्वरं स्तुत्वा तदितरज्ञानस्य मोक्षसाधनत्वनिषेधात् तमेव स्वमोक्षार्थमाश्रयति—

यो ब्रह्माणं विदधाति पूर्वं
यो वै वेदांश्च प्रहिणोति तस्मै।
तं ह देवमात्मबुद्धिप्रकाशं
मुमुक्षुर्वै शरणमहं प्रपद्ये।।१८।।

'**यो ब्रह्माणमि**'ति। **यः पूर्वं** सर्वेषामाद्यं **ब्रह्माणं** चतुर्मुखं **विदधाति** सृजति। **यो वै** यश्च **तस्मै वेदांश्च प्रहिणोति** उपदिशति। **आत्मबुद्धिप्रकाशम्** आत्मनो मम बुद्धेः प्रकाशहेतुम्, "**मत्तः स्मृतिर्ज्ञानमपोहनं च**" इति गीताया-मुक्तम्। **तं देवं** परमात्मानं **मुमुक्षुः** संसारान्मोक्षं प्राप्तुमिच्छुरहं **शरणं प्रपद्ये** शरणत्वेनाऽऽश्रये। शरणागतेर्नाऽन्यो मोक्षोपायोऽस्ति।।१८।।

अवतरण— इस प्रकार मन्त्रद्रष्टा महर्षि परमशिव की स्तुति करते हुए परमात्मा से भिन्न ज्ञान का मोक्षसाधन के रूप में निषेध होने के कारण अपनी सद्गति के लिये उसी परमात्मा की शरण में जाते हैं—

'**यो ब्रह्माणं विदधाति पूर्वम्**'[१] इत्यादि। **यः** = जिन्होंने, **पूर्वम्** = सबके अग्रगण्य, **ब्रह्माणम्** = चतुर्मुख ब्रह्मदेव की, **विदधाति** = रचना की है, **यो वै** = (और) जिन्होंने, **तस्मै** = उस ब्रह्मदेव को, **वेदांश्च** = समस्त वेदों का, **उपदिशति** = उपदेश दिया है; **आत्मबुद्धिप्रकाशम्** = जो मेरी बुद्धि के विकासहेतु हैं, जैसा कि गीता में भगवान् कहते हैं— "**मत्तः स्मृतिर्ज्ञानमपोहनं च**" मुझ परमेश्वर से ही समस्त प्रत्यभिज्ञा स्मृति, ज्ञान और भ्रमनिरसन होता है। **तं ह देवम्** = उस दिव्य प्रकाशपुञ्जस्वरूप परमेश्वर की, **मुमुक्षुर्वै शरणमहं प्रपद्ये** = शरण में मुक्ति की कामना करता हुआ मैं जा रहा हूँ; क्योंकि शरणागति को छोड़कर अन्य कोई मुक्ति का उपाय नहीं है।

[आचार्य **शंकर** '**ब्रह्माणम् = हिरण्यगर्भम्**' इस प्रकार व्याख्यान करते हैं। क्योंकि "**यो देवानां प्रभवश्चोद्भवश्च**" (३.४; ४.१२) इत्यादि मन्त्र में हिरण्यगर्भ

---

१. इस मन्त्र का पद्यानुवाद इस प्रकार है—
"जिन परमेश्वर ने ब्रह्मा को सर्वप्रथम उत्पन्न किया।
जिनने उनको अमित ज्ञान का आकर अपना वेद दिया।।
आत्मबुद्धि के विमल विकाशक अखिल विश्व में रहे विराज।
मैं मुमुक्षु उन परमदेव की शरण ग्रहण करता हूँ आज।।"
('कल्याण' उपनिषद् अंक, जनवरी १९४९, पृ.१)

CC0. In Public Domain. Jangamwadi Math Collection, Varanasi

Digitization by eGangotri and Sarayu Trust. Funding by MoE-IKS

निष्कलं निष्क्रियं शान्तं निरवद्यं निरञ्जनम्।
अमृतस्य परं सेतुं दग्धेन्धनमिवानलम्।।१९।।

'निष्कलमि'ति। **निष्कलं** कला अवयवास्तद्रहितं निरवयवमित्यर्थः। **निष्क्रियं** निश्चलम्। अत एवं **शान्तं** निर्विकारम्, अत एव **निरवद्यं**

की प्रथम उत्पत्ति वर्णित है— **'हिरण्यगर्भं जनयामास पूर्वम्', 'हिरण्यगर्भं पश्यत जायमानम्।'**

विज्ञानभगवान् मन्त्रस्थित **'आत्मबुद्धिप्रकाशम्'** इस अंश की व्याख्या इस प्रकार करते हैं— **''बुद्धिर्नाम ज्ञानं स्वरूपानुभवः, स एव प्रकाशोऽस्येत्यात्मबुद्धि-प्रकाशस्तमात्मबुद्धिप्रकाशम्।''**

बुद्धि का अर्थ ज्ञान होता है। आत्मबुद्धि का अर्थ है आत्मज्ञान, आत्मस्वरूप की अनुभूतिस्वरूप प्रकाश परमेश्वर में विद्यमान रहने के कारण वे 'आत्मबुद्धिप्रकाश' है।

आचार्य **शंकर 'आत्मबुद्धिप्रसादम्'** पाठ को स्वीकार करते हुए उसकी व्याख्या इस प्रकार करते हैं— **''आत्मनि या बुद्धिः तस्याः प्रसादकरम्। प्रसन्ने हि परमेश्वरे बुद्धिरपि तद्विषया प्रमा निष्प्रपञ्चाकारब्रह्मात्मनाऽवतिष्ठते।''** परब्रह्म परमेश्वर अपने में जो बुद्धि प्रतिष्ठित है, उसका प्रसाद (विकास) करते हैं; क्योंकि परमेश्वर के प्रसन्न होने पर ही उससे सम्बद्ध प्रमा (निश्चयात्मिका बुद्धि) प्रपञ्चरहित ब्रह्म का आकार ग्रहण करती है।

'सिद्धान्तशिखामणि' (१८.५६) के अनुसार नष्टागमसम्पन्न निर्विकार आदि प्रसादी शिवयोगी ही आत्मबुद्धि प्रसाद कर परमशिव की शरण में जाता है। [द्रष्टव्य— तत्त्वप्रदीपिका, पृ.४४९]

मन्त्रार्थ— जिन्होंनें सर्वप्रथम ब्रह्मदेव की सृष्टि की और प्रथम वेदोपदेश दिया, मुक्तिकाम मैं अपनी बुद्धि को विकसित करने वाले उसी दिव्य प्रकाश परमशिव की शरण में जा रहा हूँ।।१८।।

अवतरण— पूर्वमन्त्रों में परमेश्वर का सृष्टिक्रम से वर्णन किया गया है। अब निरुपाधिक परमशिव का प्रतिपादन किया जा रहा है—

''निष्कलम्'' इत्यादि। [**निर्गताः कलाः यस्मात् तं निष्कलम्** = 'कला' का अर्थ अवयव होता है। परमेश्वर की सोलह कलाएँ सृष्टिक्रम से **'प्रश्नोपनिषद्'** (६.४) में इस प्रकार प्रतिपादित हैं— **''स प्राणमसृजत, प्राणाच्छ्रद्धाम्, खम्, वायुः ज्योतिरापः, पृथिवीं, इन्द्रियम्, मनः, अन्नम्, अन्नाद् वीर्यम्, तपः, मन्त्राः, कर्म, लोकाः, लोकेषु नाम च।'' ''गताः कलाः पञ्चदश प्रतिष्ठा'** (३.२.७)

CC0. In Public Domain. Jangamwadi Math Collection, Varanasi

Digitization by eGangotri and Sarayu Trust. Funding by MoE-IKS

सर्वविध-दोषरहितम्। **निरञ्जनं** सर्वविधलेपरहितम्। **अमृतस्य** मोक्षस्य **परमुत्तमं सेतुं** प्राप्त्युपायभूतम्। **दग्धेन्धनमनलमिव** स्थितम्। इन्धने सति धूमादिकं

मुण्डकोपनिषद् के इस मन्त्र में उपसंहारक्रम से नाम, लोक, कर्म, मन्त्र, तप, वीर्य, अन्न, मन, इन्द्रिय, पृथ्वी, जल, तेज, वायु, आकाश, श्रद्धा और प्राण इन षोडश कलाओं के अन्तर्गत उत्तरोत्तर कला का पूर्वपूर्व कला में यथाक्रम विलय का संकेत है। प्राणशक्ति परमशिव की अभिन्न शक्ति है। जब सभी कलाएँ परमशिव में विलीन होती हैं, तब वे इन कलाओं (अवयवों) से रहित होते हैं। इसी को ध्यान में रख कर भाष्यकार कहते हैं— **'कला अवयवास्तद्रहितं निरवयवमित्यर्थः।'** 'षोडशकल पुरुष' की सोलह कलाएँ (अवयव) हैं।] परमशिव कलारहित निरयव है।

निष्क्रियम् — अत एव परमशिव क्रियारहित, निश्चल है। [जैसा कि **सांख्यदर्शन** का सिद्धान्त है— **''प्रकृतिः कर्त्री पुरुषस्तु पुष्करवलाशवन्निर्लेपः।''** अथवा परमशिव अशरीरी है। क्रिया शरीरधारी का धर्म है, जब वे दिव्य विग्रह धारण करते हैं, विभिन्न लीलाएँ करते हैं, तब सक्रिय होते हैं। निराकार स्थिति में वे निष्क्रिय रहते हैं। **शान्तम्** — अत एव परमशिव शान्त निर्विकार, विकाररहित हैं। [जब वे प्रकृतिस्थ होते हैं, तब उनके विकृतियों का शमन होता है।] **निरवद्यम्** — परमशिव सभी प्रकार के दोषों से रहित हैं। आचार्य शंकर के मत में वे 'अगर्हणीय' (अनिन्द्य) हैं। **निरञ्जनम्** — वे सर्वविध लेपरहित हैं। **अमृतस्य परं सेतुम्** — (जिस प्रकार सागर को पार करने के लिये 'सेतु' की आवश्यकता होती है, उसी प्रकार) परमशिव ही अमृतत्व (मोक्ष) की प्राप्ति का उत्तम साधनस्वरूप 'सेतु' है।

[इस पर **विज्ञानभगवान्** की व्याख्या इस प्रकार है— **(अमृतस्य) ''संसारतद्धेतु-निवृत्तिलक्षणमोक्षस्य परं परमं सेतुं सेतुरिव सेतुः तम् *'अहं ब्रह्मामी'*ति बुद्धौ प्रतिबिम्बतत्त्वेन बुद्धिसंस्पृष्टं तत्त्वमविद्यातत्कार्यनिवृत्तिशब्दवाच्यतया निवृत्तिस्वरूपं तत्सेतुर्भवति।''**

'अमृत' का अर्थ है संसार से छुटकारा, मोक्ष। उस मोक्ष की प्राप्ति का उत्कृष्ट सेतु परमशिव है। अर्थात् **'तत्त्वमसि'** इस गुरूपदेश से जब शिष्य को **'अहं ब्रह्मास्मि'** इस प्रकार का ज्ञान होता है, तब ब्रह्माकार उस ज्ञान से अविद्या और अविद्या के कार्य की निवृत्ति होती है और इसी का नाम है मोक्ष। परमशिव ही उस मोक्षप्राप्ति के उत्तम सेतु हैं।]

दग्धेन्धनमिवानलम्— परमशिव उस अग्नि के समान हैं, जिसकी पूरी लकड़ी जल जाती है; क्योंकि लकड़ी अर्धदग्ध होने पर धुँवा होता है। उसका निराकरण करने के लिये यहाँ पर **'दग्धेन्धन'** विशेषण का सार्थक प्रयोग है।

CC0. In Public Domain. Jangamwadi Math Collection, Varanasi

Digitization by eGangotri and Sarayu Trust. Funding by MoE-IKS

स्यात्, तन्निरासाय दग्धेन्धनमित्युक्तम्। एतादृशं **देवं 'मुमुक्षुरहं शरणं प्रपद्ये'** इत्यन्वयः॥१९॥

एवं स्वयं परमशिवं समाश्रित्य तदितरोपायो मोक्षप्राप्त्यै नास्त्येवेति सम्यक् द्रढयति—

यदा चर्मवदाकाशं वेष्टयिष्यन्ति मानवाः।
तदा शिवमविज्ञाय दुःखस्यान्तो भविष्यति॥२०॥

'यदेति'। मानवा मनुष्या **आकाशं चर्मवद् यदा वेष्टयिष्यन्ति** आच्छादयिष्यन्ति **तदैव देवमुक्त**परमशिव**मविज्ञाय** अज्ञात्वाऽपि **दुःखस्य** संसारदुःखस्य **अन्तो**

[**विज्ञानभगवान्** कहते हैं— **"बुद्धिसम्बन्धेन जीवपरैक्यं तत्त्वं स्वतिरस्कारकाऽविद्यातन्मूलं द्वैतप्रपञ्चं तावन्मात्रतया दग्ध्वाऽनन्तसुखचिन्मात्रतया मोक्षेऽवस्थितमिति दग्धेन्धनमनलमिवेत्युच्यते।" 'अहं ब्रह्मास्मि'** इस ब्रह्माकार बुद्धि से जीवात्मा और परमात्मा में जब एकता स्थापित होती है, तब वही एकात्मकता का बोध आत्मस्वरूप का तिरस्कार करके अविद्या और उसके कारण उत्पन्न द्वैतभावना को भस्मसात् करता है और जीव स्वस्वरूप में अनन्त आनन्दमय चिन्मात्र स्थिति का अनुभव करता है। मोक्ष की इसी अवस्था का चित्रण **'दग्धेन्धनमिवानलम्'** इस उपमा के द्वारा प्रदर्शित है।]

"मुमुक्षुर्वै शरणमहं प्रपद्ये" इस पूर्वमन्त्र की अनुवृत्ति करने पर इसका अर्थ होगा— "मैं इस प्रकार के परमशिव की शरण में जा रहा हूँ।"

मन्त्रार्थ— मुक्तिकाम मैं पञ्चदश कलाओं से मुक्त 'निष्कल' क्रियारहित निश्चल, दोषरहित, निर्लेप मोक्ष के सेतुस्वरूप प्रज्वलित अग्नितुल्य परमशिव की शरण में जा रहा हूँ॥१९॥

अवतरण— इस प्रकार स्वयं परमेश्वर का अवलम्बन करने के अनन्तर मोक्ष-प्राप्ति के लिये उससे भिन्न उपाय अवशिष्ट ही नहीं रहता, इसी अर्थ का दृढ़तापूर्वक प्रतिपादन किया जा रहा है—

'यदा चर्मवत्' इत्यादि। **मानवाः** = मनुष्य, **यदा** = जिस समय, **आकाशम्** = आकाश को, **चर्मवत्** = चमड़े से, **वेष्टयिष्यन्ति** = लपेट लेंगे, **तदा** = उसी समय, **शिवम् अविज्ञाय** = बिना परमशिव के स्वरूप का साक्षात्कार किये ही, **दुःखस्य** = संसार के आध्यात्मिक, आधिदैविक और आधिभौतिक त्रिविध दुःखों का, **अन्तः भविष्यति** = नाश होगा। जिस प्रकार आकाश को चमड़े से लपेटना असम्भव

CC0. In Public Domain. Jangamwadi Math Collection, Varanasi

Digitization by eGangotri and Sarayu Trust. Funding by MoE-IKS

नाशो **भविष्यति।** यथा **आकाशस्य च चर्मवद्** वेष्टनमशक्यं तथा परमशिवं सर्वकारणमज्ञात्वा मोक्षोऽप्यसम्भवीत्यर्थ:।।२०।।

तप:प्रभावाद् देवप्रसादाच्च
ब्रह्म ह श्वेताश्वेतरोऽथ विद्वान्।
अत्याश्रमिभ्य: परमं पवित्रं
प्रोवाच सम्यगृषिसङ्घजुष्टम्।।२१।।

'तप:प्रभावादि'ति। **तप:प्रभावात्** तपसो योगादेर्माहात्म्यात्, तन्मूलाद् **दैवप्रसादात्** परमात्मानुग्रहाच्च **ब्रह्म विद्वान्** ब्रह्मज्ञानी **श्वेताश्वतर**स्तन्नामको

है, उसी प्रकार समस्त कारणस्वरूप परमशिव का ज्ञान प्राप्त किये बिना मोक्षप्राप्ति असम्भव है।

मन्त्रार्थ— (आकाश अमूर्त, अदृश्य, अनादि, अनन्त और कण-कणव्यापी होता है। मनुष्य उसके स्वरूप का यथावत् ज्ञान प्राप्त नहीं कर सकता। उसी प्रकार निर्गुण निराकार परमशिव भी अनादि-अनन्त कण-कणव्यापी और प्राणिमात्र की हृदयगुफा में अवस्थित है।) जिस प्रकर आकाश को चमड़े से लपेट कर उसे सीमित करना असम्भव है; उसी प्रकार परमशिव के सम्पूर्ण स्वरूप का ज्ञान प्राप्त करना भी कठिन है। जिस समय मानव सम्पूर्ण रूप से परमशिव के स्वरूप का साक्षात्कार करेगा, तभी उसके सर्वविध अनन्त दु:ख का अन्त होगा। उसे शाश्वत सुखस्वरूप मोक्ष की प्राप्ति होगी।।२०।।

'तप:प्रभावात्' इत्यादि। **अथ ह** = उसके पश्चात्, **विद्वान् श्वेताश्वतर:** = ब्रह्मज्ञानी महर्षि श्वेताश्वतर ने, **तप:प्रभावात्** = यमनियमादि अष्टांगयोगसाधना के प्रभाव से, **देवप्रसादात् च** = और परमात्मा के अनुग्रह से, **अत्याश्रमिभ्य:** = पूजार्थक 'अति' के साथ 'आश्रम' शब्द से 'क्तिन्' प्रत्यय लगाकर 'अत्याश्रमिन्' शब्द निष्पन्न होता है। चारों आश्रमों में पूज्य संन्यासाश्रम के अनुयायियों को, **ऋषिसङ्घजुष्टम्** = अनेक ऋषिगणों द्वारा अनुभूत, **परमं पवित्रम्** = अत्यन्त पवित्र, **ब्रह्म प्रोवाच** = परमशिवस्वरूप ब्रह्मतत्त्व का उपदेश दिया।

[टीकाकार शङ्करानन्द 'श्वेताश्वतर' नाम का निर्वचन इस प्रकार करते हैं— **''श्वेता: अवदाता: सदाऽन्तर्मुखत्वेन विपरीतप्रवृत्तिरहिता अश्वा इन्द्रियाणि यस्य स श्वेताश्वर:। अतिशयेन श्वेताश्व: श्वेताश्वतर:। अष्टाङ्गयोगनिरत इत्यर्थ:।''**

CC0. In Public Domain. Jangamwadi Math Collection, Varanasi

Digitization by eGangotri and Sarayu Trust. Funding by MoE-IKS

ऋषिरत्याश्रमिभ्यः- अतिः पूजायाम्, पूज्याश्रमः संन्यासस्तद्वद्भ्यो **ऋषिसङ्घजुष्टं** बहुभिः ऋषिभिः सेवितं बहुभिरनुभूतमिति यावत्। **परमं पवित्रमिदं** तत्त्वं प्रोवाचोपदिदेश॥२१॥

वेदान्ते परमं गुह्यं पुराकल्पे प्रचोदितम्।
नाऽप्रशान्ताय दातव्यं नाऽपुत्रायाऽशिष्याय वा पुनः॥२२॥

सदा अन्तर्मुख होने के कारण जिसके इन्द्रिय सदा विपरीत प्रवृत्तियों से पराङ्मुख रहते हैं, उस साधक को **'श्वेताश्व'** कहते हैं और जिसके इन्द्रियरूपी अश्व अष्टाङ्गयोगसाधना से अत्यन्त निर्मल रहते हैं, वे **'श्वेताश्वतर'** होते हैं। महर्षि श्वेताश्वतर उसी प्रकार अष्टाङ्गयोगनिरत योगी होने के कारण उनका नाम सार्थक था। **"मनसश्चेन्द्रियाणां च ह्यैकाग्र्यं परमं तपः"** इस सिद्धान्त के अनुसार महर्षि श्वेताश्वतर ने मन और इन्द्रियों को योगसाधनास्वरूप तप से जीता था, फलस्वरूप परमशिव का उन पर अनुग्रह हुआ था, जिससे उन्होंने ब्रह्मज्ञान प्राप्त किया था। उसी ज्ञान को उन्होंने **'अत्याश्रमी'** संन्यासियों को दिया।

अत्याश्रमी वीरशैवदर्शन के अनुसार 'लिङ्ग' का अर्थ परशिव होता है, 'अङ्ग' का अर्थ है जीवात्मा का क्षेत्र (शरीर)। जो अपने क्षेत्र (अंग) के साथ इष्टलिंग का संयोग करता है वह लिङ्गाङ्गसामरस्य स्वरूप मोक्ष का इच्छुक वीरशैव 'अत्याश्रमी' कहलाता है, चाहे वह ब्रह्मचारी हो, गृहस्थ हो, वानप्रस्थ हो अथवा संन्यासी हो।

"लिङ्गं शिवो भवेत् क्षेत्रमङ्गसंयोग आश्रयाः।
तस्माल्लिङ्गाङ्गेसंयुक्तो योऽपि सोऽत्याश्रमी भवेत्॥

ब्रह्मचारी गृहस्थो वा वानप्रस्थी यतिस्तु वा।
यस्तु लिङ्गाङ्गसंयुक्तः स एवात्याश्रमी भवेत्॥"]

मन्त्रार्थ— शिवतत्त्वज्ञानी महर्षि श्वेताश्वतर ने अपनी तपस्या के प्रभाव और देवता के अनुग्रहस्वरूप शरीर पर इष्टलिङ्ग धारण करने वाले लिङ्गाङ्गसामरस्य के इच्छुक वीरशैव साधकों को उस परमशिव ब्रह्मतत्त्व का उपदेश दिया, पूर्व में अनेक ऋषिसंघों ने जिसका ज्ञान किया था॥२१॥

अवतरण— अग्रिम दो मन्त्रों में यथाक्रम ब्रह्मविद्या के अनधिकारी और उसके अधिकारी का निरूपण है—

'वेदान्ते' इत्यादि। [प्रस्तुत मन्त्र में वैदिक साहित्य के ब्राह्मणभाग के अन्तर्गत समस्त उपनिषदत् साहित्य के लिये 'वेदान्त' शब्द का सप्तमी एकवचन में प्रयोग

CC0. In Public Domain. Jangamwadi Math Collection, Varanasi

Digitization by eGangotri and Sarayu Trust. Funding by MoE-IKS

'वेदान्त' इति। **वेदान्ते** उपनिषत्सु **परममत्यन्तं गुह्यं** रहस्यभूतं **पुराकल्पे** पुरातन एव काले **प्रचोदितमुपदिष्टम्**। अनादिसिद्धमित्यर्थः। **इदं प्रशान्तचित्ताय** पुत्राय, शिष्याय वा **दातव्यमुपदेष्टव्यम्**। **अप्रशान्ताय** शान्तिरहिताय विषयादिप्रवणाय **पुत्राय शिष्याय वा न दातव्यं** नोपदेष्टव्यम्॥२२॥

यस्य देवे परा भक्तिर्यथा देवे तथा गुरौ।
तस्यैते कथिता ह्यर्थाः प्रकाशन्ते, महात्मनः, प्रकाशन्ते महात्मनः॥२३॥

'यस्ये'ति। यस्य जीवस्य **देवे** एतादृशे परमशिवे **परा** उत्कृष्टा **भक्तिर**स्ति **यथा देवे तथैव गुरौ** च वर्तते, **तस्यैव महात्मन** उत्तमप्रकृतेरेव **कथिता** एतावता प्रबन्धेन **उक्ता एते अर्थाः प्रकाशन्ते** प्रकाशेयुः।

किया गया है, जो जातिवाचक है।] **वेदान्ते** = समस्त उपनिषदों में, **परमम्** = अत्यन्त, **गुह्यम्** = रहस्यस्वरूप, **पुराकल्पे** = पुरातन काल में ही, **प्रचोदितम्** = उपदिष्ट, अर्थात् अनादिसिद्ध (इस ब्रह्मतत्त्व को), **अप्रशान्ताय** = जिसका अन्तःकरण शान्त हो, **अपुत्राय** = उस अपने कुपुत्र को, **अशिष्याय वा पुनः**, अथवा जो कुशिष्य हो उसे, **न दातव्यम्** = प्रदान नहीं करना चाहिये। [ब्रह्मविद्या का उपदेश उसे ही करना चाहिये, जो सुपुत्र हो अथवा सुशिष्य हो।]

मन्त्रार्थ— औपनिषद वेदान्तदर्शन के अत्यन्त गोपनीय प्राचीनतम अनादिसिद्ध यह ब्रह्मोपदेश अशान्तचित्त कुपुत्र अथवा कुशिष्य को कभी भी कदापि नहीं करना चाहिये॥२२॥

''यस्य देवे'' इत्यादि। **हि** = क्योंकि, **यस्य** = जिस जीव की, **देवे** = दिव्य चित्प्रकाश भावलिङ्ग और इष्टलिङ्ग के रूप में यथाक्रम हृदयगुफा में और वक्षस्थल पर विराजमान परमशिव के प्रति, **परा भक्तिः** = उत्कृष्ट भक्ति हो। [अर्थात् शरीर, इन्द्रिय और मन की उसमें आस्तिक्यबुद्धिपूर्वक समर्पणभावना हो। जैसा कि **शंकरानन्द** ने भक्ति का स्वरूप निर्धारित किया है— **''भक्तिः आस्तिक्य- बुद्ध्यादियुक्ता भजनक्रिया कायेन्द्रियमनसां तस्मिन् समर्पणमित्यर्थः।''**] **यथा देवे** = और जिस प्रकार परमशिव में, **(यस्य) परा भक्तिः** = जिसकी उत्कृष्ट भक्ति होती है, **तथा गुरौ परा भक्तिः** = उसी प्रकार गुरु के प्रति उत्कृष्ट भक्ति हो,] **तस्यैव महात्मनः** = उसी उत्तम प्रकृति महात्मा सुपुत्र अथवा सुशिष्य को, **कथिताः** = उपदिष्ट, **एते अर्थाः** = ब्रह्मविद्या सम्बन्धी ये सभी विषय, **प्रकाशन्ते** = प्रकाशित होते हैं, उसे हृदयङ्गम होते हैं।

CC0. In Public Domain. Jangamwadi Math Collection, Varanasi

Digitization by eGangotri and Sarayu Trust. Funding by MoE-IKS

"प्रकाशन्ते महात्मनः" इति पुनरावृत्तिरुपदेशसमाप्तिसूचनार्थमिति ज्ञेयम्॥२३॥

।। इति षष्ठोऽध्यायः ।।६।।

।। इति कृष्णयजुर्वेदीया श्वेताश्वतरोपनिषद् सम्पूर्णा ।।

"प्रकाशन्ते महात्मनः" इस प्रकार पुनरुक्ति उपदेशसमाप्ति की सूचक है। [आचार्य **शंकर** कहते हैं कि— **"द्विर्वचनं मुख्यशिष्यतत्साधनादिदुर्लभत्व-प्रदर्शनार्थम्, अध्यायपरिसमाप्त्यर्थम्, आदरार्थं च।"** इस द्विरुक्ति के तीन प्रयोजन हैं— (१) ऐसे उपदेशों के अधिकारी शिष्य और उसके साधन आदि दुर्लभ होते हैं। (२) अध्यायसमाप्ति और (३) आदर प्रदर्शन।]

मन्त्रार्थ— जिसकी उत्कृष्ट भक्ति अपने इष्टदेवता परमेश्वर के प्रति होती है और साथ ही जिस प्रकार परमेश्वर के प्रति उत्कृष्ट भक्ति होती है, उसी प्रकार अपने विद्यागुरु और दीक्षागुरु के प्रति होती है, उस महात्मा उत्कृष्ट भक्ति उत्तमप्रकृति सुपुत्र और सुशिष्य को जो उपदेश दिया जाता है, वह उपदेश उसके अन्तःकरण में प्रतिबिम्बित होता है।।२३।।

।।इस प्रकार षष्ठ अध्याय के साथ श्वेताश्वतर
उपनिषद् की भावार्थदीपिका सम्पूर्ण।।

शान्तिपाठः

ॐ सह नाववतु।
सह नौ भुनक्तु सह वीर्यं करवावहै।
तेजस्विनावधीतमस्तु।
मा विद्विषावहै।।

❋ ❋ ❋

CC0. In Public Domain. Jangamwadi Math Collection, Varanasi

Digitization by eGangotri and Sarayu Trust. Funding by MoE-IKS

मन्त्रानुक्रमणिका

मन्त्रप्रतीकानि	अ०	मं०	पृष्ठ
अग्निर्यत्राभिमथ्यते	२	६	५८
अङ्गुष्ठमात्रो रवितुल्यरूपः	५	८	१९१
अङ्गुष्ठमात्रः पुरुषोऽन्तरात्मा	३	१३	१०५
अजात इत्येवं कश्चित्	४	२१	१६८
अजामेकां लोहितशुक्लकृष्णाम्	४	५	१३१
अणोरणीयान् महतो महीयान्	३	२०	१२०
अनाद्यनन्तं कलिलस्य मध्ये	५	१३	२०३
अपाणिपादो जवनो ग्रहीता	३	१९	११८
आदिः स संयोगनिमितहेतुः	६	५	२२१
आरभ्य कर्माणि गुणान्वितानि	६	४	२१८
उद्‌गीतमेतत्परमं तु ब्रह्म	१	७	२५
ऋचो अक्षरे परमे व्योमन्	४	८	१४२
एकैकं जालं बहुधा विकुर्वन्	५	३	१७७
एको देवः सर्वभूतेषु गूढः	६	११	२३९
एको वशी निष्क्रियाणां बहूनाम्	६	१२	२४१
एको हि रुद्रो न द्वितीयाय तस्थुः	३	२	८३
एको हंसो भुवनस्यास्य मध्ये	६	१५	२४८
एतज्ज्ञेयं नित्यमेवात्मसंस्थम्	१	१२	४३
एष देवो विश्वकर्मा महात्मा	४	१७	१५९

CC0. In Public Domain. Jangamwadi Math Collection, Varanasi

Digitization by eGangotri and Sarayu Trust. Funding by MoE-IKS

मन्त्रप्रतीकानि	अ०	मं०	पृष्ठ
एष ह देवः प्रदिशोऽनु सर्वाः	२	१६	७८
कालः स्वभावो नियतिर्यदृच्छा	१	२	८
किं कारणं ब्रह्म	१	१	६
क्षरं प्रधानममृताक्षरं हरः	१	१०	३४
गुणान्वयो यः फलकर्मकर्ता	५	७	१८८
घृतात् परं मण्डमिवातिसूक्ष्मम्	४	१६	१५८
छन्दांसि यज्ञाः क्रतवो व्रतानि	४	९	१४५
ज्ञाज्ञौ द्वावजावीशनीशौ	१	९	३२
ज्ञात्वा देवं सर्वपाशापहानिः	१	११	३८
तत् कर्म कृत्वा विनिवर्त्य भूयः	६	३	२१५
ततो यदुत्तरतरं तदरूपमनामयम्	३	१०	९९
ततः परं ब्रह्मपरं बृहन्तम्	३	७	९४
तदेवाग्निस्तदादित्यः	४	२	१२५
तद् वेदगुह्योपनिषत्सु गूढम्	५	६	१८६
तपःप्रभावाद् देवप्रसादाच्च ब्रह्म	६	२१	२५९
तमीश्वराणां परमं महेश्वरम्	६	७	२२८
तमेकनेमिं त्रिवृतं षोडशान्तम्	१	४	१६
तिलेषु तैलं दधनीव सर्पिः	१	१५	४८
ते ध्यानयोगानुगता अपश्यन्	१	३	११
त्रिरुन्नतं स्थाप्य समं शरीरम्	२	८	६२
त्वं स्त्री त्वं पुमानसि	४	३	१२८
द्वा सुपर्णा सयुजा सखाया	४	६	१३४
द्वे अक्षरे ब्रह्मपरे त्वनन्ते	५	१	१७१
धर्मावहं पापनुदं भोगं	६	६	२२४
न तत्र सूर्यो भाति न चन्द्रतारकम्	६	१४	२४६

CC0. In Public Domain. Jangamwadi Math Collection, Varanasi

Digitization by eGangotri and Sarayu Trust. Funding by MoE-IKS

मन्त्रप्रतीकानि	अ०	मं०	पृष्ठ
न तस्य कश्चित् पतिरस्ति लोके	६	९	२३५
न तस्य कार्यं करणं च विद्यते	६	८	२३०
नवद्वारे पुरे देही	३	१८	११७
न सन्दृशे तिष्ठति रूपमस्य	४	२०	१६७
नित्यो नित्यानां चेतनश्चेतनानाम्	६	१३	२४४
निष्कलं निष्क्रियं शान्तम्	६	१९	२५६
नील: पतङ्गो हरितो लोहिताक्ष:	४	४	१२९
नीहारधूमार्कानिलानलानाम्	२	११	६७
नैनमूर्ध्वं न तिर्यञ्चम्	४	१९	१६६
नैव स्त्री न पुमानेष:	५	१०	१९५
पञ्चस्रोतोऽम्बुं पञ्चयोन्युग्रवक्राम्	१	५	१९
पुरुष एवेदं सर्वम्	३	१५	१०९
पृथ्व्यप्तेजोऽनिलखे समुत्थिते	२	१२	६९
प्राणान् प्रपीड्येह संयुक्तचेष्ट:	२	९	६३
बालाग्रशतभागस्य	५	९	१९३
(ॐ) ब्रह्मवादिनो वदन्ति	१	१	६
भावग्राह्यमनीडाख्यम्	५	१४	२०५
महान् प्रभुर्वै पुरुष:	३	१२	१०२
मा नस्तोके तनये मा	४	२२	१६९
मायां तु प्रकृतिं विद्यात्	४	१०	१४७
य एको जालवानीशत ईशनीभि:	३	१	८१
य एकोऽवर्णो बहुधा शक्तियोगात्	४	१	१२३
यच्च स्वभावं पचति विश्वयोनि:	५	५	१८२
यदाऽतमस्तन्न दिवा न रात्रि:	४	१८	१६२
यदा चर्मवदाकाशम्	६	२०	२५८

CC0. In Public Domain. Jangamwadi Math Collection, Varanasi

Digitization by eGangotri and Sarayu Trust. Funding by MoE-IKS

मन्त्रप्रतीकानि	अ०	मं०	पृष्ठ
यदात्मतत्त्वेन तु ब्रह्मतत्त्वम्	२	१५	७४
यदैव बिम्बं मृदयोपलिप्तम्	२	१४	७३
यस्तन्तुनाभ इव तन्तुभिः	६	१०	२३६
यस्मात् परं नापरमस्ति किञ्चित्	३	९	९६
यस्य देवे परा भक्तिः	६	२३	२६१
या ते रुद्र शिवा तनू०	३	५	९१
यामिषुं गिरिशन्त हस्ते	३	६	९३
युक्त्वाय मनसा देवान्	२	३	५४
युक्तेन मनसा वयं देवस्य	२	२	५३
युजे वां ब्रह्म पूर्व्यम्	२	५	५७
युञ्जते मन उत युञ्जते	२	४	५५
युञ्जानः प्रथमं मनः	२	१	५२
येनावृतं नित्यमिदं हि सर्वम्	६	२	२१२
यो देवानां प्रभवश्चोद्भवश्च	३	४	८९
यो देवानां प्रभवश्चोद्भवश्च	४	१२	१५२
यो देवानामधिपो यस्मिन्	४	१३	१५२
यो देवो अग्नौ यो अप्सु	२	१७	७९
यो ब्रह्माणं विदधाति पूर्वम्	६	१८	२५५
यो योनिं योनिमधितिष्ठत्येकः	४	११	१५०
यो योनिं योनिमधितिष्ठत्येकः	५	२	१७४
लघुत्वमारोग्यमलोलुपत्वम्	२	१३	७१
वह्नेर्यथा योनिगतस्य मूर्तिः	१	१३	४६
विश्वतश्चक्षुरुत विश्वतोमुखः	३	३	८७
वेदान्ते परमं गुह्यम्	६	२२	२६१
वेदाहमेतमजरं पुराणम्	३	२१	१२१

CC0. In Public Domain. Jangamwadi Math Collection, Varanasi

Digitization by eGangotri and Sarayu Trust. Funding by MoE-IKS

मन्त्रप्रतीकानि	अ०	मं०	पृष्ठ
वेदाहमेतं पुरुषं महान्तम्	३	८	९५
स एव काले भुवनस्य गोप्ता	४	१५	१५६
सङ्कल्पनस्पर्शनदृष्टिमोहैः	५	११	१९७
स तन्मयो ह्यमृत ईशसंस्थः	६	१७	२५३
समाने वृक्षे पुरुषो निमग्नः	४	७	१३६
समे शुचौ शर्करावह्निवालुका०	२	१०	६६
सर्वतः पाणिपादं तत्	३	१६	११४
सर्वव्यापिनमात्मानम्	१	१६	५०
सर्वाजीवे सर्वसंस्थे बृहन्ते	१	६	२२
सर्वा दिश ऊर्ध्वमधश्च तिर्यक्	५	४	१७९
सर्वेन्द्रियगुणाभासम्	३	१७	११५
सर्वाननशिरोग्रीवः	३	११	१००
सवित्रा प्रसवेन जुषेत	२	७	५९
स विश्वकृद् विश्वविदात्मयोनिः	६	१६	२५१
(ॐ) सह नाववतु — शांतिमन्त्रः			१
सहस्रशीर्षा पुरुषः	३	१४	१०७
स्थूलानि सूक्ष्माणि बहूनि चैव	५	१२	२००
स्वदेहमरणिं कृत्वा	१	१४	४७
स्वभावमेके कवयो वदन्ति	६	१	२०९
सूक्ष्मातिसूक्ष्मं कलिलस्य मध्ये	४	१४	१५४
संयुक्तमेतत् क्षरमक्षरं च	१	८	२६

***

CC0. In Public Domain. Jangamwadi Math Collection, Varanasi

Digitization by eGangotri and Sarayu Trust. Funding by MoE-IKS

॥ श्रीः ॥

उद्धृत-वचन-तालिका
(वीरशैवभाष्य)

उद्धृतवचन (वीरशैवभाष्य)	श्वेता.उप.संदर्भ	पृष्ठ
अकिञ्चनोऽहं शृणु सङ्गमार्य! —शरणाः	६.६	२२७
अचेतनत्वाद् पृथ्व्यादे — सि.शि.म., १०.५३	३.१५	१११
अजो जन्तुरनीशोऽयं	१.२	१०
अणिमा महिमा चैव	१.४	१८
अणोरणीयान् महतो महीयान् — श्वे.उ., ३.२०	३.९	९८
अतस्त्वमेवार्हसि रक्षितुं माम् — शरणगीता	५.९	१९४
अत्रैव योग्या य इहाद्य दृष्टा — शरणाः	६.१	२१०
अतो विहीनः क्रियया जनोऽयं — शरणाः	६.२	२१५
अदृष्टं द्रष्टृ — श्रुतिः	३.१९	१२०
अध्यवोचदधिवक्ता — रुद्राध्यायः	४.१८	१६५
अनन्याश्चिन्तयन्तो मां — गीता, ९.२२	१.१०	३६
अपाणिपादो जवनो ग्रहीता — श्वे.उ. ३.१९	३.१७	११६
अयः प्रताप्य स्वयमेव यातो — शरणाः	५.१०	१९६
अल्पोऽपि लाभो न हि दृश्यतेऽस्मिन् — शरणाः	६.१	२११
अशब्दमस्पर्शमरूपमव्ययः — कठ.उ.१.१३.१३	४.१	१२३
अस्ति सच्चित् सुखाकार — सि.शि.म., २.३	४.१८	१६३
अहमात्मा गुडाकेश! — गीता १०.२०	३.११	१०१
अहं ब्रह्मास्मि — बृ.उ., ६.४.१०	१.६	२३
आणवाख्यो मलपाशः — प्रयोगः	१.८	२८
आत्मज्योतिषि सर्वेषां — सि.शि.म., १६.७२	२.७	६१
आत्मन आकाशः सम्भूतः — तै.उ., १६.७२	६.२	२१३
आत्मशक्तिविकासेन — सि.शि.म., १०.६६	३.१५	१११
आत्मस्वरूपावगमस्तु येषां — शरणगीता	५.५	१८४

CC0. In Public Domain. Jangamwadi Math Collection, Varanasi

Digitization by eGangotri and Sarayu Trust. Funding by MoE-IKS

उद्धृतवचन (वीरशैवभाष्य)	श्वेता.उप.संदर्भ	पृष्ठ
आत्मानमरणिं कृत्वा — कै.उ., १.११	२.१५	७४
आसां योगप्रवृत्तीनां अभियुक्ताः	२.१२	७०
इह चेदवेदीरथ — के.उ., २.५	१.११	४०
इति तु पञ्चम्यामाहुतावापः — छा.उ., ५.९.१	६.१५	२४९
ईशावास्यमिदं सर्वं — ईश उ., १	५.४	१८२
उत्तमः पुरुषस्त्वान्यः — गीता, १५.१८	४.७	१३९
उद्धृत्य सम्पीड्य परान् नरांस्तु — शरणाः	५.११	१९९
उपसंहारदर्शनान्नेति चेन्न — ब्रह्मसूत्र २.१.२४	३.२	८४
उमासहायं परमेश्वरं प्रभुं — कै.उ., १.७	४.२	१२७
एकमेवाद्वितीयं ब्रह्म — छा.उ., ६.२.१	३.२	८३
एकैव भूमिः परिदृश्यते हि — शरणगीता	५.५	१८५
एतादृशान् वीक्ष्य ममैव लज्जा — शरणगीता	५.१४	२०७
एतादृशां लाञ्छनधारणात् किं — शरणाः	६.२	२१५
एतावानस्य महिमा — पुरुषसूक्त ३	४.१९	१६६
एतद् वै तदक्षरम् — श्रुतिः	१.७	२५
एवं यदि स्यास्त्वमिहैव युक्तः — शरणाः	६.२	२१४
एष एव साधु कर्म कारयति — श्रुतिः	६.५	२२१
कण्ठसूत्रं विना नारी — अभियुक्तोक्तिः	४.८	१४४
करी यथा दर्पण एव लीयते — शरणगीता	६.१०	२३८
कर्णेऽभिजातः क इहास्ति लोके — शरणाः	५.१०	१९६
कायस्य चित्तस्य च दण्डनाद् यद् — शरणाः	५.११	१९९
कार्मिकाख्योः मलपाशः — प्रयोगः	१.८	२८
किं क्लिश्यसे दुर्विषयोपभोगात् — शरणाः	६.२	२१४
किमर्थमेतद् भवबन्धनं मे — बसवार्यः	४.७	१४१
किमेवमस्ति प्रविभाग एषः — शरणगीता	५.५	१८५
कुर्वन्नेवेह कर्माणि — ई.श.उ., २	२.७	६०
कूपं खनित्वाऽन्यमपेयरूपं — शरणगीता	६.१०	२३८
कोटिसूर्यप्रतीकाशं — सि.शि.म., २.११	४.१८	१६४
क्रियाविहीना मतिरत्र नेष्यते — शरणगीता	५.१२	२०२
क्षरः सर्वाणि भूतानि — गीता, १५.१६,१७	१.८	२६

CC0. In Public Domain. Jangamwadi Math Collection, Varanasi

Digitization by eGangotri and Sarayu Trust. Funding by MoE-IKS

उद्धृतवचन (वीरशैवभाष्य)	श्वेता.उप.संदर्भ	पृष्ठ
क्षीरप्रवाहे गुडपङ्कपूर्णे — शरणगीता	६.१०	२३८
गतानुगन्यायमथोत्सवानुग — शरणगीता	५.१३	२०४
गुहां प्रविष्टावात्मानौ हि तद्दर्शनात् — ब्रह्मसूत्र १.२.११	४.६	१३५
गुहेश्वर! त्वत्कृपया व्यवर्धयं — अल्लमप्रभुः	५.१	१७२
ग्रामस्य बाह्यान्तरभेदमात्रात् — शरणगीता	५.५	१८४
चण्डेशलिङ्गाय समर्प्यते चेत् — शरणाः	५.११	१९९
चित्ते विशुद्धिर्यदि नास्ति पुंसि — शरणगीता	६.४	२१९
चित्ते मदीयं शृणुताद् वचोऽधुना — सिद्धराम शिवयोगीश्वर	५.१	१७३
जलेन पत्रेण च पुष्पधूप — शरणगीता	५.१३	२०४
जले यथा गूढतमोऽस्ति बह्नी — बसवार्यः	५.६	१८७
जातस्य हि ध्रुवो मृत्युः — गीता, २.२७	४.२१	१६८
जीवत्वं दुःखसर्वस्वं — सि.शि.म., १८.१७	४.७	१३७
ज्ञानं विनैवाचरणं न शोभते — शरणगीता	५.१२	२०२
ज्योतिष्मती स्पर्शवती — अभियुक्तोक्तिः	२.१२	७०
तत् कायकं पावकमित्युदीर्यते — शरणगीता	५.१२	२०१
तत्रा परा — ऋग्वेदी — मु.उ. १.१.५	६.४	१४२
तत् सृष्ट्वा तदेकनुप्राविशत् — तै.उ., २.६	३.११	१०१
तदा विनश्येत्तु तदीयसेवा — शरणाः	६.४	२२०
तदिदं मलकल्पितम — सि.शि.म., १८.१७	४.७	१३९
तमेव विदित्वाऽतिमृत्युमेति — श्वे.उ., ६.१५	४.७	१३८
तरङ्गादिर्यथा सिन्धोः — सि.शि.म., १९.७२	३.१५	११०
तस्य भासा सर्वमिदं विभाति — श्वे.उ., ६.१४	३.११	१०२
तस्यैते तनुवौ घोराऽन्याशिवाऽन्या — श्रुतिः	३.५	९१
तस्यैव चित्तं परिशुद्धिमेति — शरणगीता	६.४	२१९
तावत्प्रभो पश्य तथात्मलीनं — बसवार्यः	६.५	२२३
तिक्तो रसो भासत एव बाह्ये — शरणगीता	६.१०	२३७
तेन विना तृणमपि न चलति — श्रुतिः	३.११	१०२
तेषां सततयुक्तानां — गीता, १०.२०	३.४	९०
न तदस्ति विना यत् स्यात्	३.११	१०२

CC0. In Public Domain. Jangamwadi Math Collection, Varanasi

Digitization by eGangotri and Sarayu Trust. Funding by MoE-IKS

उद्धृतवचन (वीरशैवभाष्य)	श्वेता.उप.संदर्भ	पृष्ठ
त्यक्त्वा तु दोलायनमेव चित्तं — बसवार्य:	४.८	३१
त्रैविद्य मां सोमपा: धूतपापा: — गीता, ९.२०	५.३	१७८
त्वद्भक्तपादार्चनभृत्य — बसवार्य:	५.३	१७८
त्वमेव भक्तिं कुरुषे तदैव — शरणा:	६.१२	२४२
दुराशया यत् समुपार्ज्य चार्प्यते — शरणा:	५.११	१९९
दृगिच्छया चान्यवधूं स्मरेयु: — शरणा:	६.२	२१५
देवस्य नैपुण्यविशेष एव — शरणा:	२.१	२११
देहस्य पुष्टिं हि विधातु कामा: — शरणा:	६.२	२१४
द्वा सुपर्णा सयुजा — श्वे.उ.४.६	१०८	३१
द्वाविमौ पुरुषौ लोके — गीता, १५.१६	४.७	१३९
न कायकादभ्यधिकं त्वभीप्सेत् — शरणा:	६.४	२२०
न तत्र सूर्यो भाति — श्वे.उ., ६.१४	४.१८	१६४
न शिवेन विना शक्ति: — अभियुक्ता:	६.८	२३२
नष्टोऽस्मि शम्भो! गिरिशास्मि — बसवार्य:	६.५	२२३
नियति: कर्म — शाङ्करभाष्यम् (१.२)	१.२	८
निरस्यते गुरोर्बोधात् — सि.शि.म., १३.१४	४.७	१४०
नैवाभिकाङ्क्षे कमलोद्भवस्य — बसवार्य:	५.३	१७८
नो चेदसौ तैर्न कदापि भाषते — शरणा:	६.१	२११
पङ्के निमग्नस्य पशोर्हि दृष्टा — बसवार्य:	६.५	२३२
पञ्चैव गावो नहि कुर्युरत्र — शरणवचनम्	५.१	१७२
पतिं विश्वस्यात्मेश्वरं — श्रुति:	४.१५	१५६
पराऽस्य शक्तिर्विविधैव श्रूयते — श्वे.उ., ६.८	३.२	८५,
	४.१	१२४
परेण नाकं विहितं गुहायां — श्रुति:	६.११	२४०
पवित्रं ते विततं ब्रह्मणस्पते! — ऋग्वेद:	१.११	४०
पशुस्त्वहं त्वं च पशोरधीश: — बसवार्य:	६.५	२२३
पाथेयबन्धादुदरोर्ध्वभागे — शरणगीता	५.१४	२०७
पुण्यं पापं यद्धि लोके प्रदृष्टं — शरणगीता	५.७	१९०
पुरुष एवेदं सर्वम् — पुरुषसूक्तम् २	४.१९	१६६
पूर्णमद: पूर्णमिदं — बृ.उ., ५.१	३.९	९८

CC0. In Public Domain. Jangamwadi Math Collection, Varanasi

Digitization by eGangotri and Sarayu Trust. Funding by MoE-IKS

उद्धृतवचन (वीरशैवभाष्य)	श्वेता.उप.संदर्भ	पृष्ठ
प्रकृतिं पुरुषं चैव — गीता, १३.१९	१.९	३३
प्रकृतिं स्वामवष्टभ्य — गीता ९.८	३.१	८२
प्रतिष्ठितं नश्यति कालयोगात् — शरणाः	६.६	२२७
प्रपञ्चोपमं शान्तं — श्रुतिः	४.७	१४०
बालासु सौहार्द्रभिवास्ति गूढं — बसवार्यः	५.६	१८७
बीजे यथाङ्कुरः सिद्धः — सि.शि.म., ५.३६	१.१२	४४,
	६.६	२२६
बीजं मां सर्वभूतानां — गीता, ७.१०	२.१६	७८
ब्रह्मणस्पते! ब्रह्मणोऽधिपतिर्ब्रह्मा — महा.ना.उ., २९	१.११	४०
ब्रह्मविद् ब्रह्मैव भवति — श्रुतिः (मु.उ.,३.१.९)	१.११	३९,
	५.६	१८८
भवन्ति भावा भूतानां	१.१६	५०
भूमिरापोऽनलो वायुः — गीता, ७.४	१.४	१८,
	६.३	२१६
भेदः समस्तीति विभावयन्तः — शरणगीता	५.५	१८५
मण्डपोऽस्त्री जनाश्रयः — अमरकोष	२.१०	६६
मन एव मनुष्याणां	१.५	२०,
	४.१०	१६१
मनसश्चेन्द्रियाणां हि — स्मृतिः	१.१५	४९
मनसा तु विशुद्धेन ग्राह्यः — श्रुतिः	३.१३	१०६
ममत्वमोहं त्यज शीघ्रमेव — शिवयोगिनः शरणाः	६.२	२१४
मया तु जन्मान्तर एव देवो — बसवार्यः	४.७	१४१
मर्त्यो हि लोकः परमेश्वरस्य — शरणाः	५.४	१८२
	६.१	२१०
महादेवनामा वणिजां वरिष्ठः — शरणाः	६.१	२१०
मामेव ये प्रपद्यन्ते — गीता, ७.१४	४.१०	१४८
मादुपधायाश्च मतोर्वो (अ.८.२.९)	३.१	८१
मायां तु प्रकृतिं विद्यात् — श्वे.उ., ४.१०	१.३	१३
मायीयाख्यो मलः — प्रयोगः	१.८	२८
मृतेर्विलम्बो नरकश्च दूरे — शरणाः	६.२	२१४

CC0. In Public Domain. Jangamwadi Math Collection, Varanasi

Digitization by eGangotri and Sarayu Trust. Funding by MoE-IKS

उद्धृतवचन (वीरशैवभाष्य)	श्वेता.उप.संदर्भ	पृष्ठ
मं शिवं परमं ब्रह्म — शिवागमः	१.१० ४.१०	३६; २१०
यज्ज्ञात्वा नेहभूयोन्यत — गीता, ७.२	१.१२	४५
यत् प्रयन्त्याभिसंविशन्ति — उपनिषद्	१.६	२३
यत्र यत्र च दृशं प्रहिणोति — बसवार्यः	५.४	१८०
यथा चन्द्रे स्थिरा ज्योत्स्ना — सि.शि.म., १०.३८	४.१८	१६५
यथा पुष्पपलाशादि — सि.शि.म., १९.७३	३.१५	११०
यदा चर्मवदाकाशं — श्वे.उ., ६.२०	३.८	९६
यदादित्यगतं तेजो — गीता, १५.१२	४.१८	१६४
यदाश्रयेत् कायकमेव मानवः — शरणगीता	५.१२	२०१
यदा सर्वे प्रमुच्यन्ते — बृ.उ. ६.१४	१.११	२९, २४३
यदाऽस्मि सद्भक्तसहासिकां गतः — बसवार्यः	५.९	१९४
यद्यद् विश्वभूतिमत् सत्वं — गीता, १०.४१	४.१०	१४९
यद्यैकमत्यं व्यवहर्तृभिश्चेत् — शरणाः	६.१	२१९
यमेवैष वृणुते तेन लभ्यः — कठ.उ., १.२.२३	५.१३	२०४
यस्मात् क्षरमतीतोहं — गीता १५.१८	४.७	१३९
यस्यैकशेषशकले सकलः समाप्तः — अभियुक्ताः	४.१०	१४९
यावच्च मां हिंस्र इति — बसवार्यः	६.५	२२३
यावच्च सेवाममलेश्वरस्य — शरणगीता	६.४	२१९
युक्ताहारविहारस्य — गीता, ६.१७	२.९	६३
ये त्वत्र नार्हास्त्वभवन् मनुष्याः — शरणाः	६.१	२१०
येन जातानि जीवन्ति — श्रुतिः	१.६	२२
येनैव दृष्टं परमेशरूपं — शरणगीता	५.५	१८४
ये हि संस्पर्शजा भोगा — गीता, ५.२२	४.५, ४.७	१३२ १३७
योगश्चित्तवृत्तिनिरोधः — यो.सू., १.१.२	२.१	५२
यो ब्रह्माणं विदधाति पूर्वं — श्वे.उ., ६.१०	४.१८	१६५
रजो विना बिन्दुसमागमो न — शरणाः	५.१०	१९६
राज्ञः शवः स्याद् यदि पण्यवीथ्यां — शरणगीता	६.६	२२७

CC0. In Public Domain. Jangamwadi Math Collection, Varanasi

Digitization by eGangotri and Sarayu Trust. Funding by MoE-IKS

उद्धृतवचन (वीरशैवभाष्य)	श्वेता.उप.संदर्भ	पृष्ठ
लिङ्गमध्ये जगत्सर्वं — सि.शि.म.	३.९	९७
लिङ्गस्य मार्गः परिहीयते यदा — शरणाः	६.१	२१०
लीयते गम्यते यत्र — सि.शि.म.	३.१६	११४
लोटो लङ्वत् — पा.अ. ३.४.८५	२.१	५३
वागर्थाविव सम्पृक्तौ — रघु. १.१	६.८	२३२
विकरणत्वान्नेति चेत्तदुक्तं — ब्रह्मसूत्र २.१.३१	३.२	८४
वित्ते कृशे काय — बसवार्यः	५.९	१९४
विश्वतश्चक्षुरुत विश्वतोमुखो — श्वे.उ. ३.३	३.११	१००
विश्वं भूतं भुवनं — श्रुतिः	१.१२	४५
विश्वं भूतं च भुवनं — शिवगीता	३.१५	१०९
विष्टभ्याहमिदं कृत्स्नं — गीता, १०.४२	४.१०	१४९
वेण्वन्तरे केमचिदश्म दत्तं — शरणगीता	५.१४	२०७
वेदाहं समतीतानि — गीता ७.२६	३.१९	११९
वैषम्यनैर्घृण्ये न सापेक्षत्वात् — ब्रह्मसूत्रम्	६.४	२१८
व्यवस्थितात् कायकजाद् धनाच्च — शरणाः	६.४	२२०
व्याघ्रास्य संसक्तमृगोयथैव — शरणगीता	५.९	१९४
शक्तिसङ्कोच एव मलपाशः — प्रयोगः	१.८	२८
शरीरभूतादेतस्मात् — सि.शि.म. १०.५२	३.१५	१११
शवान्निकृष्टं नरजन्म लोके — शरणगीता	६.६	२२७
शशं प्रहृत्यानयतीव लुब्धः — शरणगीता	६.६	२२७
शिव जगत् सर्वं शिव एवा — सि.शि.म., १९.८४	३.१५	११२
शिव भावनम् सर्वं — सि.शि.म., १६.७०	२.७	६०
शिवमात्मनि पश्यन्ति — शिवधर्मो. पु.	१.१२	४३
शिवरुद्रमहादेव — सि.शि.म., २.६	४.१८	१६३
श्रीरेणुकार्यं गुरुवर्यमीडे — मङ्गलपद्यम् १	१.१	२
सकृत् समभ्यर्च्य भवं वितीर्य — सिद्धराम शिवयोगीश्वर	५.१	१७३
सकृत् समाहूय पते! हरेति — सिद्धराम शिवयोगीश्वर	५.१	१७३
सत्येन लभ्यस्तपसा — मु.उ., १.१.५	१.१६	५१
सत्येन शुद्धेन च कायकेन — शरणाः	५.११	१९९
सत्यात्म प्राणारामं मन — श्रुतिः	४.७	१४०

CC0. In Public Domain. Jangamwadi Math Collection, Varanasi

Digitization by eGangotri and Sarayu Trust. Funding by MoE-IKS

उद्धृतवचन (वीरशैवभाष्य)	श्वेता.उप.संदर्भ	पृष्ठ
सदायतनाः सत्प्रतिष्ठाः — श्रुतिः	१.७	२५
सन्तिष्ठते विक्रयणार्थमेव — शरणाः	६.१	२१०
सप्तधातु समं पिण्डं — शरणाः	५.१०	१७६
समस्तजगदात्मापि — सि.शि.म., १०.७१	३.१४	१०७
समाने वृक्षे पुरुषो — श्वे.उ., ४.७	१.८	३२
सम्पद्युतैरत्र शिवालयादिः — शरणाः	६.६	२२७
सम्पूज्य कालीं तदुपान्तदेशं — शरणाः	६.२	२१५
स विश्वकृद् विश्वविदात्म — श्वे.उ. ६.१६	३.४	९०
सर्वभूतानि कौन्तेय! — गीता ९.७	३.१	८२
सर्वस्य चाहं हृदि सन्निविष्टः — गीता, १५.१५	१.१६	५०
सर्वाधारः कालः — न्यायः	१.२	८
सर्वे जनाः सुखिनो भवन्तु — न्यायः	२.५	५७
सर्वे वयं चेद्गतुमार्गयायिनो — शरणाः	६.१	२११
सर्वं खल्विदं ब्रह्म — छा.उ. ३.१४	१.१२	४५
सर्वं समाप्नोषि ततोऽसि सर्वः — गीता ११.४७	३.११	३.१५
	२.१५	१०८
सर्वो ह्येष रुद्रः — श्रुतिः	३.२	८३
साधोर्हि वाणी परुषैव — शरणगीता	६.१०	२३७
सैषा परमा शक्तिः — सि.शि.म.	६.८	२३२
स्तम्भौ भवेतां तु मदीयपादौ — शरणाः	६.६	२२७
स्थाणुरयं भारहरः — अभियुक्तोक्तिः	४.८	१४४
स्वदेहमेवोपवनं विधाय — अल्लमप्रभुः	५.१	१७२
स्वान्ते निखन्यां परमात्मबीजं — अल्लमप्रभुः	५.१	१७२
हन् हिंसागत्योः — पा.धातुपाठः	१.६	२३
हृद्यपेक्षया तु मनुष्याधिकारत्वात् — ब्र.सू.	३.१३	१०५

❋ ❋ ❋

CC0. In Public Domain. Jangamwadi Math Collection, Varanasi

Digitization by eGangotri and Sarayu Trust. Funding by MoE-IKS

॥ श्रीः ॥

उद्धृत-वचन-तालिका
(भावार्थदीपिका)

उद्धृतवचन (भावार्थदीपिका)	श्वेता.उप.संदर्भ	पृष्ठ
ॐ तत्सदिति निर्देशो — गीता १७.३३	शांतिमंत्रः २.८	१,६३
अकारणमकार्यं यत् — सि.शि.म., १९.४१	६.८	२३१
अघोराऽपापकाशीति — सि.शि.म., ६.६२	३.५	९२
अङ्गलिङ्गी ज्ञानरूपः — सि.शि.म., १३.२	५.११	१९९
अजरोऽमरः — बृ.उ. ४.४:२५	६.१७	२५४
अणोरणीयानहमेव — कै.उ. २०	३.२०	१२०
अनन्यदेवतादृश्यं — सि.शि.म. ११.३४	६.८	२३१
अनित्याऽशुचिदुःखा — यो.सू. २.५	१.५	२१
अनुद्वेगकारं वाक्यं — गीता १७.१५	१.१५	४९
अपनी प्रकृति आधीन कर — श्रीकृष्णगीता ९.८	३.१	८२
अपाणिपादो जवनो ग्रहीता — श्वे.उ. ३.१९	३.१७	११६
अपाणिपादोऽहमचिन्त्यशक्तिः — कै.उ.	३.१९	१२०
अर्पण करे जो फूल-फल — श्रीकृष्णगीता ९.२६	६.५	२२४
अशब्दमस्पर्शमरूपमव्ययं — कठ.उ.१.३.१५	४.१	१२३
अशरीरोऽपि सर्वत्र — सि.शि.म., १८.१९	६.८	२३०
असदकरणादुपादान — सांख्य का. ९	१.३	१४
आकाशवत् सर्वगतश्च नित्यः —	४.८	१४२
आतोऽनुपसर्गे कः — अ.३.२.३	६.१६	२५२
आत्मा चित्ते शरीरे च — अमरकोषः	२.१५	७५
आत्मानमरणिं कृत्वा — कै.उ. १.११	१.१४	४८
इति तु पञ्चम्यामाहुतावायः — श्रुति	६.१५	२४९
इदं हि श्वेताश्वतरश्रुतेस्तु — समर्पणपद्य (टिप्पणी में)	१.१	३
इन्द्र आदि लोकेश्वर जिनके — मन्त्रानुवाद श्वे.उ. ६.७	६.७	२२८

CC0. In Public Domain. Jangamwadi Math Collection, Varanasi

Digitization by eGangotri and Sarayu Trust. Funding by MoE-IKS

उद्धृतवचन (भावार्थदीपिका)	श्वेता.उप.संदर्भ	पृष्ठ
इष्टलिङ्गार्पितं शुद्धं — अनुभवसूत्र	४.१३	१५३
इस एक मेरे अंश से — श्रीकृष्णगीता १०.४२	४.१०	१४९
इस भांति होकर युक्त जो — श्रीकृष्णगीता १०.२०	३.४	९०
इस लोक में क्षर और अक्षर — श्रीकृष्णगीता १५.१६	४.७	१३९
ईश्वरप्रणिधानाद् वा — यो.सू. १.१.२३	हर: ॐ १.१	२
उडुपं तु प्लव: पोत: — अमरकोष:	२.८	६३
उत्पत्तिं प्रलयं चैव — विष्णु पु.	५.४	१८०
ऊर्ध्वमूलमध:शाखम् — गीता १५.१	६.६	२२५
ऊर्ध्वमूलो ह्यवाक्शाख: — कठ.उ. १.३.१	६.६	२२५
एतद् वै यदक्षरं गार्गि! — बृहदा.उ.	३.२	८५
एष स आत्मान्तर्याम्यभूत: — बृ.उ.२.७.२३	५.२	१७४
एषा चतुर्विंशति भेदभिन्ना — ब्राह्मे	१.३	१४
ऐश्वर्यस्य समग्रस्य — वि.पु. ६.४.७४	३.११	१०१,
	६.४	१८०
ओमित्येकाक्षरं ब्रह्म — गीता ८.१३	२.९	१४
कपिल: कपिरप्यय: — विष्णु.सहस्र.१९८	५.२	१७५
कल्पान्त में मेरी प्रकृति में — श्रीकृष्णगीता ९.७	३.१	८२
कस्मिन्नु भगवो! विज्ञाते — मु.उ. १.१.३	१.१२;३.१९	४४
कहते जिसे परमातमा — श्रीकृष्णगीता १५.१७	४.७	१३९
कालोऽस्मि लोकक्षयकृद् — गीता ११.३२	६.२	२१२
काल: सृजति भूतानि	६.२	२१२
काल: स्वभावो — श्वे.उ. १.२	६.१	२०९
क्षर और अक्षर से परे — श्रीकृष्णगीता १५.१८	४.७	१३९
क्षर सर्व भूतों को कहा — श्रीकृष्णगीता १५.१६, १७	१.८	२७
क्षेत्रज्ञ आत्मा पुरुष: — अमरकोष १.४.२९	६.१६	२५३
क्षेत्रज्ञं चापि मां विद्धि — गीता १३.२	६.१६	२५२
क्षेत्राणि हि शरीराणि — महा.शां.प. ३५.१.१७	६.१६	२५३
क्लेशकर्मविपाकाशयै — यो.सू.१.१.२४	'हर:ॐ' १.१	२
गता: कला: पञ्चदश प्रतिष्ठा — मु.उ. ३.२.७	६.१९	२५७
गुणत्रयात्मिका शक्ति: — सि.शि.म. ५.३९	६.८	२३३

CC0. In Public Domain. Jangamwadi Math Collection, Varanasi

Digitization by eGangotri and Sarayu Trust. Funding by MoE-IKS

उद्धृतवचन (भावार्थदीपिका)	श्वेता.उप.संदर्भ	पृष्ठ
चन्द्रकान्ते यथा तोयं — सि.शि.म., ५.३६	१.१२	४४,
	६.६	२२६
चेतन परम चेतनों में — मंत्रानुवाद श्वे.उ. ६.१३	६.१३	२४४
जगद्गुरुः श्रीमुरुघेशवर्यः — (समर्पणपद्य) (टिप्पणी में)	१.१	३
जब युक्त सोना जागना — श्रीकृष्णगीता ६.१७	२.९	६३
जिन परमेश्वर ने ब्रह्मा को — मंत्रानुवाद श्वे.उ. ६.१८	६.१८	१६५,
	४.१८	२५५
जिसमें न सूर्यप्रकाश — श्रीकृष्णगीता १५.६	६.१४	२४७
जिससे प्रकाशित है जगत् — श्रीकृष्णगीता १५.१२	४.१८	१६४
	६.१४	२४८
जीवत्वं दुःखसर्वस्वं — सि.शि.म., १८.१७	४.७	१३७
जो असंख्य निष्क्रिय जीवों के — मंत्रानुवाद श्वे.उ.६.१२	६.१२	२४१
जो बाहरी संयोग से है — श्रीकृष्णगीता ५.२२	४.५	१३२
जो जगत में वस्तु — श्रीकृष्णगीता १०.४२	४.१०	१४९
जो जन मुझे भजते — श्रीकृष्णगीता ९.२२	१.१०	३६
जो सोमपा त्रैविद्य जन — श्रीकृष्णगीता १.२०-२१	५.३	१७८
ज्ञानक्रियात्मिका सापि — पौष्करागम	६.८	२३३
ज्ञानमावृत्त्य तु तमः — गीता १४.२	६.४	२२०
तत्तदर्पणतो लब्धं — अनुभवसूत्र ७.२३	४.१३	१५३
तत्पुरुषाय विद्महे — महाना. उ. १८	३.९	९९
तत्राऽपरा-ऋग्वेदो यजुर्वेदः — मु.उ.१.१.५	४.८	१४२
तदस्यास्त्यस्मिन्निति मतुप् — अ.५.२.९४	३.१	८१
तदात्मानमेवावेदाहं ब्रह्मास्मि — बृ.उ. ६.४.१०	२.१५	७५
तदेवाग्निस्तद् वायु — महाना.उ.७	४.२	१२८
तपसा चीयते ब्रह्म — मु.उ. १.१.८	३.१५	११३
तमादिमध्यान्त — कै.उ.१.७	४.२	१२७
तस्माद् वा एतस्माद् — तै.उ. २.१.१	६.२	२१३
तस्माल्लिङ्गमिति ख्यातं — सि.शि.म., ६.३८	१.१.	६,८७,
	३.१६	११४
तस्य वाचकः प्रणवः — यो.सू.१.१.२७	हरःॐ १.१	२

CC0. In Public Domain. Jangamwadi Math Collection, Varanasi

Digitization by eGangotri and Sarayu Trust. Funding by MoE-IKS

उद्धृतवचन (भावार्थदीपिका)	श्वेता.उप.संदर्भ	पृष्ठ
दुःखानुशयी द्वेषः — यो.सू.२.८	१.५	२१
दृगदर्शनशब्दयोः — यो.सू. २.६	१.५	२१
देह और इन्द्रिय ते — पद्यानुवाद	६.८	२३०
दैवी ह्येषा गुणमयी — गीता ७.१४	३.१	८१
द्युभ्वाद्ययतनं स्वशब्दात् — ब्र.सू.१.३.१	३.२	८६
द्वौ सुपर्णौ शरीरेऽस्मिन् — सूतसंहिता	४.६	२३६
ध्यानं नाम चित्तैकाग्र्यम् — शाङ्करभाष्य	१.३	११
ध्यायतीव लेलायतीव — बृ.उ. ४.३.७	३.१६	११६
न तद् भासयते सूर्यो — गीता १५.६	६.१४	२४७
नवद्वारं पुरं पुण्यं — महाभा.शां.प. २१०.३०	३.१३	१०५
न सूर्यो भाति तत्रेन्दुः — सि.शि.म. १२.३.८	६.१४	२४८
ना प्रकाशः प्रकाशते — न्यायः	६.१४	२४७
नान्योऽतोऽस्ति द्रष्टा — बृ.उ. ३.७.२३	३.१९	११९
नायमात्मा प्रवचनेन लभ्यो — कठ.उ. १.२.२३	५.१३	२०४
नित्यं भाति तदीयस्त्वं — सि.शि.म. १०.५९	३.५	९२
नियतिरविशमपुण्यपापः — शाङ्करभाष्य	१.२	८
निष्कलङ्कचिदानन्द — सि.शि.म. १९.७७	६.८	२३३
निष्कलं भावलिङ्गं स्याद् — वातुलागम	५.१४	२०७
पत्रं पुष्पं फलं तोयं — गीता ९.२६	६.५	२२३
परम सूक्ष्म ते सूक्ष्म — मंत्रानुवाद श्वे.उ. ४.१४	४.१४	१५४
परमेश्वर से व्याप्त जगत में — ईश.उ.१ वे.मू.मंगलेश्वर बादल	५.४	१८२
पश्यत्यत्मानमन्यं तु — विष्णुधर्मोत्तर.पु.	१.६	२४
पुरुषौ वै रुद्रः — श्रुतिः	३.९	
पूर्वेषामपि गुरुः — यो.सू. १.१.२६	हरःॐ १.१	२
पृथ्वी पवन जल — श्रीकृष्णगीता ७.४	१.४	१८,
	६.३	२१६
प्रकाशमानं न पृथक् प्रकाशात् — आगमवचनम्	६.१४	२४७
प्रकृतिं स्वामवष्टभ्य — गीता ९.८	३.१	८२
प्रणवो धनुः शरो ह्यात्मा — मु.उ. २.२.४	१.३	११

CC0. In Public Domain. Jangamwadi Math Collection, Varanasi

Digitization by eGangotri and Sarayu Trust. Funding by MoE-IKS

उद्धृतवचन (भावार्थदीपिका)	श्वेता.उप.संदर्भ	पृष्ठ
प्रधानपुरुषेश्वरः — विष्णुसहस्रनाम	६.१६	२५२
"प्राणायाम क्षपितमनोमलस्य" — शाङ्करभाष्य श्वे.उ.२.९	२.९	६४
प्राणायामं ततः कुर्यात् — शांकरभाष्य श्वे.उ.२.८	२.९	६५
बहूनां जन्मनामन्ते — गीता ७.१९	६.३	२१७
बृहत्वात् बृंहणत्वाच्च — विष्णुसहस्रनाम शांकरभाष्य	१.१	६
बृहत्वात् बृंहणत्वाच्च — सि.शि.म. ६.३८	१.१०	३७
ब्रह्मचारी गृहस्थो वा — क्रियासार	६.२१	२६०
ब्रह्ममेतु मां मधुमेतु मां — श्रुतिः (त्रिसुपर्ण्य)	१.९	३४
ब्रह्मविष्ण्वादयोः देवाः — सि.शि.म. १२.३३	३.१६	११४
	४.८	१४३
ब्रह्म सत्यं जगन्मिथ्या — शांकरमतम्	२.१५	७७
ब्रह्मद्यैर्मलिनप्रायै — सि.शि.म. १०.९	६.८	२३१
भगवान् भगहाऽनन्दी — विष्णुसहस्रनाम् ७३	५.४	१८०
भानुर्हंसः सहस्रांशुः — अमरकोष १.३.१	६.१५	२४९
भोगायतनं शरीरम् — योगसूत्र	४.७	१३८
मनसश्चेन्द्रियाणां च — स्मृतिः	६.२१	२६०
मनोविजृम्भितं सर्वं — शाङ्करभाष्यम्	१.५	२०
ममैवांशो जीवलोके — गीता १५.७	५.८	१९२
मयाऽध्यक्षेण प्रकृतिः — गीता ९.१०		१५
महर्षिः कपिलाचार्यः — विष्णु स. ७०	५.२	१७६
महामहिम वह एकपाद में - हिन्दी पुरुषसूक्त ३ —वे. मू. मंगलेश्वर बादल	४.१९	१६६
माखन में स्थित सारभाग में — मन्त्रानुवाद श्वे.उ. ४.१६	४.१६	१५८
मायां तु प्रकृतिं — श्वे.उ. ४.१०	१.३	१४
मृच्छिलाविहिताल्लिङ्गात् — सि.शि.म. १५/४०	५.१४	२०७
मृत्युर्वै तमः — बृ.उ.१.३.२८	४.१५	१५७
मेरा लगाना ध्यान — श्रीकृष्णगीता ८.१३	२.९	६५
मैं सर्व जीवों के हृदय में — श्रीकृष्णगीता १०.२०	२.११	१०१
यः पृथिव्यां तिष्ठन् — बृ.उ. ३.७.२	५.२	१७४
'यतः दीव्यति क्रीडति' इत्यादि		

CC0. In Public Domain. Jangamwadi Math Collection, Varanasi

Digitization by eGangotri and Sarayu Trust. Funding by MoE-IKS

उद्धृतवचन (भावार्थदीपिका)	श्वेता.उप.संदर्भ	पृष्ठ
'देव' शब्द निर्वचन — शांकरभाष्य, विष्णुसहस्रनाम	१.३	११
यत करोषि यदश्नासि — गीता ९.२०	६.४	२२१
यत्र विश्राम्यतीशत्वं — सि.शि.म. १.७	६.७	२२९
यथा चन्द्रे स्थिरा ज्योत्स्ना — सि.शि.म. २०.३८	६.८	२३१,
	६.१४	२४८
यथोर्णनाभि: सृजते गृह्यते च — मु.उ. १.१.७	३.१;६.१०	८१
यदा चर्मवदाकाशं — श्वे.उ.६.२७	४.८	१४२
यदादित्यगतं तेजो — गीता १५.१२	६.१४	२४८
यमेवैष वृणुते तेन लभ्य: — मु.उ. ३.२.३	३.२०	१२१
यस्त्वविज्ञानवान् भवति — कठ.उ. ३.५	२.९	६४
यस्मादर्वाक् संवत्सरोऽहोभि: — बृ.उ.४.४.१६	६.५	२२२
यस्मिन् द्यौ: पृथिवी चान्तरिक्षं — मु.उ. २.२.५	३.२	८६
यह प्रकृति एवं पुरुष — श्रीकृष्णगीता १३.१९	१.९	३३
यान्ति देवव्रता देवान् — गीता ९.२५	६.५	२२३
येन सूर्यस्तपति तेजसेद्ध: — तै.ब्रा. ३.१२.९.७	६.१४	२४७
ये ही देव विश्वकर्मा हैं — मंत्रानुवाद श्वे.उ. ४.१७	४.१७	१६०
योगो ज्ञानं तथा साख्यं — विष्णुसहस्रनामस्तोत्र १३९	१.१६	५०
"योनि योनि कारण कारण के" — कल्याण उप. अंक	४.११	१५०
लयं गच्छति यत्रैव — सि.शि.म. ६.३७-३८	३.२	८७
	३.१६	११४
"लिङ्ग तु शिवयोर्देह:" — आगम:	३.४	९२
लिङ्गं शिवो भवेत् क्षेत्रं — क्रियासार	६.२१	२६०
वर्तमान आगामि सहित — वे.मू. मंगलेश्वर बादल	३.१५	१०९
विश्वस्मादधिको रुद्रो — सि.शि.म. १०.८	३.४	९१
विश्वाधिपत्वमीशस्य — सि.शि.म. १०.८	३.४	९१
वेदाहमेतं पुरुषं — श्वे.उ. ३/८	३.२१	१३०
वे ही पति इस जग में — मंत्रानुवाद श्वे.उ. ६.९	६.९	२३५
वे ही स्थिति के समय — मंत्रानुवाद श्वे.उ. ४.१५	४.१५	१५६
व्योमातीतोऽग्निरीश्वर: — श्रुति:	६.१५	२४९
शुद्धात्मतत्त्वविज्ञानं	५.२	१७६

CC0. In Public Domain. Jangamwadi Math Collection, Varanasi

Digitization by eGangotri and Sarayu Trust. Funding by MoE-IKS

उद्धृतवचन (भावार्थदीपिका)	श्वेता.उप.संदर्भ	पृष्ठ
शिवस्य हृदयं विष्णुः	हरः ॐ १.१	२
शुभाशुभफलैरेवं — गीता ९.२८	६.४	२२१
षोडशकस्तु विकारः — सां.का.	१.४	१६
संक्षीणाशेषकर्मा तु — विष्णु धर्मोत्तर पु.	१.६	२४
सच्चे वचन प्रिय — श्रीकृष्णगीता १७.१५	१.१५	४९
सती चाहं पतिर्लिङ्गं — शंकरसंहिता	५.११	१९९
सतीव रमते यस्तु — सि.शि.म. १३.५	५.११	१९९
सत्त्वं रजस्तम इति — गीता १४.५	१.३	१५,
	५.६	१८९,
	६.४	२२०
स प्राणमसृजत — प्रश्न उ. ६.४	६.१९	२७६
सब इन्द्रियों को साध कर — श्रीकृष्णगीता ८.१२	२.९	६५
सब भूतों में छिपे हुए वे — मंत्रानुवाद श्वे.उ. ६.११	६.११	२३९
स ब्रह्मा स शिवः — कै.उ. १.८	४.२	१२६
सर्वज्ञता तृप्तिरनादिबोधः — पारमेश्वरागम ६.३३	१.८	३०,
	६.२	२१३
सर्वत्र उसके पाणि पद — श्रीकृष्णगीता १३.१३	३.१७	११५
सर्वद्वाराणि संयम्य — गीता ८.१२	२.९	६५
सर्वभूतानि कौन्तेय — गीता ९.७	३.१	८२
सहस्रशीर्षा पुरुषः इत्येकं — खद्योतवार्त्तिक-गणेशसहस्रनामस्तोत्र ५८७	३.१४	१०८
साक्षाद् द्रष्टरि संज्ञायाम् — अ. ४.२.९१	६.११	२४०
सांख्यानां कपिलो देवः — गीता १०.२६	५.२	१७५
सिद्धानां कपिलो मुनिः — गीता १०.२६	५.२	१७६
सुखानुशयी रागः — यो.सू. २.८	१.५	२१
सुधि ज्ञान और ऊपोह — श्रीकृष्णगीता १५.१५	१.१६	५१
सुरभक्त सुरको — श्रीकृष्णगीता ९.२५	६.५	२२३
स्थाणुरयं भारहरः — अभियुक्ताः	४.८	१४४
स्वभावो नाम पदार्थानां — शाङ्करभाष्य	१.२	८
स्वरसवाही विदुषोऽपि — यो.सू. १.९	१.५	२१

CC0. In Public Domain. Jangamwadi Math Collection, Varanasi

Digitization by eGangotri and Sarayu Trust. Funding by MoE-IKS

उद्धृतवचन (भावार्थदीपिका)	श्वेता.उप.संदर्भ	पृष्ठ
हन् हिंसागत्योः — धातुपाठः	६.१५	२५०
हिरण्यगर्भो भूगर्भः — विष्णुसहस्रनाम २१	५.२	१७५
हिरण्यगर्भः शत्रुघ्नः — विष्णु स.५७	५.२	१७५
हिरण्यगर्भः समवर्तताग्रे — ऋ.सं. १०.१२१.१	३.४	९०
हृदि प्राणो गुदेऽपानः — अमरकोषः	५.७	१९०
हे पार्थ! जीवों का सनातन — श्रीकृष्णगीता ७.१०	२.१६	७८
है असंख्य शिर नेत्र पादयुत — वे.मू. मंगलेश्वर बादल	३.१३	१०७
है मूल ऊपर शाख नीचे — श्रीकृष्णगीता १५.१	६.६	२२५
होंगे हुए हैं जीव जो — श्रीकृष्णगीता ६.२६	३.१९	११९
हंसः स्यान्मानसौकसि — मेदिनीकोषः	६.१५	२५०

❀ ❀ ❀

CC0. In Public Domain. Jangamwadi Math Collection, Varanasi

Digitization by eGangotri and Sarayu Trust. Funding by MoE-IKS

CC0. In Public Domain. Jangamwadi Math Collection, Varanasi

Digitization by eGangotri and Sarayu Trust. Funding by MoE-IKS

CC0. In Public Domain. Jangamwadi Math Collection, Varanasi

Digitization by eGangotri and Sarayu Trust. Funding by MoE-IKS

शैवभारती शोध प्रतिष्ठानम्
डी. 35/77, जंगमवाडीमठ
वाराणसी-221001

ISBN 81-86768-84-X

Rs. 400.00

CC0. In Public Domain. Jangamwadi Math Collection, Varanasi